THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182026

UNIVERSAL
LIBRARY

सामान्य मनोविज्ञान

चतुर्थ संस्करण

(संशोधित एवं परिवर्द्धित)

लेखक

प्रो० रामप्रसाद पाण्डेय, एम० ए०

अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग,

रामदयालु सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर

[मूल्य ६॥

प्रकाशिका
श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी
मुजफ्फरपुर

प्रथम संस्करण ·· ··१९५४
द्वितीय सस्करण ·····१९५५
प्रथमावृत्ति··· ····१९५६
तृतीय सस्करण····· १९५७
प्रथमावृत्ति ·····१९५८
चतुर्थ सस्करण ·····१९५९
प्रथमावृत्ति ·····१९५९
द्वितीयावृत्ति·· ···· १९६०
तृतीयावृत्ति ·· ····१९६१

मुद्रक
मोहन प्रेस, पटना–३

सर्वाधिकार लेखक
द्वारा सुरक्षित

पुस्तक मिलने का पता—
प्रो० रामप्रसाद पाण्डेय
रामदयालु सिंह कॉलेज,
मुजफ्फरपुर

पूज्य पिताजी के चरणों
में
सादर समर्पित

प्रथम संस्करण

प्राक्कथन

प्रो० श्री रामप्रसाद पाण्डेय विरचित 'सामान्य मनोविज्ञान' को आद्यन्त पढने का सुअवसर मिला। समीक्षात्मक दृष्टि से पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् मुझे यह कहने मे अत्युक्ति नही जान पडती कि मनोविज्ञान-जैसे गभीर वैज्ञानिक विषय पर राष्ट्रभाषा हिन्दी मे यह एक अनुपम कृति है। जब से भारतीय विश्वविद्यालयो ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को अध्ययन-अध्यापन का माध्यम अगीकार कर लिया है, तब से हिन्दी मे विभिन्न वैज्ञानिक विषयो पर अनेकानेक पुस्तके प्रकाश मे आने लगी है। मनोविज्ञान पर भी हिन्दी मे अबतक कई पुस्तके निकल चुकी है, किन्तु पाण्डेयजी की प्रस्तुत पुस्तक उन पुस्तकों मे बेजोड़ है। मेरे जानते हिन्दी में अंगरेजी ग्रथो का विकल या अविकल अनुवाद-मात्र ही अबतक के लेखको का अन्यतम देन रही है। पाण्डेयजी ने अपनी पुस्तक मे उनकी परपरा का अनुसरण नही कर मौलिक ढंग से विषयो का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। निस्सन्देह यह उनकी नवीन उपक्रम है।

पुस्तक की सर्वमान्य एव सर्वोपरि विशेषता, जो सहसा पाठकों के मन-प्राणो को आकृष्ट करती है, वह है इसकी शरद्-पूनो की अमल-धवल चाँदनी-सी प्राजल पारदर्शी भाषा मे विषय-वस्तु का सरस वैज्ञानिक प्रतिपादन। मत-मतान्तरों के ऊहापोह में जहाँ अन्य पुस्तके मौन हैं या सुलझी हुई नहीं, वहाँ प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने उनका आलोचनात्मक उल्लेख कर विषय के विश्लेषण मे निष्पक्षता के आग्रह का पूर्णरूपेण निर्वाह किया है। किसी मत-विशेष के प्रति अन्ध-भक्ति न रखकर उन्होने सन्तुलित तथा मान्य विचारों एव निष्कर्षों को ही उपस्थित किया है। पुस्तक मे प्रारंभ से परिसमाप्ति तक वैज्ञानिक परंपरा का निर्वाह विशेष रूप से द्रष्टव्य ही नही, अपितु उल्लेख्य भी है। अभिव्यक्ति में कही भी दुरूहता नही आई है और न वह दूरान्वय-दोष से ही दूषित है। शैली की सरलता, सुबोधता एवं प्रांजलता से कहीं भी विषयो के विवेचन-विश्लेषण में क्लिष्टता का भान नही होता। मनोविज्ञान-जैसे दुरूह वैज्ञानिक विषय पर इतनी स्वाभाविक एवं प्रवाहपूर्ण

भाषा मे विचारो की अभिव्यक्ति लेखक के विषय और भाषा, दोनो ही पर पूर्ण अधिकार का परिचय देती है। पारिभाषिक शब्दो के चयन मे भी लेखक ने बडी योग्यता एव विद्वत्ता से काम लिया है। विशेषत मनोविज्ञान के प्रारम्भिक पाठको की सुविधा के लिए लेखक ने अँगरेजी के पारिभाषिक शब्दो को कोष्ठ मे दे दिया है। स्थल-स्थल पर उपयुक्त चित्रो एव उदाहरणो के सहारे कठिन विषयो को भी ऐसे सुगम ढग से उपस्थित किया गया है कि उनकी बोधगम्यता मे किसी प्रकार की कठिनाई नही होती ।

मुझे गर्वमिश्रित हर्ष के साथ यह कहने मे सकोच का अनुभव नही होता कि पाण्डेयजी ने इस पुस्तक को प्रत्येक दृष्टिकोण मे अनुपम तथा अद्वितीय बनाकर राष्ट्रभाषा हिन्दी की जो अमूल्य सेवा की है, उसके लिए वे अवश्य ही श्लाघा तथा प्रोत्साहन के पात्र है। हिन्दी मे वैज्ञानिक विषय पर ऐसी पुस्तको का नितान्त अभाव है। मनोविज्ञान के क्षेत्र मे इस पुस्तक से निस्सन्देह एक बडे अभाव की पूर्त्ति हुई है।

अन्त मे, मुझे विश्वासपूर्ण आशा है कि यह पुस्तक अध्ययनशील विद्यार्थियो के बडे काम की होगी और भारतीय विश्वविद्यालयो के प्रारम्भिक छात्रो की पाठ्य-पुस्तक के रूप मे अत्यत उपयोगी सिद्ध होगी। मै पाण्डेयजी को उनकी प्रथम सफल कृति पर हार्दिक बधाई देता हूँ।

श्री आनन्दी हजारी
अध्यक्ष,
मनोविज्ञान-विभाग,
लगटसिह कॉलेज, मुजफ्फरपुर
(बिहार-विश्वविद्यालय)

ता० ३-७-१९५४

दो शब्द

मनोविज्ञान पर हिन्दी में कुछ लिखने की प्रवृत्ति पहले से ही थी। इधर कुछ वर्षों से विद्यार्थियों के सतत आग्रह ने उसे और भी प्रबल बना दिया। अन्ततोगत्वा उसकी परिणति 'सामान्य मनोविज्ञान' की रचना में हुई। अपनी इस प्रथम रचना को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता का अनुभव होता है। यह रचना कैसी है, इसका निर्णय तो मननशील पाठक तथा सुयोग्य समीक्षक ही कर सकते हैं। हमें अपनी ओर से केवल एक ही बात कहनी है, और वह यह कि पुस्तक लिखने में प्रारम्भ से अंत तक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का यथासम्भव निर्वाह किया गया है। फलतः भाषा में भी साहित्यिक माधुर्य के बदले वैज्ञानिक सरलता की ही प्रमुखता सर्वत्र दृष्टिगत होगी। यदि यह पुस्तक पाठकों में मनोविज्ञान के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न कर सकी, तो हमें अपने इस प्रयास को सफल मानने में थोड़ी भी हिचकिचाहट का अनुभव न होगा।

प्रस्तुत पुस्तक की रचना में जिन ग्रंथों से सहायता ली गयी है, उनमें से कुछ प्रमुख सहायक ग्रंथों की सूची भी पुस्तक के प्रारम्भ में दे दी गयी है। हम उन सभी लेखकों के अत्यन्त आभारी हैं, जिनकी पुस्तकों से हमें कुछ भी सहायता मिली है। अत्यल्प समय में मुद्रित होने के कारण पुस्तक में यत्र-तत्र मुद्रण-त्रुटियाँ रह गयी हैं। आशा है, सहृदय एवं विद्वान् पाठक विषयों को हृदयंगम करते समय मुद्रण-त्रुटियों को सुधार लेने की कृपा करेंगे।

पुस्तक के प्रणयन में श्रद्धेय प्रो० आनन्दी हजारी, अध्यक्ष, मनोविज्ञान-विभाग, लंगटसिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर की अमूल्य सम्मतियों से हमें अत्यधिक सहायता मिली है तथा उन्होंने पुस्तक का प्राक्कथन लिखकर हमारे प्रथम प्रयास को अत्यन्त महत्त्व प्रदान किया है। हम सचमुच उनके अत्यन्त आभारी हैं। हिन्दी के विद्वान् कवि आचार्य श्रीजानकीवल्लभ शास्त्री की सुमधुर सन्निधि में रहकर हमें निरन्तर पारिभाषिक शब्दों के आकलन एवं निर्माण में उनकी स्नेहपूर्ण सहायता मिलती रही है। उनके स्नेह के उल्लेख में शब्द मौन हो जाते हैं। परम सहयोगी मित्र प्रो० गोपाल प्रसाद, मनोविज्ञान-विभाग, लंगटसिंह कॉलेज के प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिन्होंने

पुस्तक की हस्तलिपि को आद्यन्त पढ़कर स्थल-स्थल पर अपनी आलोचनात्मक सम्मतियों से पुस्तक के परिमार्जन मे अतुल सहायता प्रदान की है। सचमुच यदि उनका हार्दिक एवं सुरुचिपूर्ण सहयोग प्राप्त न होता, तो पुस्तक की सफलता संदिग्ध रह जाती। पुस्तक की रचना मे हमे जिन मित्रों से निरन्तर प्रोत्साहन मिलता रहा है, उनमें प्रो० विद्यानाथ मिश्र, प्रो० प्रेमनन्दन राय, प्रो० रमावल्लभ चौधरी तथा प्रो० सरयू प्रसाद के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हम प्रो० रत्नकुमारी शर्मा, हिन्दी-वि ाग, दर्शनदास महिला कॉलेज, के भी अत्यन्त अनुगृहीत हैं, जिनसे प्रस्तुत पुस्तक लिखने की निरन्तर प्रेरणा मिलती रही है।

हमें अपने कॉलेज के प्रिंसिपल श्री गयाप्रसाद सिंह जी से इस पुस्तक की रचना में पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है, इसके लिए हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

पुस्तक के प्रकाशन मे बन्धुवर कुमार दयालशरण सिंह ने जिस हार्दिक आतुरता एव उत्साह का परिचय दिया है, वह हमारे जीवन मे एक मधुर स्मृति बनकर रहेगी। पुस्तक की रचना मे मित्रवर रामबहादुर प्रसाद का सहयोग भी उल्लेखनीय है। हम अत्यन्त आभारी हैं अपने उन सभी विद्यार्थियों के, जिनसे पुस्तक की रचना में किसी भी प्रकार की सहायता प्राप्त हुई है।

प्रसिद्ध कलाकार श्री कलाधरजी हार्दिक बधाई के पात्र हैं; क्योंकि पुस्तक में यत्र-तत्र दिये गये चित्रों का श्रेय उन्हे ही है।

रामदयालु सिंह कॉलेज,
मुजफ्फरपुर,
जून, १९५४

रामप्रसाद पाण्डेय

द्वितीय संस्करण

निवेदन

पुस्तक का यह द्वितीय संस्करण मननशील पाठकों की गुण-ग्राहकता एवं सहृदयता का परिणाम है। उन्होंने पुस्तक के प्रथम संस्करण को जिस उत्साह तथा आतुरता के साथ अपनाया, उसका ही फल है कि यह पुनः संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप में उनके समक्ष प्रस्तुत की जा रही है। इस संस्करण में पारिभाषिक शब्दों में यत्र-तत्र संशोधन किये गये हैं, जिनका श्रेय विशेष रूप से हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् परम पूज्य गुरुवर प्रो० नलिन विलोचन शर्मा को है। हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वान् कवि आचार्य श्री जानकीवल्लभ शास्त्री से मुझे निरन्तर शब्दों के निर्माण में स्नेहपूर्ण सहायता मिलती रही है।

भाषा में वैज्ञानिकता का निर्वाह करते हुए भी उसे यथासंभव सुबोध रखने की चेष्टा की गयी है। मनोविज्ञान के प्रारंभिक पाठक विषय को सहज गति से हृदयंगम कर सकें, इसके लिए अधिकांशतः दैनिक जीवन के उदाहरणों की सहायता से विषय-वस्तु का सरल विवेचन प्रस्तुत करना लक्ष्य रहा है। इसमें मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय मनोविज्ञान तथा हिन्दी-भाषा के विशेषज्ञ ही कर सकते है।

इस संस्करण के परिमार्जन में मनोविज्ञान के जिन आचार्यों एवं गुरुजनों की अमूल्य सम्मतियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें प्रो० एम० जेड० आब्दीन, डॉ० एस० एम० मोहसिन तथा डॉ० विमलेश्वर डे के नाम उल्लेखनीय है। मैं उन सभी लेखकों का अत्यन्त आभारी हूँ, जिनकी पुस्तकों से मुझे कुछ भी सहायता प्राप्त हुई है।

मैं अपने कॉलेज के प्रिंसिपल श्री गयाप्रसाद जी का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिनसे पुस्तक-रचना की निरन्तर प्रेरणा मिलती रही है।

पुस्तक में कुछ-कुछ मुद्रण-त्रुटियाँ रह गई है। आशा है, सहृदय पाठक उन्हे सुधारकर विषय-वस्तु को हृदयंगम करेंगे। अन्त में, मैं अपने सभी ऐसे सहयोगी मित्रो एवं विद्यार्थियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनसे किसी भी प्रकार की सहायता मिली है।

रामदयालु सिंह कॉलेज,
मुजफ्फरपुर,
जुलाई, १९५५

रामप्रसाद पाण्डेय

तृतीय संस्करण

अपनी बात

राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से मनोविज्ञान को हृदयंगम करनेवाले पाठकों की अभिरुचि के परिणाम-स्वरूप 'सामान्य मनोविज्ञान' का तृतीय संस्करण अनिवार्य हो गया। विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम को दृष्टि में रखते हुए यह संस्करण अपने संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप में प्रस्तुत है। इसमें दो नये अध्याय जोड़ गये हैं (बुद्धि और अनुप्रेरणा) तथा अन्य अध्यायों में भी यत्र-तत्र कुछ परिवर्त्तन किये गये हैं। प्रमुख सहायक ग्रंथों की सूची भी पुस्तक के अन्त में दे दी गयी है।

मनोविज्ञान एक प्रगतिशील विज्ञान है। अतएव इसमें अनेक विचारधाराओं का समावेश है। परन्तु इस पुस्तक में किसी विशेष विचारधारा के प्रति आग्रह न रखकर मान्य एवं संतुलित विचारों के निष्पक्ष विवेचन-विश्लेषण की यथासंभव चेष्टा की गयी है। इसमें आधुनिक मनोविज्ञान के प्रयोगात्मक पक्ष के प्रति पाठकों में अधिकाधिक अभिरुचि उत्पन्न करने तथा वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के सृजन का भी प्रयास किया गया है। मैं कहाँ तक सफल हो सका हूँ, इसका निर्णय तो सुयोग्य पाठक एवं समीक्षक ही कर सकते हैं।

भाषा-सम्बन्धी परिमार्जन में प्राच्य-पाश्चात्य साहित्य के गंभीर विद्वान् तथा हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि, कथाकार एवं समीक्षक परम पूज्य गुरुवर प्रो० नलिन विलोचन शर्मा ने अतुल सहायता प्रदान कर अपनी अपार कृपा प्रदर्शित की है। हिन्दी-संस्कृत के अद्वितीय विद्वान्, मननशील चिन्तक एवं सुकवि आचार्य श्री जानकीवल्लभ शास्त्री का सान्निध्य मेरे लिए वरदान बन गया है। नये शब्दों के निर्माण तथा पूर्व-प्रयुक्त शब्दों के परिष्कार में निरन्तर उनकी स्नेहपूर्ण सहायता प्राप्त होती रही है। विषय-वस्तु के प्रतिपादन में यत्र-तत्र किये गये परिवर्त्तन मेरे सहयोगियों की आलोचनात्मक सम्मतियों के प्रतिफल हैं। ऐसे सहयोग प्रदान करनेवालों में बन्धुवर प्रो० महेन्द्र प्रसाद जायसवाल तथा प्रो० रामचन्द्र ठाकुर के नाम उल्लेख्य हैं।

मैं अपने कॉलेज के प्रिंसिपल श्रद्धेय श्री गयाप्रसाद सिंह जी का अत्यन्त आभारी हूँ, जिनसे पुस्तक-रचना का निरन्तर प्रोत्साहन मिलता रहा है।

पिछले कई वर्षों से विद्यार्थियों को पढ़ाने के अनुभव ने मुझे विश्वास का सबल दिया है। अतः मेरे सभी विद्यार्थी धन्यवाद के पात्र हैं। अन्त में, मैं उन सभी लेखकों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनकी पुस्तकों से मुझे कुछ भी सहायता मिली है।

रामदयालु सिंह कॉलेज,
मुजफ्फरपुर
जुलाई, १९५७

रामप्रसाद पाण्डेय

चतुर्थ संस्करण

निवेदन

विभिन्न विश्वविद्यालयों के मनोविज्ञानवेत्ताओं द्वारा प्रशंसित एवं समादृत 'सामान्य मनोविज्ञान' का चतुर्थ संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है। प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों ने इसे जिस गुणज्ञता के साथ अपनाया, उसी का प्रतिफल यह चतुर्थ संस्करण है। विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम को दृष्टि में रखकर समस्त पुस्तक में यथासंभव संशोधन, परिमार्जन एवं परिवर्द्धन किये गये हैं।

बारहवें अध्याय में स्वप्न के साथ अचेतन का भी विवेचन जोड़ दिया गया है, जिसका श्रेय विशेष रूप से श्री के० पी० सिंह, प्राध्यापक, मनोविज्ञान-विभाग, उदयप्रताप आत्रिय कालेज, वाराणसी, को है, जिनकी अमूल्य सम्मतियों से प्रेरित होकर ही हमने ऐसा किया है। इसके अतिरिक्त, उनके सुझावों के फलस्वरूप कई स्थलों में परिवर्त्तन एवं परिमार्जन भी किये गये हैं। उनकी इस कृपा के लिए हम उनके विशेष रूप से आभारी हैं।

मनोविज्ञान की परिभाषा के विवेचन में भी कुछ परिवर्द्धन किया गया है। मनोविज्ञान की आधुनिक परिभाषाओं का उल्लेख करते हुए समन्वयात्मक एवं संतुलित मत व्यक्त करने की चेष्टा की गयी है। इसी भाँति स्नायु-मंडल, प्रत्यक्षीकरण, प्रेरक वृत्तियों का संघर्ष तथा मनोवृत्ति के विवेचन में भी आवश्यक परिवर्द्धन किये गये हैं। आशा है ये परिमार्जन एवं परिवर्द्धन सुयोग्य पाठकों एवं विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

पारिभाषिक शब्दों के आकलन, निर्माण एवं परिष्कार में प्राच्य-पाश्चात्य साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, परम पूज्य गुरुवर प्रो० नलिन विलोचन शर्मा तथा हिन्दी-संस्कृत के मननशील विद्वान्, लोकादृत कवि एवं समीक्षक आचार्य श्री जानकीवल्लभ शास्त्री की निरन्तर स्नेहपूर्ण सहायता मिलती रही है। शास्त्री जी का सान्निध्य सचमुच हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत है। विषय-वस्तु के परिमार्जन में जिन विद्वान् मित्रों की सम्मतियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें प्रो० अजीमुर्रहमान तथा प्रो० वीरेन्द्र कुमार सिन्हा, लंगटसिंह

कॉलेज, के नाम उल्लेखनीय है। अपने अनन्य सहयोगी प्रो० महेन्द्र प्रसाद जायसवाल और प्रो० रामचन्द्र ठाकुर से तो हमें निरन्तर अमूल्य सम्मतियाँ प्राप्त होती ही रहती हैं। सचमुच, ऐसे सहयोगियों को पाकर हम अपने को धन्य मानते हैं।

मनोविज्ञान-विशारद श्री एस० एल० दर, कुल-सचिव, काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय, ने पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी अमूल्य सम्मति देकर हमें अत्यन्त उपकृत किया है। हम उनके प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। प्रो० एल० आर० जोशी, दर्शन-विभाग, गवर्नमेंट कॉलेज, अजमेर, के भी हम अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी सम्मति देकर हमारा उत्साह बढ़ाया है।

अन्त में, हम अपने प्राचार्य श्री गयाप्रसाद सिंह के प्रति आभार-ज्ञापन किये बिना नहीं रह सकते, जिनके स्नेह से निरन्तर कुछ लिखने की प्रेरणा मिलती रहती है।

पुस्तक में यत्र-तत्र मुद्रण की भूलें रह गयी हैं। आशा है, विज्ञ पाठक उन्हें सुधार कर हृदयंगम करेंगे।

हमारे सभी विद्यार्थी धन्यवाद के पात्र हैं, जिनके सतत आग्रह से हमें चिन्तन करने और कुछ लिखने की प्रेरणा मिलती रहती है। हम उन सभी लेखकों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं, जिनकी पुस्तकों से हमें कुछ भी सहायता प्राप्त हुई है।

यह निवेदन कर देना भी उचित प्रतीत होता है कि इधर मनोविज्ञान के कतिपय विद्वान् लेखकों ने भी इस पुस्तक का स्वागत किया है तथा सामान्य मनोविज्ञान-विषयक अपनी पुस्तक में इसकी शैली, अभिव्यक्ति, वाक्य तथा वाक्यांशों तक को विकल या अविकल रूप से अपना लिया है। इतना ही नहीं, उन्होंने इसके संकेत-मात्र में भी संकोच का अनुभव किया है। पर इसमें सन्देह नहीं कि उनकी इस अद्भुत गुणग्राहकता ने हमें प्रेरित और प्रभावित किया है।

रामदयालु सिंह कॉलेज,
मुजफ्फरपुर,
जुलाई, १९५९

रामप्रसाद पाण्डेय

विषय-सूची

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश पृष्ठ १

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व का मनोविज्ञान—उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ का मनोविज्ञान—शरीर-विज्ञान, जीव-विज्ञान, मानसिक रोग-चिकित्सा-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र—मनोविज्ञान : चेतना के विज्ञान के रूप में—चेतना की विशेषताएँ—बीसवीं शताब्दी का मनोविज्ञान—मनोविश्लेषण, प्रयोजनवाद, अस्तित्ववाद, जेस्टॉल्टवाद—मनोविज्ञान की परिभाषा—अनुभूति—व्यवहार—क्रिया—अभियोजन।

दूसरा अध्याय

मनोविज्ञान की विधियां तथा शाखाएँ पृष्ठ २९

मनोविज्ञान में वैज्ञानिक विधि—अन्तर्निरीक्षण—अन्तर्निरीक्षण पर आरोपित आपत्तियाँ—बाह्य निरीक्षण—बाह्य निरीक्षण के गुण-दोष—अन्तर्निरीक्षण और बाह्य निरीक्षण–प्रयोगात्मक विधि–मनोविज्ञान की शाखाएँ—सामान्य मनोविज्ञान, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, बाल-मनोविज्ञान, पशु-मनोविज्ञान, शारीरिक मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान, शिक्षा-मनोविज्ञान, असामान्य तथा औद्योगिक मनोविज्ञान।

तीसरा अध्याय

प्राणी तथा वातावरण पृष्ठ ५२

अभियोजन—ग्राहक—प्रभावक–उत्तेजनाएं–प्रतिक्रियाएँ—उत्तेजना–प्रतिक्रिया-सूत्र—वंशानुक्रम और वातावरण।

चौथा अध्याय

स्नायु-मंडल पृष्ठ ६२

कोषाणुओं के कार्य–कोषावरण के कुछ गुण—कोषद्रव के गुण—कोषकेन्द्र के गुण—ज्ञानेन्द्रियाँ या ग्राहक—ग्राहकों का वर्गीकरण—बाह्य ग्राहक—

अन्तर्ग्राहक—मध्य ग्राहक—स्नायु-कोश—स्नायु-कोश की बनावट—स्नायु-कोशों के प्रकार—कर्मेन्द्रियाँ या प्रभावक—स्नायु-प्रवाह—सीमांत उत्तेजना = निरपेक्ष निष्क्रियावस्था तथा सापेक्ष निष्क्रियावस्था—स्नायु-प्रवाह तथा 'सम्पूर्ण-या-बिलकुल नहीं' का नियम—संधि-स्थल—स्नायु-मंडल के सविभाग—स्वतः संचालित स्नायु-मंडल—केन्द्रीय स्नायु-मंडल—सुषुम्ना या मेरुदंड-रज्जु—मस्तिष्क—अनुमस्तिष्क—सेतु और लघुमस्तिष्क—मध्य मस्तिष्क—अन्तरमस्तिष्क—थैलेमस और हाईपोथैलेमस—मस्तिष्क-धड़—मूलभूत स्नायु-पुञ्ज—बृहत् मस्तिष्क—बृहन्मस्तिष्कीय बल्क की क्रियाएँ—बृहन्मस्तिष्कीय बल्क में क्रियाओं का स्थान-निरूपण—बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के ज्ञानवाही क्षेत्र—बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के गतिवाही क्षेत्र—बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के साहचर्य-क्षेत्र—संपूर्ण बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के सामान्य कार्य। मस्तिष्क की समक्षमता तथा पूँजीभूत क्रिया का सिद्धान्त।

पाँचवाँ अध्याय

संवेदना पृष्ठ १०६

संवेदना की परिभाषा—संवेदना की विशेषताएँ अथवा उसके गुण—प्रकार, तीव्रता, व्याप्ति या विस्तार, सत्ताकाल, स्थानीय चिह्न तथा स्पष्टता—संवेदना के प्रकार—दृष्टि-संवेदना—आँख की बनावट—दृष्टि-संवेदना के उद्दीपक—मौलिक रंगों की संवेदनाएँ और उनका सम्मिश्रण—पूरक रंग—अन्धकार-अभियोजन तथा प्रकाश-अभियोजन, अनुबिम्ब तथा रंग-अन्धापन—श्रवण-संवेदना—कान की बनावट—ध्वनि का स्वरूप—लयात्मक ध्वनि की प्रमुख विशेषताएँ—स्वाद तथा गन्ध-संवेदनाएँ—गन्ध-संवेदना की विशेषताएँ—त्वक्-संवेदनाएँ—गति-संवेदनाएँ तथा अन्य अन्तरिन्द्रिय संवेदनाएँ।

छठा अध्याय

प्रत्यक्षीकरण पृष्ठ १३६

प्रत्यक्षीकरण की परिभाषा—प्रत्यक्षीकरण का विश्लेषण—ग्राहक प्रक्रियाएँ, प्रतीकात्मक प्रक्रियाएँ—भावात्मक प्रक्रियाएँ और सौन्दर्यानुभूति—प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप—प्रत्यक्षीकरण में पूर्व-अनुभूति का महत्त्व—प्रत्यक्षीकरण में आकार और आधार-भूमि का महत्त्व—संवेदना और प्रत्यक्षीकरण में अन्तर—विपर्यय और प्रत्यक्षीकरण—विपर्यय और विभ्रम—विपर्यय के प्रकार—विपर्यय उत्पन्न होने के प्रमुख कारण।

सातवाँ अध्याय

ध्यान पृष्ठ १५७

ध्यान की परिभाषा--ध्यान मे शारीरिक मुद्रा--ध्यान के प्रकार--ध्यान की अवस्थाएँ अथवा निर्धारक--ध्यान के बाह्य निर्धारक--ध्यान की आन्तरिक अवस्थाएँ अथवा निर्धारक--ध्यान की अस्थिरता--ध्यान का विभाजन।

आठवाँ अध्याय

सीखना पृष्ठ १७३

सीखने की परिभाषा--सीखना तथा परिपक्वता--सीखने मे प्रेरणा का स्थान --सीखने के प्रमुख नियम--साहचर्य के नियम--गतिवाही सीखना तथा वाचिक सीखना--सीखने के प्रमुख सिद्धान्त--पावलव की सम्बन्ध-प्रत्यावर्तन-पद्धति--पावलव का प्रयोग--मनुष्य के सीखने मे सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन का महत्त्व--सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन का स्वरूप--अनुक्रम एव काल-सम्बन्ध, बाधक उत्तेजनाओं की अनुपस्थिति, सामान्यीकरण तथा विशेषीकरण और संबंध--प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया का अन्त--सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन-सिद्धान्त की समीक्षा--प्रयत्न और भूल' का सिद्धान्त--उलझन-बक्स की समस्या--भूल-भुलैया सीखने की समस्या--मनुष्य का भूल-भुलैया सीखना--उलझन-बक्स की समस्याएँ तथा अन्य कठिन कार्य--'प्रयत्न और भूल' सिद्धान्त की समीक्षा--अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ का सिद्धान्त-केहलर के प्रयोग--बच्चे एवं प्रौढ़ व्यक्तियों के सीखने में अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ का स्थान--सीखने में 'प्रयत्न और भूल' तथा 'सूझ' का तुलनात्मक महत्त्व--सीखने की विधियाँ--आवृत्तीकरण, अविराम अथवा विराम रीति से सीखना तथा पूर्ण अथवा आंशिक रीति से सीखना--पशु एवं मनुष्य के सीखने में अन्तर।

नवाँ अध्याय

स्मरण-विस्मरण पृष्ठ २२७

स्मरण करने की क्रिया--सीखना--धारण करना--धारण-क्रिया का स्वरूप-प्रत्याह्वान करना--पहचानना--प्रत्याह्वान और पहचान--भूलना--भूलना एवं उसका स्वरूप--भूलने का कारण--विषय की निरर्थकता, पाठ्य-विषय की लंबाई का प्रभाव, अविराम रीति के द्वारा सीखना, अल्प रूप से सीखना, सीखने के बाद शीघ्र ही सो जाने का प्रभाव, पृष्ठोन्मुख अवरोध तथा अप्रिय अनुभूतियों का दमन--स्मृति-शिक्षण।

दसवाँ अध्याय

प्रतिमा और कल्पना पृष्ठ २४६

प्रतिमा की परिभाषा--प्रतिमाओं का स्वरूप--प्रतिमाओं की विशेषताएँ प्रत्यक्ष तथा प्रतिमा--प्रतिमाओं के प्रकार--दृष्टि-प्रतिमा, श्रवण-प्रतिमा, घ्राण-प्रतिमा, स्पर्श-प्रतिमा, स्वाद-प्रतिमा, गति-प्रतिमा, अनुबिंब, प्रत्यक्ष प्रतिमा, स्मृति-प्रतिमा तथा काल्पनिक प्रतिमा--कल्पना का स्वरूप--कल्पना के प्रकार--पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना, रचनात्मक कल्पना, नियंत्रित कल्पना तथा अनियंत्रित कल्पना--कल्पना की उपयोगिता।

ग्यारहवाँ अध्याय

चिंतन पृष्ठ २६०

चिन्तन-क्रिया की व्याख्या--कल्पना और चिन्तन--चिन्तन-क्रिया--चिन्तन में दिशा--चिन्तन में 'प्रयत्न और भूल'--भाषा और चिन्तन--प्रतिमा और चिन्तन--कार्य और चिन्तन--मस्तिष्क और चिन्तन--चिन्तन में धारणा और अर्थ--धारणा का विकास--रचनात्मक चिन्तन।

बारहवाँ अध्याय

अचेतन तथा स्वप्न पृष्ठ २७३

अचेतन के अस्तित्व के प्रमाण--अचेतन के विषय--अचेतन का स्वरूप--स्वप्न--स्वप्नों का दैहिक सिद्धांत--फ्रायड का स्वप्न-सिद्धांत--स्वप्न-विषय--स्वप्न-क्रिया--स्वप्न-व्याख्या--फ्रायड तथा ऐडलर के स्वप्न-सम्बन्धी विचारों में भेद--फ्रायड तथा युंग के स्वप्न-सम्बन्धी विचारों में भेद।

तेरहवाँ अध्याय

अनुप्रेरणा पृष्ठ २९३

अनुप्रेरणा--आवश्यकता, प्रणोदन तथा उद्दीपन--प्रेरक वृत्तियों के प्रकार--जन्मजात प्रेरक वृत्तियों में परिमार्जन अथवा परिवर्त्तन--व्यक्तिगत प्रेरक वृत्तियाँ--जवन-लक्ष्य--आकांक्षा का स्तर--अभ्यास की विवशता--अभिरुचियाँ तथा मनोवृत्तियाँ--मनोवृत्तियों का विकास--अचेतन अनुप्रेरणा--सामान्य सामाजिक प्रेरक वृत्तियाँ--सामुदायिकता--अर्जनात्मकता--आत्म-स्थापन--युयुत्सा।

चौदहवाँ अध्याय

क्रिया एवं प्रेरक वृतियों का संघर्ष पृष्ठ ३१३

प्रतिक्षेप-क्रिया--प्रतिक्षेप-क्रिया के प्रकार--मूल प्रवृत्ति--प्रतिक्षेप-क्रिया तथा मूल-प्रवृत्ति--ऐच्छिक क्रियाएँ--संघर्ष--संघर्ष के मूल कारण--वातावरण-संबंधी बाधाएँ, व्यक्तिगत त्रुटियाँ तथा व्यक्तिगत असफलता --तर्क-वितर्क--चुनाव अथवा निर्णय--संकल्प--चुनाव अथवा निर्णय की संक्षिप्त व्याख्या--संघर्ष मिटाने की अचेतन स्तर की कुछ रीतियाँ--दमन, उन्नयन, तादात्म्य, दिवा-स्वप्न, क्षतिपूर्ति, युक्त्याभास, प्रक्षेपण और अवसर्पण।

पन्द्रहवाँ अध्याय

भाव पृष्ठ ३३१

भाव का मनोवैज्ञानिक अर्थ--भाव का स्वरूप--भाव तथा संवेदना में भेद-भाव--संवेदना के एक गुण अथवा उसकी विशेषता के रूप में--प्राथमिक भावों की संख्या--भाव के त्रिदिशात्मक सिद्धांत की आलोचना--मिश्रित भाव।

सोलहवाँ अध्याय

संवेग पृष्ठ ३४२

संवेग की परिभाषा--संवेग एवं मूल प्रवृत्ति का सम्बन्ध--संवेग एवं स्थायी भाव--संवेग तथा स्थायी भाव में अन्तर--संवेगों की अभिव्यक्ति--संवेगों का मुखाकृतिक अभिव्यंजन, स्वराभिव्यंजन तथा शारीरिक मुद्रा-संवेग में शारीरिक परिवर्त्तन--संवेग में साँस लेने और साँस छोड़ने की क्रिया, संवेग में हृदय की धड़कन एवं रक्त-चाप, ऐड्रीनिन का प्रभाव, संवेग में पाचन-क्रिया, संवेग में स्वतःसंचालित स्नायु-मंडल की क्रियाएँ, संवेग में हाइपोथैलेमस की क्रियाएँ तथा संवेग में बृहन्मस्तिष्कीय बल्क की क्रियाएं--संवेग-सिद्धान्त--जेम्स-लाँजे-सिद्धान्त की आलोचना-- हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त--संवेग-सिद्धान्तों के सम्बन्ध में निष्कर्ष।

सत्रहवाँ अध्याय

बुद्धि पृष्ठ ३६५

बुद्धि का स्वरूप--परिभाषाएँ--बुद्धि-सम्बन्धी प्रमुख सिद्धान्त--स्पीयरमैन का द्वितत्त्व-सिद्धान्त--थॉर्नडाइक का बहुतत्त्व-सिद्धान्त या संश्लेषणात्मक सिद्धान्त

बुद्धि का तात्त्विक दृष्टिकोण—बुद्धि-माप—बुद्धि के प्रारम्भिक परीक्षण — बीने-साइमन-बुद्धि-परीक्षण—स्टैनफोर्ड-बीने-मानदंड—वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण—वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण का प्रयोग —क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षण—पिटनर-पेटर्सन क्रियात्मक मानदंड—पोर्टियस-भूलभुलैया-परीक्षण—फाम-बोर्ड-परीक्षण—वेस्लर-उच्च्यू-परीक्षण—सामूहिक क्रियात्मक परीक्षण क्रियात्मक परीक्षणों (वैयक्तिक तथा सामूहिक) का मूल्यांकन—बुद्धि-परीक्षण फलों की व्याख्या—मानसिक आयु—बुद्धि-लब्धि—बुद्धि-लब्धि-स्थैर्य—बुद्धि-परीक्षण की उपयोगिताएं।

अठारहवाँ अध्याय

व्यक्तित्व पृष्ठ ३९४

व्यक्तित्व का परिभाषा—व्यक्तित्व के निर्धारक—वंश-परम्परा—शारीरिक बनावट तथा धातु-स्वभाव, बुद्धि एवं मेधा, अन्तःस्रावी पिंडों का प्रभाव तथा स्नायु-मंडल का प्रभाव—वातावरण—व्यक्तित्व-निर्माण में जीवन के प्रारम्भिक वर्षों का महत्त्व, घर का प्रभाव, एकलौता बच्चा तथा जन्मक्रम और समुदाय तथा संस्कृति का प्रभाव—व्यक्तित्व के गुण या उसकी विशेषताएं—अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता, प्रभुत्व-अधीनता, संवेगात्मक अस्थिरता, प्रसक्ति या हठ, भीरुता या संकोच, चिन्तनशीलता तथा खिन्नता—व्यक्तित्व के मापने की विधियाँ—व्यक्ति-इतिहास, इण्टरव्यू, प्रश्नावली, श्रेणी-मूल्यांकन, परिस्थिति-परीक्षण, मनोविश्लेषणात्मक परीक्षण तथा आरोपणात्मक विधियाँ।

अभ्यास के प्रश्न पृष्ठ ४२१

सहायक ग्रन्थों की सूची पृष्ठ ४३२

शब्द-सूची पृष्ठ ४३५

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व का मनोविज्ञान

आधुनिक मनोविज्ञान की उत्पत्ति और विकास का इतिहास वैज्ञानिक प्रगति का इतिहास कहा जा सकता है। जैसे-जैसे विज्ञान प्रगति करता गया वैसे-वैसे मनोविज्ञान भी वैज्ञानिक रूप ग्रहण करता गया। वैज्ञानिक प्रगति के पूर्व मनोविज्ञान का इतिहास दर्शनशास्त्र के इतिहास में सम्मिलष्ट था, किन्तु जब १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भौतिक विज्ञान (Physics) में प्रगति की नव चेतना आयी तब मनोविज्ञान भी इससे अप्रभावित न रह सका। गैलिलियो (Galileo) तथा अन्य वैज्ञानिकों ने गति एवं निश्चलता (Motion and Inertia) के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर भौतिक विज्ञान में क्रान्ति उपस्थित कर दी। उन्होंने इन दो शब्दों के आधार पर सभी प्रकार की भौतिक क्रियाओं की व्याख्या करने की चेष्टा की। एक दूसरे प्रसिद्ध वैज्ञानिक हार्वे (Harvey) ने रक्त-प्रवाह (Blood circulation) का अनुसन्धान कर यह बताया कि सभी प्रकार की शारीरिक क्रियाओं की व्याख्या भौतिक शब्दों (Physical terms) में की जा सकती है। भौतिक विज्ञान के इन अनुसन्धानों से प्रभावित होकर डेकार्ट (Descartes) ने पशु एवं मनुष्य के व्यवहार के अध्ययन में भौतिक विज्ञान का सहारा लिया। उन्होंने बतलाया कि व्यवहार (Behaviour) प्रतिक्षेप-क्रिया (Reflex Action) पर निर्भर करता है। प्रतिक्षेप-क्रिया की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि प्रतिक्षेप (Reflex) तरल पदार्थ (Fluid) की वह गति है, जो स्नायुओं (Nerves) के द्वारा ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) से होकर मस्तिष्क में जाती है और फिर वहाँ से मांसपेशियों (Muscles) में चली जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जो भौतिक शक्ति अथवा गति ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित करती है, वही शरीर में भी भौतिक क्रियाओं (Physical processes) को संचालित करती है, जिसके परिणाम-स्वरूप मांसपेशी-सम्बन्धी क्रियाएँ (Muscular activities)

प्रारम्भ हो जाती है। हौब्स (Hobbes) ने स्पष्ट शब्दो मे घोषित किया कि सभी प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओ के मूल मे गति वर्त्तमान रहती है। फलत हौब्स ने गति के आधार पर ही शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओ की व्याख्या प्रस्तुत की। कहना न होगा कि १७वी तथा १८वी शताब्दी के मनोवैज्ञानिक भौतिक विज्ञान की प्रगति से अत्यधिक प्रभावित हुए।

उन्नीसवी शताब्दी क प्रारभ का मनोविज्ञान

उन्नीसवी शताब्दी के 'नवीन मनोविज्ञान' (The new Psychology) पर कई विज्ञानो का प्रभाव पडा। इस शताब्दी के प्रारम्भिक काल मे ही रसायन-विज्ञान (Chemistry) और शरीर-विज्ञान (Physiology) मे गति दीख पडने लगी थी। रसायन-विज्ञान (Chemistry) की आश्चर्यजनक उपलब्धियो से उन्नीसवी शताब्दी के साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिक (Associationist Psychologists) अत्यन्त प्रभावित हुए। रसायन-विज्ञान के विशेषज्ञो का विचार था कि किसी भी रासायनिक पदार्थ की जानकारी के लिए उसका विश्लेषण (Analysis) अनिवार्य है। उनके अनुसार किसी भी रासायनिक पदार्थ का निर्माण कई तत्त्वो (Elements) के सयोग से होता है। उदाहरण-स्वरूप पानी को ले—पानी यो एक सहज एव अपूर्व (Simple and unique) रासायनिक पदार्थ जान पडता है, किन्तु यदि इसका विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि इसमे दो तत्त्वो का सयोग है—ऑक्सीजन तथा हाइड्रोजन। इन दोनो तत्त्वो के विभिन्न परिमाण मे सयोग से ही पानी का निर्माण हुआ है। रसायन-विज्ञान मे प्रयुक्त विश्लेषण की पद्धति से प्रभावित होकर उन्नीसवी शताब्दी के साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिक मानसिक क्रियाओ के विश्लेषण की ओर मुडे। उनका कहना था कि मनुष्य की कोई भी मानसिक क्रिया कई तत्त्वो से निर्मित होती है। अतएव, मनुष्य की मानसिक क्रियाओ के समुचित ज्ञान के लिए उनका विश्लेषण आवश्यक है।

शरीर-विज्ञान (Physiology) –शरीर-विज्ञान का मनोविज्ञान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान की समस्याएँ तथा पद्धतियाँ बहुत-कुछ एक ही तरह की है। उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल मे शरीर-विज्ञान मे प्रयोगात्मक पद्धति (Experimetal method) का सर्वप्रथम प्रचलन हुआ। शरीर-विज्ञान से प्रेरणा ग्रहण कर मनोवैज्ञानिको ने भी प्रयोगात्मक पद्धति की ओर अपना ध्यान दिया। फलस्वरूप, मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओ (Psychological Laboratories) की स्थापना होने लगी।

सर्वप्रथम वुन्ट (Wundt) ने १८७९ ई० मे लिपजिग में एक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना की। इसके उपरान्त कई मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं की स्थापना हुई और मनोविज्ञान का स्वरूप क्रमश वैज्ञानिक होता गया। यहाँ यह बतला देना उचित होगा कि मनोविज्ञान को सर्वप्रथम प्रयोगात्मक रूप देने का श्रेय वुन्ट (Wundt) को ही है। अत वे आधुनिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के पिता भी कहे जाते है।

जीव-विज्ञान (Biology) —उन्नीसवी शताब्दी के 'नवीन मनोविज्ञान' की रूपरेखा पर सामान्यत जीव-विज्ञान और विशेषत डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त (Theory of Evolution) का भी कुछ कम प्रभाव नही पडा। अनेक समस्याएँ जो प्राचीन मनोविज्ञान, शरीर-विज्ञान, रसायन-विज्ञान तथा पदार्थ-विज्ञान मे स्थान नही पा सकी थी, उन्हें प्रकाश मे लाने का श्रेय डार्विन के इसी प्रसिद्ध सिद्धान्त को है। इस सिद्धान्त ने व्यक्ति-विकास (Individual development) तथा व्यक्ति-विभिन्नता (Individual differences) की प्रमुख समस्याओ को मनोवैज्ञानिको के समक्ष उपस्थित किया। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम काल मे डार्विन के सदृश ही एक दूसरे महान् विचारक गाल्टन (Galton) के विचारो स भी उस शताब्दी के मनोवैज्ञानिक प्रभावित हुए। उक्त दोनो विचारको मे प्रभावित होकर मनोवैज्ञानिको ने बाल-मनोविज्ञान (Child Psychology), पशु-मनोविज्ञान (Animal Psychology) व्यक्ति तथा जाति (Race) के मानसिक विकास, व्यक्ति तथा जाति की विभिन्नताएँ आदि विषयो पर अपने विचार प्रस्तुत किये।

मानसिक रोग-चिकित्साशास्त्र (Psychiatry) —उन्नीसवी शताब्दी का मनोविज्ञान मानसिक रोग-चिकित्साशास्त्र के प्रभाव से वचित न रह सका। मानसिक रोग-चिकित्साशास्त्र का अध्ययन मानसिक रोगियो तथा मन्दबुद्धि व्यक्तियो मे प्रारम्भ हुआ। इसने अपने अध्ययन मे सर्वप्रथम असामान्य व्यवहारो (Abnormal behaviour) का वर्गीकरण किया। तत्पश्चात् इस शास्त्र के विशेषज्ञ सामान्य व्यक्तियो (Abnormal individuals) के जीवन-इतिहास के अध्ययन की ओर उन्मुख हुए। अपने अध्ययन-क्रम मे ये विशेषज्ञ उन्नीसवी शताब्दी तक दो दलो मे विभाजित रहे। एक दल उन विशेषज्ञो का था, जो व्यक्ति के प्रत्येक असामान्य व्यवहार का कारण मानसिक क्षेत्र मे ढूँढते थे और दूसरा उनका, जो व्यक्ति के प्रत्येक

असामान्य व्यवहार का कारण मस्तिष्क की क्षति अथवा विकृति में पाने की चेष्टा करते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के मनोविज्ञान पर विभिन्न प्रगतिशील विज्ञानों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने दर्शनशास्त्र (Philosophy) से अपना प्राचीन सम्बन्ध तोड़कर अपने को एक स्वतन्त्र प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science) घोषित कर दिया। यहाँ दर्शनशास्त्र के साथ मनोविज्ञान के प्राचीन सम्बन्ध पर विचार करने के निमित्त थोड़ा अटकना समीचीन जान पड़ता है।

✓**दर्शनशास्त्र** (Philosophy):—दर्शनशास्त्र से मनोविज्ञान का सम्बन्ध इतना प्राचीन है कि लगभग दो हजार वर्षों तक दार्शनिक लोग मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाते रहे। ईसा के पाँच सौ वर्ष पूर्व ग्रीस के दार्शनिकों ने मनुष्य के अनुभवों और व्यवहारों की व्याख्या आत्मा (Soul) के आधार पर की। उस समय के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो (Plato) अरिस्टोट्ल (Aristotle) और डेकार्ट (Descartes) के विचारों का संक्षेप में उल्लेख करना ही यहाँ पर्याप्त होगा।

प्लेटो (Plato) ने विचारों के साथ मन (Mind) का तादात्म्य स्थापित किया। विचारों (Ideas) की व्याख्या करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि विचार अभौतिक (Immaterial) होते हैं तथा भौतिक शरीर से अलग उनका स्वतन्त्र अस्तित्व है। इस प्रकार प्लेटो ने शरीर (Body) और मन (Mind) को एक-दूसरे से अलग माना।

शरीर और विचारों के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए अरिस्टोट्ल ने बतलाया कि विचारों का शरीर से अलग कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, वरन् विचार शरीर के ही कार्य-मात्र हैं। उनके अनुसार विचार की उत्पत्ति प्राणी पर वातावरण के प्रभाव के फलस्वरूप होती है। वातावरण में उपस्थित उत्तेजनाएँ ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती हैं। फिर यह प्रभाव मनुष्य के हृदय तक पहुँचकर विचारों की सृष्टि करता है। स्पष्ट है कि हृदय पर पड़े हुए प्रभाव के परिणाम-स्वरूप विचार उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, एकान्त सड़क पर बिलखती हुई किसी विधवा के करुण क्रंदन को कान ग्रहण करते हैं। फिर इस करुण क्रन्दन का प्रभाव हृदय पर पड़ता है। फलस्वरूप मनुष्य में करुणापूर्ण विचार उत्पन्न हो जाते हैं। करुणा की अनुभूति होते ही स्वभावतः उस विधवा के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार होने लगता है। इस प्रकार सर्व-प्रथम अरिस्टोट्ल ने अनुभूति और व्यवहार की व्याख्या के लिए प्राणी की आन्तरिक शारीरिक बनावट की ओर संकेत किया। बाद के मनोवैज्ञानिकों ने

स्नायु-मंडल (Nervous System) के आधार पर अनुभूति और व्यवहार की व्याख्या करने की चेष्टा की। किन्तु सर्वप्रथम इस नवीन दृष्टिकोण को उपस्थित करने का श्रेय अरिस्टोट्ल को ही है।

डेकार्ट ने प्राणी की अनुभूति और उसके व्यवहार की व्याख्या स्नायु-मंडल (Nervous System), ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) तथा मास-पेशियों (Muscles) की क्रियाओं के आधार पर की। उन्होंने बतलाया कि प्राणी एक ऐसी जटिल यन्त्र-रचना (Mechanism) है, जो शब्द, प्रकाश आदि बाह्य भौतिक उत्तेजनाओं से ही क्रियाशील हो उठती है, उसमें क्रियाशीलता लाने के लिए किसी अभौतिक पदार्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके अनुसार पशुओं के व्यवहार बिल्कुल उनकी यन्त्र-रचना पर ही निर्भर करते हैं। उनके आत्मा नहीं होती। किन्तु मनुष्य के आत्मा (Soul) होती है। कभी तो आत्मा यन्त्र-रचना को प्रभावित करती है और कभी यन्त्र-रचना का प्रभाव आत्मा पर पड़ता है। डेकार्ट के विचारों से स्पष्ट है कि उस समय तक स्नायु-मंडल की बनावट और उसके कार्यों का समुचित ज्ञान न प्राप्त हो सका था। तभी तो डेकार्ट ने स्नायु-मंडल के आधार पर अनुभूति और व्यवहार की व्याख्या करते हुए भी मनुष्य में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया था।

ग्रीस के दार्शनिकों तक ही मनोविज्ञान पर दर्शनशास्त्र (Philosophy) का प्रभाव सीमित न रह सका, बल्कि उन्नीसवीं शताब्दी तक मनोविज्ञान पर इसका प्रभाव बना रहा। उन्नीसवीं शताब्दी में भी मनोविज्ञान के क्षेत्र में दार्शनिकों की देन कम नहीं। उस शताब्दी के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स (William James) और विलहेल्म वुन्ट (Wilhelm Wundt) भी दार्शनिक ही थे। विलियम जेम्स मनोविज्ञान की प्रसिद्ध पुस्तक 'मनोविज्ञान के सिद्धान्त' ('Principles of Psychology') लिखने के बाद पुनः दर्शनशास्त्र की ओर मुड़े और अपनी अपूर्व देन से दर्शनशास्त्र के भाण्डार को भरा। अबतक दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को दर्शनशास्त्र के एक सहायक अंग के रूप में ही ग्रहण किया था। किन्तु, मनोविज्ञान की वह स्थिति उस शताब्दी के नवीन मनोवैज्ञानिकों को, जो प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Experimental Psychology) के समर्थक थे, मान्य न हो सकी। फलतः उन्होंने मनोविज्ञान के स्वतन्त्र अस्तित्व पर जोर दिया। उनका विश्वास था कि दर्शनशास्त्र से अलग होकर ही मनोविज्ञान अन्य विज्ञानों की भाँति वैज्ञानिक रूप ग्रहण कर सकता है तथा इसके अपने विचार, सिद्धांत एवं पद्धतियाँ स्थापित हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त, मानव-जीवन की कितनी ही

ऐसी समस्याएँ थीं, जिन्हे गौण समझकर दार्शनिकों ने उनकी ओर अपना ध्यान नहीं दिया। किन्तु उन्नीसवी शताब्दी के नवीन मनोवैज्ञानिकों ने मानव-क्रियाओं की समुचित व्याख्या के लिए उनका भी विवेचन आवश्यक समझा।

मनोविज्ञान : चेतना के विज्ञान के रूप में

जब मनोविज्ञान ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित कर लिया, तब मनोवैज्ञानिको का ध्यान इसकी परिभाषा निर्धारित करने की ओर गया। फलतः मनोविज्ञान की परिभाषाएं होने लगी। मनोविज्ञान की उस समय प्रधान परिभाषा यह थी —

मनोविज्ञान चेतना (Consciousness) का विज्ञान है।

चेतना की व्याख्या करते हुए उन्नीसवी शताब्दी के मनोवैज्ञानिको ने यह बतलाया कि चेतना उस आन्तरिक अनुभूति (Internal experience) को कहते हैं, जो बाह्य प्रकृति से भिन्न होती है। वह व्यक्तिगत (Personal) होती है। व्यक्तिगत अनुभूति के समुचित अध्ययन के लिए अनुभव करनेवाले व्यक्ति का अध्ययन भी आवश्यक समझा गया। परिणाम-स्वरूप उस समय के मनोवैज्ञानिको का ध्यान अनुभूति तथा अनुभव करनेवाले व्यक्ति के अध्ययन तक ही सीमित रहा। चेतन अनुभूति के अध्ययन के लिए उन्होंने अन्तर्निरीक्षण (Introspection) का पद्धति के रूप मे अपनाया। सक्षेप मे, उन्नीसवी शताब्दी तक अन्तर्निरीक्षणात्मक पद्धति (Introspective method) के द्वारा चेतन अनुभूति (Conscious experience) का अध्ययन ही मनोविज्ञान का प्रधान विषय बना रहा।*

* 'Psychology is the Science of mental life, both of its phenomena and of their conditions. The phenomena are such things as we call feelings, desires, cognition, reasoning, decisions and the like."—W. James : 'Principles of Psychology.'
(Macmillan, 1890) Vol. 1, Page 1.

"Psychology has to investigate that which we call internal experience; i. e., our own sensation and feelings, our thought and volition—in contra-distinction to the object of external experience, which form the subject-matter of natural Science."—W' Wundt : 'Lectures on Human and Animal Psychology, translated by J. E. Greighton and E. B. Titchner.

चेतना की विशेषताएँ (Characteristics of Consciousness)

चेतना की निम्नांकित प्रधान विशेषताएँ है--(१) चेतना वैयक्तिक (Personal) होता है। व्यक्ति की चेतना के बारे में उसके अन्तर्निरीक्षणात्मक विवरण (Introspective report) के आधार पर ही जाना जा सकता है।

(२) चेतना परिवर्त्तनशील होती है। इस सम्बन्ध मे जेम्स का कहना है--"जो अवस्था एक बार लुप्त हो चुकी, वह पुन नही लौट सकती, पहली बार की अवस्था से उसका तादात्म्य (Identification) नही हो सकता।"† उनका कहना है कि प्रत्येक चेतनावस्था सपूर्ण मनोदैहिक समग्रता (Entire Psycho-physical totality) की एक क्रिया है। एक ही वस्तु का हमारे सामने बार बार प्रस्तुत होना सभव है, किन्तु उनकी चेतन अवस्थाओं का बार-बार प्रस्तुत होना सभव नही। जम्स के इस विचार से स्पष्टत जेस्टाल्टवादी विचारधारा (Gestalt view-point) का आभास मिलता है, कारण, वे चेतन की व्याख्या मे मनोदहिक समग्रता (Psycho-physical totality) का उल्लेख करत है।

(३) चेतना अनवरत (Continuous) होती है। जाग्रत जीवन मे चेतना मे जा परिवर्त्तन होते है, वे आकस्मिक नही होते। सुषुप्तावस्था मे भी समय के अन्तर (Time-Gaps) सभव हे, किन्तु प्रत्येक चेतना अपने मूल रूप मे अनवरत ही होती है।

(४) चेतना चयनात्मक (Selective) होती है। प्राय प्रभावशाली उत्तेजनाएँ (Stimuli) ही चेतना मे आ पाती हैं, सभी उत्तेजनाएँ समान ढग से चेतना मे नही आती। अनेक उत्तेजनाओं मे से चेतना कुछ को चुन लेती है।

यद्यपि उन्नीसवी शताब्दी के मनावैज्ञानिको ने मनोविज्ञान की परिभाषा निर्धारित कर उसके क्षेत्र को सीमित कर दिया था, तथापि प्रयोगशाला मे अध्ययन करनेवाले मनोवैज्ञानिको ने उसपर ध्यान नही दिया। परिणामस्वरूप प्रयोग की अवस्था मे उन्होने प्रयोज्य (Subject) * को अनुभवकर्त्ता के

†"No state once gone can recur and be identical with what was before."—William James

*प्रयोगशाला में जिस व्यक्ति पर प्रयोग किया जाता है, उसे प्रयोज्य (Subject) कहते हैं।

रूप मे नही ग्रहण किया, वरन् कार्यकर्त्ता (Performer) के रूप मे उसका अध्ययन किया। उनके सामने यह प्रश्न नही था कि प्रयोगशाला मे कार्य सम्पादित करते समय प्रयोज्य क्या अनुभव करता है, बल्कि यह कि वह किस प्रकार कार्य सम्पादित करता है। उदाहरणार्थ, प्रयोगशाला मे वे यह निरीक्षण करना चाहते थे कि प्रयोज्य की प्रतिक्रिया (Reaction) तीव्र होती है अथवा मन्द, उसका प्रत्यक्षीकरण निश्चित होता है अथवा अनिश्चित, वह किसी नवीन कार्य को किस प्रकार सीखता है, वह किस तरह विचार करता है तथा किस प्रकार पूर्वानुभूत विषयो का स्मरण करता है इत्यादि। भावो (Feelings) तथा सवेगो (Emotions) के अध्ययन मे यत्रो के द्वारा प्रयोज्य की श्वास आदि क्रियाओ की माप की जाती थी। इस प्रकार उन मनोवैज्ञानिको का लक्ष्य था—मनुष्य की क्रियाओ का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन करना। इन सभी अध्ययनो मे वस्तुनिष्ठ पद्धतियो (Objective methods) का प्रयोग किया गया। पहले इन पद्धतियो का महत्त्व इसी बात मे था कि इनके द्वारा चेतन अनुभूतियो के स्वरूप पर प्रकाश पडता था। स्वत इनका कोई महत्त्व नही था। किन्तु यह मनोवृत्ति धीरे-धीरे बदल रही थी। जैसे-जैसे प्रयोगशालाओ मे नवीन अनुसन्धान होते गये, वैसे-वैसे मनोवैज्ञानिको की अभिरुचि चेतन अनुभूति से हटकर प्रयोज्य के कार्यों (Performances) की ओर होती गई। यद्यपि अब कार्यो के अध्ययन को प्रधानता हो गई, लेकिन फिर भी अन्तर्निरीक्षणात्मक पद्धति (Introspective report) का प्रयोग जारी रहा। अब प्रयोज्य का अन्तर्निरीक्षणात्मक विवरण (Introspective report) उसके कार्यों की व्याख्या मे सहायक के रूप मे ग्रहण किया जाने लगा।

स्पष्ट है कि उन्नीसवी शताब्दी तक सिद्धान्त मे तो मनोवैज्ञानिको ने चेतन अनुभूति को ही मनोविज्ञान के विषय तथा अन्तर्निरीक्षण को उसकी पद्धति के रूप मे ग्रहण किया, किन्तु व्यवहार मे उन्होने प्रयोज्य के कार्यो को मनोविज्ञान के विषय तथा वस्तुनिष्ठ पद्धतियो को पद्धति के रूप मे अपनाया। उन्नीसवी शताब्दी तक कदाचित् मनोविज्ञान की यही रूपरेखा थी।

बीसवी शताब्दी का मनोविज्ञान

व्यवहारवाद (Behaviourism) —बीसवी शताब्दी मनोविज्ञान की प्रगति के इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण काल है। इस काल मे मनोविज्ञान के

क्षेत्र में अनेक विचारधाराएं आईं तथा कितने ही वादों की स्थापना हुई। उनमें से कुछ प्रधान वादों पर यहाँ संक्षेप में विचार कर लेना उचित होगा। सर्वप्रथम हम व्यवहारवाद (Behaviourism) को लें। व्यवहारवाद ने उन्नीसवीं शताब्दी के मनोविज्ञान की स्थापित व्यवस्था का घोर विरोध किया। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने चेतन अनुभूति को मनोविज्ञान के विषय तथा अन्तर्निरीक्षण को उसकी पद्धति के रूप में स्वीकार नहीं किया। उनका कहना था कि चेतन अनुभूति और अन्तर्निरीक्षण--ये दोनों ही आत्मनिष्ठ (Subjective) तथा व्यक्तिगत (Personal) हैं। अत मनोविज्ञान में इन्हें स्थान नहीं मिलना चाहिए। उनके विचारों के विस्तार में जाना यहाँ अपेक्षित नहीं है। किन्तु इतना कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि उन्होंने व्यवहार को मनोविज्ञान के विषय तथा बाह्य निरीक्षण (Objective observation) को उसकी पद्धति के रूप में स्वीकार किया।

मनोविश्लेषण (Psycho-analysis):-- बीसवीं शताब्दी में मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवहारवाद के अतिरिक्त एक दूसरी प्रधान विचार धारा का जन्म हुआ, जिसे मनोविश्लेषण कहते हैं। यों तो इस विचारधारा का बीज-वपन सन् १९०० ई० के पूर्व ही उन मनोवैज्ञानिकों के विचारों में हो चुका था, जो असामान्य व्यक्तियों (Abnormal individuals) की मनोवृत्तियों का तथा कुसंयोजित व्यक्तियों (Mal adjusted individuals) के व्यवहारों का अध्ययन कर रहे थे, किन्तु इसे पल्लवित और पुष्पित कर एक निश्चित रूपरेखा प्रदान करने का श्रेय बीसवीं शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों को ही है। व्यवहारवादियों की तरह मनोविश्लेषकों (Psycho-analysts) ने भी उन्नीसवीं शताब्दी के मनोविज्ञान को स्थापित व्यवस्था का विरोध किया। उनके विरोध की पृष्ठभूमि व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों से भिन्न थी। उन्होंने चेतना-मात्र को ही मनोविज्ञान का विषय नहीं माना, प्रत्युत अचेतन (Unconscious) के अध्ययन पर अधिक जोर दिया। यों तो मनोविश्लेषण के अन्तर्गत अनेक विषयों पर विचार होता है, किन्तु निर्विवाद रूप से सके दो ही प्रधान विषय माने जाते हैं--एक अचेतन ग्रंथियों का अध्ययन (Study of unconscious complexes) तथा दूसरा काम-वृत्ति का अध्ययन (Study of sex)।

प्रयोजनवाद (Purposivism):--बीसवीं शताब्दी में मनोविज्ञान में एक तीसरी विचारधारा आई, जिसे 'प्रयोजनवाद' कहते हैं। जैसा कि इस शब्द से ही स्पष्ट है, मनोविज्ञान की यह नवीन विचारधारा मनुष्य के प्रयोजन

अथवा अभिप्राय (Purpose) को मनोविज्ञान का प्रमुख विषय मानती है। प्रयोजनवादी मनोवैज्ञानिकों ने उन्नीसवीं शताब्दी की बुद्धिवादी एकपक्षता का घोर विरोध किया। इतना ही नहीं, उन्होंने बीसवीं शताब्दी के व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों का भी खंडन किया। उन्होंने मनोवैज्ञानिकों के सामने यह प्रमुख प्रश्न रखा कि क्या अन्तर्निरीक्षक मनोवैज्ञानिकों तथा व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों और पद्धतियों को अपनाकर मनुष्य के व्यवहार का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है? वास्तव में यह प्रश्न विचारणीय है।

अस्तित्ववाद (Existentialism):—व्यवहारवाद, मनोविश्लेषण तथा प्रयोजनवाद के द्वारा आरोपित आलोचनाओं को अन्तर्निरीक्षक मनोवैज्ञानिकों ने ज्यों-का-त्यों स्वीकार नहीं कर लिया, वरन् उनमें एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया हुई, जिसके फलस्वरूप अस्तित्ववाद का जन्म हुआ। अस्तित्ववादी मनोवैज्ञानिकों ने अन्तर्निरीक्षणात्मक पद्धति (Introspective method) को परिमार्जित कर उसे नवीन रूप देने की चेष्टा की। उन्होंने प्राचीन तथा नवीन सभी विचाधाराओं की आलोचना करते हुए कहा कि मनोविज्ञान की कोई भी विचारधारा उसे विकसित विज्ञान के लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकती। कारण, सभी मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं के समर्थक, चाहे वे व्यवहारवादी हों, मनोविश्लेषक हों अथवा प्रयोजनवादी हो, किसी-न-किसी रूप में मनोविज्ञान को व्यावहारिक बनना चाहते हैं। निस्सन्देह, मनोविज्ञान को व्यावहारिक तथा मानव-जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी होना ही चाहिए। लेकिन प्रश्न यह है कि मानव-जीवन को दृष्टि में रखकर किया गया कोई भी वैज्ञानिक अध्ययन मनोविज्ञान को पदार्थ-विज्ञान (Physics) तथा रसायन-विज्ञान (Chemistry) की तरह वस्तुवादी (Matter-of-fact) बना सकता है? क्या सच्चे अर्थों में यह दृष्टिकोण मनोविज्ञान की वैज्ञानिक प्रगति के लिए घातक नहीं है? उन्होंने अस्तित्ववाद की व्याख्या करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा कि व्यक्ति की अनुभूतियों का अस्तित्वों (Existences) के रूप में अध्ययन श्रेयस्कर है। अनुभूतियों का वर्णन, विश्लेषण तथा वर्गीकरण, उन्हीं के सच्चे स्वरूप को समझने के लिए होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति का अध्ययन अनुभवकर्त्ता के रूप में होना चाहिए, न कि कार्यकर्त्ता के रूप में। अनुभूतियाँ स्वतः महत्त्वपूर्ण हैं। उनका महत्त्व इस बात में नहीं कि उनसे व्यक्ति के विभिन्न कार्यों पर प्रकाश पड़ता है, जैसा कि कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार था।

जेस्टॉल्टवाद (Gestaltism):—बीसवीं शताब्दी में जर्मनी में एक नई विचारधारा का उदय हुआ, जो जेस्टॉल्टवाद के नाम से प्रसिद्ध है। मनोविज्ञान की अन्य विचारधाराओं के सदृश जेस्टॉल्टवाद ने भी उन्नीसवीं शताब्दी के मनोविज्ञान की स्थापित व्यवस्था का विरोध किया। जेस्टॉल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने उन्नीसवीं शताब्दी के विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (Analytical Psychology) का खंडन करते हुए स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया कि मनुष्य की अनुभूति अथवा व्यवहार का अध्ययन समग्र रूप में (As a whole) होना चाहिए, न कि उसके विभिन्न तत्त्वों का अलग-अलग रूप में (As parts)। विश्लेषण के आधार पर अनुभूति अथवा व्यवहार का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता है। किसी भी अनुभूति अथवा व्यवहार का अध्ययन करते समय उसकी सम्पूर्ण पृष्ठिभूमि को दृष्टिकोण में रखना अनिवार्य है, अन्यथा उसका सम्पूर्ण रूप हमारे समक्ष कभी भी नहीं आ सकता।

उपर्युक्त विभिन्न विचारधाराओं के रहते हुए भी मनोवैज्ञानिकों के बीच एकता की भावना बनी रही। कारण, अधिकांश मनोवैज्ञानिक स्वतन्त्र रूप से मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन एवं अनुसंधान करते रहे। उन्होंने किसी वाद-विशेष अथवा विचारधारा का अनुसरण नहीं किया। फलतः विभिन्न विचारधाराओं के समर्थकों की संख्या अत्यल्प हो रही। इसका कारण कदाचित् यह हो सकता है कि सभी विचारधाराओं में अतिशयोक्ति है। यदि कुछ विचारधाराएं मनोविज्ञान को व्यावहारिक रूप देकर इसे मानवोपयुक्त बनाना चाहती हैं, तो कुछ इसे बिल्कुल वैज्ञानिक रूप देने का ही प्रयास करती हैं। किन्तु अधिकांश मनोवैज्ञानिक इस बात के समर्थक हैं कि मनोविज्ञान का रूप वैज्ञानिक भी हो तथा इसका व्यावहारिक मूल्य भी हो। ऐसे मनोवैज्ञानिकों की देन भी मनोविज्ञान के क्षेत्र में किसी वाद-विशेष अथवा विचारधारा की अपेक्षा कम नहीं है। ऐसे मनोवैज्ञानिकों में स्पीयरमेन (Spearman), मायर्स (Myers), वुन्ट (Wundt), मुलर (Muller) तथा विलियम स्टर्न (William Stern) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

मनोविज्ञान की परिभाषा

जैसाकि 'मनोविज्ञान' शब्द से जान पड़ता है, यह मन का विज्ञान है। किन्तु मनोविज्ञान का आज जो स्वरूप है, वह इसके शाब्दिक अर्थ से स्पष्ट नहीं हो पाता। इसमें आश्चर्य नहीं कि शब्दों के अर्थ बदलते रहते हैं। 'मनोविज्ञान' शब्द के साथ भी कुछ ऐसी ही बात है। शताब्दियों पूर्व ग्रीस के दार्शनिकों ने

इसकी परिभाषा आत्मा अथवा मन के विज्ञान के रूप में की थी। मनोविज्ञान के अँगरेजीरूपान्तर 'Psychology' शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। 'Psychology' शब्द 'Psyche' और 'Logos' से बना है। 'Psyche' शब्द का अर्थ है आत्मा (Soul) तथा 'Logos' का बातचीत करना (To talk)। वस्तुत मनोविज्ञान का शाब्दिक अर्थ तथाग्रीस के दार्शनिकों द्वारा की गई मनोविज्ञान की परिभाषा, दोनों ही भ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं। उनसे मनोविज्ञान के सच्चे स्वरूप पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। मन तथा आत्मा को आधुनिक मनोविज्ञान का विषय नहीं माना जाता है, क्योंकि उनका अध्ययन वैज्ञानिक रीति से सभव नहीं है। स्पष्ट है कि जिन विषयों का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन न हो सके, उन्हें किसी भी विज्ञान के विषय के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता। अतएव, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि मन अथवा आत्मा का आधुनिक मनोविज्ञान में कोई स्थान नहीं है। अस्तु, मनोविज्ञान के सच्चे स्वरूप को समझने के लिए उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के मनोवैज्ञानिकों के कार्यों एव अनुसन्धानों पर दृष्टिपात करना अनिवार्य है।

मनोविज्ञान के विकास के इतिहास से जान पड़ता है कि सभी मनोवैज्ञानिक किसी-न-किसी रूप में प्राणी की क्रियाओं का अध्ययन करते रहे। यदि कुछ वैज्ञानिकों ने प्राणी की चेतन क्रियाओं अथवा अनुभूतियों का अध्ययन किया, तो दूसरे ने उसकी शारीरिक क्रियाओं अथवा व्यवहारों का अध्ययन किया। पहले ही व्यक्त किया जा चुका है कि उन्नीसवीं सदी तक तो मनोवैज्ञानिकों ने सिद्धान्तत चेतन अनुभूति (Conscious experience) को मनोविज्ञान का विषय माना, किन्तु व्यवहारत प्राणी की क्रियाओं (Performances) का अध्ययन किया। बीसवीं सदी के व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने सिद्धान्त में भी प्राणी की क्रियाओं अथवा व्यवहारों को ही मनोविज्ञान का विषय माना।* चेतन अनुभूति का खडन करते हुए उन्होंने बतलाया कि वह

---

*"Psychology may be best and most comprehensively defined as the positive Science of the conduct of leaving creature."—William McDougall: Physiological 'Psychology,' 1905.

Psychology is "the positive Science of the conduct or behaviour."—William McDougall : 'Introduction to Social Psychology', 1908.

"Psychology may be most satisfactorily defined as the

व्यक्तिगत (Personal) तथा आत्मनिष्ठ (Subjective) होती है। अतएव उसके स्वरूप को वैज्ञानिक विधियों से नहीं जाना जा सकता। उस पर बाह्य निरीक्षण (Objective observation) तथा प्रयोगात्मक पद्धति (Experimental method) का प्रयोग संभव नहीं है। उसके अध्ययन की एकमात्र पद्धति है--अन्तर्निरीक्षण (Introspection)। अन्तर्निरीक्षण को उन्होंने वैज्ञानिक पद्धति के रूप में स्वीकार नहीं किया। इसलिए चेतन अनुभूति को भी उन्होंने मनोविज्ञान के विषय के रूप में ग्रहण नहीं किया।

उपर्युक्त विवेचन से जान पड़ता है कि सिद्धान्ततः उन्नीसवीं सदी के मनोवैज्ञानिकों ने यदि चेतन अनुभूति पर अधिक जोर दिया, तो व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने व्यवहार के अध्ययन पर। वस्तुतः दोनों ही दृष्टिकोणों में अतिशयोक्ति है। मनोविज्ञान में, चाहे जिस रूप में भी हो, अनुभूति और व्यवहार--दोनों ही का अध्ययन होता है। यदि कुछ मनोवैज्ञानिक अनुभूति के अध्ययन पर अधिक जोर देते हैं तो तो कुछ व्यवहार के अध्ययन पर, किन्तु अधिकांश आधुनिक मनोवैज्ञानिक इन दोनों ही के अध्ययन को आवश्यक मानते हैं। कदाचित् इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए मनोविज्ञान की परिभाषा 'अनुभूति और व्यवहार के विज्ञान' के रूप में की जाती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि अनुभूति और व्यवहार के संबंध में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का सुचिन्तित विचार यह है कि इन दोनों का अध्ययन उत्तेजनाओं के प्रति प्राणी के अभियोजनों (Adjustments) के रूप में करना वांछनीय है।* इसका तात्पर्य यह है कि जब प्राणी वातावरण के संपर्क में आता है तब वातावरण की विभिन्न उत्तेजनाओं (Stimuli) के प्रति अपनी अनुभूतियों और व्यवहारों के द्वारा अपने को अभियोजित करने की चेष्टा करता है। अतएव, यहाँ अनुभूति और व्यवहार पर विचार कर लेना आवश्यक जान पड़ता है।

अनुभूति (Experience):--मनुष्य एक अनुभूतिशील प्राणी है। वह

Science of human behaviour."—W. B. Pillsbury : 'Essentials of Psychology', 1911.

*"Psychologists look upon experience and behaviour as adjustments of the organism to the stimuli which impinge upon it."—N. L. Munn : 'Psychology', p. 16.

निरन्तर बाह्य अथवा आन्तरिक उत्तेजनाओं से उत्तेजित होता रहता है। फलतः उसे विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं की अनुभूति होती रहती है। इसीलिए अनुभूति के स्वरूप (Nature) के अध्ययन में मनोवैज्ञानिकों की अभिरुचि युगों से रही है। वैज्ञानिक विधियों (Scientific methods) के सहारे भी अनुभूति के अनुसंधान की चेष्टा की गई है। निस्सन्देह अनुसंधानकर्त्ताओं को वैज्ञानिक विधियों से इसके अध्ययन और अनुसंधान में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। कारण, अनुभूति वैयक्तिक (Personal) होती है। किसी क्षण-विशेष की प्राणी की अनुभूति उसी तक सीमित होती है। इसकी स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहा जा सकता है कि यह एक ऐसी अपूर्व घटना (Unique event) है, जिसका निरीक्षण-परीक्षण बाह्य निरीक्षक (Objective observer) नहीं कर सकता अथवा किसी दूसरे क्षण यह अपने मूल रूप में नहीं प्रस्तुत की जा सकती। अपनी इस विशेषता के कारण ही यह बाह्य व्यवहार से भिन्न होती है। बाह्य व्यवहार का निरीक्षण (Observation) और प्रमापन (Verification) अनेक प्रयोगकर्त्ताओं द्वारा संभव है। वैज्ञानिक विधियों से अनुभूति का अध्ययन तभी संभव है जब अध्ययनकर्त्ता पूर्वधारणाओं (Prejudices) से अनुरंजित न हो, उसका दृष्टिकोण अविकल और स्पष्ट हो। यहाँ चेतन अनुभूति (Conscious experience) की कुछ प्रधान विशेषताओं (Characteristics) पर प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा।

चेतन अनुभूति की विशेषताएँ (Characteristics of Conscious experience) —चेतन अनुभूति की दो प्रधान विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है। पहली यह कि प्रत्येक अनुभूति किसी वस्तु की चेतना है। यह कोई ऐसी स्थिति नहीं, जिसका अस्तित्व अपने-आप के लिए ही हो। प्रायः व्यक्ति अपने वातावरण की वस्तुओं और घटनाओं के प्रति सचेत रहता है। वह अपने सामने की वस्तुओं को देखता है, कहीं से आती हुई आवाज को सुनता है तथा शीत-ताप आदि का अनुभव करता है। उसे शब्दों, संबंधों, स्मृत घटनाओं, काल्पनिक वस्तुओं आदि की भी निरन्तर अनुभूति होती रहती है। संक्षेप में, अनुभूति वातावरण के प्रति व्यक्ति के संपूर्ण अभियोजन (Whole adjustment) का एक अंग-मात्र कही जा सकती है।

अनुभूति की दूसरी विशेषता यह है कि चेतना (Awareness) निरन्तर

एक क्रिया है, एक गत्यात्मक घटना (Dynamic event) है। यह कोई स्थिर वस्तु अथवा सत्त्व (Entity) नहीं है। प्रतिदिन के जीवन में लोग प्रायः ऐसा प्रयोग करते हैं कि अमुक व्यक्ति को सुख है, अमुक व्यक्ति को दुःख है इत्यादि। इस तरह के प्रयोग मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उचित नहीं हैं; क्योंकि ऐसे प्रयोगों से यह भ्रम होता है कि सुख अथवा दुःख की अनुभूति कोई वस्तु या सत्त्व (Entity) है। वस्तुतः सुख अथवा दुःख की अनुभूति कोई स्थिर वस्तु या सत्त्व (Entity) नहीं, वरन् वह तो अति चंचल तथा गत्यात्मक स्वभाव (Dynamic nature) की एक घटना है।

भौतिक जगत् में भी प्रायः ऐसी घटनाएँ घटित होती रहती हैं। उदाहरण के लिए, हवा कोई स्थिर वस्तु अथवा सत्त्व (Entity) नहीं, बल्कि एक घटना है। अनुभूति के स्वरूप (Nature) को एक साधारण उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि कोई बालक खेल रहा हो और जब उसका खेलना समाप्त हो जाय, तब हम यह प्रश्न करें कि उस बालक का खेल अब कहाँ है? क्या अभी भी उसके खेल का अस्तित्व है? स्वभावतः हमारा उत्तर यही होगा कि अब उस खेल का कोई अस्तित्व नहीं है। कारण, वह तो एक क्रिया-मात्र है। इसलिए, उसका अस्तित्व तभी तक सभव है, जबतक वह घटित हो रहा हो। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति मे विचार (Idea) तभी तक कायम रहता है जबतक विचार करने की क्रिया चल रही हो। विचार करने की क्रिया के समाप्त हो जाने पर उस विचार (Idea) का अपने मूल रूप में कदापि अस्तित्व कायम नहीं रह सकता। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि अनुभूति के चंचल स्वरूप में कोई संदेह नहीं। चेतन अनुभूति (Conscious experience) के चंचल स्वरूप की ओर टिचेनर (Titchener) ने स्पष्ट शब्दो मे संकेत किया है। अतएव, मनोविज्ञान में अनुभूति के अध्ययन का महत्त्व एक अभियोजनात्मक क्रिया (Adjustive activity) के अध्ययन के रूप में ही स्वीकार करना अभीष्ट माना गया है। शैफर, गिल्मर और शोयन (Saffer, Gilmer and Schoen) ने स्पष्ट शब्दों मे

---

*"In strictness, we can never observe the same consciousness twice over; the stream of mind flows on, never to return". —Titchener

उल्लेख किया है कि 'मानव अनुभूति का अध्ययन उसकी अभियोजनात्मक क्रिया (Adjustive activity) का अध्ययन है, न कि सत्त्व की निष्क्रिय स्थिति का परीक्षण।'*

चेतन अनुभूति पर विचार कर लेने के पश्चात् यह भी स्पष्ट कर देना अभीष्ट जान पड़ता है कि केवल चेतन अनुभूति को मनोविज्ञान के विषय के रूप मे स्वीकार करने मे मनोवैज्ञानिकों ने आपत्ति उपस्थित की है और ऐसा करना उचित भी लगता है। कारण, यदि केवल चेतन अनुभूति को ही मनोविज्ञान के विषय के रूप मे स्वीकार कर लिया जाय तो मनोविज्ञान का विषय-विस्तार बहुत ही सीमित हो जायगा। मनोविश्लेषण (Psycho-analysis) के मूर्धन्य विचारक सिग्मण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) ने बतलाया है कि मानव जीवन मे चेतन (Conscious) से बढकर अचेतन (Unconscious) का महत्त्व है। अचेतन से मनुष्य का सपूर्ण व्यवहार तथा व्यक्तित्व प्रभावित होता रहता है। अचेतन अनुभूतियाँ (Unconscious experiences) वे है, जिनकी तात्कालिक चेतना मनुष्य को नही रहती, किन्तु उसके जीवन पर उनका प्रभाव पडता रहता है। फलत मनुष्य को उनके अस्तित्व को स्वीकार करने मे कोई हिचक नही होती। जीवन मे अनेक रूपो मे उनकी अभिव्यक्ति होती रहती है। अचेतन अनुभूतियो की अभिव्यक्ति प्राय. स्वप्नो (Dreams), दैनिक मनोविकृतियो (Psycho-pathologies of everyday life) तथा सम्मोहनोत्तर सकेतो (Post-hypnotic suggestions) मे हुआ करती है। अचेतन के अतिरिक्त, फ्रायड (Freud) ने उपचेतन (Subconscious) का भी उल्लेख किया है। उपचेतन मे निहित दुर्बल विचार जब अति प्रबल हो जाते है तब चेतन (Conscious) मे चले आते है। अत मनुष्य को उपचेतन अनुभूतियो (Subconscious experiences) की जानकारी अपेक्षाकृत सुलभता से हो जाती है।

संक्षेप में, मनोविज्ञान में अनुभूति से हमारा तात्पर्य चेतन (Conscious), अचेतन (Unconscious) तथा उपचेतन (Subconscious)—इन तीनों ही प्रकार की अनुभूति से है। तीनो को दृष्टिकोण मे

---

*"The study of human experience is the study of adjustive activity, not an examination of passive states of being."
—Shaffer, Gilmer and Schoen : 'Psychology', p. 199.

रखकर ही मानव-स्वभाव (Human nature) का समुचित ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

व्यवहार (Behaviour)-- व्यवहार प्राणी की उन क्रियाओं (Activities) को कहते है, जिन्हें व्यक्ति बाहर से देख सकता है अथवा जिनका निरीक्षण (Observation) प्रयोगकर्त्ता (Experimenter) के यंत्रों (Instruments) के सहारे किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, चलना-फिरना, खाना-पीना, पढ़ना-लिखना इत्यादि ऐसी क्रियाएँ है, जिनका सभी निरीक्षक (Observers) बाहर से निरीक्षण कर सकते है। वैसे ही, रक्त-प्रवाह (Blood circulation), रक्त-चाप (Blood pressure), हृदय की धड़कन, साँस की गति इत्यादि ऐसी क्रियाएँ हैं, जिनका निरीक्षण यंत्रों (Instruments) के सहारे किया जा सकता है।

कभी-कभी मनोवैज्ञानिक विघटित व्यवहार (Molecular behaviour) और संघटित व्यवहार (Molar behaviour) मे भेद करते है। विघटित व्यवहार (Molecular behaviour) से हमारा तात्पर्य है आवश्यकता-संतृप्ति (Need-satisfaction) की संपूर्ण प्रक्रिया (Total process) मे घटित होनेवाली विभिन्न प्रकार की स्वतन्त्र क्रियाओं से। इसे विघटित व्यवहार (Molecular behaviour) इसलिए कहा जाता है कि यह संघटित व्यवहार (Molar behaviour) का अंशमात्र होता है, उसका पूर्ण रूप प्रस्तुत नही करता। इसे प्रतिदिन के जीवन के एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। भूख व्यक्ति की एक प्रधान आवश्यकता (Need) है। इसका सतृप्ति (Satisfaction) के लिए उसे कई प्रकार की क्रियाएँ सपन्न करनी पडती है। भूख की सतृप्ति (Satisfaction) के क्रम में निम्नांकित आवश्यक क्रियाएँ संपन्न होती है--(१) भोजनान्वेषण, (२) खाना, (३) निगलने की क्रिया तथा (४) पाचन-क्रिया। ये सभी क्रियाएँ अलग तथा एक-दूसरी से स्वतन्त्र है। इनका अलग-अलग तथा स्वतन्त्र रूप मे अध्ययन ही विघटित व्यवहार (Molecular behaviour) कहा जायगा। यहाँ यह उल्लेख्य है कि इन सभी अलग-अलग तथा स्वतन्त्र क्रियाओं को परिणति एक ही संपूर्ण प्रक्रिया (Total process) मे होती है। उस संपूर्ण प्रक्रिया (Total process) का एक ही लक्ष्य होता है और वह है भूख की तृप्ति। इसके विपरीत, जब हम आवश्यकता-मे संतृप्ति (Need-satisfaction) की संपूर्ण प्रक्रिया (Total

process) का ही अध्ययन करते हैं, उनके क्रम में घटित हुई स्वतन्त्र क्रियाओं का नहीं, तब हमारा संबंध संघटित व्यवहार (Molar behaviour) से रहता है। ऊपर दिये गये उदाहरण में यदि हम भूख की संतृप्ति के क्रम मे घटित संपूर्ण प्रक्रिया (Total process), अर्थात्, भोजनान्वेषण से लेकर खाने और पचाने तक की क्रिया का अध्ययन करते हैं, तो स्पष्टतः हमारा सबंध संघटित व्यवहार (Molar behaviour) से ही रहता है। स्पष्ट है कि संघटित व्यवहार में अर्थयुक्त अनुक्रमों (Meaningful sequences) का सुसंगठन (Co-ordination) पाया जाता है, जिनसे प्राणी की आवश्यकताओं (Needs) की पूर्ति होती है और वे प्राणी को उसके लक्ष्य (Goal) के समीप ले जाते हैं।*

मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अध्ययन मे प्राय. संघटित व्यवहार (Molar behaviour) पर ही जोर दिया जाता है, किन्तु व्यवहार के समुचित एव विस्तृत ज्ञान के लिए विघटित व्यवहार (Molecular behaviour) का भी अध्ययन किया जाता है।

व्यवहार (Behaviour) के विवेचन में उसके दो पक्षों (Aspects) पर विचार कर लेना अनिवार्य लगता है—(१) व्यवहार का तथ्यात्मक वर्णन (Factual description) और (२) व्यवहार उत्पन्न करनेवाली अवस्थाओं (Conditions) का अध्ययन। पहले का सबध इस बात से है कि प्राणी क्या करता है अथवा किस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करता है और दूसरे का संबंध इस बात से कि प्राणी जो भी करता है, क्यों करता है। उदाहरण के लिए, यदि यह निरीक्षण किया जाय कि एक बच्चा दूसरे बच्चे को इसलिए धक्का दे रहा है कि वह जमीन पर गिर पड़े और इसका ज्यों-का-त्यों वर्णन प्रस्तुत किया जाय, तो इसे व्यवहार का तथ्यात्मक वर्णन (Factual description) कहेंगे। कारण, यहाँ बच्चे के इस व्यवहार का मूल्यांकन (Evaluation) नहीं किया जा रहा है,

---

*"Molar behaviour, by contrast, refers to behaviour organised into meaningful sequences or patterns into activities which satisfy the organism's needs, bring it closer to the goals, or help it to avoid danger."—Hilgard : 'Introduction to Psychology,, P. 13.

यह नहीं बतलाया जा रहा है कि बच्चे का व्यवहार आक्रमणकारी (Aggressive) है ; क्योंकि वह आक्रमणकारी प्रवृत्ति (Aggressive tendency) से युक्त है ।

व्यवहार के तथ्यात्मक वर्णन (Factual description) का महत्त्व इस बात में है कि यह व्यवहार के कारणों की खोज के लिए आधार प्रस्तुत करता है। ऊपर दिये गये उदाहरण में यह जान लेने पर कि एक बच्चा दूसरे बच्चे को धक्का दे रहा है, हम यह जानने की चेष्टा करते हैं कि वह ऐसा क्यों कर रहा है। इस बात की खोज के क्रम में यदि यह प्रकट होता है कि वह कई बार ऐसा कर चुका है और कई बच्चे उसके इस व्यवहार के शिकार हो चुके हैं तथा यह भी कि उसका ऐसा व्यवहार तभी हुआ है जब दूसरे बच्चों ने उससे कुछ छीन लिया या अपने साथ खेलने में उसे भाग नहीं लेने दिया, तो स्वभावतः निरीक्षक इस निष्कर्ष (Conclusion) पर पहुँचता है कि वह (पहला बच्चा) आक्रमणकारी (Aggressive) है और उसका दूसरे बच्चे को धक्का देना उसके आक्रमणकारी व्यवहार (Aggressive behaviour) का ही एक अंग है। इतना जान लेने पर एक और प्रधान एवं विचारणीय समस्या उठ खड़ी होती है और वह यह कि यदि वह आक्रमणकारी व्यवहार (Aggressive behaviour) का है, तो क्यों ? इस समस्या के अनुसंधान-क्रम में यह जान लेने पर कि उस बच्चे ने तभी आक्रमणकारी व्यवहार अपनाया, जब दूसरे बच्चों ने उससे कुछ छीन लिया या उसे अपने साथ खेलने में भाग नहीं लेने दिया, अनुसंधानकर्त्ता इस निष्कर्ष (Conclusion) पर पहुँचता है कि आक्रमणकारी व्यवहार (Aggressive behaviour) उस बच्चे की निराशा (Frustration) का ही परिणाम है । अब इस आधार पर यह कहना सुलभ है कि निराशा की स्थिति में व्यक्ति में आक्रमणकारी व्यवहार (Aggressive behaviour) अपनाने की संभावना बनी रहती है । इस प्रकार यह ज्ञात हो जाता है कि कोई क्यों आक्रमणकारी व्यवहार (Aggressive behaviour) अपनाता है। निष्कर्ष यह कि मनोविज्ञान यह अध्ययन करता है कि कोई प्राणी क्या करता है अथवा किस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया (Reaction) प्रकट करता है और वैसा क्यों करता है ।

अन्त में, यह व्यक्त कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि जिस प्रकार प्राणी अपनी अनुभूतियों (Experiences) के द्वारा वातावरण के

साथ अभियोजन (Adjustment) स्थापित करने की चेष्टा करता है, उसी प्रकार व्यवहार (Behaviour) द्वारा भी वातावरण के साथ अभियोजन (Adjustment) स्थापित करना ही उसका लक्ष्य होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान की परिभाषा 'प्राणी की क्रियाओं' के रूप में की है, जिनमें अनुभूति और व्यवहार दोनों ही समाहित हैं। इसका अनुसरण करते हुए मनोविज्ञान की यह परिभाषा की जा सकती है—

मनोविज्ञान वातावरण के संपर्क से उत्पन्न होनेवाली प्राणी की क्रियाओं का समर्थक विज्ञान है।

इस परिभाषा की समुचित व्याख्या के लिए इसके सभी शब्दों पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

विज्ञान—विज्ञान किसी भी वस्तु अथवा विषय का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत करता है। विज्ञान के तीन प्रधान पक्ष होते हैं—

(१) सामग्री (Data) का संग्रह करना;

(२) उसे क्रमबद्ध रूप देना;

(३) उसकी पूर्ण रूप से व्याख्या प्रस्तुत करना।

विज्ञान के तीनों पक्षों को दृष्टिकोण में रखकर किया गया अध्ययन वैज्ञानिक होता है। अतएव, ऐसे अध्ययन से निकाला हुआ निष्कर्ष (Conclusion) भी सही (Valid) तथा विश्वसनीय (Reliable) समझा जाता है। इस प्रकार का सही तथा विश्वसनीय ज्ञान वैज्ञानिक पद्धतियों (Scientific methods) से ही प्राप्त किया जा सकता है। मनोविज्ञान भी अन्यान्य विज्ञानों की भाँति निरीक्षण (Observation) तथा प्रयोग (Experiment) के आधार पर ही मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन करता है। अतः मनोविज्ञान निस्सन्देह एक विज्ञान है। विज्ञान की विशेषता यह होती है कि इसमें सामान्य नियमों (General laws) की खोज की जाती है और उन्हीं के आधार पर वस्तु-विशेष की व्याख्या होती है। मनोविज्ञान भी सभी विज्ञानों की तरह निरीक्षण तथा प्रयोग-जैसी वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर प्राणी की क्रियाओं के सम्बन्ध में कुछ सामान्य नियमों की स्थापना करता है। उन सामान्य नियमों के आधार पर ही प्राणी-विशेष की क्रियाओं की व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मनोविज्ञान एक विज्ञान है।

सामान्यतः विज्ञान के दो भेद किये जाते हैं :—(१) समर्थक विज्ञान (Positive Science) तथा (२) आदर्श-निर्धारक विज्ञान (Normative

Science)। समर्थक विज्ञान वस्तु विशेष या घटना-विशेष का निष्पक्ष वर्णन प्रस्तुत करता है। जो वस्तु अथवा घटना जैसी है, ठीक उसी रूप में उसका वर्णन, समर्थक विज्ञान में पाया जाता है। इसका सम्बन्ध स्पष्टतः वर्तमान परिस्थिति या 'है' से रहता है। कोई भी वस्तु अथवा घटना कैसी है, इसी का अध्ययन समर्थक विज्ञान का प्रमुख विषय है। आदर्श-निर्धारिक विज्ञान किसी भी वस्तु अथवा घटना की व्याख्या पूर्वनिर्धारित आदर्शों को दृष्टिकोण में रखकर करता है। यह समर्थक विज्ञान की तरह किसी भी वस्तु अथवा घटना का ज्यों-का-त्यों वर्णन नहीं करता, बल्कि उसके आदर्श स्वरूप का वर्णन प्रस्तुत करता है। इसका सम्बन्ध 'चाहिए' से होता है, अर्थात् किसी भी वस्तु अथवा घटना को कैसा होना चाहिए। इन दोनों प्रकार के विज्ञानों के स्पष्टीकरण के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करूँ।

भौतिक विज्ञान (Physics) एक समर्थक विज्ञान है, जो सभी भौतिक पदार्थों का ज्यों-का-त्यों अध्ययन करता है। इसके विपरीत, आचारशास्त्र (Ethics) एक आदर्श-निर्धारिक विज्ञान है, जो पूर्वनिर्धारित आदर्शों के आधार पर मनुष्य के आचरण (Conduct) का अध्ययन करता है। आचार-शास्त्र यह बतलाने की चेष्टा करता है कि व्यक्ति का आचरण कैसा होना चाहिए। विज्ञान के भेदों पर विचार कर लेने के पश्चात् यह प्रश्न अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है कि मनोविज्ञान क्योंकर एक समर्थक विज्ञान है। मनोविज्ञान को इसलिए एक समर्थक विज्ञान माना जाता है कि यह प्राणी की सभी तरह की क्रियाओं का ज्यों-का-त्यों अध्ययन करता है। मनुष्य की क्रियाओं का—जो सामाजिक दृष्टिकोण से वांछनीय भी हो सकती हैं, अवांछनीय भी—मनोविज्ञान सामान्य अभिरुचि के साथ अध्ययन करता है। मनोविज्ञान यह बतलाता है कि मनुष्य की क्रियाएँ कैसी होती हैं। उन्हें कैसा होना चाहिए, इससे मनोविज्ञान का कोई सम्बन्ध नहीं है।

क्रिया (Activity).—जब मनोविज्ञान में 'क्रिया' शब्द का प्रयोग किया जाता है, तब उसका तात्पर्य व्यक्ति की प्रत्येक अभिव्यक्ति से होता है, चाहे वह मानसिक अभिव्यक्ति हो, अथवा शारीरिक, चेतन अभिव्यक्ति (Conscious expression) हो, अथवा अचेतन (Unconscious), तथा व्यक्तिगत अभिव्यक्ति हो, अथवा सामूहिक। मनोविज्ञान में न केवल चलना-फिरना, बोलना आदि शारीरिक क्रियाएँ ही सम्मिलित हैं, बल्कि सीखना, ध्यान देना, स्मरण करना, विचार करना आदि मानसिक क्रियाएँ

भी शामिल है। इसमे प्रेम करना, क्रोध करना, घृणा करना, डरना, आदि सवेगात्मक क्रियाएं तथा प्रसन्न होना और उदास होना आदि भावात्मक क्रियाएँ भी सन्निहित रहती हैं। मनुष्य की क्रियाएँ प्राय: दो तरह की होती हैं—चेतन तथा अचेतन। चेतन क्रियाएँ वे हैं, जिन्हें मनुष्य जान-बूझकर करता है, जिनकी पूर्ण जानकारी उसे होती है। अचेतन क्रियाएँ वे हैं, जिनकी जानकारी तो उसे नहीं होती, लेकिन जिनका प्रभाव निरन्तर उसके जीवन पर पडता रहता है। अचेतन क्रियाएँ अक्सर स्वप्नो मे प्रतीकात्मक रूप (Symbolic form) मे प्रकट होती है।

व्यक्तिगत क्रिया (Individual action) **तथा सामूहिक क्रिया** (Group action)—इन दोनो मे भी अन्तर होता है। एक ही व्यक्ति की क्रिया एकान्त मे कुछ और होती है तथा समूह (Group) मे कुछ और। यदि एकान्त मे वह शिष्टतापूर्ण तथा तर्कसगत व्यवहार करता है तो समूह मे अशिष्ट तथा तर्कविहीन व्यवहार उपास्थत कर सकता है। समूह मे व्यक्ति की क्रिया उसकी मूल प्रवृत्तियो (Instincts) से प्रेरणा ग्रहण करती है। अत. वहाँ तर्क का नितान्त अभाव स्वाभाविक ही है। जैसा कि ले बोन (Le Bon) ने कहा है—

"Isolated he may be a cultivated individual, in a crowd, he is a barbarian—that is, a creature acting by instinct."

मनोविज्ञान दोनो ही अवस्थाओ मे व्यक्ति की क्रियाओ का अध्ययन करता है। अत. मनोविज्ञान के अन्तर्गत व्यक्तिगत तथा सामूहिक—दोनो प्रकार की क्रियाएँ चली आती हैं।

सामान्यत. मनोविज्ञान का सम्बन्ध सभी प्रकार की क्रियाओ से है, किन्तु विशेषत. इसका सम्बन्ध मानसिक क्रियाओ (Mental activities) से ही है। प्रत्येक मानसिक क्रिया मे मस्तिष्क (Brain), ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense-organs) तथा मांसपेशियाँ (Muscles) शामिल रहती हैं। शरीर के सभी अंग किस प्रकार कार्य करते हैं, यह शरीर-विज्ञान (Physiology) के अनुसन्धान का विषय है। शरीर-विज्ञान अलग-अलग इन सभी अगो के कार्यो का अध्ययन करता है। किन्तु मनोविज्ञान पूर्ण इकाई (whole unit) के रूप में व्यक्ति तथा वातावरण की परस्पर-क्रिया (Inter-action) से उत्पन्न व्यक्ति की प्रतिक्रियाओ (Reactions) तथा अभियोजनों

(Adjustments) का अध्ययन करता है। कहना न होगा कि व्यक्ति निरन्तर चारों ओर के वातावरण के सम्पर्क में आता रहता है। सम्पर्क के परिणाम-स्वरूप ही उसमें किसी भी तरह की क्रिया उत्पन्न होती है। व्यक्ति वातावरण से प्रभावित होता रहता है, किन्तु वह निश्चेष्ट होकर इस प्रभाव को नहीं ग्रहण करता जाता, प्रत्युत वह वातावरण में अपने को सफलता-पूर्वक अभियोजित करने की सतत चेष्टा करता है। इन चेष्टाओं का अध्ययन ही मनोविज्ञान का विषय है। उदाहरण के रूप में यह कहा जा सकता है कि यदि कोई पागल कुत्ता एकाएक किसी व्यक्ति पर टूट पड़े, तो स्वभावतः वह भयभीत होकर वहाँ से भाग खड़ा होगा। स्पष्ट है कि भयभीत होना तथा भाग खड़ा होना—ये दोनों ही उस व्यक्ति की उस विशेष वातावरण के प्रति प्रतिक्रियाएँ हैं। इन प्रतिक्रियाओं से अभियोजन (Adjustment) की चेष्टा भी स्पष्टतः परिलक्षित होती है। वह कदाचित् इसलिए भाग खड़ा होगा कि इससे उसकी प्राण-रक्षा होगी। अस्तु, वक्तव्य यही है कि मनोविज्ञान व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं तथा अभियोजनों का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

प्राणी (Organism) —जीवित वस्तु को प्राणी कहते हैं; यथा—पशु, मनुष्य आदि। प्राणियों का प्रधान गुण यह है कि वे वातावरण से निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं। वातावरण में उपस्थित भौतिक उत्तेजनाएँ (Physical stimuli) प्राणियों की ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती हैं। फलस्वरूप, उनका स्नायु-मंडल (Nervous system) क्रियाशील हो उठता है और वे किसी-न-किसी प्रकार की प्रतिक्रिया (Reaction) अवश्य ही प्रकट करते हैं। जन्म, विकास, मरण आदि भी प्राणियों के प्रधान गुण हैं। सभी प्राणी जन्म ग्रहण करते हैं, चारों ओर के वातावरण में उनका क्रमशः विकास होता है, युवा होने पर वे सन्तान उत्पन्न करते हैं तथा अन्त में मर जाते हैं। उनके शरीर के सभी अंग संगठित रूप में कार्य करते रहते हैं। तभी तो प्राणी वातावरण के साथ समुचित अभियोजन (Adequate adjustment) स्थापित कर पाते हैं।

वातावरण (Environment) —वातावरण को दृष्टिकोण में रखे बिना प्राणी की क्रियाओं का अध्ययन संभव नहीं है। कारण, वातावरण की उत्तेजनाओं के सम्पर्क में आने से ही प्राणी में क्रिया उत्पन्न होती है। वस्तुतः कोई भी प्राणी शून्य में नहीं रहता। वह चारों ओर से भौतिक शक्तियों—शीत, ताप, ध्वनि, प्रकाश आदि से—घिरा रहता है। इसके अलावा,

वह अन्य प्राकृतिक वस्तुओ तथा व्यक्तियो के सम्पर्क में आता रहता है। इन्हे ही मनोविज्ञान मे वातावरण की संज्ञा दी जाती है। स्पष्ट है कि प्राणी निरन्तर अपनी ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) तथा समस्त स्नायु-मंडल द्वारा वातावरण के सम्पर्क मे आता रहता है। अतः यह कहना उपयुक्त प्रतीत होता है कि मनोविज्ञान वातावरण के सम्पर्क से उत्पन्न प्राणी की क्रियाओं का अध्ययन है।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि मनोविज्ञान मे अनुभूति और व्यवहार का अध्ययन उत्तेजनाओ (Stimuli) के प्रति प्राणी के अभियोजनों (Adjustments) के रूप मे किया जाता है। मनोविज्ञान वातावरण के सपर्क से उत्पन्न होनेवाली, प्राणी की क्रियाओं का समर्थक विज्ञान है--इस परिभाषा के विवेचन-क्रम मे भी स्पष्ट किया जा चुका है कि प्राणी अपनी क्रियाओं के द्वारा वातावरण के साथ अभियोजन (Adjustments) स्थापित करने की ही चेष्टा करता है। निष्कर्ष यह कि मनोविज्ञान में चाहे हम अनुभूति और व्यवहार का अध्ययन करे, या प्राणी की क्रियाओं का, पर उनके द्वारा प्राणी के अभियोजनों (Adjustments) का ज्ञान प्राप्त करना ही लक्ष्य होता है। अतएव, मनोविज्ञान की निम्नांकित परिभाषा सबसे अधिक उपयुक्त जान पडती है—

मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है, जो वातावरण के प्रति प्राणी के अभियोजनो (Adjustments) का अध्ययन करता है।

प्रत्येक प्राणी का प्रधान लक्ष्य है जीवित रहना। जीवन की मूल प्रकृति (Nature) मे ही क्रिया (Activity), परिवर्त्तन (Change) और अभियोजन (Adjustment) सन्निहित रहते है। अतएव, मानव-स्वभाव (Human nature) कोई स्थिर सत्त्व (Static entity) नहीं, वरन् कुछ करते रहने का ही गत्यात्मक (Dynamic) रूप है। इसीलिए मनोवैज्ञानिकों ने मानव-स्वभाव (Human nature) की व्याख्या करते हुए कहा कि "मानव-स्वभाव जो कुछ करता है, वही मानव-स्वभाव है।"*

जीवित रहने की यह क्रियाशील प्रक्रिया (Active process) शून्य में नहीं संपन्न हो सकती, बल्कि यह तो परिवर्त्तनशील वातावरण (Changing environment) मे ही सभव है। वातावरण (Environ-

*"Human nature is what human nature does."—Shaffer, Gilmer and Schoen: Psychology' p. 16.

ment) की उत्तेजनाएँ (Stimuli) प्राणी को निरन्तर प्रभावित करती रहती हैं और वातावरण पर भी प्राणी का प्रभाव पड़ता रहता है। यह परस्पर-क्रिया (Inter-action) चलती रहती है। प्राणी का बिल्कुल शून्य में रहना न तो सभव ही है और न उसका महत्त्व ही है। अतएव, व्यक्ति और वातावरण के संबंध का अध्ययन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अभियोजन का स्वरूप

(Nature of Adjustment)

प्राणी की कई प्रकार की आवश्यकताएँ (Needs) होती हैं। जीवन-धारण के लिए उन आवश्यकताओं (Needs) की पूर्त्ति अनिवार्य हो जाती है। उसकी कुछ तो बुनियादी शारीरिक आवश्यकताएँ होती हैं, जैसे, भूख, प्यास इत्यादि और कुछ सामाजिक आवश्यकताएँ, जैसे, सुरक्षा (Security), मैत्री (Companionship), आत्म-स्थापन (Self assertion) इत्यादि। इन शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं (Needs) की पूर्त्ति सदा सहज ढंग से नहीं हो पाती। वातावरण (Environment) के कारण उनकी पूर्त्ति में व्यक्ति को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। फलतः वातावरण की विभिन्न अवस्थाओं (Conditions) के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ (Reactions) प्रकट करने के क्रम में उसे अपने व्यवहार (Behaviour) में परिवर्त्तन अथवा परिमार्जन अनिवार्य जान पड़ता है। अपने परिमार्जित व्यवहार (Modified behaviour) के द्वारा ही वह वातावरण के साथ अपना अभियोजनात्मक संबंध (Adjustive relation) स्थापित करने में सफल हो पाता है। अतः अभियोजन की व्याख्या करते हुए यह कहा जा सकता है कि "वह परिवर्त्तनशील और अभियोजनात्मक व्यवहार, जिसके द्वारा प्राणी और उसके वातावरण के बीच संतुलन कायम किया जा सके, अभियोजन की प्रक्रिया है।"* स्पष्ट है कि प्राणी और उसके वातावरण के बीच संतुलन (Balance) स्थापित हो, इसके लिए उसके व्यवहार में परिवर्त्तन अथवा परिमार्जन (Modification) का होना अनिवार्य है।

*"This variable and adaptive behaviour by which the organism and its environment are kept in balance is the process of adjustment."—Shaffer, Gilmer and Schoen: Psychology, p. 16

इसे एक साधारण उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। कॉलेज की घंटी बजते ही छात्रगण अपने-अपने विषयो की पढ़ाई होनेवाले कमरे में चले जाते है । वहाँ जाकर वे बैठते है और आपस मे तरह-तरह की बातें करते रहते है और इस प्रकार उनका मनोविनोद चलता रहता है। किन्तु, जैसे ही कमरे मे प्रोफेसर प्रवेश करते है, वहाँ बिल्कुल शान्ति छा जाती है । सभी विद्यार्थी परस्पर की बातचीत बन्द कर सुनने और लिखने की मुद्रा में आ जाते है । प्रोफेसर के उस कमरे मे प्रवेश करने के पूर्व के विद्यार्थियों के व्यवहार मे उनके प्रवेश करते ही परिवर्त्तन अथवा परिमार्जन (Modification) आ जाता है। इस परिवर्त्तित अथवा परिमार्जित व्यवहार (Modified behaviour) के फलस्वरूप वे प्रोफेसर के भाषण को दत्तचित्त होकर सुनने और लिखने लगते है इस प्रकार विद्यार्थियों और उस वर्ग (Class) के वातावरण के बीच एक सतुलित सबध स्थापित हो जाता है। इसे हम वर्ग-कक्ष-अभियोजन (Class-room adjustment) कहते है ।

यहाँ कुछ प्रमुख मानव-अभियोजनों (Human adjustments) का उल्लेख करते हुए कहा जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बुनियादी शारीरिक आवश्यकताओ (Fundamental bodily needs) के प्रति अभियोजन (Adjustment) के अतिरिक्त सामाजिक (Social) तथा बौद्धिक (Intellectual) अभियोजनो (Adjustments) की अनिवार्यता का अनुभव होता है । अत. सक्षेप मे इन दोनो प्रकार के अभियोजनो पर प्रकाश डालना अभीष्ट है।

सामाजिक अभियोजन (Social Adjustment) —प्रत्येक व्यक्ति समाज के लोगो के सपर्क मे रहता है । वह स्वभावत समाज मे अपने गुणो को स्थापित कर यह अनुभव करने की आकाक्षा रखता है कि उसकी भी कुछ उपलब्धियाँ (Achievements) है। किन्तु ऐसी आवश्यकताओ (Needs) की पूर्त्ति उतनी आसान नही, जितनी भूख-प्यास आदि शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्त्ति। फलत. जब उनकी पूर्त्ति नही हो पाती तब व्यक्ति सामाजिक वातावरण (Social environment) के साथ अपने को असंतुलित (Unbalanced) पाता है । ऐसी स्थिति मे अभियोजनात्मक क्रिया (Adjustive activity) आवश्यक हो जाती है। उदाहरणार्थ, यदि किसी समिति (Committee) के सदस्य की आलोचना की जाती है, उसकी

गलतियों की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया जाता है, तो स्वभावतः अपनी कुछ क्रियाओं (Activities) द्वारा वह अपने को अभियोजित करने की चेष्टा करता है। एक तो यह कि वह अन्य बातों मे अपनी अपूर्व प्रतिभा और क्षमता का दिग्दर्शन कर अपने को समाज में अच्छी तरह स्थापित कर ले। दूसरा, यह कि शान्तिपूर्वक अपने सभी दोषों को स्वीकार कर ले और लोगों के सहयोग से उन दोषों से मुक्त होने का पूर्ण प्रयास करे। तीसरा, यह कि यदि उसे स्वयं परिस्थिति को सँभालने में असमर्थता का अनुभव हो, तो अपने से योग्य एवं अनुभवी व्यक्तियों से परामर्श लेकर कार्य करे। यदि इन तीनों मे से कोई भी तरीका संभव नहीं होता, तो वह बहुत सहज भाव से अपने आलोचकों की बातो पर हँस देता है और उन्हें भूल जाने की चेष्टा करता है तथा पहले की भाँति ही समाज में संतुलित ढंग से रहने लगता है। व्यक्तिगत निराशाओं की स्थिति में अभियोजन स्थापित करने के उपर्युक्त मार्ग वाछनीय (Desirable) कहे जा सकते है।

यह भी संभव है कि समिति का वह आलोचित सदस्य अवांछनीय तरीकों (Undesirable ways) से अपने आत्म-गौरव (Self-prestige) की रक्षा करे। ऐसी स्थिति मे स्वभावतः वह अपने ऊपर आरोपित दोषों को अस्वीकार करेगा तथा उन दोषों को दूसरे के मत्थे मढ़ने की भरपूर चेष्टा करेगा। वह अपने ऊपर आरोपित सभी दोषों का कारण समिति के अन्य सदस्यों की इर्ष्या (Rivalry) कहना पसन्द करेगा। इसके अतिरिक्त, यह भी संभव है कि वह बिल्कुल आक्रमणकारी (Aggressive) और विनाशकारी (Destructive) मनोवृत्ति (Attitude) को अपना ले। एक यह भी संभावना है कि वह अति निराश होकर अपनी वास्तविक सफलता के स्थान पर कल्पित सफलताओं के दिवा-स्वप्नों (Day-dreams) द्वारा ही आत्म-तृप्ति का अनुभव करे। व्यक्तिगत निराशाओं के प्रति अपनी इन निम्न प्रतिक्रियाओं (Inferior reactions) द्वारा वह अपने तनाव (Tension) को अवश्य कम कर लेता है और इस प्रकार आत्म-तृप्ति का भी अनुभव कर लेता है, किन्तु इन्हें कठिनाइयो का वास्तविक अभियोजनात्मक समाधान (Adaptive solution) नहीं कहा जा सकता। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि हम इन्हें उस व्यक्ति के लिए संतोषजनक अभियोजन (Adjustment) कह सकते हैं, किन्तु सामाजिक दृष्टिकोण से इन्हें अवांछनीय (Undesirable) ही कहा जायगा।

बौद्धिक अभियोजन (Intellectual adjustment)—
समस्या-समाधान (Problem-solution):—

समस्या ऐसी परिस्थिति को कहते हैं, जिसके साथ पूर्वानुभूति (Past experience) के आधार पर तात्कालिक अभियोजन (Immediate Adjustment) स्थापित नहीं किया जा सके। प्रतिदिन के जीवन में ऐसी अनेक समस्याएँ (Problems) आती हैं; जैसे घरों में, स्कूलों में, व्यवसायों में तथा सामाजिक संबंधों में। जब बच्चे स्कूलों में जाते हैं तब उन्हें ऐसे विषयों पर अधिकारपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है, जिनका उन्हें कोई भी पूर्वानुभव (Past experience) नहीं है। वैसे ही, घरों में, व्यवसायों (Vocations) में अथवा सामाजिक संबंधों में ऐसी नवीन परिस्थितियाँ आती हैं, जिनका व्यक्ति को पहले से कोई अनुभव नहीं रहता, किन्तु उनके प्रति अभियोजन (Adjustment) स्थापित करने के लिए उन परिस्थितियों को अच्छी तरह समझना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के अभियोजनों (Adjustments) की व्यक्ति को आवश्यकता होती है, जिनका विशद विवेचन यहाँ अपेक्षित नहीं। पुनः अभियोजन (Adjustment) का विश्लेषण (Analysis) तृतीय अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा।

———

दूसरा अध्याय

मनोविज्ञान की विधियाँ तथा शाखाएँ

सभी विज्ञानों की तरह मनोविज्ञान में भी वैज्ञानिक विधियों (Scientific methods) का ही व्यवहार किया जाता है। वस्तुतः विज्ञान (Science) अनुसंधान की एक विधि है। इस विधि का अनुसरण कर जो भी अध्ययन किया जाता है, उसे वैज्ञानिक अध्ययन कहते हैं। भौतिक विज्ञान (Physics), रसायन-विज्ञान (Chemistry) आदि अन्य विज्ञानों की भाँति मनोविज्ञान में भी इस विधि का अनुसरण कर ही समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में खोज करनेवाले वैज्ञानिकों के लिए कुछ मूलभूत सिद्धांतों (Fundamental principles) का अनुसरण अनिवार्य है। वे मूलभूत सिद्धांत ये हैं:—

(१) **तैयारी** (Preparation):—सर्वप्रथम अनुसंधान के लिए एक समस्या चुन ली जाती है। जब उस समस्या-संबंधी जितने अध्ययन अथवा अनुसंधान पहले हो चुके हैं, उनका भलीभाँति परिचय प्राप्त किया जाता है, तब यह निर्णय करना सुलभ हो जाता है कि उस समस्या के संबंध में और भी अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए किस दिशा में अनुसंधान आवश्यक है। तत्पश्चात् अनुसंधान के लिए एक योजना (Plan) बना ली जाती है, जिसमें मुख्यतः दो बातें सन्निहित रहती हैं—(१) प्रयोग-संबंधी सारे उपकरणों (Materials) को एक सूची तथा (२) उन अवस्थाओं (Conditions) की स्थापना, जिनमें निरीक्षण वांछित हो।

(२) **निरीक्षण** (Observation):—अब मनोवैज्ञानिक यह निश्चय कर लेता है कि उसे किस प्रकार की निर्देशनात्मक पद्धति (Instructional technique) को अपनाना है तथा किस प्रकार के परीक्षणों (Tests) को सन्निहित करना है। वह अपने अध्ययन-क्रम में अवस्थाओं (Conditions) को सुनिश्चित ढंग से परिवर्त्तित करता है, उन सभी अवस्थाओं (Conditions) में सावधानीपूर्वक निरीक्षण करता है तथा

फलों (Results) के विस्तृत रेकॉर्ड (Detailed record) रखता है। निरीक्षण प्रायः बहुत समय तक चलता रहता है।

(३) **वर्गीकरण** (Classification):—विभिन्न अवस्थाओं (Conditions) में किये गये निरीक्षण के आधार पर प्राप्त फलों (Results) का विश्लेषण किया जाता है। यह विश्लेषण तबतक अधूरा रह जाता है जबतक उपलब्ध सामग्रियों (Data) का क्रमबद्ध ढंग से वर्गीकरण नहीं कर लिया जाता।

(४) **साधारणीकरण** (Generalization):—फलों (Results) के सारांश (Summary) तैयार कर लिये जाते हैं और उनके आधार पर निश्चित सामान्य नियम (General laws) स्थिर कर लिये जाते हैं। कभी-कभी ये सामान्य नियम गलत भी सिद्ध हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में और भी अधिक अध्ययनों और अनुसंधानों के आधार पर उनके प्रमापन (Verification) की आवश्यकता हो जाती है।

(५) **प्रमापन** (Verification):—किसी भी अध्ययन के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों (Conclusions) की विश्वसनीयता (Reliability) तथा सत्यता (Validity) की जाँच को सामान्यतः प्रमापन (Verification) की संज्ञा दी जाती है। कोई भी मनोवैज्ञानिक अपने निष्कर्षों (Conclusions) का विवरण प्रस्तुत करते हुए प्रायः अपने अध्ययन में प्रयुक्त पद्धति (Technique) का भी विस्तृत विवरण दे देता है। फलतः उसी क्षेत्र में काम करनेवाले दूसरे मनोवैज्ञानिक भी उस प्रयोग को ज्यों-का-त्यों दुहरा सकते हैं और निष्कर्षों (Conclusions) को प्रमापित कर सकते हैं या उस पद्धति (Technique) में भी कोई कमी निकाल सकते हैं। जब किसी प्रयोग का फल (Result) स्वीकृत सिद्धान्तों के विरुद्ध पड़ता है, तब प्रमापन (Verification) अनिवार्य हो जाता है। यदि प्रमापन (Verification) के बाद वह फल सत्य (Valid) और विश्वसनीय (Reliable) सिद्ध हो जाता है तो उसे स्वीकार कर लिया जाता है।

मनोविज्ञान में वैज्ञानिक विधि
(The Scientific method in Psychology)

मानव-व्यवहारों (Human behaviour) और अभियोजनों (Adjustments) से संबंधित विविध समस्याओं के अध्ययन में उन्नीसवीं

सदी के मध्य से ही मनोविज्ञान में वैज्ञानिक विधि का प्रयोग शुरू हो गया था। शुरू में दार्शनिकों ने इसका विरोध किया, किन्तु मनोविज्ञान इस दिशा में प्रगति करता गया और अन्ततोगत्वा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दर्शनशास्त्र (Philosophy) से बिल्कुल अलग एक स्वतन्त्र विज्ञान के रूप में घोषित हुआ। तत्पश्चात् वैज्ञानिक निरीक्षणों और प्रयोगों के आधार पर मानव-क्रियाओं (Human activities, का अध्ययन होने लगा।

प्रारंभ में मनोवैज्ञानिकों ने भौतिक विज्ञान (Physics) और शरीर-विज्ञान (Physiology) की अनेक विधियों (Methods) तथा यन्त्रों (Instruments) को अपनाया। किन्तु, कालक्रम में उनके सामने अनेक नई-नई मनोवैज्ञानिक समस्याएँ आती गई और वे उनके उपयुक्त अध्ययन के लिए नये यंत्रों (Instruments), नई पद्धतियों (Techniques) तथा नई विधियों (Methods) की खोज करते गये। जैसे-जैसे मनोविज्ञान विकसित होता गया, मनोवैज्ञानिक इस बात पर जोर देते गये कि मनोविज्ञान मे जिन विधियों का प्रयोग हो, वे वैज्ञानिक (Scientific) अवश्य हों। इस पृष्ठभूमि में ही यहाँ कुछ वज्ञानिक विधियों का उल्लेख किया जायगा।

प्रयोगात्मक अन्तर्निरीक्षण
(Experimental Introspection)

साधारणत लोग समझते हैं कि अन्तर्निरीक्षण-विधि मनोविज्ञान में दर्शन-शास्त्र से आई, परन्तु यह विचार भ्रमात्मक है। वस्तुतः मनोविज्ञान को अन्तर्निरीक्षण-विधि की प्रेरणा दर्शनशास्त्र से नहीं, प्रत्युत भौतिक विज्ञान (Physics)तथा शरीर-विज्ञान (Physiology) से मिली। भौतिक विज्ञानने प्रकाश और ध्वनि के अध्ययन में आत्मनिष्ठ निरीक्षण (Subjective observation) का प्रयोग किया। वैसे ही, शरीर-वैज्ञानिकों ने भी ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) के अध्ययन में इसका प्रयोग किया। यद्यपि अपने विकास-क्रम में इन विज्ञानों ने आत्मनिष्ठ निरीक्षण (Subjective observation) का परित्याग कर दिया है, तथापि मनोविज्ञान में अभी भी इसका प्रयोग परिमार्जित रूप में होता है, जिसे प्रयोगात्मक अन्तर्निरीक्षण (Experimental introspection) कहते हैं।

यहाँ प्रयोगात्मक अन्तर्निरीक्षण (Experimental introspection) और आकस्मिक अन्तर्निरीक्षण (Casual introspection) में भेद

करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रयोगात्मक अन्तर्निरीक्षण के प्रयोग करने के पहले निरीक्षक को अपनी मानसिक क्रियाओं अथवा प्रतिक्रियाओं (Reactions) पर ध्यान देने और उनके विवरण प्रस्तुत करने के संबंध में भलीभाँति शिक्षण (Training) प्राप्त करने की आवश्यकता होती है, किन्तु आकस्मिक निरीक्षण (Casual observation) में ऐसी बात नहीं होती।

जब कोई व्यक्ति अपनी मानसिक क्रियाओं का स्वयं निरीक्षण करता है तब उसे अन्तर्निरीक्षण (Introspection) कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि वह प्रसन्न है अथवा अप्रसन्न, वह विचार कर रहा है अथवा किसी प्रतिमा (Image) का अनुभव कर रहा है, तो निस्सन्देह यह उसके अन्तर्निरीक्षण का ही परिणाम कहा जायगा। अपनी मानसिक क्रियाओं के निरीक्षण के आधार पर व्यक्ति जो सामग्री (Data) प्रस्तुत करता है, उसे अन्तर्निरीक्षणात्मक सामग्री (Introspective data) कहते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्तर्निरीक्षण में दो बातें अनिवार्य रूप से पाई जाती हैं। पहली यह कि व्यक्ति अपनी मानसिक क्रियाओं का अपने-आप निरीक्षण करता है और दूसरी यह कि वह अपनी मानसिक क्रियाओं के सम्बन्ध में विवरण प्रस्तुत करता है। स्पष्टतः अन्तर्निरीक्षण आत्मनिष्ठ (Subjective) होता है; क्योंकि अनुभवकर्त्ता ही अपने अनुभवों का निरीक्षण कर उनका विवरण प्रस्तुत करता है; कोई दूसरा व्यक्ति उसके अनुभवों का निरीक्षण नहीं कर सकता। यद्यपि अन्तर्निरीक्षण आत्मनिष्ठ (Subjective) होता है, किन्तु फिर भी वह बाह्य निरीक्षण (Objective observation) से सर्वथा भिन्न नहीं कहा जा सकता। अन्तर्निरीक्षक (Introspectionist) अपनी मानसिक क्रियाओं अथवा अनुभूतियों का निरीक्षण उसी प्रकार निष्पक्ष रूप से करता है, जिस प्रकार वह किसी भी बाह्य वस्तु का निरीक्षण करता है। यदि किसी व्यक्ति को मधुर संगीत की ध्वनि सुनाई पड़े, तो वह स्वभावतः आनन्द के अनुभव का विवरण प्रस्तुत करेगा। उसका यह निरीक्षण उसे उतना ही सत्य प्रतीत होगा जितना किसी बाह्य वस्तु का निरीक्षण। किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अपनी मानसिक क्रियाओं अथवा अनुभूतियों का निरीक्षण करना बाह्य वस्तुओं के निरीक्षण की अपेक्षा कुछ कठिन अवश्य है। पर यह कठिनाई अभ्यास से दूर हो सकती है तथा अन्तर्निरीक्षण में निपुणता प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त, कुछ

ऐसी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ हैं, जिनका सम्यक् अध्ययन अन्य किसी विधि द्वारा संभव नहीं। ऐसी स्थिति में अन्तर्निरीक्षण की उपादेयता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, प्रतिरूप अनुबिंबों (Negative after-images) तथा भावों (Feelings) का सीधा अध्ययन (Direct study) इसी विधि द्वारा संभव है, अन्य विधियों द्वारा नहीं।

यद्यपि मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए अन्तर्निरीक्षण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है, लेकिन तो भी इस पर अनेक प्रकार की आपत्तियाँ (Objections) की जाती हैं। इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता है कि अन्तर्निरीक्षण के द्वारा मानसिक क्रियाओं का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है। भाव (Feeling), कल्पना (Imagination) आदि के अध्ययन में इसका अत्यधिक प्रयोग किया गया है। अन्तर्निरीक्षण में इन गुणों के रहते हुए भी इसकी कड़ी आलोचना हुई है, जिसका उल्लेख यहाँ अभीष्ट है।

(१) अन्तर्निरीक्षण पर सबसे पहली आपत्ति यह की जाती है कि यह आत्मनिष्ठ (Subjective) तथा व्यक्तिगत (Personal) होता है। व्यक्ति अपनी मानसिक क्रियाओं का अपने-आप निरीक्षण कर उनका विवरण प्रस्तुत करता है। ऐसी अवस्था मे इसे आत्मनिष्ठ तथा व्यक्तिगत कहना युक्तिसंगत ही है। अब प्रश्न यह है कि इस विधि के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष (Conclusions) कहाँ तक वैज्ञानिक हो सकते हैं? इस पर विचार प्रकट करते हुए अनेक मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अन्तर्निरीक्षण-जैसी आत्मनिष्ठ तथा व्यक्तिगत विधि के आधार पर प्राप्त सत्य (Valid) तथा विश्वसनीय (Reliable) नहीं हो सकते। अतः यह विधि वैज्ञानिक नहीं कही जा सकती। वैज्ञानिक विधि वह है, जिसके द्वारा सत्य तथा विश्वसनीय निष्कर्ष प्राप्त हो सकें।

यदि गंभीरतापूर्वक विचार किया जाय तो जान पड़ेगा कि अन्तर्निरीक्षण पर आरोपित यह आपत्ति उचित नहीं है। कारण, अन्तर्निरीक्षण की विधि के आधार पर भी सामान्य तथा व्यापक मनोवैज्ञानिक नियमों (General and universal Psychological laws) की स्थापना संभव है। यदि किसी विशेष परिस्थिति में अनेक अन्तर्निरीक्षक (Introspectionists) एक ही प्रकार की मानसिक क्रियाओं का विवरण प्रस्तुत करें तो निश्चय ही उनके विवरण के आधार पर सत्य तथा विश्वसनीय निष्कर्ष निकाला जा सकता है। अतः उस निष्कर्ष की वैज्ञानिकता पर किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। इसे स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण लें।

यदि प्रेम की स्थिति में अनेक अन्तर्निरीक्षक हर्ष, उत्सुकता, उल्लास आदि का विवरण प्रस्तुत करें, तो उनके विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रायः प्रत्येक व्यक्ति प्रेम में हर्ष, उत्सुकता आदि का अनुभव करता है। यह सामान्य नियम अवश्य ही सत्य तथा विश्वसनीय होगा। अतः यह वैज्ञानिक नियम समझा जायगा।

(२) अन्तर्निरीक्षण पर दूसरी आपत्ति यह की जाती है कि मनुष्य की अधिकांश मानसिक क्रियाएँ इतनी चंचल एवं गतिशील होती हैं कि उनका अन्तर्निरीक्षण संभव ही नहीं है। जब कोई व्यक्ति अपनी मानसिक क्रियाओं का निरीक्षण करना शुरू करता है, तब प्रायः वे मानसिक क्रियाएँ ही लुप्त हो जाती हैं और उनके स्थान पर दूसरी मानसिक क्रियाएँ प्रारंभ हो जाती हैं। यह बात विशेषतः संवेगों में देखने को मिलती है। उदाहरण-स्वरूप क्रोध को लें। जब कोई व्यक्ति क्रोधावेश में रहता है और उस समय वह अपने क्रोध की मानसिक क्रिया का निरीक्षण प्रारम्भ करता है, तब संभवतः उसका क्रोध लुप्त हो जाता है और उसके स्थान पर विचारने की क्रिया (Process of thinking) शुरू हो जाती है।*

इस आपत्ति के सम्बन्ध में यह उल्लेख जान पड़ता है कि अधिकांश मानसिक क्रियाओं और विशेषतः संवेगों का अन्तर्निरीक्षण कठिन अवश्य है, किन्तु असंभव नहीं। इस कठिनाई को दूर करने का उपाय यह है कि जब कोई मानसिक क्रिया शुरू हो तब उसे अबाध गति से ज्यों-का-त्यों चलने देना चाहिए और वह जैसे ही समाप्त हो जाय, वैसे ही उसका निरीक्षण शुरू कर देना चाहिए। इसे अन्तर्निरीक्षण न कहकर 'अनुनिरीक्षण' (Retrospection) कहा जाता है। अनुनिरीक्षण से लाभ यह होता है कि मानसिक क्रिया में किसी प्रकार की बाधा भी नहीं पहुँचती और उसका तात्कालिक निरीक्षण भी हो जाता है।

(३) अन्तर्निरीक्षण के विरोध में कभी-कभी यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि इसमें एक ही व्यक्ति को अनुभवकर्त्ता और निरीक्षक—दोनों ही का काम करना पड़ता है और ये कार्य परस्पर-विरोधी हैं। अतः एक ही व्यक्ति को अनुभवकर्त्ता और निरीक्षक—दोनों ही मान लेने में तार्किक

---

*"Cool consideration of an emotion is fatal to its very existence, your anger disappears, your disappointment evaporates, as you examine it."—Titchener.

(Logical) दोष हो जाता है। यह आपत्ति (Objection) सिद्धान्ततः तो ठीक जान पडती है, किन्तु व्यवहारतः समुचित नहीं दीख पड़ती। व्यावहारिक जीवन में प्रतिदिन का अनुभव बतलाता है कि एक ही व्यक्ति एक ही समय में किसी प्रकार का अनुभव भी कर सकता है तथा उसका निरीक्षण कर विवरण भी दे सकता है। उदाहरणार्थ, एक ही व्यक्ति दुःख का अनुभव भी करता है और उसका निरीक्षण कर शब्दों के द्वारा अपने दुःख को प्रकट भी करता है। यदि इस प्रकार की यथार्थता (Fact) हमारे सामने हो तो इसे स्वीकार करना ही वैज्ञानिक होगा। जब सिद्धान्त और यथार्थता में विरोध उपस्थित हो जाय, तब यथार्थता को अपनाना ही वैज्ञानिक तथा श्रेयस्कर होता है। अतः यह स्पष्ट है कि अन्तर्निरीक्षण पर आरोपित यह आपत्ति निर्मूल है।

(४) अन्तर्निरीक्षण की अन्तिम, किन्तु प्रधान त्रुटि यह है कि इसका प्रयोग सभी तरह के प्राणियों पर संभव नहीं है। बच्चे तथा पशु इस विधि का प्रयोग नहीं कर सकते। अतएव, अन्तर्निरीक्षण का क्षेत्र मनोविज्ञान की अन्य विधियों की अपेक्षा संकुचित कहा जा सकता है। वस्तुतः अन्तर्निरीक्षण का समुचित प्रयोग केवल प्रौढ़ (Adult) व्यक्ति ही कर सकता है। यद्यपि इस विधि के प्रयोग का क्षेत्र सीमित है, लेकिन तो भी, इसकी सहायता से अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अध्ययन हुआ है। अन्तर्निरीक्षण मनोविज्ञान की एक उपयोगी विधि है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

बाह्य निरीक्षण
(**Objective observation**)

बाह्य निरीक्षण के द्वारा स्वाभाविक परिस्थिति में होनेवाले व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। बाह्य निरीक्षण की विधि को मनोविज्ञान में प्रमुख स्थान देने का श्रेय व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों को ही है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में व्यवहार को मनोविज्ञान का विषय तथा बाह्य निरीक्षण को उसकी विधि घोषित किया है। यहाँ यह व्यक्त कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि व्यवहार व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओं में अभिव्यक्त होता है। फलतः बाह्य निरीक्षक (Objective observer) व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओं का निरीक्षण कर उसके आधार पर सामान्य मनोवैज्ञानिक नियमों की स्थापना करते हैं। शारीरिक क्रियाओं के निरीक्षण के आधार पर मानसिक क्रियाओं का भी ज्ञान हो जाता है; क्योंकि इन दोनों का

परस्पर-सम्बन्ध है। मानसिक क्रियाएँ प्रायः शारीरिक क्रियाओं में ही अभिव्यक्त होती हैं। किसी विषय पर सोचते समय कुछ और तरह की शारीरिक क्रियाएँ होती हैं और क्रोध, प्रेम, भय तथा घृणा आदि संवेगों का अनुभव करते समय कुछ और ही तरह की। इस प्रकार विभिन्न मानसिक क्रियाएँ विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओं के द्वारा अभिव्यक्त होती हैं:—

शारीरिक क्रियाओं के दो प्रधान विभाग किये जा सकते हैं—(१) स्थूल शारीरिक क्रियाएँ और (२) सूक्ष्म शारीरिक क्रियाएँ। शरीर के बाहरी अंगों में होनेवाली क्रियाएँ, जिन्हें कोई भी सरलता से देख सकता है, स्थूल शारीरिक क्रियाएँ कहलाती हैं। उदाहरण-स्वरूप, हाथ-पैर की गति, हँसी, होठों की गति आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है। शरीर के भीतर होनेवाली क्रियाएँ, जिन्हें बाहर से प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखा जा सकता, सूक्ष्म शारीरिक क्रियाएँ कहलाती हैं। सूक्ष्म शारीरिक क्रियाओं का निरीक्षण यंत्रों (Instruments) की सहायता से किया जाता है। इनका अध्ययन मनोविज्ञान में अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। इनके उदाहरण-स्वरूप रक्त-प्रवाह (Blood circulation), साँस की गति, पाचन-क्रिया, खून में रासायनिक परिवर्त्तन (Chemical changes in blood), रक्त-चाप (Blood pressure) आदि को उपस्थित किया जा सकता है। इन सूक्ष्म शारीरिक क्रियाओं का निस्सन्देह यंत्रों के प्रयोग द्वारा निरीक्षण किया जा सकता है। इन दोनों प्रकार की शारीरिक क्रियाओं के बाह्य निरीक्षण (Objective observation) द्वारा ही मनोविज्ञान-सम्बन्धी सामान्य नियमों की स्थापना की जाती है।

बाह्य निरीक्षण के गुण-दोष

(Merits & demerits of objective observation)

बाह्य निरीक्षण का सर्वप्रधान गुण यह है कि यह वस्तुनिष्ठ (Objective) और अवैयक्तिक (Impersonal) होता है। किसी की शारीरिक क्रिया का निरीक्षण सभी निरीक्षक समान रूप से कर सकते हैं। यह विधि अन्तर्निरीक्षण की तरह व्यक्ति-विशेष तक ही सीमित नहीं रह जाती, बल्कि इसका प्रयोग सभी व्यक्ति कर सकते हैं। फलतः इसके आधार पर प्राप्त निष्कर्ष (Conclusion) की सत्यता (Validity) और विश्वसनीयता (Reliability) सरलता से प्रमाणित की जा सकती है। कोई भी निरीक्षक किसी व्यक्ति के शरीर के भीतर होनेवाले रक्त-प्रवाह (Blood circulation) को यंत्र के सहारे आसानी से देख सकता

है। वैसे ही, किसी व्यक्ति के हाथ-पैर की गति को कौन नहीं देख सकता ? अपने इस विशेष गुण के कारण ही बाह्य निरीक्षण मनोविज्ञान की एक उपयुक्त विधि माना जाता है ।

इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसका प्रयोग सभी प्राणियों पर संभव है। अन्तर्निरीक्षण की तरह यह केवल प्रौढ़ व्यक्तियों (Adults) तक ही सीमित नहीं है, वरन् इसका प्रयोग बच्चे, पशु और पागल पर भी संभव है। बच्चे, पशु अथवा पागल के व्यवहारों का निरीक्षण कर उनकी मानसिक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। मानसिक क्रियाएँ प्रायः शारीरिक क्रियाओं में अभिव्यक्त होती हैं। अतः शारीरिक क्रियाओं अथवा व्यवहारों के के द्वारा मानसिक क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करना समीचीन ही है। स्पष्ट है कि बाह्य निरीक्षण का क्षेत्र अन्तर्निरीक्षण की अपेक्षा विस्तृत होता है।

बाह्य निरीक्षण की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि व्यवहारों का निरीक्षण करते समय निरीक्षक प्रायः अपनी पूर्वधारणाओं (Prejudices) से प्रभावित हो जाता है । उसका निरीक्षण निष्पक्ष न होकर संभवतः पूर्वधारणाओं से अनुरंजित हुआ करता है। इस प्रकार के पक्षपातपूर्ण निरीक्षण के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष वैज्ञानिक नहीं हो सकता। इसके उदाहरण हमें प्रतिदिन के जीवन में मिलते हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि जब किसी व्यक्ति में एक बार किसी के प्रति श्रद्धा के भाव उत्पन्न हो जाते हैं, तब संभवतः उसके अच्छे कार्य भी बुरे दीख पड़ने लगते हैं। इसके विपरीत, जिसके प्रति एक बार श्रद्धा के भाव बन जाते हैं, उसके कार्य अधिकांशतः अच्छे ही जान पड़ते हैं। यह पूर्वधारणा (Prejudice) का ही तो परिणाम है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बाह्य निरीक्षण के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष तभी सत्य और विश्वसनीय हो सकता है जब बाह्य निरीक्षण पूर्वधारणा (Prejudice) तथा पक्षपात से रहित हो । अतः बाह्य निरीक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह तटस्थ होकर निष्पक्ष रूप से प्राणी के व्यवहारों का निरीक्षण कर सामान्य मनोवैज्ञानिक नियमों की स्थापना करे। ऐसी अवस्था में वे नियम संभवतः सर्वव्यापक सत्य तथा विश्वसनीय होंगे।

व्यवहार अथवा शारीरिक क्रियाओं के बाह्य निरीक्षण के आधार पर मानसिक क्रियाओं का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करना बड़ा कठिन हो जाता है। कारण, व्यक्ति की एक ही प्रकार की शारीरिक क्रियाएँ विभिन्न प्रकार की मानसिक क्रियाओं को द्योतित कर सकती हैं। ऐसी अवस्था में शारीरिक क्रियाओं के निरीक्षण के आधार पर मानसिक क्रियाओं का ठीक-ठीक ज्ञान

सभव नही जान पडता। उदाहरणार्थ, बच्चे क्रोध की स्थिति मे साँस रोक लते है और शरीर को कडा कर लेते है। भय की स्थिति मे भी वे ऐसा ही व्यवहार करते है। अब प्रश्न यह है कि इन व्यवहारो को देखकर निरीक्षण-कर्त्ता उन्हे क्रोध की स्थिति का द्योतक समझे या भय की स्थिति का? यदि क्रोध के कारण ये शारीरिक क्रियाएँ उत्पन्न हो और निरीक्षणकर्त्ता उन्हे भय का द्योतक समझ ले, तो निश्चय ही उसका निरीक्षण तथा उसके आधार पर प्राप्त निष्कर्ष गलत होगे। इसी प्रकार, यदि भय के कारण उत्पन्न इन शारीरिक क्रियाओ को वह क्रोध का द्योतक समझ बैठे, तो भी उसका निरीक्षण तथा उसके आधार पर प्राप्त निष्कर्ष गलत हो होगे। बाह्य निरीक्षण की इस कठिनाई को दूर करने का उपाय यह है कि निरीक्षणकर्त्ता जिसके व्यवहार या शारीरिक क्रियाओ का निरीक्षण कर रहा हो, उसके वर्त्तमान वातावरण से पूर्णरूपेण अवगत हो। व्यक्ति के वर्त्तमान वातावरण को दृष्टिकोण मे रखकर किये गये निरीक्षण मे इस कठिनाई के उपस्थित होने की सभावना नही रह जाती।

अन्तर्निरीक्षण और बाह्य निरीक्षण

अन्तर्निरीक्षण और बाह्य निरीक्षण एक-दूसरे के विरोधी नही, वरन् पूरक (Complementary) है। जहाँ अन्तर्निरीक्षण का प्रयोग सभव नही है, वहाँ बाह्य निरीक्षण द्वारा प्राणी का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए, बच्चे, पशु तथा असामान्य व्यक्तियो (Abnormal individuals) के अध्ययन मे बाह्य निरीक्षण का प्रयोग किया जाता है, क्योकि ये प्राणी अन्तर्निरीक्षण मे समर्थ नही होते है। प्रौढ व्यक्तियो के अध्ययन मे अन्तर्निरीक्षण अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन दोनो विधियो के सयोग से सभी प्रकार के प्राणियो का अध्ययन सरलता से सम्पन्न हो जाता है।

अन्तर्निरीक्षण और बाह्य निरीक्षण मे कोई मौलिक भेद नही है। भेद केवल इतना ही है कि अन्तर्निरीक्षण व्यक्तिगत (Personal) होता है—कोई एक व्यक्ति अपनी मानसिक क्रियाओ का अपने-आप निरीक्षण करता है। किन्तु बाह्य निरीक्षण सार्वजनिक (Universal) होता है—कई व्यक्ति एक-सी ही क्रियाओ का निरीक्षण कर सकते ह और उनके निष्कर्षों का तुलनात्मक अध्ययन भी हो सकता है। मनोविज्ञान के विस्तृत क्षेत्र के अन्तर्गत चेतन अनुभूति और व्यवहार—दोनो ही आ जाते है। इतना ही नही, व्यक्ति

की चेतन अनुभूति का उसके बाह्य व्यवहार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। वस्तुतः ये दोनों एक ही मानसिक क्रिया के दो अंग कहे जा सकते हैं। मानसिक क्रिया के अनुकूल ही चेतन अनुभूति होती है और बाह्य व्यवहार भी। चेतन अनुभूति का अध्ययन अन्तर्निरीक्षण के द्वारा और बाह्य व्यवहार का अध्ययन बाह्य निरीक्षण के द्वारा किया जाता है। अतः यह निष्कर्ष अत्यन्त उपयुक्त जान पड़ता है कि जिस प्रकार चेतन अनुभूति और बाह्य व्यवहार परस्पर संबद्ध हैं, उसी प्रकार अन्तर्निरीक्षण और बाह्य निरीक्षण का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है।

प्रयोगात्मक विधि
(**Experimental Method**)

प्रयोगात्मक विधि द्वारा नियन्त्रित अवस्थाओं मे प्राणी की अनुभूतियों और उसके व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। प्रयोगकर्त्ता (Experimenter) अनुभूतियों और व्यवहारों को प्रभावित करनेवाले तत्त्वों (Factors) पर नियन्त्रण रखता है। यह बाह्य निरीक्षक की तरह स्वभावतः घटित होनेवाले प्राणी के व्यवहारों की प्रतीक्षा नहीं करता, वरन् प्रयोगशाला में कुछ ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देता है कि जिससे अभीष्ट व्यवहार घटित हों। प्रयोगशाला की नियन्त्रित अवस्थाओं में उन व्यवहारों का निरीक्षण कर उनसे वह निष्कर्ष (Conclusion) निकालता है। इस विधि से प्राप्त निष्कर्ष अन्य विधियों से प्राप्त निष्कर्षों की अपेक्षा अधिक निश्चित और यथार्थ होते हैं। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि प्रयोगकर्त्ता प्रयोग-विशेष की सभी नियंत्रित अवस्थाओं (Controlled conditions) से भलीभाँति परिचित रहता है। फलतः वह जब चाहे तभी उस प्रयोग को ज्यों-का-त्यों दुहरा सकता है और अपने पूर्व-निष्कर्ष (Previous Conclusion) की सत्यता सिद्ध कर सकता है। इतना ही नहीं, वह दूसरे प्रयोगकर्त्ता को भी अपने प्रयोग की सारी नियन्त्रित अवस्थाओं को ज्यो-का-त्यों सूचित कर दे सकता है और तब वह दूसरा प्रयोगकर्त्ता भी उस प्रयोग को ज्यों-का-त्यों दुहराकर उससे प्राप्त पूर्व-निष्कर्ष की जाँच कर सकता है। इस प्रकार प्रयोगात्मक विधि में निष्कर्ष की जाँच की काफी गुंजाइश रहती है। परिणाम-स्वरूप इस विधि के द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक होते है। इसकी तीसरी प्रधान विशेषता यह है कि प्रयोगकर्त्ता किसी एक तत्त्व (Factor) को

परिवर्त्तित कर उसके प्रभाव की जाँच कर सकता है। प्राणी की विशिष्ट क्रिया को प्रभावित करनेवाले अन्य सभी तत्त्वों को वह एक-सा रखता है और केवल एक तत्त्व को ही परिवर्त्तित करता है। फलतः वह किसी क्रिया-विशेष पर उस तत्त्व के प्रभाव का ज्ञान सरलता से प्राप्त कर लेता है। पारिभाषिक शब्दों में इस परिवर्त्तित होनेवाले तत्त्व को स्वतन्त्र परिवर्त्य (Independent variable) और समान रहनेवाले तत्त्वों को स्थिर (Constant) कहा जाता है। प्रयोग के समय प्रयोज्य (Subject) जो प्रतिक्रियाएँ प्रकट करता है, उन्हें आश्रित परिवर्त्य (Dependent variables) की संज्ञा दी जाती है।

उक्त मनोवैज्ञानिक प्रयोग को और अच्छी तरह समझने के लिए एक उदाहरण लें। मान लीजिए कि हमें यह परीक्षा करनी है कि सीखने की क्रिया किस तरह के वातावरण (शान्त अथवा कोलाहलपूर्ण) में अच्छी तरह सम्पन्न होती है, तो हमें वातावरण के अतिरिक्त सीखने की क्रिया को प्रभावित करनेवाले अन्य सभी तत्त्वों (Factors) का पता लगा लेना होगा। यह जान लेने पर कि सीखने की क्रिया वातावरण के सिवा बुद्धि, अवस्था, अभिरुचि, सीखने की विधि, प्रेरणा आदि तत्त्वों पर निर्भर करती है, प्रयोग प्रारम्भ हो जायगा। प्रयोग में केवल वातावरण में ही परिवर्त्तन किया जायगा—कभी वातावरण शान्त और कभी कोलाहलपूर्ण रखना अभीष्ट होगा, किन्तु अन्य सभी तत्त्व प्रयोग के प्रारम्भ से अन्त तक एक समान (Constant) बने रहेंगे। इस विशेष प्रकार की नियन्त्रित अवस्था (Controlled condition) में प्रयोज्य को कुछ सीखने के लिए दिया जायगा और एक अवस्था में वातावरण शान्त और दूसरी अवस्था में कोलाहलपूर्ण रखा जायगा। वातावरण की इन दो विभिन्न अवस्थाओं में उसके सीखने की क्रिया का निरीक्षण किया जायगा। इस निरीक्षण के आधार पर जो भी निष्कर्ष निकलेगा, निस्सन्देह वह सीखने की क्रिया पर वातावरण के प्रभाव को लक्षित करेगा; क्योंकि प्रयोग में इस क्रिया को प्रभावित करनेवाले अन्य सारे तत्त्व समान ही हैं, परिवर्त्तन केवल वातावरण में ही हुआ है। यदि यह पाया जाय कि शान्त वातावरण में प्रयोज्य (Subject) के सीखने की क्रिया अच्छी तरह सम्पन्न हुई और कोलाहलपूर्ण वातावरण में वह अच्छी तरह नहीं सीख सका, तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सीखने की क्रिया के लिए शान्त वातावरण अनुकूल होता है तथा कोलाहलपूर्ण वातावरण प्रतिकूल।

मनोवैज्ञानिक प्रयोग मे नियन्त्रण के महत्त्व का उल्लेख किया जा चुका है। प्रयोगकर्त्ता व्यक्ति की आन्तरिक दशाओ पर भी यथासभव नियन्त्रण रखने का प्रयास करता है, किन्तु वह पूर्ण रूप से उनपर नियन्त्रण नही रख पाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न व्यक्ति एक ही परिस्थिति मे विभिन्न प्रकार के व्यवहार प्रकट करते हैं। अतएव, यह आवश्यक है कि कोई भी मनोवैज्ञानिक प्रयोग कई व्यक्तियो के समूहो पर किया जाय और उसे बार-बार दुहराया जाय। इस प्रकार के प्रयोग के आधार पर जो औसत फल (Average result) प्राप्त हो, उसे ही दृष्टिकोण मे रखकर कोई निष्कर्ष (Conclusion) निकाला जाय। तभी वह निष्कर्ष सत्य (Valid) तथा विश्वसनीय (Reliable) हो सकता है।

प्रयोगात्मक विधि के आलोचक प्राय यह कहते है कि इस विधि का प्रयोग प्रयोगशाला की अस्वाभाविक परिस्थिति मे होता है। फलत प्रयोज्य (Subject) अपने अस्वाभाविक व्यवहारो को ही प्रकट करता है तथा स्वाभाविक व्यवहारो को छिपा लेता है। अब प्रश्न यह है कि इन अस्वाभाविक व्यवहारो के निरीक्षण के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष कहाँ तक सत्य, विश्वसनीय तथा वैज्ञानिक हो सकते हैं। वस्तुत: प्रयोगात्मक विधि के आलोचको का यह दोषारोपण समुचित नही है। यहाँ यह उल्लेख कर देना अपेक्षित जान पडता है कि यद्यपि प्रयोगकर्त्ता प्रयोगशाला की नियन्त्रित अवस्था मे प्रयोग करता है, फिर भी वह इस प्रकार प्रयोग सम्पादित करता है कि प्रयोज्य को यह भान नही हो पाता कि प्रयोग की परिस्थिति अस्वाभाविक है। अतएव, इस प्रकार के प्रयोग के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष की सत्यता, विश्वसनीयता तथा वैज्ञानिकता मे शका करना निराधार है।

इस विधि पर एक और दोष यह लगाया जाता है कि सभी प्रकार के प्रयोग मनुष्य पर सभव नही है। उदाहरण के रूप मे यह कहा जा सकता है कि यदि कोई सीखने की क्रिया पर मस्तिष्क के विभिन्न भागो के प्रभावो का अध्ययन करना चाहे, तो उसे पशुओ पर प्रयोग करके ही सन्तोष करना पडेगा। परम्परागत मनोवैज्ञानिको ने ऐसा ही किया भी है। उन्होने इस विषय के अध्ययन के लिए चूहे, बिल्ली और बन्दरो पर कई प्रयोग किये हैं। उन्हें सीखने की क्रिया पर मस्तिष्क के जिस विशेष का भाग प्रभाव जानना होता था, उसे ऑपरेशन के द्वारा मस्तिष्क से अलग कर लते थे। तत्पश्चात् पशु-विशेष को कुछ सीखने को देते थे और उसकी सभी प्रतिक्रियाओ का निरीक्षण करते थे। इन प्रतिक्रियाओ की तुलना ऑपरेशन के पूर्व सीखते

समय प्रकट की गई प्रतिक्रियाओं से करते थे। यदि ऑपरेशन के पूर्व की सीखने की क्रिया की अपेक्षा ऑपरेशन के बाद की सीखने की क्रिया में किसी तरह की कमी आती, तो वे यह निष्कर्ष निकाल लेते थे कि वह कमी मस्तिष्क के उस अमुक भाग के नहीं रहने के कारण ही हुई। इस प्रकार प्रयोग-कर्त्ता निश्चित रूप से यह जान जाते थे कि सीखने की क्रिया पर मस्तिष्क के अमुक भाग का क्या प्रभाव पड़ता है। पशुओं के ऊपर किये गये इस प्रकार के प्रयोगों के आधार पर ही मनोवैज्ञानिकों ने यह बतलाया है कि सीखने की क्रिया पर मनुष्य के मस्तिष्क के विभिन्न भागों का क्या प्रभाव पड़ता है। अब प्रश्न यह है कि क्या पशु के सीखने की क्रिया के सम्बन्ध में किये गये इन प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्ष मनुष्य के सीखने की क्रिया पर भी लागू हो सकते हैं? शरीर-विज्ञान के सिद्धान्तों की ओर ध्यान देने से इस प्रश्न का उत्तर सहज ही प्राप्त हो जाता है। प्रसिद्ध शरीर-विज्ञानवेत्ता लैश्ले (Lashley) का कहना है कि पशु और मनुष्य के सीखने की क्रियाएँ मूलतः समान होती हैं। मनुष्य के मस्तिष्क के विभिन्न भागों का सीखने की क्रिया के साथ जो सम्बन्ध है, वह पशुओं से मूल रूप में भिन्न नहीं है। अतएव, प्रयोगात्मक विधि के क्षेत्र को सीमित कहकर इस पर दोषारोपण करना समुचित नहीं जान पड़ता।

मनोविज्ञान की शाखाएँ
(Branches of Psychology)

मनोविज्ञान के विकास-क्रम में उसकी कितनी ही शाखाएँ हो गई हैं। किन्तु मूल रूप में सभी शाखाएँ प्राणी की क्रियाओं (अनुभूति एवं व्यवहार) का ही अध्ययन करती हैं। अतएव, वे एक-दूसरी से सर्वथा भिन्न नहीं, वरन् परस्पर सम्बद्ध हैं। यहाँ मनोविज्ञान की कुछ प्रमुख शाखाओं पर विचार प्रस्तुत करना ही अभिप्रेत है।

१. सामान्य मनोविज्ञान
(General Psychology)

यों तो सामान्य मनोविज्ञान विभिन्न प्राणियों की भिन्न-भिन्न क्रियाओं का अध्ययन करता है, किन्तु विशेष रूप से यह मानव-स्वभाव के मौलिक पहलुओं से ही सम्बन्ध रखता है। कोई भी एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के बिल्कुल समान नहीं होता। सभी व्यक्तियों में अवश्य कोई-न-कोई भिन्नता रहती है,

किन्तु इस विभिन्नता के साथ-ही-साथ उनके स्वभाव में कुछ मौलिक समता भी पाई जाती है। मानव-स्वभाव की यह मौलिक समता मनुष्य की अनुभूतियों और उसके व्यवहारों में लक्षित होती है। उदाहरण-स्वरूप, यह कहा जा सकता है कि प्रेम में सामान्यतः सभी व्यक्तियों की अनुभूति एक प्रकार की ही होती है और उसी के अनुकूल उनके व्यवहार भी होते हैं। वैसे ही, सभी व्यक्तियों के सीखने, स्मरण करने और विचार करने की क्रियाओं में सामान्यतः कुछ-न-कुछ समता पाई जाती है। सामान्य मनोविज्ञान सामान्य व्यक्तियों (Normal Individuals) की कुछ इन्हीं सामान्य क्रियाओं, व्यवहारों और अनुभूतियों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, भाव, संवेग, प्रेरणा, सीखना, स्मरण करना, विचार करना, व्यक्तित्व आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं के समुचित अध्ययन के लिए सामान्य मनोविज्ञान के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान आवश्यक है।

२. प्रयोगात्मक मनोविज्ञान
(**Experimental Psychology**)

सामान्य मनोविज्ञान का प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक सामान्य मनोविज्ञान काल्पनिक दर्शन-शास्त्र से मिला हुआ था। किन्तु प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के आगमन के साथ ही दर्शनशास्त्र से इसका सम्बन्ध टूट गया। फलतः सामान्य मनोविज्ञान ने प्रयोगात्मक विधियों को अपनाया। परिणाम-स्वरूप, इसके निष्कर्ष भी प्रयोगात्मक तथा वैज्ञानिक होने लगे। इससे यह स्पष्ट है कि प्रयोगात्मक मनोविज्ञान सामान्य मनोविज्ञान से सर्वथा भिन्न और स्वतन्त्र नहीं है। वस्तुतः यह सामान्य मनोविज्ञान का ही एक नवीन रूप अथवा प्रधान अंग कहा जा सकता है।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की व्याख्या में संभवतः दृष्टिकोण के अन्तर हो सकते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक इसकी व्याख्या करते हुए इसकी विधियों (Methods) पर अधिक जोर देते हैं, तो कुछ इसके विषय पर। किन्तु सामान्यतः प्रयोगात्मक मनोविज्ञान वैज्ञानिक ढंग से किये गये प्राणियों के अनुभवों और व्यवहारों के अध्ययन का विज्ञान कहा जा सकता है। 'प्रयोगात्मक मनोविज्ञान' शब्द का प्रयोग उस प्रकार के मनोविज्ञान के लिए किया जाता है, जो अपने दृष्टिकोण तथा अपनी विधियों में आत्मनिष्ठ (Subjective)

एवं दार्शनिक (Philosophical) दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न होता है। संक्षेप में, इसकी विशेषताओं को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

(१) यह नियन्त्रित अवस्थाओं में प्राणी के अनुभवों, व्यवहारों तथा प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करता है।

(२) वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसमें यन्त्रों का भी प्रयोग किया जाता है।

(३) सामग्रियों (Data) को संख्यासूचक अभिव्यक्ति दी जाती है।

(४) फलतः प्रयोग के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष वैज्ञानिक होते हैं। उनमें सत्यता (Validity) तथा विश्वसनीयता (Reliability) पायी जाती है।

अन्त में, यह कहा जा सकता है कि प्रयोगात्मक मनोविज्ञान विशेष रूप से सामान्य वयस्क व्यक्तियों (Normal human adults) की क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। उदाहरण-स्वरूप संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, भाव, संवेग, ध्यान, स्मरण, विस्मरण, कल्पना, सीखना आदि क्रियाओं को प्रस्तुत किया जा सकता है।

३. बाल-मनोविज्ञान
(**Child Psychology**)

बाल-मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है, जो गर्भाधान से लेकर परिपक्वता तक की बच्चे की क्रियाओं (शारीरिक तथा मानसिक) के क्रमिक विकास का अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसका आधुनिक दृष्टिकोण विकासात्मक है। यह वैज्ञानिक विषयों के आधार पर बच्चों के मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, प्रेरणात्मक (Motivational), नैतिक (Moral) तथा भाषा-सम्बन्धी विकासों का अध्ययन करता है। संक्षेप में, बच्चे के भीतर विभिन्न क्रियाओं का किस प्रकार विकास होता है, इसका अध्ययन ही बाल-मनोविज्ञान का प्रमुख विषय है। मनुष्य के समस्त जीवन को ठीक-ठीक परखने के लिए बाल-मनोविज्ञान का अध्ययन अनिवार्य है। कारण, बाल्यावस्था सम्पूर्ण जीवन की आधार-शिला है। मनोविश्लेषण (Psycho-analysis) के मननशील विद्वान् फ्रायड ने स्पष्ट शब्दों में इसकी पुष्टि की है। उनका कहना है कि मानव-जीवन के सभी मनोविकारों का मूल बाल्यकाल में ही निहित रहता है। उदाहरण के रूप में उनकी हिस्टिरिया (Hysteria) सम्बन्धी व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है। उन्होंने हिस्टिरिया की व्याख्या

करते हुए उसके मूल कारण का निर्देश बाल्यकाल के काम-विकास (Sex-development) में किया है। वस्तुतः इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कि बाल्यावस्था ही मानव-जीवन के आनन्द और हितों का निरूपण करती है। यदि बाल्यावस्था में बच्चे की विभिन्न मानसिक क्रियाओं का सहज एवं समुचित विकास हुआ, तो निश्चय ही उसका सम्पूर्ण जीवन सुखी होगा। परिस्थितियों के प्रति बाल्यकाल के अभियोजन (Adjustment) भावी जीवन के अभियोजनों के द्योतक होते हैं। यदि विभिन्न परिस्थितियों के प्रति बाल्यकाल के अभियोजन सफल हुए, तो संभवतः भावी जीवन के अभियोजन भी सफल होंगे और यदि वे असफल हुए, तो भावी जीवन के अभियोजन भी संभवतः असफल ही होंगे। अतः मानव-जीवन को अच्छी तरह निरखने-परखने के लिए बाल-मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है।

४. पशु-मनोविज्ञान
(**Animal Psychology**)

डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत (Theory of Evolution) से प्रभावित होकर शरीर-वैज्ञानिक (Physiologists) तथा मनोवैज्ञानिक (Psychologists) पशु की क्रियाओं के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुए। उनके अध्ययन का दृष्टिकोण तुलनात्मक था। उन्होंने पशु की मानसिक क्रियाओं की तुलना मनुष्य की मानसिक क्रियाओं से की। उनकी जिज्ञासा यह थी कि मानसिक क्रियाओं का सृष्टि के प्रारम्भ से किस प्रकार क्रमिक विकास हुआ है। उदाहरण के लिए, वे यह जानना चाहते थे कि सीखने की योग्यता अथवा बुद्धि का सर्वप्रथम कब आविर्भाव हुआ और पशु से प्रारम्भ होकर मनुष्य तक इसका किस प्रकार उत्तरोत्तर विकास होता गया। संक्षेप में, पशु-मनोविज्ञान यह अध्ययन करता है कि किस प्रकार अमीबा (Amoeba) से शुरू होकर मनुष्य तक क्रमशः मानसिक क्रियाओं का विकास होता गया और इस विकास-क्रम में किस तरह मानसिक क्रियाएँ सरल से जटिल होती गयीं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि अमीबा सबसे सरल और सबसे निम्नकोटि का प्राणी है तथा मनुष्य सबसे जटिल और सबसे उच्चकोटि का प्राणी है।

मनोविज्ञान का प्रधान विषय है मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन। मनुष्य की क्रियाएँ अत्यन्त जटिल होती हैं। उनका सरल रूप पशु-जीवन में ही उपलब्ध होता है। अतएव, पशुओं की क्रियाओं का अध्ययन अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण है। उदाहरण-स्वरूप, सीखने की क्रिया को लें। सीखने की क्रिया के सम्बन्ध में पशुओं पर कोई प्रयोग हुए हैं। उन प्रयोगों के आधार पर सीखने की क्रिया के सम्बन्ध में जो सिद्धांत स्थापित हुए हैं, वे मनुष्य के सीखने की क्रिया में भी लागू होते हैं। उदाहरण के लिए, प्रयत्न और भूल (Trial and error) सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया (Conditioned response) तथा सूझ अथवा अन्तर्दृष्टि के सिद्धांत के आधार पर पशु एवं मनुष्य दोनों के सीखने की क्रिया की व्याख्या समान रूप से प्रस्तुत की जा सकती है। स्पष्टतः पशु-मनोविज्ञान के अध्ययन का दृष्टिकोण तुलनात्मक है। कदाचित् इसीलिए यह तुलनात्मक मनोविज्ञान (Comparative Psychology) भी कहा जाता है।

५. शारीरिक मनोविज्ञान
(Physiological Psychology)

शारीरिक मनोविज्ञान मानसिक क्रियाओं से सम्बन्धित शारीरिक क्रियाओं का अध्ययन करता है। मानसिक क्रियाओं का शारीरिक क्रियाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्तुतः प्रत्येक मानसिक क्रिया की उत्पत्ति में शारीरिक क्रिया अनिवार्य रूप से वर्तमान रहती है। प्राणी ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) द्वारा बाह्य उत्तेजनाओं—जैसे ध्वनि, प्रकाश, गंध आदि के सम्पर्क में आता है। बाह्य उत्तेजनाओं के कारण ज्ञानेन्द्रियों में सक्रियता आती है। यह सक्रियता ज्ञानेन्द्रियों तक ही सीमित न रहकर समस्त स्नायु मंडल में फैल जाती है। फलतः मस्तिष्क (Brain), पिंडों (Glands) तथा मांसपेशियों (Muscles) में भी सक्रियता आ जाती है। परिणाम-स्वरूप विभिन्न प्रकार की मानसिक क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं, यथा—संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, भाव, संवेग इत्यादि। अतएव, यह अत्यन्त समीचीन जान पड़ता है कि शारीरिक मनोविज्ञान में विभिन्न मानसिक क्रियाओं के शारीरिक आधारों की खोज की जाय। संभवतः इसीलिए शारीरिक मनोविज्ञान में ज्ञानेन्द्रिय, स्नायु-मंडल, मस्तिष्क, पिंड, मांसपेशी, रक्त-प्रवाह, श्वास-क्रिया आदि का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। प्रयोगात्मक अध्ययनों से स्पष्ट हो चुका है कि विभिन्न मानसिक क्रियाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार के शारीरिक क्रियाओं में अभिव्यक्त होती हैं। अतः शारीरिक क्रियाओं का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि शारीरिक मनोविज्ञान शरीर-विज्ञान (Physiology) की तरह शरीर के विभिन्न भागों का अलग-अलग नहीं

अध्ययन करता, वरन् वह तो सभी शारीरिक क्रियाओ का समग्र रूप में अध्ययन करता है।

६ सामाजिक मनोविज्ञान
(Social Psychology)

सामाजिक मनोविज्ञान विशेष रूप से तीन बातो का अध्ययन करता है–

(१) एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ सम्बन्ध,

(२) व्यक्ति का समुदाय के साथ सम्बन्ध;

(३) एक समुदाय का दूसरे समुदाय के साथ सम्बन्ध।

सर्वविदित है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने जीवन मे प्रतिक्षण समाज के सम्पर्क मे आता रहता है। फलत उसका सम्बन्ध समाज के विभिन्न व्यक्तियो के साथ स्थापित हो जाता है। इस सामाजिक सम्बन्ध का परिणाम यह होता है कि वह दूसरे व्यक्ति के व्यवहारो से प्रभावित होता है और कुछ अपना प्रभाव भी उनपर छोड जाता है। इसके अतिरिक्त जब कोई व्यक्ति किसी समुदाय (Group) के साथ अपना सम्बन्ध जोड लेता है, तब उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही बदल जाता है। यदि कोई व्यक्ति यो सभ्य, शान्त तथा सुसस्कृत दीख पडता है, तो वही समुदाय मे चले जाने पर असभ्य, बर्बर तथा चचल व्यक्ति की तरह व्यवहार करने लगता है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि उसकी मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts) नग्न रूप मे जाग उठती है। वह उनकी पूर्ति के लिए असगत व्यवहार करने मे तनिक भी नही हिचकिचाता है। सामाजिक मनोविज्ञान एक समुदाय के दूसरे समुदाय के साथ सम्बन्ध का भी अध्ययन प्रस्तुत करता है। विभिन्न जातीय विद्वेषो (Racial rivalries) को इसके उदाहरण के रूप मे लिया जा सकता है। एक समुदाय के सदस्य अपने को दूसरे समुदाय के सदस्यो से भिन्न समझते हैं। इतना ही नही, एक समुदाय प्राय. दूसरे समुदाय पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है। अन्त मे यह उल्लेखनीय प्रतीत होता है कि प्रचार (Propaganda), जनमत (Public opinion), नेतृत्व (Leadership), अफवाह, सामाजिक क्राति, युद्ध, जातीय विद्वेष, सामाजिक सघर्ष आदि सामाजिक मनोविज्ञान के प्रमुख विषय हैं।

७. शिक्षा-मनोविज्ञान

(Educational Psychology)

शिक्षा को सर्वप्रथम वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय शिक्षा-मनोविज्ञा को ही है। शिक्षा-मनोविज्ञान की प्रगति के साथ ही मनुष्य की मानसि योग्यताओं की निश्चित माप (Measurement) शुरू हो ग इसके पूर्व मनुष्य की मानसिक योग्यताओं के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने वे लिए शिक्षकों के आत्मनिष्ठ मूल्यांकनों (Subjective evaluations) पर निर्भर करना पड़ता था। मानसिक योग्यताओं की माप (Measurement of mental abilities) के आधार पर शिक्षा-मनोविज्ञान यह बतलाता है कि प्रत्येक बच्चा अपनी बुद्धि, मानस-वृत्ति तथा अभिरुचि में एक दूसरे से भिन्न हुआ करता है। अतः बच्चों की शिक्षा भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होनी चाहिए। यदि किसी की अभिरुचि साहित्य जानने की है, तो उसे साहित्य की ही शिक्षा होनी चाहिए।

शिक्षा मनोविज्ञान वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति को दोषपूर्ण बतलाता है; क्योंकि इसके आधार पर प्राप्त शिक्षा से व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी विकास संभव नहीं है। वास्तविक जीवन से इस शिक्षा का गहरा सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता। इससे योग्यता में कुछ वृद्धि अवश्य हो जाती है, किन्तु व्यक्तित्व के अन्य प्रधान पक्षों के समुचित विकास के लिए अवकाश नहीं मिल पाता। इसमें ऐसा कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं दीख पड़ता, जिसके द्वारा चरित्र-निर्माण संभव हो अथवा संवेगों तथा मूल प्रवृत्तियों को परिमार्जित रूप देकर उन्हें समाज के अनुकूल बनाया जा सके। फलतः यह शिक्षा व्यक्ति को सफल सामाजिक अभियोजन (Social adjustment) के लिए तैयार नहीं कर पाती है, जो कदाचित् शिक्षा का प्रधान लक्ष्य है। इसी प्रकार वर्त्तमान परीक्षा-पद्धति (Examination system) के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इससे विद्यार्थियों की बुद्धि की पूर्ण परीक्षा नहीं हो पाती है, बल्कि उनकी स्मृति की ही विशेष रूप से परीक्षा होती है। शिक्षा-मनोविज्ञान समुचित ढंग की शिक्षा के लिए स्वस्थ मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है। यदि शिक्षा-मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को दृष्टिकोण में रखकर शिक्षा का कार्यक्रम बनाया जाय और उसके अनुकूल शिक्षा हो तो संभवतः व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी विकास होगा, इसमें सन्देह नहीं।

८ असामान्य मनोविज्ञान

(**Abnormal Psychology**)

असामान्य मनोविज्ञान व्यक्तियों के असामान्य व्यवहारों (Abnormal behaviour) तथा असामान्य मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है। असामान्य व्यवहारों को सामान्य व्यवहारों से भिन्न कर लेना आवश्यक जान पड़ता है। असामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन से ऐसा जान पड़ता है कि सामान्य तथा असामान्य व्यवहारों के बीच कोई निश्चित विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। कारण, जो व्यवहार एक समाज के लिए सामान्य (Normal) हैं, वे ही दूसरे समाज के लिए असामान्य (Abnormal) हो सकते हैं। किन्तु इस विवाद में नहीं पड़कर संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जो व्यवहार औसत व्यक्तियों में नहीं पाये जाकर कुछ ही लोगों में पाये जायँ, वे ही असामान्य व्यवहार हैं। इस प्रकार के असामान्य व्यवहारों के स्पष्टीकरण के लिए दो-एक उदाहरण लें। काम-वृत्ति (Sex-instinct) की परितुष्टि सामान्यतः मैथुन के द्वारा होती है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति मैथुन के बिना ही केवल शरीर-स्पर्श, चुम्बन आदि के द्वारा काम-वृत्ति को परितुष्ट करना चाहे तो निश्चय ही उसका यह व्यवहार असामान्य समझा जायगा। इसी तरह अपनी उपलब्धियों (Achievements) के द्वारा आत्म-सम्मान की भावना को तृप्त करना एक सामान्य व्यवहार है; क्योंकि यह साधारणतः सभी व्यक्तियों में पाया जाता है। किन्तु यदि कोई मद्यपान कर नशे में अपने को महान् व्यक्ति समझकर आत्म-सम्मान को भावना को परितुष्ट करने लग तो अवश्य ही उसका यह व्यवहार असामान्य कहलायगा।

असामान्य मनोविज्ञान मे असामान्य व्यवहारों का ही अध्ययन किया जाता है, किन्तु उसके आधार पर सामान्य व्यवहारों का समझने में भी बड़ी सहायता मिलती है। मानसिक रोगों के अध्ययन से असामान्य मनोविज्ञान का विशष सम्बन्ध रहता है। असामान्य मनोविज्ञान का प्रादुर्भाव भी मानसिक रोगों की चिकित्सा के क्रम में ही हुआ है। मानसिक रोगों के कारणों, लक्षणों तथा उन्हें दूर करने के उपायों के सम्बन्ध में शार्को (Charcot), जैने (Janet), फ्रायड (Freud) आदि मनोवैज्ञानिकों के विचार उल्लेखनीय है। मनोविज्ञान की इस शाखा का आधुनिक साहित्य पर भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। मनोविश्लेषण (Psycho-Analysis) के सिद्धान्तों के आधार पर कल की व्याख्या की जाती तथा साहित्य को परखने

की चेष्टा की जाती है । अन्त में कह देना अभीष्ट जान पड़ता है कि अचेतन (Unconscious), स्वप्न (Dream), काम-वृत्ति (Sex-instinct) आदि असामान्य मनोविज्ञान के प्रमुख विषय हैं ।

९. औद्योगिक मनोविगज्ञान

(**Industrial Psychology**)

औद्योगिक मनोविज्ञान उद्योग-धंधों में मनुष्य के महत्त्व पर प्रकाश डालता है। उद्योग-धंधों के सफल संचालन के लिए केवल यन्त्रों का उपयोग ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि यन्त्रों को समुचित रीति से संचालित और नियन्त्रित करने के लिए व्यक्तियों की योग्यताओं तथा मनोवृत्तियों का अध्ययन भी अत्यन्त आवश्यक है। अतएव. मनोविज्ञान की यह शाखा उद्योग के मानवीय पक्षों का अध्ययन प्रस्तुत करती है । वस्तुतः यह मनोविज्ञान व्यक्ति-विभिन्नताओं (Individual differences) के सिद्धांत पर ही आधारित है। अनुभवों और प्रयोगों से ज्ञात होता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी बुद्धि, योग्यता, मनोवृत्ति, अभिरुचि, शिक्षा आदि में एक-दूसरे से भिन्न होता है । अतएव, यह निष्कर्ष युक्तिसंगत जान पड़ता है कि कोई भी व्यक्ति सभी कार्यों के संपादन में समान रूप से निपुण नहीं हो सकता। इसी तरह यह भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सभी कार्यों के लिए एक ही तरह की योग्यता उपयुक्त नहीं होती। इन दोनों बातों को दृष्टिकोण में रखकर ही औद्योगिक मनोविज्ञान व्यक्ति-विभिन्नता तथा कार्य-विश्लेषण (Job-analysis) के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। जिस प्रकार व्यक्तियों में भिन्नता पाई जाती है, उसी प्रकार कार्यों मे भी विभिन्नता देखने को मिलती है। विभिन्न कार्यों के सफल संपादन के लिए भिन्न-भिन्न तरह की योग्यताओं तथा मनोवृत्तियों की आवश्यकता होती है। अतः औद्योगिक मनोविज्ञान का प्रधान विषय है— प्रत्येक कार्य के लिए योग्य व्यक्ति तथा प्रत्येक व्यक्ति के योग्य कार्य का निर्माण करना । इसके लिए कई प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षणों (Psychological tests) का सहारा लिया जाता है, जैसे मानसिक योग्यता (Mental ability), यान्त्रिक कौशल (Mechanical aptitude), व्यक्तित्व, अभिरुचि तथा मनोवृत्ति-सम्बन्धी परीक्षण ।

प्रत्येक कारखाने का लक्ष्य होता है उत्पादन की वृद्धि। इस लक्ष्य की पूर्त्ति तभी हो सकती है जब कारखाने के काम योग्य व्यक्तियों के द्वारा

सम्पन्न हों। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यन्त्र स्वयं उत्पादन की वृद्धि के कारण नहीं हो सकते, बल्कि योग्य व्यक्तियों के द्वारा उनके संचालन के फलस्वरूप ही उत्पादन की वृद्धि संभव है। सचमुच, जब कोई व्यक्ति कारखाने में अपनी योग्यता तथा अभिरुचि के अनुकूल कार्य का भार ग्रहण करता है, तब स्वभावतः वह कार्य को संपन्न करने में अपनी सारी शक्ति लगा देता है; क्योंकि उस कार्य के सफल संपादन से उसे संतोष प्राप्त होता है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति की संतुष्टि के साथ-ही-साथ उत्पादन की भी वृद्धि होती है। इसके विपरीत, जब किसी व्यक्ति को उसकी योग्यता से निम्नकोटि के कार्य का भार सौंपा जाता है तब उससे उसे स्वभावतः असन्तोष होता है और वह उस कार्य पर ध्यान नहीं देता तथा अधिकांशतः दिवा-स्वप्नों (Day-dreams) में विचरण करता रहता है। फलतः उत्पादन कम हो जाता है। उसी तरह जब किसी को उसकी योग्यता से कठिन कार्य करने को दे दिया जाता है तब भी उत्पादन में कमी आ जाती है।

अन्त में, यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक मनोविज्ञान प्रधानतः निम्नलिखित विषयों का अध्ययन करता है—

(१) हड़ताल (Strike), (२) दुर्घटना (Accident), (३) निरन्तर एक तरह के काम करते रहने के कारण उत्पन्न एकरसता (Monotony), (४) थकावट और विश्राम, (५) पारिश्रमिक की विभिन्न पद्धतियाँ तथा (६) कारखाने का वातावरण; जैसे, प्रकाश, तापक्रम (Temperature), वायु, शोरगुल इत्यादि।

———

तीसरा अध्याय

प्राणी तथा वातावरण

मनोविज्ञान की परिभाषा के अनुसार हम यह जानते हैं कि मनोविज्ञान प्राणी की क्रियाओं का अध्ययन करता है। प्राणी की क्रियाएँ वातावरण के सम्पर्क में आने से उत्पन्न होती हैं। वातावरण के संपर्क से उत्पन्न प्राणी की क्रियाओं का अध्ययन करते समय मनोविज्ञानवेत्ताओं के समाने तीन प्रमुख प्रश्न रहते हैं—

(१) प्राणी अथवा व्यक्ति क्या करता है ?

(२) कैसे करता है ? और

(३) क्यों करता है ?

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर इन प्रश्नों के उत्तर देने की चेष्टा की गई है। 'क्या' के उत्तर में कहा जा सकता है कि व्यक्ति वातावरण के साथ निरन्तर अभियोजन (Adjustment) स्थापित करने की चेष्टा करता है। वह वातावरण से विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाएँ (Stimuli) ग्रहण करता है और उनके प्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ (Reactions) प्रकट करता है। यदि किसी व्यक्ति को वातावरण की उत्तेजनाओं से निरन्तर अलग रखा जा सके, तो संभवतः उसका जीवन शिथिल और गतिहीन हो जायगा। व्यक्ति सदा इस खोज में रहता है कि उसे अपनी क्रियाओं को प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो। फलतः वह वातावरण को अच्छी तरह से जानने का प्रयास करता ह, वातावरण की विभिन्न वस्तुओं के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करता है तथा उनके प्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ प्रकट क ता है। सफलतापूर्वक जीवन धारण करने के लिए वह अपने प्रतिकूल वातावरण का प्रतिरोध करता है। वह वातावरण का उपयोग करता है तथा वातावरण में होनेवाले कार्यों में सक्रिय रूप से हाथ बँटाता है। इस प्रकार विभिन्न प्रतिक्रियाओं द्वारा व्यक्ति वातावरण के साथ अभियोजन स्थापित करने का सतत प्रयास करता रहता है। व्यक्ति तथा वातावरण की यह परस्पर-क्रिया (Inter-action) निरन्तर चलती रहती है।

अभियोजन (Adjustment) —ऊपर कहा जा चुका है कि व्यक्ति वातावरण के साथ अपना अभियोजन स्थापित करता है। अभियोजन का मतलब होता है—यथासभव भले के लिए परिवर्त्तन। व्यक्ति कभी-कभी वातावरण के अनुसार अपने मे परिवर्त्तन लाता है और कभी-कभी वातावरण मे ही परिवर्त्तन लाकर उसे अपने अनुकूल बना लेता है। ये दोनो ही प्रकार के अभियोजन देखने को मिलते है। कोई व्यक्ति किस प्रकार वातावरण के साथ अपना अभियोजन स्थापित करेगा, यह बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व की विशेषताओ पर निर्भर करता है। यदि कोई अधीनताप्रिय (Submissive) व्यक्ति है, तो वह सभवत वातावरण के अनुसार अपने में परिवर्त्तन लाकर वातावरण के साथ अपना अभियोजन स्थापित करेगा। इसके विपरीत, अधिकारप्रिय (Dominant) व्यक्ति वातावरण के साथ अपना अभियोजन स्थापित करने के लिए वातावरण मे ही परिवर्त्तन लाकर उसे अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा करेगा। उदाहरण के लिए, यदि कोई दो व्यक्ति एक ही समस्या के समाधान पर विचार करें, तो सभव है कि दोनो के विचार एक-दूसरे से भिन्न हो। ऐसी अवस्था मे उन दोनो में जो अधिकारप्रिय व्यक्ति होगा, वह दूसरे से अपना विचार मनवाने का प्रयास करेगा, किन्तु उनमें जो अधीनताप्रिय व्यक्ति होगा, वह दूसरे के विचार को आसानी से स्वीकार कर लेगा और फिर उसी के अनुसार समस्या-समाधान मे लग जायगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यक्ति तथा वातावरण की परस्पर-क्रिया (Inter-action) के क्रम मे कभी तो वातावरण व्यक्ति को प्रभावित करता है और कभी व्यक्ति ही वातावरण पर अपना प्रभाव डालता है। वस्तुत इन दोनो का प्रभाव एक-दूसरे पर पडता है और यह क्रम सदा चलता रहता है। इसे सूत्र मे इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है —

वातावरण—व्यक्ति—वातावरण।

यह सूत्र स्पष्ट रूप स व्यक्ति तथा वातावरण के सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है। इस सूत्र का तात्पर्य यह है कि वातावरण सदा व्यक्ति को प्रभावित करता है तथा व्यक्ति वातावरण को।

"व्यक्ति कोई कार्य कैसे करता है?"—इसका उत्तर उत्तेजना तथा प्रतिक्रिया—इन दो शब्दो के आधार पर दिया जा सकता है। व्यक्ति वातावरण से उत्तेजना ग्रहण करता है और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करता है। वातावरण की उत्तेजनाओ को ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense-organs) अथवा

ग्राहक (Receptors) ग्रहण करते हैं तथा प्रतिक्रियाएँ कर्मेन्द्रियों (Motor organs) अथवा प्रभावकों (Effectors) द्वारा सम्पन्न होती हैं। अतएव, उत्तेजना-प्रतिक्रिया पर प्रकाश डालने के पूर्व ग्राहकों (Receptors) तथा प्रभावकों (Effectors) पर विचार प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा।

ग्राहक (Receptors):—वातावरण की उत्तेजनाएँ ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) अथवा ग्राहकों (Receptors) को उत्तेजित कर व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं में परिवर्त्तन लाती है। उदाहरण के लिए, जब बाँसुरी की ध्वनि कानों को उत्तेजित करती है, तब व्यक्ति उसे सुनता है। जब किसी वस्तु का प्रकाश आँखों को उत्तेजित करता है, तब व्यक्ति उस वस्तु को देखता है। इसी तरह अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ भी वातावरण की विभिन्न उत्तेजनाओं से उत्तेजित होती रहती हैं। फलतः व्यक्ति की क्रियाओ में परिवर्त्तन होता रहता है। जब वातावरण की उत्तेजनाओं के द्वारा ज्ञानेन्द्रियाँ एक बार उत्तेजित हो जाती हैं तब शरीर के सभी अंग क्रियाशील हो उठते हैं। ये क्रियाशील ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानवाही स्नायुओं (Sensory nerves) को उत्तेजित करती हैं और ये ज्ञानवाही स्नायुएँ मस्तिष्क (Brain) को उत्तेजित कर देती हैं। मस्तिष्क के द्वारा ज्ञानेन्द्रियाँ गतिवाही स्नायुओं (Motor nerves) तथा प्रभावकों (Effectors) से सम्बन्धित है। इस प्रकार व्यक्ति की किसी सरल क्रिया के सम्पन्न होने में भी ये सभी क्रियाएँ निहित रहती हैं। उदाहरण के लिए, अपनी जेब से कलम निकालकर उसे टेबुल पर रख देना, एक बहुत ही सरल क्रिया है। परन्तु इस सरल क्रिया में भी उपर्युक्त सभी क्रियाएँ पायी जाती हैं।

प्रभावक (Effectors):—ऊपर बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार वातावरण के प्रभाव से व्यक्ति के कार्यों में परिवर्त्तन होता है। यहाँ यह प्रस्तुत करना अभिप्रेत है कि किस प्रकार व्यक्ति अपने कार्यों के द्वारा वातावरण में परिवर्त्तन लाकर उसके साथ अपना अभियोजन स्थापित करता है। किसी सरल क्रिया के सम्पन्न होने में भी कई तरह की आन्तरिक क्रियाएँ शामिल रहती हैं। उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति को लिखते हुए देखकर हम कह उठते हैं कि वह लिख रहा है। फिर जब इस लिखने की सरल क्रिया पर विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से थोड़ा विचार करते हैं, तो यह कहते हैं कि वह अपने हाथ से लिख रहा है। हाथ, जैसा कि शरीर-विज्ञान (Physiology)

बतलाता है, मांसपेशियों (Muscles) के द्वारा क्रियाशील होते हैं। जबतक मांसपेशियाँ उन्हें संचालित नहीं करतीं तबतक उनमें कोई भी क्रिया नहीं दीख पड़ती। पुनः मांसपेशियों की क्रियाएँ उनकी स्नायुओं (Nerves) पर निर्भर करती हैं। जबतक उनकी स्नायुएँ उन्हें उत्तेजित नहीं करतीं तबतक मांसपेशियाँ निष्क्रिय बनी रहती हैं। इसी तरह ये गतिवाही स्नायुएँ (Motor nerves) तबतक निष्क्रिय बना रहती हैं, जबतक उन्हें स्नायु-केन्द्र (Nerve-centre) विशेषतः मस्तिष्क (Brain) से उत्तेजना नहीं मिलती। स्पष्ट है कि व्यक्ति के अति सरल कार्य के सम्पन्न होने में भी मस्तिष्क, मांसपेशियों तथा गतिवाही स्नायुओं की क्रियाएँ शामिल रहती हैं। किन्तु, कार्य करनेवाला व्यक्ति सामान्यतः इन आन्तरिक क्रियाओं से अनभिज्ञ रहता है। उसका तो एकमात्र लक्ष्य यही होता है कि वह अपने कार्य के द्वारा वातावरण में परिवर्त्तन लाकर उसके साथ अपना अभियोजन स्थापित कर सके। मांसपेशियों के द्वारा ही वातावरण पर प्रभाव डालनेवाले कार्य सम्पन्न होते हैं, इसीलिए इन्हें प्रभावक (Effectors) कहा जाता है। मांसपेशियों की तरह पिंडों (Glands) के द्वारा भी कार्य होते हैं। इसलिए, पिंडों को भी प्रभावक (Effectors) कहा गया है।

उत्तेजनाएँ (Stimuli):—वह शक्ति, जो ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित कर उन्हें क्रियाशील बनाती है, 'उत्तेजना कहलाती है। उदाहरण के लिए प्रकाश, ध्वनि, गंध, रस तथा स्पर्श उत्तेजनाएँ हैं, जो क्रमशः आँख, कान, नाक, जीभ और चमड़े को उत्तेजित करती हैं। उत्तजनाओं का सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों से रहता है। किन्तु अप्रत्यक्षतः इनका सम्बन्ध सम्पूर्ण शरीर से भी माना जा सकता है। जब ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तेजित होती हैं, तब ज्ञानवाही स्नायुएँ (Sensory nerves) तथा मस्तिष्क (Brain) उत्तजित हो जाते हैं। व्यक्ति के शरीर का एक अंग दूसरे अंग को उत्तेजित करता है और इस प्रकार सारा व्यक्ति क्रियाशील हो जाता है। उदाहरणार्थ, क्रियाशील ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानवाही स्नायुओं (Sensory nerves) को उत्तेजित करती हैं। ज्ञानवाही स्नायुएँ (Sensory nerves) मस्तिष्क को उत्तेजित करती हैं। मस्तिष्क गतिवाही स्नायुओं (Motor nerves) को उत्तेजित करता है तथा गतिवाही स्नायुएँ मांसपेशियों (Muscles) को उत्तेजित करती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ज्ञानेन्द्रियों के उत्तेजित हो जाने पर प्रायः शरीर के सभी अंग उत्तेजित हो जाते हैं। फलतः व्यक्ति में क्रियाशीलता आ जाती है।

प्रतिक्रियाएँ (Reactions):—उत्तेजना के द्वारा उत्पन्न क्रिया, उस उत्तेजना की प्रतिक्रिया कहलाती है। प्रतिक्रिया का सदा अपनी उत्तजना से सम्बन्ध रहता है। यदि देखना एक प्रतिक्रिया है, तो प्रकाश उसकी उत्तेजना; यदि सुनना एक प्रतिक्रिया है, तो ध्वनि उसकी उत्तेजना। तात्पर्य यह कि प्रतिक्रिया किसी उत्तेजना के प्रति ही होती है।*

विभिन्न उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती हैं। कभी व्यक्ति उत्तेजना पाकर क्रियाशील हो जाता है, तो कभी उत्तेजना के कारण उसकी पूर्व-क्रिया में परिवर्त्तन आ जाता है, अथवा वह दूसरी क्रिया की ओर उन्मुख हो जाता है। कभी-कभी तो उत्तेजना के कारण उसकी पूर्व-क्रिया ही बिल्कुल रुक जाती है। अतः यह स्पष्ट है कि प्रतिक्रियाएँ प्रायः क्रियाशीलता (Activity), कार्य-परिवर्त्तन (Change in activity) तथा रुकावट (Inhibition) के रूप में अभिव्यक्त होती हैं। उदाहरण के लिए, कोई भी उत्तेजना सामान्यतः व्यक्ति को क्रियाशील बना देती है। यदि पहले से ही उसमें क्रियाशीलता वर्त्तमान है तो उत्तेजना से प्रभावित होकर वह अपनी पूर्व-क्रिया को छोड़ देता है; जैसे, यदि कोई अपने एकान्त कमरे में कुछ पढ़ रहा हो और एकाएक उसे दरवाजा खटखटाने की आवाज सुनाई पड़े, तो वह पढ़ना छोड़कर दरवाजे के निकट चला जायगा। दरवाजा खोलने पर अपने मित्र को देखते ही वह आनन्द से भर जायगा और उससे बातचीत प्रारम्भ कर देगा। यदि थोड़ी ही देर के बाद कमरे के बाहर किसी वस्तु के जमीन पर गिरने के कारण जोर की आवाज हो तो वह मित्र के साथ बातचीत बन्द कर सम्भवतः उस ओर जाने को तत्पर हो जायगा, जिस ओर से वह आवाज आई हो। स्पष्ट है कि आकस्मिक आवाज को सुनते ही पूर्व बातचीत की क्रिया बन्द हो गई।

उत्तेजना-प्रतिक्रिया-सूत्र
(Stimulus-Response formula or S-R formula)

व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने उत्तेजना-प्रतिक्रिया-सूत्र के आधार पर मनुष्य के व्यवहार की व्याख्या करने की चेष्टा की है। इस सूत्र को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :—

यदि किसी व्यक्ति के सामने एक विशेष प्रकार की उत्तेजना उपस्थित

---

* Reaction is "Any activity of the organism in relation to Stimulus."—Myers: Text-book of Experimental Psychology.

की जाय, तो उससे एक विशेष प्रकार की ही प्रतिक्रिया उत्पन्न होगी, अथवा यों कहें कि कोई विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया अपनी विशेष प्रकार की उत्तेजना के द्वारा ही उत्पन्न हो सकती है। किन्तु यह सूत्र मनुष्य के व्यवहार की व्याख्या के लिए सर्वमान्य नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि यह सूत्र मनुष्य के जटिल एवं गतिशील स्वभाव पर विचार किये बिना ही उसके व्यवहार की व्याख्या करने का निरर्थक प्रयास-मात्र है। वस्तुतः ऐसी व्याख्या बिल्कुल यान्त्रिक (Mechanical) नहीं तो क्या है ? यदि इस सूत्र का विश्लेषण किया जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि कोई भी प्रतिक्रिया केवल उत्तेजना पर ही नहीं निर्भर करती, बल्कि व्यक्ति के स्वभाव तथा उसकी आन्तरिक दशाओं पर भी निर्भर करती है। तभी तो एक ही उत्तेजना प्रत्येक व्यक्ति में एक ही तरह की प्रतिक्रिया नहीं उत्पन्न करती, वरन् एक ही उत्तेजना भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न तरह की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती है। उदाहरणार्थ, किसी सुन्दर युवती पर दृष्टि पड़ जाने से तृप्तकाम व्यक्ति में सम्भवतः वासना का उदय नहीं होता, किन्तु जिस व्यक्ति की काम-वृत्ति (Sex-instinct) अतृप्त रह गई है, उसमें सहज ही वासना उत्पन्न हो जाती है। कारण स्पष्ट है। तृप्तकाम व्यक्ति तथा अतृप्तकाम व्यक्ति—इन दोनों की मनोवृत्तियों में अन्तर है। मनोवृत्तियों का यह अन्तर ही युवती की ओर दोनों की प्रतिक्रियाओं में अन्तर ला देता है। इसके अतिरिक्त, किसी एक उत्तेजना के द्वारा किसी भी व्यक्ति में सदा एक ही तरह की प्रतिक्रिया नहीं उत्पन्न होती, बल्कि विभिन्न परिस्थितियों में उसके द्वारा विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, नवजात शिशु प्रथम बार प्रायः दीपक के प्रकाश की ओर आकर्षित होकर उसे छू लेता है। किन्तु, जब उसमें प्रौढ़ता आ जाती है, तब अंगुली जल जाने के भय से उससे अपने हाथ को दूर ही रखता है। अन्त में, यह कहा जा सकता है कि कोई भी प्रतिक्रिया सदा एक ही उत्तेजना से उत्पन्न नहीं होती। उदाहरण-स्वरूप आँखों के आँसू को लें। मृत्यु-संवाद से भी आँखों में आँसू आते हैं तथा अति सुखद संवाद से भी आँखें आँसुओं से भर जाती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उत्तेजना-प्रतिक्रिया-सूत्र से प्राणी के व्यवहार की समुचित व्याख्या संभव नहीं है। इस सूत्र की कमी को दूर करने की दृष्टि से वुडवर्थ ने इस सूत्र में प्राणी (Organism) शब्द को भी जोड़ दिया है। फलतः 'उत्तेजना-प्रतिक्रिया' के स्थान पर उन्होंने 'उत्तेजना-

प्राणी-प्रतिक्रिया'-सूत्र का प्रतिपादन किया है। यह सूत्र प्राणी की महत्ता पर प्रकाश डालता है। व्यक्ति की कोई भी प्रतिक्रिया उत्तेजना के साथ-ही-साथ उसकी आन्तरिक दशाओं पर भी निर्भर करती है। आन्तरिक दशाओं के अन्तर्गत व्यक्ति के स्थायी स्वभाव-गुण, अस्थायी मानस-वृत्ति (Temporary mental set) तथा तात्कालिक कार्य आदि विचारणीय हैं। प्रत्येक व्यक्ति के कुछ अलग-अलग स्थायी गुण हुआ करते हैं। यदि कोई अन्तर्मुखी स्वभाव का होता है, तो कोई बहिर्मुखी स्वभाव का। इन स्थायी स्वभाव-गुणों का व्यक्ति की प्रत्येक प्रतिक्रिया पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार व्यक्ति की अस्थायी मानस-वृत्ति भी उसकी प्रतिक्रिया को प्रभावित करती है। जब व्यक्ति को भूख लगी रहती है तब भोजन के प्रति उसकी प्रतिक्रिया कुछ और ही होती है और जब उसका पेट भरा रहता है तब कुछ और ही। जब वह निरुत्साह रहता है तब किसी भी उत्तेजना की ओर उसकी प्रतिक्रिया शिथिल होती है और जब वह उत्साह से भरा रहता है तब उसकी प्रतिक्रिया तीव्र होती है। अन्त में, व्यक्ति की प्रतिक्रिया पर तात्कालिक कार्य के प्रभाव का उल्लेख भी आवश्यक जान पड़ता है। जब व्यक्ति किसी लक्ष्य से प्रेरित होकर किसी कार्य मे लगा रहता है तब उसकी प्रतिक्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि उत्तेजना का उस कार्य से क्या सम्बन्ध है। यदि उत्तेजना का उस कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं है, तो व्यक्ति यथासाध्य उस उत्तेजना की उपेक्षा करेगा; यदि वह उत्तेजना उसके लिए कार्य में बाधा पहुँचानेवाली है, तो वह उसका प्रतिरोध करेगा और यदि उत्तेजना उसके कार्य मे सहायता पहुँचानेवाली है, तो वह उसकी ओर अनुकूल प्रतिक्रिया (Favourable reaction) प्रकट करेगा।

वंशानुक्रम और वातावरण
(**Heredity and Environment**)

उत्तेजना-प्रतिक्रिया-सूत्र के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या करते हुए व्यक्ति के स्वभाव की महत्ता पर प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ यह बतलाना अभीष्ट है कि व्यक्ति के स्वभाव का निर्माण कैसे होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न क्योंकर हुआ करता है। कहना न होगा कि व्यक्ति के स्वभाव के निर्माण में वंशानुक्रम और वातावरण का हाथ रहता है। व्यक्ति-विभिन्नताएँ (Individual differences) भी इन्हीं के परिणाम हैं। वंशानुक्रम एवं वातावरण ही इस बात का निर्णय करते हैं कि

किसी भी व्यक्ति का व्यवहार कैसा होगा। इन दोनो के तुलनात्मक महत्त्व पर विचार करते हुए कभी-कभी एक प्रश्न सामने आता है—इन दोनो मे अधिक महत्त्वपूर्ण कौन है—वशानुक्रम या वातावरण ? इस प्रश्न के उत्तर मे वशानुक्रमवादियो (Hereditarians) का कहना है कि व्यक्ति-विकास मे वशानुक्रम ही सब कुछ है। व्यक्ति-विकास मे वातावरण की वे स्पष्टत उपेक्षा करते है। इसके विपरीत, वातावरणवादी (Environmentalists) वशानुक्रम की ओर से आँख फेरकर व्यक्ति-विकास मे वातावरण को ही सर्वप्रधान मान बैठते है। दोनो के दृष्टिकोण एक-दूसरे से भिन्न है। अत दोनो के अध्ययनो के निष्कर्ष भी एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है। वशानुक्रम और वातावरण के सम्बन्ध मे यह विवाद विचारो की अतिशयोक्ति के कारण है, जिसे दोनो पक्षो के विचारको की कुछ पक्तियो का उद्धृत कर आगे प्रस्तुत किया जा रहा है—

वशानुक्रम के एक समर्थक का कहना है—'वातावरण नही, प्रत्युत वशानुक्रम ही मनुष्यो का प्रधान निर्माता है' ससार के करीब-करीब सभी कष्ट तथा सभी प्रसन्नताएँ वातावरण के कारण नही होती। मनुष्यो मे विभिन्नताएँ उनके बीज-कोशो की विभिन्नताओ के कारण ही, जिन्हे लेकर वे जन्म ग्रहण करते है, होती है।*

वातावरण के एक बडे समर्थक वाट्सन की भी चुनौती ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार "क्षमता, प्रतिभा, धातुस्वभाव, मानसिक रचना एव विशेषताओ की वशानुक्रमिक प्राप्ति नाम की कोई भी वस्तु नही है।"*

उपर्युक्त दोनो विचारधाराओ से प्रभावित होकर मनोवैज्ञानिको ने मनुष्य पर कई प्रयोग किये है। वशानुक्रमवादियो के प्रयोग वशानुक्रम के प्रति पक्षपातपूर्ण धारणा से अनुरजित है। अतएव, उनके निष्कर्ष भी इस पूर्वधारणा (Prejudice) से वचित नही रह सके है। उदाहरणार्थ, सर फ्रसिस गाल्टन (Sir Francis Galton) ने उच्च वश के अनेक

---

*"Heredity and not environment is the chief maker of man Nearly all the misery and nearly all the happiness in the world are due not to environment The difference among men are due to differences in the grem-cells with which they are born"

*"There is no such thing as an inheritance of capacity, talent, temperament, mental constitution and characteristics"

व्यक्तियों की जीवनियों का विस्तृत अध्ययन किया। अपने अध्ययन के आधार पर गाल्टन ने यह निष्कर्ष निकाला कि व्यक्ति अपने मानसिक गुणों को वंशानुक्रम से ग्रहण करता है। उच्च वंश के व्यक्तियों की संतानें उन्नत तथा प्रतिभाशाली होती हैं। अमेरिका के ज्यूक-वंश के अध्ययन से भी वंशानुक्रम की ही प्रधानता दीख पड़ती है। इसी प्रकार वातावरणवादियों के प्रयोगों में उनकी वातावरण-सम्बन्धी पूर्वधारणा निहित है। फलतः उनके निष्कर्ष भी पूर्वधारणा (Prejudice) से अनुरंजित हैं। उदाहरण-स्वरूप गौर्डन (Gordon) ने इंगलैंड के उन बच्चों का अध्ययन किया, जो प्रायः नहर के किनारे अथवा नाव पर अपना जीवन बिता दिया करते हैं। अपने अध्ययन के आधार पर उन्होंने यह पाया कि उन बच्चों की बुद्धि औसत बच्चों की बुद्धि से कम होती है। इसका कारण उन्होंने वातावरण की अनुपयुक्तता बतलाया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बुद्धि-विकास में वातावरणका प्रमुख हाथ रहता है। स्पष्ट है कि वंशानुक्रम तथा वातावरण—इन दोनों के समर्थकों के अलग-अलग विचार, प्रयोग तथा तर्क हैं, जो अतिशयोक्ति से परिपूर्ण हैं।

निष्कर्ष—वंशानुक्रम एवं वातावरण पर विचार कर लेने के बाद स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति-विकास में इन दोनों का अलग-अलग कितना हाथ है, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः व्यक्ति-विकास में इन दोनों की परस्पर-क्रिया निरन्तर चलती रहती है। यदि व्यक्ति वंशानुक्रम से कुछ प्रवृत्तियों को ग्रहण करता है, तो उसका समुचित विकास अनुकूल वातावरण में ही संभव है। यदि उन प्रवृत्तियों को अनुकूल वातावरण न मिले, तो वे निरर्थक सिद्ध होंगी; क्योंकि उनका विकास नहीं हो सकेगा। उदाहरण के लिए, व्यक्ति शारीरिक बनावट, बुद्धि, स्वभाव आदि वंशानुक्रम से ग्रहण करता है, किन्तु यदि इनके विकास के लिए समुचित वातावरण न मिल सके तो निश्चिय ही उसके शरीर, उसकी बुद्धि तथा उसके स्वभाव का समुचित विकास नहीं हो सकेगा। उदाहरण-स्वरूप शरीर के अंगों को ले सकते हैं। शरीर के अंग तभी सुदृढ़ हो सकते हैं जब उनके विकास के लिए वातावरण से समुचित भोजन तथा व्यायाम की सारी सुविधाएँ प्राप्त हों। यही बात व्यक्ति की सभी प्रवृत्तियों तथा उसके व्यवहारों के लिए भी सत्य है। वास्तव में यदि व्यक्ति-विकास के लिए वंशानुक्रम बीज प्रदान करता है, तो वातावरण उसके लिए भूमि, प्रकाश और जल आदि का काम करता है, जिसके बिना उसका पल्लवित और पुष्पित होना सम्भव नहीं। अतः यह निष्कर्ष अत्यन्त

स्वाभाविक जान पड़ता है कि व्यक्ति वंशानुक्रम तथा वातावरण दोनों की परस्पर-क्रिया की उपज है।

वुडवर्थ के शब्दों में "व्यक्ति वंशानुक्रम और वातावरण का जोड़ नहीं, बल्कि गुणनफल है।"*

व्यक्ति क्या करता है और कैसे करता है?—इन दो प्रश्नों पर विचार कर चुकने के बाद इस प्रश्न पर विचार करना अनिवार्य है कि व्यक्ति कोई कार्य क्यों करता है। इस प्रश्न पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जायगा कि व्यक्ति प्रेरक वृत्तियों (Motives) से प्रेरित होकर ही कोई कार्य करता है। यदि प्रेरक वृत्तियाँ व्यक्ति को कार्यों के लिए सदा अनुप्रेरित न करती रहें, तो कदाचित् वह कोई भी कार्य न कर सकेगा। यह बात प्रेरक वृत्तियों के स्वरूप और प्रकारों पर विचार कर लेने से बिल्कुल स्पष्ट हो जायगी। इनका विशद विवेचन 'अनुप्रेरणा' के अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा।

---

*"The individual does not equal heredity+environment but does equal heredity×environment." —Woodworth

चौथा अध्याय

स्नायु-मंडल

मनोविज्ञान की आधुनिक विचारधारा के अनुसार मनुष्य की सभी तरह की मनोवैज्ञानिक क्रियाएँ वातावरण की विभिन्न उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रिया-मात्र हैं। इसे प्रायः उत्तेजना-प्राणी-प्रतिक्रिया-सूत्र (S-O-R formula) द्वारा व्यक्त किया जाता है। इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वे कौन-सी बाह्य एवं आन्तरिक उत्तेजनाएँ हैं, जो मनुष्य में प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करती हैं। बाह्य उत्तेजनाएँ तो बाहरी वातावरण से उपलब्ध होती हैं, किन्तु आन्तरिक उत्तेजनाओं की मनुष्य के शरीर में ही उत्पत्ति होती है। उनके यथार्थ स्वरूप के परिज्ञान के लिए मानव-शरीर के सभी भागों का अध्ययन आवश्यक है। प्राणी और प्रतिक्रिया का भी स्वरूप जानना समीचीन प्रतीत होता है। स्पष्टतः इन समस्याओं के सम्यक् ज्ञान के लिए स्नायु-मंडल का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

शरीर-विज्ञानवेत्ताओं ने तो स्नायु-मंडल का विशद अध्ययन प्रस्तुत किया है, किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने स्नायु-मंडल में प्रधानतः उन्हीं तत्त्वों की खोज करने का चेष्टा की है, जिनका सीधा सम्बन्ध मनोवैज्ञानिक प्रश्नों से है। वस्तुतः मानसिक क्रियाओं तथा शारीरिक व्यवहारों में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ, जब कोई व्यक्ति क्रुद्ध होता है तब उसके सारे शरीर में उथल-पुथल मच जाती है। उसकी आँखें लाल हो जाती हैं, होठ काँपने लगते हैं, पाचन-क्रिया बन्द हो जाती है, हृदय की गति बढ़ जाती है तथा रक्त-प्रवाह तीव्र हो जाता है। ये क्रियाएँ स्नायु-मंडल के द्वारा ही संचालित और नियन्त्रित होती हैं। अतएव, मानसिक क्रियाओं के सम्यक् ज्ञान के लिए स्नायु-मंडल का समुचित अध्ययन अनिवार्य है।

कोषाणुओं के कार्य

(The Functions of Cells)

रॉबर्ट हूक (Robert Hooke) ने प्रथम बार सन् १६६५ ई० में घोषित किया कि अत्यन्त निम्नकोटि का प्राणी (Organism) कॉर्क (Cork)

कोषाणुओं (Cells) से निर्मित है। उनके इस अनुसधान से प्रेरित होकर इस प्रकार के कई अध्ययन किये गये। फलतः आज हम यह मानने लगे हैं कि कोषाणु-सिद्धान्त (Cell-theory) सभी पशुओं और पौधों पर लागू होता है। वास्तव में, कोषाणु (Cell) जीवित प्राणियों Organisms) की मूलभूत इकाई (Fundamental unit) है। अतः प्राणियों के व्यवहार के सम्यक् ज्ञान के लिए इसका अध्ययन आवश्यक ह।

कोषाणु के तीन प्रधान भागों का उल्लेख किया जा सकता ह। वे है—कोषावरण (Membrane), कोषद्रव (Cytoplasm) और कोष-केन्द्र (Nucleus) । ये तीनों भाग परस्पर संबंधित हैं। फिर भी कोषाणु के जीवन में प्रत्येक भाग का अपना अलग-अलग महत्त्व है। प्रत्येक भाग कोषाणु के कुछ गुणों (Properties) के लिए प्रधान रूप से उत्तरदायी है।

कोषावरण के कुछ गुण (Properties of the membrane):—कोषावरण (Membrane) कोषाणु (Cell) की सीमा है। यह कुछ चीजों को कोषाणु के बाहर और कुछ को कोषाणु के भीतर रखता है। यह छिद्रपूर्ण होता है। इसलिए, इससे होकर बहुत-सी चीजें गुजर सकती हैं। यहाँ चीजों से हमारा तात्पर्य रासायनिक अणुओं (Chemical molecules) अथवा विद्युन्मय 'आयनों' (Charged ions) से है, जिनसे अणुओं के अभिनिविष्ट (Positive) या प्रतिनिविष्ट (Negative) अंगों (Parts) का निर्माण होता है।

कोषावरण के बुनियादी गुणों में से एक है दबावों (Pressures) तथा कोषावरण के दोनों ओर के 'आयनो' (Ions) के संतुलन (Equilibrium) की रक्षा। कुछ 'आयन' (Ions) और अणु (Molecules) बाहर से भीतर की ओर दबाव डालते है और कुछ भीतर से बाहर की ओर। इनमें कुछ भीतर जाते हैं और कुछ बाहर आते हैं। दबाव (Pressures) और गतियाँ (Movements) विशेष प्रकार के संतुलन में रहने की ओर प्रवृत्त हुआ करती हैं। अतः संतुलन (Equilibrium) को कोषावरण (Membrane) का एक सामान्य गुण (General property) कहा जा सकता है। संतुलन (Equilibrium) के इस सामान्य गुण (General property) से कोषावरण (Membrane) के अन्य कई प्रधान

गुण उत्पन्न होते हैं। उनमें से कोषावरण की संस्थिति (Polarization of the membrane) भी एक है।

प्रारम्भिक रसायन-विज्ञान (Chemistry) से ज्ञात है कि कुछ पदार्थ, जिन्हें 'इलेक्ट्रोलाइट्स' (Electrolytes) कहते हैं, जब पानी में मिल जाते हैं तब ये अलग-अलग हो जाते हैं। फलतः शरीर में बहुत-से पदार्थ (Substances) हो जाते हैं। अणु (Molecules) दो भागों में बँट जाते हैं। उनमें से एक के द्वारा अभिनिवेश (Positive charge) का संचालन होता है और दूसरे से प्रतिनिवेश (Negative charge) का। प्रत्येक भाग को 'आयन' (Ion) कहते हैं। प्रत्येक वस्तु को कोषावरण (Membrane) अपने भीतर नहीं आने देता है। फलस्वरूप प्रायः कोषावरण (Membrane) के एक ओर अधिक अभिनिविष्ट 'आयन' (P sitive Ions) संचित हो जाते हैं तथा दूसरी ओर प्रतिनिविष्ट 'आयन' (Negative Ions)। 'आयन' का संतुलन (Equilibrium of ion) सम्भव है; क्योंकि कोषावरण (Membrane) के दोनों ओर समान संख्या में 'आयन' (Ions) हो सकते हैं, यद्यपि एक भाग दूसरे की अपेक्षा अधिक अभिनिविष्ट (Positive) या अधिक प्रतिनिविष्ट (Negative) हो सकता है। इस क्रिया-कलाप (State of affairs) को ही कोषावरण की संस्थिति (Polarization of membrane) कहते हैं।

संस्थिति (Polarization) से कोषाणु (cell) के दो प्रधान गुण (Properties) उत्पन्न होते हैं। वे हैं —संक्षोभ (Irritability) और संचरण (Conductivity)। जहाँ तक कोषाणु की क्रियाओं का प्रश्न है, इन दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है।

जब कोषावरण (Membrane) का संतुलन (Equilibrium) भंग हो जाता है तब विप्रतिक्रिया (Counter-reaction) उत्पन्न हो जाती है; क्योंकि कोषावरण (Membrane) निरन्तर संतुलन कायम रखने की ओर प्रवृत्त होता है। ऐसी स्थिति में 'आयनों' (Ions) में गतिशीलता आ जाती है। वे पुनः कोषावरण (Membrane) में एक विशिष्ट क्रम में एकत्र होने की चेष्टा करने लगते हैं। कोषावरण के इस गुण (Property) को ही संक्षोभ (Irritability) की संज्ञा दी जाती है। कभी-कभी यह विप्रतिक्रिया (Counter-reaction) कोषावरण

(Membrane) के केवल संक्षुब्ध भाग (Irritated part) तक ही सीमित नहीं रहती। 'आयन' और अणु (Ions and molecules) कोषावरण के अन्य समीपवर्त्ती भागों में भी फैल हैं और वे संक्षुब्ध भाग (Irritated part) के संतुलन (Equilibrium) को पुनः लाने में सहायता प्रदान करते हैं। तात्पर्य यह कि संक्षोभ (Irritability) कोषावरण (Membrane) के एक भाग तक ही सीमित नहीं रहता, वरन् सारे कोषावरण में एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक फैल जाता है। इसे ही संचरण (Conduction) कहते हैं। शरीर के कुछ कोषाणुओं (Cells) का यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण गुण (Property) है।

कोषद्रव के गुण (Property of cytoplasm):—कोषद्रव (Cytoplasm) कोषाणु (Cell) का प्रधान पुंज (Mass) है। यह कोषावरण (Membrane) के भीतर और कोष-केन्द्र (Nucleus) के बाहर कोषाणु (Cell) के सामान्य क्षेत्र (General area) का निर्माण करता है। कोषद्रव (Cytoplasm) में उसकी बनावट (Structure) और रासायनिक रचना (Chemical make-up) को लेकर काफी विभिन्नता पायी जाती है। इसमें सामान्यतः पर्याप्त मात्रा में पानी पाया जाता है। इसमें अनेक छोटे-छोटे दाने (Granules) और सूक्ष्म रचनाएँ (Minute Structures) पायी जाती हैं, जिनके आधार पर विभिन्न प्रकार के कोषाणुओं (Cells) और उनके स्वास्थ्य की स्थिति (State of health) में भेद किया जा सकता है।

सामान्यतः कोषद्रव (Cytoplasm) के दो प्रधान गुण (properties) माने जाते हैं—(१) स्राव (Secretion) और मलोत्सर्ग (Excretion) तथा (२) आकुंचन (Contractibility)।

स्राव (Secretion) **और मलोत्सर्ग** (Excretion):—कोषद्रव में पाये जानेवाले रासायनिक पदार्थों (Chemical substances) के बीच एक-दूसरे के प्रति इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ (Reactions) होती रहती हैं, जिनसे नये पदार्थों (Substance) का निर्माण होता है, जो कोषाणु (Cell) के बाहर नहीं पाये जाते। ये पदार्थ (Substances) कोषाणु (Cell) के भीतर रहकर उसके जीवन की महत्त्वपूर्ण क्रियाओं में सहायता प्रदान करते हैं, अथवा कोषावरण (Membrane) से बाहर जाकर दूसरे कोषाणुओं (Cells) में फैल जाते हैं और उनके

लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं। ऐसे पदार्थ, जिनका कोषद्रव (Cytoplasm) में निर्माण होता है और कोषावरण (Membrane) से बाहर जाकर जीवन-प्रक्रियाओं (Life processes) में रचनात्मक ढंग से सहायता प्रदान करते हैं, उन्हें स्राव (Secretion) कहते हैं। इनके अतिरिक्त, कोषाणु (Cell) में कुछ ऐसे पदार्थ (Substances) भी होते हैं, जो उसके लिए बिल्कुल आवश्यक होते हैं। स्वभावतः कोषाणु उन्हें अपने भीतर रखना नहीं चाहता। फलतः वे कोषावरण (Membrane) से बाहर चले जाते हैं। उन्हें मलोत्सर्ग (Excretion) कहते हैं ।

कोषद्रव (Cytoplasm) का दूसरा प्रधान गुण (Property) है आकुंचन (Contractibility)। यह भी रासायनिक प्रतिक्रियाओं (Chemical reactions) का ही प्रतिफल है। जब अणु (Molecule) अपने आकार-प्रकार में परिवर्त्तित हो जाते हैं अथवा कोषाणु-पुंज (Mass of the cell) में ही इस प्रकार गतिशील हो जाते हैं कि कोषावरण (Membrane) और कोषाणु (Cell) का आकार-प्रकार बदल जाता है, तब इसे ही आकुंचन (Contractibility) की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार के परिवर्त्तनों के कारण कोषाणु (Cell) गतिशील हो जाते हैं या वे अतिविकसित प्राणियों में उनके अन्य कोषाणुओं (Cells) को गतिशीलता प्रदान करते हैं और इस प्रकार समस्त प्राणी को ही गतिशील बना देते हैं।

कोषकेन्द्र के गुण (Properties of the nucleus):—कोषाणु (Cell) के कोषद्रव (Cytoplasm) में अंतर्भुक्त प्रधान भाग (Main body) को कोषकेन्द्र (Nucleus) कहते हैं। यह कोषाणु (Cell) में होनेवाली सर्वप्रधान क्रिया का केन्द्र है। यह समग्र रूप से कोषाणु (Cell) की जीवन-प्रक्रियाओं (Life-processes) को संचालित करता है। कोषकेन्द्र (Nucleus) का सबसे प्रधान गुण है जनन-क्रिया (Reproduction)। कोषकेन्द्र (Nucleus) में अनेक पित्र्यसूत्र (Chromosomes) होते हैं। उनमें 'जेनी' (Gene) पाये जाते हैं, जो प्राणी की जनन-क्रिया को संचालित करते हैं। जब दो विभिन्न कोषाणु एक साथ मिलते हैं और उनके पित्र्यसूत्रों (Chromosomes) के बीच परस्पर-क्रिया (Inter-action) होती है तब जनन-क्रिया (Reproduction) प्रारम्भ हो जाती है। सारांश यह कि कोषकेन्द्र (Nucleus) और उसके

पित्र्यसूत्रों (Chromosomes) का प्रधान कार्य है कोषाणु (Cell) अथवा कोषाणुओं (Cells) को पुनः उत्पन्न करना, जिनसे प्राणी का निर्माण होता है।

कोषाणु (Cell) की क्रियाओं पर समग्र रूप से (As a whole) विचार करने पर ऐसा जान पड़ता है कि बहुत मोटे तौर पर ही कोषावरण (Membrane), कोषद्रव (Cytoplasm) और कोष-केन्द्र (Nucleus) के गुणों (properties) का पृथक्करण (Differentiation) संभव है। वास्तव में कोषाणु (Cell) के सभी भागों की क्रियाएँ परस्पर संबद्ध हैं और उसके विभिन्न गुणों (properties) में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सन्निहित हैं।

ज्ञानेन्द्रियाँ या ग्राहक

(Sense-organs or receptors)

प्राणी अपने विकास-क्रम में निरन्तर भौतिक उत्तेजनाओं (Physical Stimuli) से प्रभावित होता रहता है। श्रेष्ठ प्राणियों में विशेष प्रकार की उत्तेजनाएँ विशेष प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित कर उन्हें क्रियाशील बनाती हैं। अमीबा (Amoeba) में, जो सबसे छोटा प्राणी है, विशेष प्रकार की ज्ञानेन्द्रियाँ नहीं होतीं। अतएव, किसी भी उत्तेजना को उसका सारा शरीर ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए, प्रकाश के प्रति अमीबा का सारा शरीर क्रियाशील हो जाता है। इसके विपरीत, जब मनुष्य के सामने प्रकाश उपस्थित किया जाता है, तब उसकी आँखें उस प्रकाश को ग्रहण करती हैं। इसी प्रकार कान में शब्द को, नाक में गन्ध को, जिह्वा में रस को तथा त्वचा में स्पर्श को ग्रहण करने की क्षमता पायी जाती है। अतः स्पष्ट है कि विशेष प्रकार की उत्तेजनाओं के लिए मनुष्य में विशेष प्रकार की ज्ञानेन्द्रियाँ पायी जाती हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि इस विशिष्टता (Specialization) के बावजूद ग्राहक (Receptors) सभी प्रकार की शक्ति (Energy) के प्रति प्रतिक्रिया प्रकट करने की अपनी क्षमता को बिलकुल खो नहीं देते। इसीलिए, यह विशिष्टता (Specialization) सापेक्ष (Relative) मानी जाती है, न कि निरपेक्ष (Absolute)। यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान देने की है और वह यह कि सभी ग्राहकों (Receptors) में विद्युत्-उत्तेजनाओं (Electrical stimuli) के प्रति प्रतिक्रिया प्रकट करने की क्षमता विद्यमान रहती है।

ग्राहकों का वर्गीकरण (Classification of receptors):—ग्राहकों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है—(१) उन्हें प्रभावित करनेवाली उत्तेजनाओं के प्रकारों के अनुसार, (२) उनकी रचना (Structure) की जटिलता (Complexity) के अनुसार और (३) शरीर में उनके सामान्य स्थान-निरूपण (General localization) के अनुसार। इसमें तीसरा वर्गीकरण सबसे सरल और सबसे उपयुक्त समझा जाता है। उसके अनुसार तीन प्रकार के ग्राहक (Receptors) माने जाते हैं—बाह्य ग्राहक (Exteroceptors) अन्तर्ग्राहक (Interoceptors) तथा मध्यग्राहक (Proprioceptors)।

बाह्य ग्राहक (Exteroceptors):—बाह्य ग्राहक शरीर की बाहरी सतह पर या उसके समीप पाये जाते हैं। ये बाह्य उत्तेजनाओं (External stimuli) को ग्रहण करते है। बाह्य ग्राहकों के दो वर्ग हैं—एक वे ग्राहक (Receptors) जो दूरस्थ (Distant) उत्तेजनाओं द्वारा उत्तेजित होते हैं—वे उत्तेजनाएँ जो शारीरिक संपर्क में नहीं आती; दूसरे, वे जो उन उत्तेजनाओं (Stimuli) से उत्तेजित होते हैं, जिनका त्वचा (Skin) अथवा शरीर के अन्य भाग से संपर्क रहता है। पहले के उदाहरण के रूप में आँख, कान, नाक तथा शीत-ताप-सम्बन्धी त्वचा-ग्राहकों (Cold and heat skin receptors) को प्रस्तुत किया जा सकता है और दूसरे के उदाहरण-स्वरूप चाप तथा वेदना-संबंधी त्वचा-ग्राहकों (Pressure and pain skin receptors) का प्रस्तुत किया जा सकता है।

अन्तर्ग्राहक (Interoceptors):—अन्तर्ग्राहकों मे वे ग्राहक (Receptors) सन्निहित हैं, जो शरीर की आन्तरिक सतह (Internal surface) पर पाये जाते है। अन्तर्ग्राहक कोषाणु (Interoceptor cells) मुँह, गला, पेट, अँतड़ी आदि शरीर के आन्तरिक अंगो मे पाये जाते हैं। अन्तर्ग्राहकों (Interoceptors) के उत्तेजित होने से भूख, प्यास, वमन (Nausea) तथा अन्य अन्तरिन्द्रिय संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं।

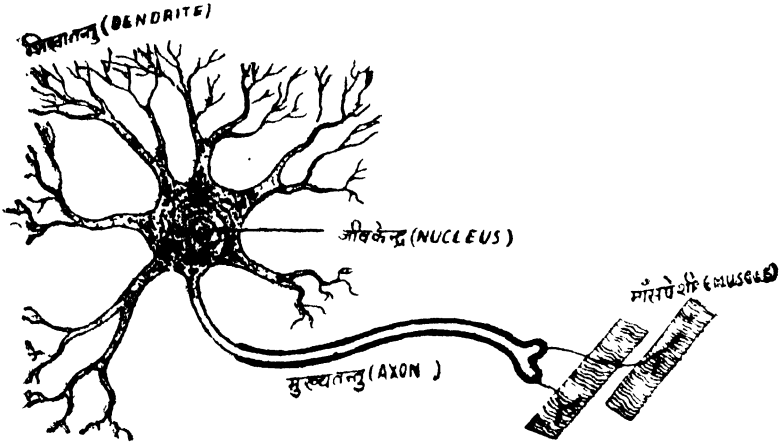
मध्यग्राहक (Proprioceptors):—मध्यग्राहकों में वे ज्ञानवाही कोषाणु (Sensory cells) सन्निहित हैं, जो मांसपेशियों (Muscles), पुट्ठों (Tendons) तथा संधियों या जोड़ों (Joints) म पाये जाते है। शारीरिक संतुलन (Body balance) से संबंधित सभी ग्राहकों

(Receptors) की गणना मध्यग्राहकों (Proprioceptors) में ही होती है।

स्नायु-कोश
(Neuron)

स्नायु-कोश (Neuron) ग्राहक-अभियोजक-प्रभावक यंत्र-रचना (Receptor-adjustor-effector mechanism) की कड़ी में दूसरा है। ग्राहकों (Receptors) और प्रभावकों (Effectors) के बीच की क्रियाओं के अभियोजन के लिए इसका पृथक्करण (Differentiation) हुआ है। निस्संदेह, कभी-कभी स्नायु-कोश (Neuron) ग्राहक यंत्र-रचनाओं (Receptor mechanisms) के पृथक्करण (Differentiation) में भी हाथ बँटाता है, किन्तु प्रधान रूप से इसका कार्य है अभियोजक यन्त्र-रचना (Adjuster mechanism) का निर्माण, जिसे स्नायु-मंडल (Nervous system) कहा जाता है। इस अभिप्राय की सिद्धि के लिए इसने पृथक्करण (Differentiation) के क्रम में संक्षोभ (Irritability) और संचरण (Conductivity) के गुणों (Properties) को विशेष रूप से अपनाया है।

स्नायु-कोश की बनावट (Structure of the neuron)—स्नायु-कोश के तीन प्रधान भाग होते हैं:—(१) शिखातन्तु (Dendrite), (२)



चित्र सं० १—सुषुम्ना का एक गतिवाही स्नायु-कोश
(A motor neuron of the spinal cord)

मुख्यतन्तु (Axon) और जीव-कोश (Cell-body)। जीव-कोश के तीन प्रधान भाग होते हैं:—(१) कोषावरण (Cell membrane), (२) कोषद्रव (Cytoplasm) और (३) कोषकेन्द्र (Nucleus), जिनका विशद विवेचन पहले किया जा चुका है। अतएव, यहाँ शिखातन्तुओं (Dendrites) और मुख्यतन्तुओं (Axons) पर ही विचार प्रस्तुत किया जायगा।

शिखातन्तुओं (Dendrites) और मुख्यतन्तुओं (Axons) की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं और वे तीन बातों को लेकर एक-दूसरे से अलग की जा सकती हैं—(१) शिखातन्तुओं (Dendrites) की ऐसी स्थिति होती है कि वे वातावरण (Environment) की उत्तेजनाओं (Stimuli) द्वारा उत्तेजित हो सकते हैं या अन्य कोषाणु (Cell) की क्रियाओं द्वारा या अन्य स्नायु-कोशों (Neurons) द्वारा भी। इस प्रकार शिखातन्तु स्नायु-कोश का ग्रहण-कर्त्ता छोर (Receiving end) है। मुख्यतन्तु (Axon) प्रभावकों (Effectors) या अन्य स्नायु-कोशों (Neurons) से संबंधित होता है और वह वहाँ तक स्नायु-प्रवाहों (Nerve-impulses) को पहुँचाता है।

(२) शिखातन्तु (Dendrite) जब जीव-कोश (Cell body) को छोड़ देता है तब यह अपने आकार में पतला और नुकीला होता जाता है। फलतः यह बतलाना बड़ा कठिन हो जाता है कि जीव-कोश (Cell-body) का कहाँ अन्त होता है और शिखातन्तु (Dendrite) कहाँ से शुरू होता है। किन्तु मुख्यतन्तु (Axon) जहाँ जीव-कोश (Cell body) को छोड़ता है, वह स्थान कुछ उठा हुआ होता है, जिस मुख्य-तन्तु-पर्वती (Axon-hillock) कहते हैं।

(३) एक स्नायु-कोश (Neuron) में सामान्यतः अनेक शिखातन्तु (Dendrites) होते हैं, जो पेड़ की टहनियों के समान फैल रहते हैं। इसके विपरीत, स्नायु-कोश (Neuron) में मुख्यतन्तु (Axon) एक ही होता है, यद्यपि कभी-कभी इसके समकोण (Right angles) पर समानान्तर (Collaterals) पाये जाते हैं।

स्नायु-कोशों के प्रकार (Types of neurons):—ऊपर स्नायु-कोश (Neuron) की बनावट पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि सभी स्नायु-कोशों (Neurons) की क्रियाएँ एक ही तरह की नहीं होती, बल्कि विशिष्ट प्रकार की क्रियाओं के आधार पर उनमें भेद किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के स्नायु-कोश

(Neurons) स्नायु-मंडल (Nervous system) में विशिष्ट प्रकार की क्रियाओं का संपादन करते हैं। अत: क्रियाओं के आधार पर तीन प्रकार के स्नायु-कोशों में भेद किया जा सकता है—(१) ज्ञानवाही स्नायु-कोश (Sensory or afferent neuron), (२) गतिवाही स्नायु-कोश (Motor or efferent neuron) तथा (३) साहचर्य स्नायु-कोश (Association neuron)। ज्ञानवाही स्नायु-कोश (Sensory neurons) स्नायु-प्रवाहों (Nerve-impulses) को ज्ञानेन्द्रियों से सुषुम्ना (Spinal cord) और मस्तिष्क (Brain) में ले जाते हैं। गतिवाही स्नायु-कोश (Motor neurons) स्नायु-प्रवाहों (Nerve-impulses) को मस्तिष्क (Brain) तथा सुषुम्ना (Spinal cord) से मांसपेशियों (Muscles) और पिंडों (Glands) में ले जाते हैं। साहचर्य स्नायु-कोश (Association neurons) मस्तिष्क तथा सुषुम्ना में सीमित होते हैं। वहाँ वे ज्ञानवाही (Sensory) और गतिवाही (Motor) स्नायु-कोशों (Nerons) के बीच तथा एक साहचर्य स्नायु-कोश (Association neuron) और दूसरे साहचर्य स्नायु-कोशों (Association neurons) के बीच संबंध स्थापित करते हैं।

ज्ञानवाही (Sensory) और गतिवाही (Motor) स्नायु-कोशों (Neurons) में लंबे-लंबे केश के सदृश तन्तु (Fibres) होते हैं, जो अपने आकार में इतने छोटे होते हैं कि उन्हें अनुवीक्षक यन्त्र (Microscope) द्वारा ही देखा जा सकता है। इन तन्तुओं (Fibres) की अनेक शाखाएँ होती हैं। साहचर्य-स्नायु-कोशों (Association neurons) में अपेक्षाकृत छोटे-छोटे तन्तु (Fibres) पाये जाते हैं। उनका विस्तार प्रधानत: जीव-कोश (Cell-body) ही है। जीव-कोश की आकृति भूरी (Gray) होती है। फलत: साहचर्य-स्नायु-कोशों (Association neurons) के बड़े पुंज (Groupings), जो प्रधानत: सुषुम्ना (Spinal cord) और मस्तिष्क (Brain) की बाह्य सतह (Cortex) पर दीख पड़ते हैं, वे भी अपनी आकृति में भूरे (Gray) ही होते हैं। उन्हें प्राय: भूरे पदार्थ (Gray matter) की संज्ञा दी जाती है। स्वत: स्नायु-तन्तु (Nerve-fibre) अपेक्षाकृत मोटे आवरण से ढँका रहता है। यह आकृति में सफेद होता है। इस प्रकार तन्तुओं (Fibres) के जो बड़े पुंज (Groupings) दीख

पड़ते हैं, उन्हें प्रायः श्वेत पदार्थ (White matter) कहा जाता है।

कर्मेन्द्रियाँ या प्रभावक

(Motor organs or Effectors)

कर्मेन्द्रियाँ या प्रभावक उन अंगों को कहते हैं, जिनस शरीर के सभी कार्य संपादित होते हैं। कर्मेन्द्रियाँ प्रधानतः दो हैं--(१) मांसपेशियाँ (Muscles) तथा (२) पिण्ड (Glands)।

मांसपेशियाँ दो तरह की होती हैं--(१) धारीदार मांसपेशियाँ (Striped muscles) तथा (२) चिकनी मांसपेशियाँ (Smooth muscles)। इन दो प्रकार की मांसपेशियों के द्वारा दो विभिन्न प्रकार की गतियों का संचालन और नियंत्रण होता है। आत्मप्रेरित अथवा ऐच्छिक गतियाँ (Voluntary movements) धारीदार मांसपेशियों के द्वारा सम्पादित होती हैं तथा अनात्मप्रेरित अथवा अनैच्छिक गतियाँ (Involuntary movements) चिकनी मांसपेशियों के द्वारा संपन्न होती हैं। ऐच्छिक गतियों से हमारा तात्पर्य उन गतियों से है, जिनमें व्यक्ति की चेष्टा शामिल रहती है। इसके विपरीत, अनैच्छिक गतियों में व्यक्ति की कोई भी चेष्टा शामिल नहीं रहती, वरन् वे अपने-आप हुआ करती हैं। ऐच्छिक गतियों में चेष्टा, प्रयत्न तथा इच्छा के शामिल रहने के कारण धारीदार मांसपेशियों में बहुत जल्दी थकावट आ जाती है। उदाहरणार्थ, हाथ-पैर का हिलना-डुलना, चलना-फिरना इत्यादि ऐच्छिक क्रियाएँ हैं, जो धारीदार मांसपेशियों के द्वारा संपादित होती हैं। फलतः धारीदार मांसपेशियों में अति शीघ्र थकावट आ जाती है। इसके विपरीत, श्वास-क्रिया, पाचन-क्रिया तथा रक्त-प्रवाह इत्यादि क्रियाएँ अनैच्छिक हैं, जो स्वतः सम्पादित होती रहती हैं। इनका संचालन और नियंत्रण चिकनी मांसपेशियों (Smooth muscles) द्वारा होता है। इनमें विशेष प्रकार की चेष्टा की आवश्यकता नहीं होती। फलतः चिकनी मांसपेशियों में जल्दी थकावट भी नहीं आ पाती।

हार्दिक मांसपेशियाँ (Cardiac muscles):--हार्दिक मांसपेशियों (Cardiac muscles) को एक विशेष प्रकार की धारीदार मांसपेशियाँ (Striated muscles) कह सकते हैं। ये दो बातों में धारीदार मांसपेशियों से भिन्न होती हैं--(१) इनके तन्तु (Fibres) धारीदार

मासपेशियो (Striated muscles) की तरह समानान्तर (Parallel) नही होते, (२) ये कोषावरण (Membrane) स नही ढकी रहती।

मासपेशियो की तरह पिण्डो के द्वारा भी अनेक प्रकार के कार्य सपादित होते हैं। प्रत्येक पिण्ड से एक तरह का स्राव (Secretion) निकलता है, जिसके द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्य सम्पन्न होते है। उदाहरण क लिए, यदि किसी की आँख मे धूल पड जाय, तो अश्रुवाही पिण्ड आँसुओ के द्वारा बहाकर उसे बाहर निकाल देते है।

पिण्ड प्रधानत दो प्रकार के होते है--(१) नालिका-पिण्ड अथवा बहि-स्रावी पिण्ड (Duct glands) तथा (२) अन्त स्रावी पिण्ड (Ductless or Endocrine glands)। बहि स्रावी पिण्ड मे एक नालिका होती है, जिसके द्वारा पिण्ड-स्राव (Glandular secretions) पिण्ड से बाहर निकलकर शरीर की सतह पर आ जाते है। उदाहरण के लिए, पसीना, आँसू तथा लार इत्यादि ऐसे पिड-स्राव है, जो रक्त-प्रवाह (Blood circulation) मे नही मिल पाते, वरन् पिण्ड-नालिका (Glandular duct) के द्वारा बाहर निकलकर शरीर की सतह पर आ जाते हैं।

अन्तःस्रावी पिण्ड (Endocrine glands) --अन्त स्रावी पिण्डो के स्राव (Secretions) शरीर के भीतर सीधे रक्त-प्रवाह मे मिल जाते है। इनके पिड-स्राव को 'हॉरमोन्स' (Hormones) कहते है। ये 'हॉरमोन्स' मनुष्य की मानसिक क्रियाओ तथा उसके व्यवहारो पर अपना प्रभाव डालते है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनो मे स्पष्ट है कि मनुष्य के व्यक्तित्व तथा उसके सवेगो पर 'हॉरमोन्स' का अत्यधिक प्रभाव पडता है। पुन अन्त स्रावी पिण्डो का विवेचन व्यक्तित्व तथा सवेगो के प्रसग मे प्रस्तुत किया जायगा।

स्नायु-प्रवाह

(Nerve-impulses)

प्रारभिक मनोवैज्ञानिको और शरीर-वैज्ञानिको (Physiologists) को ऐसा लगता था कि स्नायु-प्रवाह का स्वरूप (Nature) एक-ही-सा नही होता। दृष्टि-सवेदना (Visual sensation) मे निहित स्नायु-प्रवाह श्रवण-सवेदना (Auditory sensation) मे निहित स्नायु-प्रवाहो से भिन्न होते है। किन्तु आधुनिक अनुसधानो के आधार पर यह बात उपयुक्त नही जान पडती। वास्तव मे सभी स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses)

एक ही स्वभाव के होते हैं। वे वैद्युत्-रासायनिक तरंगों (Electro-chemical waves) के स्वभाव (Nature) के ही होते हैं। सभी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के द्वारा ले जाये जानेवाले स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) एक-ही-से होते हैं। प्राणी की प्रतिक्रियाएँ (Reactions) इसलिए विभिन्न प्रकार की होती हैं कि उसमें (प्राणी में) विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों की बनावट भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। यहाँ उद्दीपन (Stimulation) और संचरण (Conduction) के स्वभाव पर संक्षिप्त विचार अप्रासंगिक न होगा।

सीमांत उत्तेजना (Threshold stimulus)-विभिन्न स्नायु-तन्तुओं (Nerve-fibres) को उत्तेजित करने के लिए विभिन्न शक्तियों (Strengths) की उत्तेजनाओं की आवश्यकता होती है। उत्तेजना की वह अल्पतम शक्ति, जो स्नायु-तन्तु (Nerve-fibre) को उत्तेजित कर सके, सीमांत उत्तेजना (Threshold stimulus) कही जाती है। यह सीमांत उत्तेजना विभिन्न स्नायु-तन्तुओं (Nerve-fibres) की बनावटों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती है। प्राणी के स्वास्थ्य की विभिन्नता के कारण भी परिवर्त्तन हो सकते हैं।

निरपेक्ष निष्क्रियावस्था (Absolute refractory period) **तथा सापेक्ष निष्क्रियावस्था** (Relative refractory period)—जब कोई स्नायु-कोश (Neuron) किसी स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulse) द्वारा उत्तेजित हो जाता है तब एक लघु अवकाश (Interval) का क्षण आता है, जब वह अति तीव्र (Intense) उत्तेजना द्वारा भी उत्तेजित नहीं हो सकता। यह अवकाश (Interval) निरपेक्ष निष्क्रियावस्था (Absolute refractory period) का द्योतक है। इसकी सबसे लघु अवधि (Duration) एक हजारवें भाग के लगभग होती है। इस निरपेक्ष निष्क्रियावस्था (Absolute refractory period) के बाद एक दूसरा लघु क्षण आता है, जब अति तीव्र उत्तेजना द्वारा स्नायु-कोश (Neuron) उत्तेजित हो सकता है। इसे ही सापेक्ष निष्क्रियावस्था (Relative refractory period) कहते हैं।

स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulse) **तथा 'सम्पूर्ण या बिलकुल नहीं का नियम'** (All-or-none law):—जब ज्ञानेन्द्रियों के सामने कोई उत्तेजना उपस्थित की जाती है, तब उनमें एक प्रकार का वैद्युत्-रासायनिक

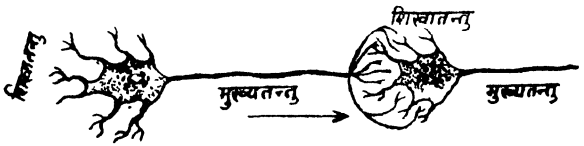
सक्षोभ (Electro-chemical disturbance) उत्पन्न होता है। यह सक्षोभ (Disturbance) स्नायु-तन्तुओ (Nerve-fibres) से होता हुआ केन्द्रीय स्नायु-मडल मे पहुँच जाता है और तब हमे उस इन्द्रिय-जन्य सवेदना का अनुभव होता ह। ठीक इसी तरह केन्द्रीय स्नायु-मडल मे उत्पन्न वैद्युत्-रासायनिक सक्षोभ जब स्नायु-तन्तुओ से होता हुआ मासपेशियो तथा पिण्डो मे पहुँचता है, तब उनमे गति उत्पन्न हो जाती है और हम क्रियाशील हो जाते है। इसी वैद्युत् रासायनिक सक्षोभ को स्नायु-प्रवाह कहते है। स्नायु-प्रवाहो का अध्ययन मनोविज्ञान मे अपना विशेष महत्व रखता है। कारण, स्नायु-प्रवाहो के स्वरूप को भलीभाँति जान लेने के बाद मनुष्य की प्रतिक्रियाओ का समुचित ज्ञान प्राप्त करना सुलभ हो जाता है। अत स्नायु-प्रवाहो के स्वरूप पर यहाँ सक्षेप मे प्रकाश डालना अभीष्ट है।

समुचित उत्तेजना पाकर जब कोई स्नायु-कोश उत्तेजित होता है, तब वह अपनी सपूर्ण शक्ति के साथ क्रियाशील हो उठता है। हाँ, यह सभव है कि यदि उत्तेजना दुर्बल हो तो स्नायु-कोश बिलकुल उत्तेजित हो ही नही, उसमे क्रियाशीलता आये ही नही, किन्तु यदि उत्तेजना स्नायु-कोश को उत्तेजित करने के लिए पर्याप्त रूप मे सबल हो तो स्नायु-कोश अपनी सपूर्ण शक्ति के साथ उत्तेजित हो उठेगा। इसे ही 'सपूर्ण-या-बिलकुल नही' का नियम कहते है।

'सपूर्ण-या-बिलकुल नही' (All-or-none) के नियम से ऐसा जान पडता है कि स्नायु-कोशो की प्रतिक्रियाएँ सभी अवस्थाओ मे समान होगी। परन्तु बात ऐसी नही है। स्नायु-कोशो की प्रतिक्रियाएँ सभी अवस्थाओ मे समान नही होती, वरन् उनमे विभिन्नताएँ पाई जाती है। कोई प्रतिक्रिया प्रबल होती है, तो कोई अपेक्षाकृत दुर्बल। प्रतिक्रिया की इस प्रबलता अथवा दुर्बलता का प्रधान कारण यह है कि कभी अधिक स्नायु-कोश सक्रिय हो जाते है और कभी बिलकुल कम। अतएव स्पष्ट है कि प्रतिक्रिया की प्रबलता अथवा दुर्बलता उत्तेजित या सक्रिय स्नायु-कोशो (Stimulated or activated neurons) की सख्या पर निर्भर करती है। यदि एक समय मे अधिक स्नायु-कोश उत्तेजित हुए, तो व्यक्ति की प्रतिक्रिया सबल होगी। इसके विपरीत, यदि एक समय मे कम स्नायु-कोश उत्तेजित हुए, तो व्यक्ति की प्रतिक्रिया भी क्षीण होगी। प्रतिक्रिया की प्रबलता अथवा दुर्बलता का दूसरा कारण यह है कि एक ही स्नायु-कोश बहुत जल्दी-जल्दी उत्तेजित हो सकता है अथवा बहुत देर-देर से। जब कोई स्नायु-कोश एक सीमित समय के भीतर बहुत जल्दी-जल्दी उत्तेजित होता है तब व्यक्ति की प्रतिक्रिया सबल होती है।

इसके विपरीत, जब कोई स्नायु-कोश बहुत देर-देर से उत्तेजित होता है या एक सीमित समय के भीतर बहुत कम बार उत्तेजित होता है तब व्यक्ति की प्रतिक्रिया क्षीण होती है।

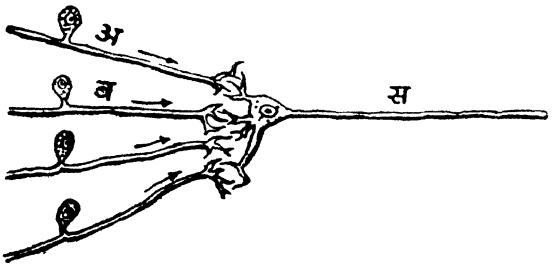
संधि-स्थल (Synapse) :—एक स्नायु-कोश (Neuron) का मुख्यतन्तु (Axon) दूसरे स्नायु-कोश (Neuron) के शिखातन्तुओं (Dendrites) से मिला हुआ जान पड़ता है, पर वास्तव में वह बिलकुल मिला हुआ नहीं होता, बल्कि उनके शिखातन्तुओं के अति सन्निकट होता है। शरीर-रचना की दृष्टि से (Anatomically) स्नायु-कोश परस्पर संबंधित नहीं होते; क्योंकि सभी कोषाणुओं (Cells) के अपने अलग-अलग कोषावरण (Membrane) होते हैं। इससे स्पष्ट है कि उनके बीच कुछ अन्तर (Gap) रह जाता है। यह अन्तर (Gap) इतना सूक्ष्म होता है कि स्नायु-प्रवाहों (Nerve-impulses) का संचरण (Conduction) सहज ढंग से होता रहता है। इस स्थल को ही पारिभाषिक शब्दों में संधि-स्थल (Synapse) कहा जाता है। यह केवल क्रियात्मक संधि (Functional juncture) का द्योतक है। स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulse) प्रायः इस प्रकार के संधि-स्थल (Synapse) को पारकर दूसरे स्नायु-कोश (Neuron) के शिखातन्तुओं (Dendrites) में चला जाता है। फलतः स्नायु-प्रवाह (Nerve impulse) का शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में संचरण (Conduction) होता है।



चित्र स० २—दो स्नायु-कोशों का संधि-स्थल
(Synapse of the two neurons)

संधि-स्थल (Synapse) के संबंध में विचार करते समय वहाँ होनेवाली दो महत्त्वपूर्ण क्रियाओं पर विचार करना अनिवार्य हो जाता है। वे हैं—(१) संवर्द्धन (Facilitation) और (२) अवरोधन (Inhibition)। एक प्रकार के संवर्द्धन (Facilitation) को स्थानिक योग (Spatial summation) और दूसरे प्रकार के संवर्द्धन (Facilitation) को सामयिक योग (Temporal summation) कहते हैं। कई स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) एक या अधिक

तन्तुओं (Fibres) में आते रहते हैं, किन्तु वे इतने क्षीण (Weak) होते हैं कि संधि-स्थल (Synapse) को स्वत: पार नहीं कर पाते। पर संधि-स्थल पर मिलनेवाले अन्य स्नायु-प्रवाहों (Nerve-impulses) के सहयोग से वे उसे पार करने में समर्थ हो जाते हैं। इसे ही स्थानिक योग (Spatial summation) कहते हैं। उदाहरणार्थ, स्नायु-कोश (Neuron) 'अ' से आनेवाला स्नायु प्रवाह (Nerve-impulse) जब संधि-स्थल (Synapse) पर पहुँचता है तब 'अ' और 'स' स्नायु-कोश के संयोग से बने सधि-स्थल को स्वत: पार करने में अपने को असमर्थ पाता है। जब स्नायु-कोश 'ब' से उसी संधि-स्थल (Synapse) पर लगभग उसी समय आनेवाला स्नायु-प्रवाह भी उस संधि-स्थल को पार करने में अपने को असमर्थ पाता है तब वह पहले स्नायु-प्रवाह से मिल जाता है और इस योग (Summation) के फलस्वरूप वह संधि-स्थल को पार कर जाता है। इसे स्थानिक योग (Spatial summation) का ही परिणाम कहा जायगा। यह नीचे दिये गये चित्र (सं० ३) से स्पष्ट है।



चित्र-सं० ३—संधि-स्थलीय संगम
(Synaptic junction)

जब अति क्षीण स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulse) किसी तन्तु (Fibre) में आता है तब वह स्वयं संधि-स्थल (Synapse) को पार नहीं कर पाता। इसी प्रकार कई स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) वहाँ आते हैं, किन्तु वे स्वत: इसको पार नही कर पाते। किन्तु जब कई क्षीण स्नायु-प्रवाह एकत्र हो जाते हैं, तब उनमे समर्थता आ जाती है और वे संधि-स्थल (Synapse) को पार कर जाते ह। एक ही तन्तु (Fibre) मे एक के बाद दूसरे स्नायु-प्रवाहों के आने के कारण ही इसे सामयिक योग (Temporal summation) कहते हैं। स्पष्ट

है कि कई स्नायु-प्रवाह एक ही समय किसी तन्तु (Fibre) मे नही पहुँचते, बल्कि उनके आने मे थोडे समय का अन्तर रहता है।

स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) विभिन्न स्नायु-कोशो (Neurons) से सधि-स्थल पर पहुँचते है। उनमे जो स्नायु-प्रवाह अपेक्षाकृत अधिक तीव्र तथा अभियोजनात्मक (Adjustive) होता है, वह अन्य क्षीण स्नायु-प्रवाहो को रोककर सधि-स्थल (Synapse) को स्वय पार कर जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई किसी मेढक के चमडे को काटता है तो वह स्वभावत उछलता है और इस क्रिया द्वारा वह अपनी रक्षा करना चाहता है। किन्तु यदि वह काम (Sex) से अभिभूत होकर अपनी काम-वृत्ति (Sexual tendency) को तृप्त करने के लिए आलिगन की क्रिया मे सलग्न रहता है, तो इस काटने का उसपर अधिक प्रभाव नही पडता। स्पष्ट है कि काम-सबधी क्रिया (Sexual activity) सामान्य रक्षात्मक प्रतिक्षेप क्रिया (Normal protective reflex) को रोक लेती है। वास्तव मे स्नायु-मडल (Nervous system) की कुछ क्रियाएँ अथवा अवस्थाएँ (Activities or conditions) ठीक उसी समय घटित होने की कुछ अन्य क्रियाओ की सभावना को रोक लेती है। इसे ही अवरोधन (Inhibition) की सज्ञा दी जाती है।

स्नायु-मडल के सविभाग

(**Division of the Nervous system**)

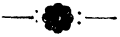
स्नायु-मडल (Nervous system) का विभाजन दो ढग से किया जा सकता है। पहले के अनुसार स्नायु-मडल को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) केन्द्रीय स्नायु-मडल (Central nervous system) और (२) सीमात स्नायु-मडल (Peripheral nervous system)। केन्द्रीय स्नायु-मडल (Central nervous system) का नर्माण मस्तिष्क (Brain) तथा सुषुम्ना (Spinal cord) से होता है। सीमात स्नायु-मडल (Peripheral nervous system) मे वे सभी स्नायु-पुज (Ganglia) तथा स्नायु-तन्तु (Nerve-fibres) सन्निहित रहते है, जो मस्तिष्क (Brain) और सुषम्ना (Spinal cord) के बाहर पाये जाते है। दूसरे के अनुसार भी स्नायु मडल (Nervous system) को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—(१) दैहिक स्नायु-मडल (Somatic nervous system) और (२)

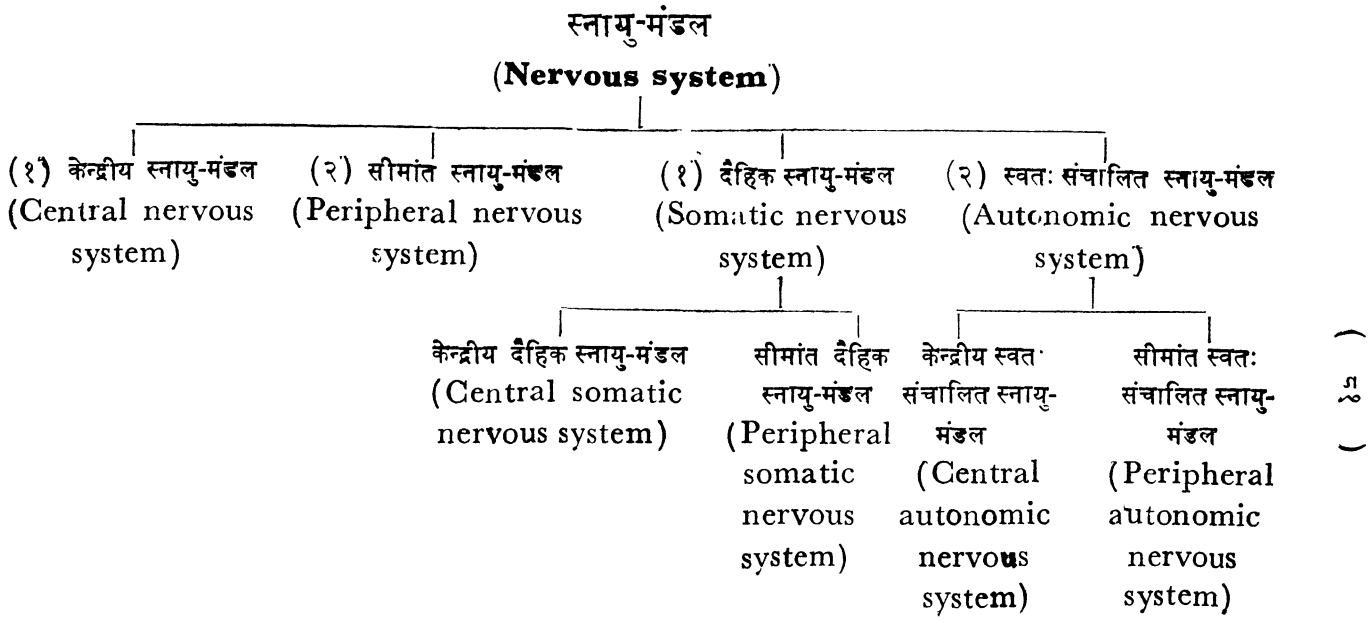
स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Autonomic nervous system)। स्वतः संचालित स्नायु-मंडल में केन्द्रीय स्नायु-मंडल (Central nervous system) के वे भाग और सीमांत स्नायु-मंडल (Peripheral nervous system) के वे स्नायु-कोश (Neurons) सन्निहित रहते हैं, जिनका संबंध अँतड़ियों की चिकनी मांसपेशियों (Smooth muscles of the intestines), रक्त-नालिकाओं (Blood-vessels) तथा जनन-संबंधी नालिका (Urogenital tract) की प्रतिक्रियाओं (Reactions) से रहता है। इसके अतिरिक्त, उनका संबंध हृदय की मांसपेशियों (Muscles) की प्रतिक्रियाओं (Reactions) से रहता है तथा पिंडों (Glands) की प्रतिक्रियाओं से भी उनका संबंध होता है, जो स्नायु-प्रवाहों (Nerve-impulses) को ग्रहण करते हैं। सामान्य रूप से स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Autonomic nervous system) आन्तरिक वातावरण (Internal environment) को नियन्त्रित करता है। दैहिक स्नायु-मंडल (Somatic nervous system) में केन्द्रीय और सीमांत स्नायु-मंडलों (Central and Peripheral nervous systems) के वे भाग सन्निहित रहते हैं, जो ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) से स्नायु-प्रवाहों (Nerve impulses) को संचारित करते हैं, उन्हें मस्तिष्क (Brain) में संगठित रूप देते हैं तथा गतिवाही स्नायु-प्रवाहों (Motor nerve-impulses) को शरीर और विभिन्न अंगों की धारीदार मांसपेशियों (Striped-muscles) में ले जाते हैं।

यद्यपि स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Autonomic nervous system) और दैहिक स्नायु-मंडल (Somatic nervous system के सीमांत छोर (Peripheral endings) एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं, तथापि केन्द्रीय स्नायु-मंडल (Central nervous system) और सीमांत स्नायु-मंडल (Peripheral nervous system) में इनका कोई स्पष्ट विभाजन नहीं है। तात्पर्य यह कि स्वतः संचालित और दैहिक स्नायु-मंडल (Autonomic and Somatic nervous systems) के स्नायु-कोश (Neurons) केन्द्रीय स्नायु-मंडल (Central nervous system) और सीमांत स्नायु-मंडल (Peripheral nervous system)— दोनों ही में पाये जाते हैं।

उपर्युक्त विवेचन को दृष्टिकोण में रखकर संपूर्ण स्नायु-मंडल Nervous system) के चार विभाग किये जा सकते हैं—(१)

सीमांत दैहिक स्नायु-मंडल (Peripheral somatic nervous system), (२) सीमांत स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Peripheral autonomic nervous system), (३) केन्द्रीय स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Central autonomic nervous system तथा (४) केन्द्रीय दैहिक स्नायु-मंडल (Cent al somatic nervous system)। निम्नांकित तालिका से स्नायु-मंडल (Nervous system) के विभाग स्पष्ट हो जाते हैं—




स्नायु-मंडल
(Nervous system)
(१) केन्द्रीय स्नायु-मंडल (Central nervous system)
(२) सीमांत स्नायु-मंडल (Peripheral nervous system)
(१) दैहिक स्नायु-मंडल (Somatic nervous system)
(२) स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Autonomic nervous system)
केन्द्रीय दैहिक स्नायु-मंडल (Central somatic nervous system)
सीमांत दैहिक स्नायु-मंडल (Peripheral somatic nervous system)
केन्द्रीय स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Central autonomic nervous system)
सीमांत स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Peripheral autonomic nervous system)

यहाँ स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Autonomic nervous system) तथा केन्द्रीय स्नायु-मंडल (Central nervous system पर सम्यक् रूप से प्रकाश डालना ही अभीष्ट है।

स्वतः संचालित स्नायु-मंडल

(Autonomic Nervous System)

स्वतः संचालित स्नायु-मंडल, मेरुदंड-रज्जु (Spinal cord) के समानान्तर स्नायु-कोशों के गुच्छों के तार (Chain of ganglia) के रूप में ऊपर से नीच तक फैला हुआ है। इन स्नायु-कोशों से निकलकर स्नायु-तन्तु (Nerve-fibres) शरीर के प्रायः सभी आन्तरिक अवयवों, जैसे हृदय, फेफड़ा, आमाशय, अँतड़ी, यकृत (Liver), गुर्दे (Kidneys), लार-पिण्ड (Salivary gland), स्वेद-पिण्ड (Sweat-gland), ऐड्रीनल पिण्ड (Adrenal gland), रक्त-नालिकाओं की दीवारों (Walls of blood-vessels) तथा पुतलियों को प्रसारित करनेवाली मांसपेशियों इत्यादि में जाते हैं। स्वतः संचालित स्नायु-मंडल इन सभी आन्तरिक अवयवों के कार्यों का संचालन एवं नियन्त्रण करता है। स्नायु-मंडल के इस विभाग को स्वतः संचालित स्नायु-मंडल इसलिए कहा जाता है कि इसे क्रियाशील बनाने के लिए किसी बाह्य उत्तेजना की आवश्यकता नहीं पड़ती, वरन्, यह भाग जिन अंगों की क्रियाओं को संचालित एवं नियन्त्रित करता है, उनकी ही गतियों से निरंतर उत्तेजित और क्रियाशील होता रहता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि स्वतः संचालित स्नायु-मंडल, केन्द्रीय स्नायु-मंडल से बिलकुल स्वतन्त्र है। वस्तुतः केन्द्रीय स्नायु-मंडल बहुत अधिक हद तक स्वतः संचालित स्नायु-मंडल की क्रियाओं पर अपना प्रभाव डाल सकता है। फिर भी साधारण अवस्था में दोनों की क्रियाएँ अलग-अलग और स्वतन्त्र रूप से ही चला करती हैं। सभी प्रकार की आत्म-प्रेरित अथवा ऐच्छिक क्रियाएँ (Voluntary actions) केन्द्रीय स्नायु-मंडल पर निर्भर करती हैं तथा अनात्मप्रेरित अथवा अनैच्छिक क्रियाएँ (Involuntary actions) अधिकांशतः स्वतः संचालित स्नायु-मंडल पर अवलम्बित रहती हैं।

स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Autonomic nervous system) में स्नायुविक क्रिया (Nervous activity) के दो मार्गों में भेद किया जा सकता है—(१) सहानुभूतिक प्रवाह (Sympathetic outflow)

सुषुम्ना (Spinal cord) के 'थोरैसिक' और 'लम्बर (Thoracic and lumbar) सुषुम्ना-स्नायुओं (Spinal nerves) से होकर प्रवाहित होता है। इसीलिए सहानुभूतिक मंडल (Sympathetic system) को 'थोरैसिको-लम्बर'-मंडल (Thoracico-lumbar system) भी कहते हैं। (२) उपसहानुभूतिक प्रवाह (Parasympathetic outflow) केन्द्रीय स्नायु-मंडल (Central nervous system) के 'क्रैनियल' (Cranial) और सैक्रल (Sacral) स्नायुओं (Nerves) से होकर प्रवाहित होता है। इसीलिए उपसहानुभूतिक मंडल को 'क्रैनियो-सैक्रल'-मंडल (Cranio-sacral system) भी कहा जाता है। स्वतः संचालित स्नायु-मंडल के विभागों (Divisions) को निम्नांकित वंश-वृक्ष की रेखाओं द्वारा व्यक्त किया जा सकता है--

स्वतः संचालित स्नायु-मंडल
(Autonomic Nervous System)

सहानुभूतिक मंडल (Sympathetic system) या 'थोरैसिको-लम्बर'-मंडल (Thoracico-lumbar system)	उपसहानुभूतिक मंडल (Parasympathetic system) या 'क्रैनियो-सैक्रल-मंडल (Cranio-sacral system)

सहानुभूतिक तथा उपसहानुभूतिक मंडलों (Sympathetic and Parasympathetic systems) के कार्य बहुधा परस्पर-विरोधी हुआ करते हैं। यदि सहानुभूतिमंडल सामान्यतः शरीर के आन्तरिक अवयवों को अधिक क्रियाशील बनाता है, तो उपसहानुभूतिक मंडल इनकी क्रियाओं में शिथिलता ला देता है। उदाहरणार्थ, यदि सहानुभूतिक मंडल के द्वारा हृदय की गति तीव्र होती है, तो उपसहानुभूतिक मंडल हृदय की गति में शिथिलता ला देता है। ऐड्रीनल पिण्ड (Adrenal gland) के अतिरिक्त प्रायः सभी आन्तरिक अवयवों में इन दोनों मंडलों (Systems) के स्नायु-तन्तु (Nerve-fibre) पाये जाते हैं। सामान्यतः जीवन में आन्तरिक अंगों की स्वाभाविक क्रियाएँ स्वतः संचालित स्नायु-मंडल के इन दोनों भागों की क्रियाओं के संतुलन पर ही निर्भर करती हैं। किन्तु जब कभी इन दोनों भागों की क्रियाओं का संतुलन भंग हो जाता है, तब आन्तरिक अवयवों की स्वाभाविक गतियों में भी अराजकता आ जाती है। साधारणतः किसी आकस्मिक घटना अथवा उत्तेजना के उपस्थित होने पर सहानुभूतिक मंडल

अधिक क्रियाशील हो उठता है। फलतः हृदय की धड़कन तथा नाड़ी का गति बढ़ जाती है। परन्तु, जब मनुष्य शान्त और प्रसन्न रहता है, तब दोनों मंडलों (सहानुभूतिक मंडल तथा उपसहानुभूतिक मंडल) की क्रियाशीलताएँ संतुलित होती हैं। उपसहानुभूतिक मंडल की अधिक क्रियाशीलता के परिणाम-स्वरूप व्यक्ति बिलकुल शिथिल हो जाता है।

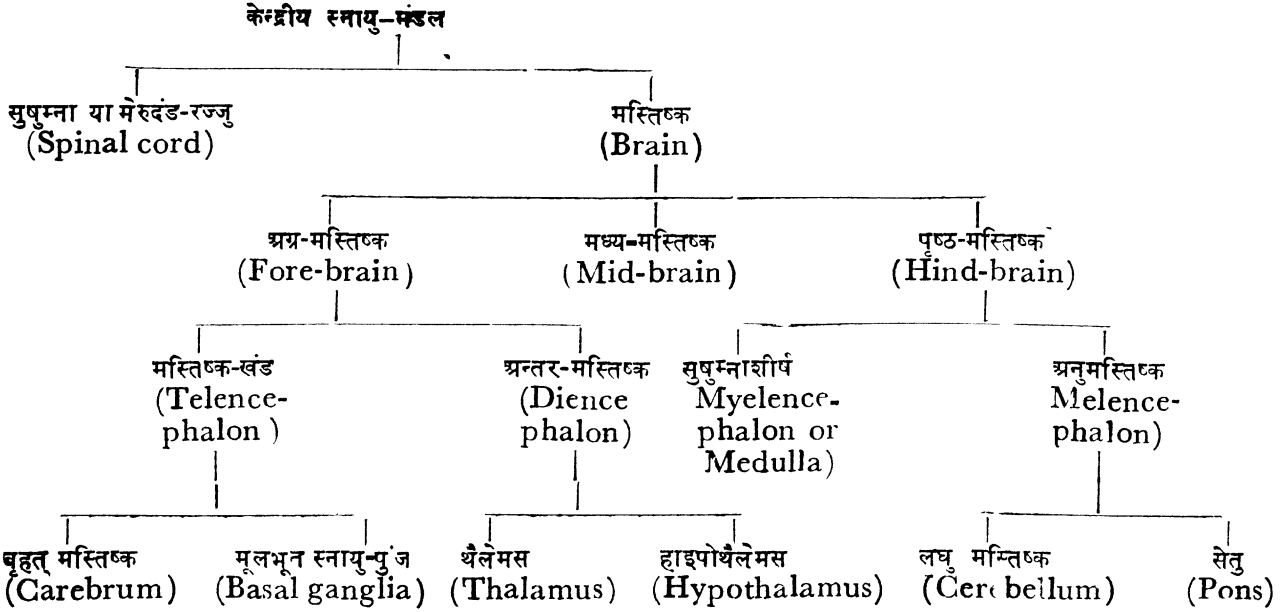
संवेगों में सहानुभूतिक मंडल का विशेष हाथ रहता है। संवेगों में होने-वाले शारीरिक परिवर्त्तनों, जैसे हृदय की गति का बढ़ना, रक्त-प्रवाह का तीव्र होना, रोंगटे खड़े होना, पसीना आना इत्यादि का नियंत्रण सहानुभूतिक मंडल द्वारा ही होता है। अतः संवेगों के अध्ययन में इसका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

केन्द्रीय स्नायु-मंडल

(**Central nervous system**)

केन्द्रीय स्नायु-मंडल (Central nervous system) के दो प्रधान विभाग किये जा सकते हैं—(१) सुषुम्ना या मेरुदंड-रज्जु (Spinal cord), (२) मस्तिष्क (Brain)। पुनः मस्तिष्क के कई विभाग किये जा सकते हैं। प्रायः शरीर-वैज्ञानिकों (Physiologists) ने इसके पाँच विभाग किये हैं—(१) अंतर-मस्तिष्क (Diencephalon), (२) मस्तिष्क-खंड (Telencephalon), (३) मध्य मस्तिष्क (Mesencephalon or Mid-brain), (४) अनुमस्तिष्क (Metencephalon) और (५) सुषुम्ना-शीर्ष (Myelencephalon or Medulla)। इन विभागों को इसलिए अपनाया जाता है कि इन्हें भ्रूण-संबंधी विकास (Embryological development) के क्रम में बतलाया जा सकता है। मस्तिष्क (Brain) के प्रारम्भिक विकास-काल में उसके तीन विभाग किये गये—(१) अग्र मस्तिष्क (Fore-brain), (२) मध्य मस्तिष्क (Mid-brain) और (३) पृष्ठ-मस्तिष्क (Hind brain)। बाद को अग्र-मस्तिष्क (Fore brain) के दो विभाग किये गये—(१) मस्तिष्क-खंड (Telencephalon) और (२) अन्तरमस्तिष्क (Diencephalon)। इसी प्रकार पृष्ठ-मस्तिष्क (Hind brain) और (२) सुषुम्ना-शीर्ष (Myelencephalon or Medulla)। मध्य-मस्तिष्क (Mid-brain) का कोई विभाग नहीं किया गय। पृष्ठ-सं० ८५ की वंश वृक्ष में केन्द्रीय स्नायु-मंडल (Central nervous system) के विभागों को दिखलाया गया है।

केन्द्रीय स्नायु-मंडल के संविभाग

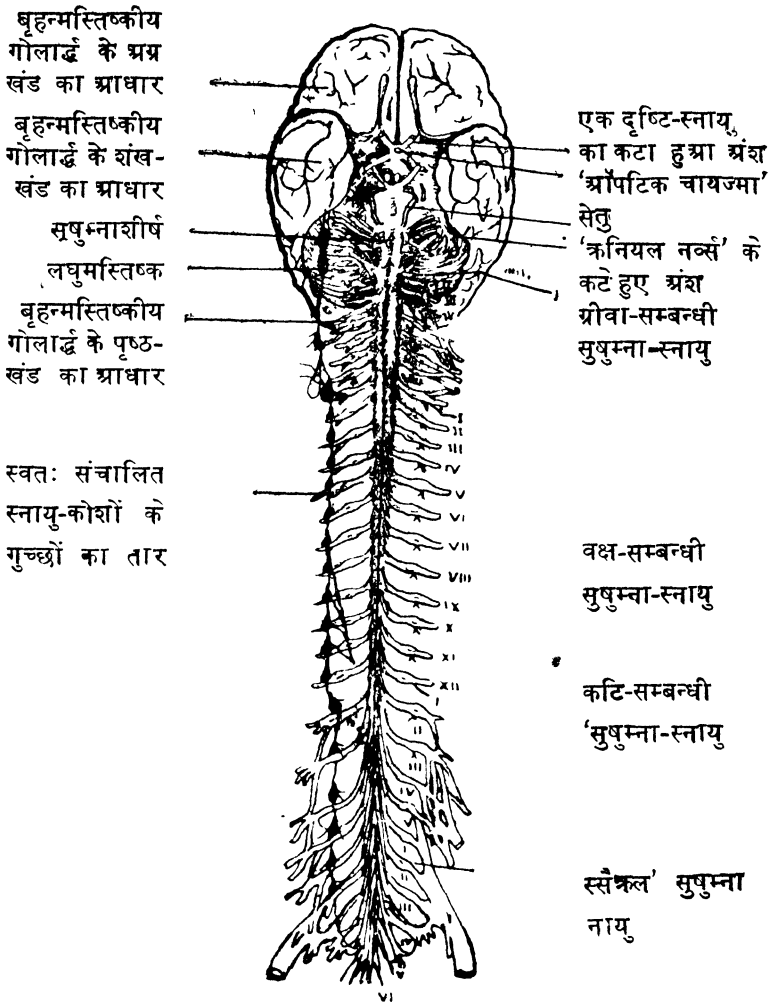


यहां सुषुम्नाशीर्ष (Medulla), अनुमस्तिष्क (Metencephalon) के अन्तर्गत लघु मस्तिष्क (Cerebellum) और सेतु (Pons), मध्य मस्तिष्क (Mid-brain), अन्तरमस्तिष्क (Diencephalon) के अन्तर्गत थैलेमस (Thalamus) और हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) तथा मस्तिष्क-खंड (Telencephalon) के अन्तर्गत बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) और मूलभूत स्नायु-पुंजों (Basal ganglia) पर विचार व्यक्त करना अभिप्रेत है।

सुषुम्ना या मेरुदंड-रज्जु (Spinal cord):—मेरुदंड वह हड्डी है, जो गर्दन से प्रारंभ होकर पीठ से होती हुई पुच्छ की हड्डी (Tailbone) तक चली गई है। इस रीढ़ की हड्डी के भीतर केन्द्रीय स्नायु-मंडल (Gentral nervous system) का एक लंबा भाग है, जिसे सुषुम्ना या मेरुदंड-रज्जु कहते है। सुषुम्ना लगभग अट्ठारह इंच लंबी होती है। इससे स्नायु-तन्तुओं (Nerve-fibres) के इकतीस जोड़े निकलते है। ये सभी स्नायु-तन्तु (Nerve-fibres) सुषुम्ना के दोनों ओर से उसमें जुड़े हुए होते है और वहीं से निकलकर ये समस्त शरीर मे फैल जाते है। इन्हें चार प्रधान वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) ग्रीवा-संबंधी सुषुम्ना-स्नायु (Cervical spinal nerves), (२) वक्ष-संबंधी सुषुम्ना स्नायु (Thoracic spinal nerves), (३) कटि-संबंधी सुषुम्ना-स्नायु (Lumbar spinal nerves) और (४) 'सैक्रल' सुषुम्ना-स्नायु (Sacral spinal nerves)

सुषुम्ना-स्नायुओं का वर्गीकरण	संख्या
(१) ग्रीवा-संबंधी सुषुम्ना-स्नायु (Cervical spinal nerves)	८
(२) वक्ष-संबंधी सुषुम्ना स्नायु (Thoracic spinal nerves)	१२
(३) कटि-संबंधी सुषुम्ना-स्नायु (Lumbar spinal nerves)	५
(४) 'सैक्रल' सुषुम्ना स्नायु (Sacral spinal nerves)	६

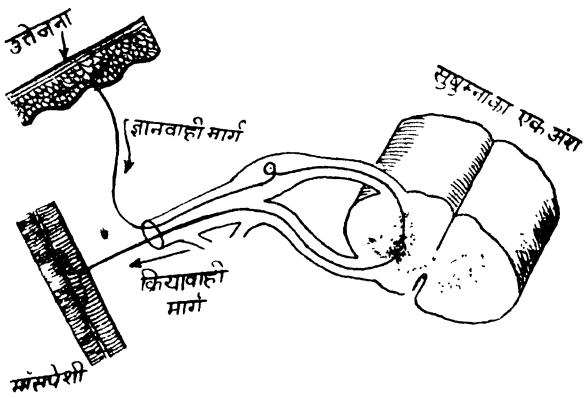
निस्सन्देह, मस्तिष्क (Brain), समन्वय (Integration) का सर्वोच्च तथा सबसे महत्त्वपूर्ण केन्द्र (Centre) है। कुछ स्नायु-प्रवाह



चित्र-सं० ४—स्नायु-मंडल का सामान्य चित्र, जिसमें मस्तिष्क, सुषुम्ना तथा स्नायुएं दिखलाई गई हैं।

Nerve-impulses) मस्तिष्क में आते हैं और मस्तिष्कीय स्नायुओं Cranial nerves) के द्वारा यहाँ से बाहर जाते हैं। पर सिर के तिरिक्त समस्त शरीर से स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) सुषुम्ना Spinal cord) के द्वारा ही मस्तिष्क में आते हैं। चेहरा और र्दन को छोड़कर मस्तिष्क (Brain) शरीर की सभी क्रियाओं को

संचरण-मार्गों (Conduction paths) के सहारे नियंत्रित करता है। ये संचरण-मार्ग (Conduction paths) सुषुम्ना में पाये जाते हैं। ये मस्तिष्क (Brain) और सुषुम्ना-स्नायुओं (Spinal nerves) के अनेक प्रवेशों (Entrances) और निर्गमों (Exits) के बीच ऊपर और नीचे की ओर हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि संचरण (Conduction) सुषुम्ना (Spinal cord) का सर्वप्रथम और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके अतिरिक्त, यह प्रतिक्षेप-क्रियाओं (Reflex actions) के लिए एक समन्वयात्मक केन्द्र (Integrative centre) का कार्य करता है। इसी के द्वारा प्रतिक्षेपों (Reflexes) का संचालन और नियंत्रण होता है। विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों (Sense-



चित्र-सं० ५—दो स्नायु-कोशों का प्रतिक्षेप-धनु
(A two-neuron reflex arc)

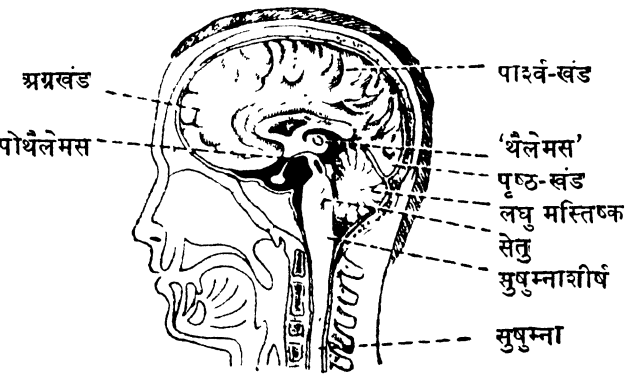
organs) से स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) अन्तर्वाहक या ज्ञानवाही स्नायुओं (Afferent or sensory nerves) के द्वारा सुषुम्ना (Spinal cord) में आते हैं। बहिर्वाहक या गतिवाही स्नायुएँ (Efferent or motor nerves) उन स्नायु-प्रवाहों (Nerve-impulses) को सुषुम्ना (Spinal cord) से बाहर मांसपेशियों (Muscles) और पिंडों (Glands) में ले जाती हैं। फलतः व्यक्ति क्रियाशील (Active) हो जाता है। इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) से कर्मेन्द्रियों (Motor organs) तक के संपूर्ण मार्ग को प्रतिक्षेप-धनु (Reflex arc) कहते हैं, जो चित्र-सं० ५ से स्पष्ट है।

मस्तिष्क
(**Brain**)

सुषुम्नाशीष (Medulla or Myelencephalon):—सुषम्नाशीर्ष सुषुम्ना (Spinal cord) के ऊपरी भाग को कहते हैं, जहाँ मस्तिष्क से उसका सम्बन्ध रहता है। सुषुम्नाशीर्ष केवल एक ही इंच लम्बा होता है। यह शरीर की प्राण-सम्बन्धी सभी क्रियाओं (All vital functions of the body) का संचालन एवं नियन्त्रण करता है। उदाहरण के लिए, साँस लेने की क्रिया तथा शरीर के भीतर रक्त-प्रवाह (Blood circulation) इत्यादि क्रियाएँ सुषुम्नाशीर्ष से ही संचालित एवं नियन्त्रित होती हैं। इसकी सभी क्रियाएँ अचेतन (Unconscious) होती हैं। सुषुम्ना के समान यह भी एक प्रधान व्यवस्था-केन्द्र (Adjustment centre) है। यह सुषुम्ना को मस्तिष्क के ऊँचे केन्द्रों (Higher centres of the brain) से मिलाता है। यह भी अपने क्षेत्र के प्रतिक्षेपों (Reflexes) का संचालन एवं नियन्त्रण करता है।

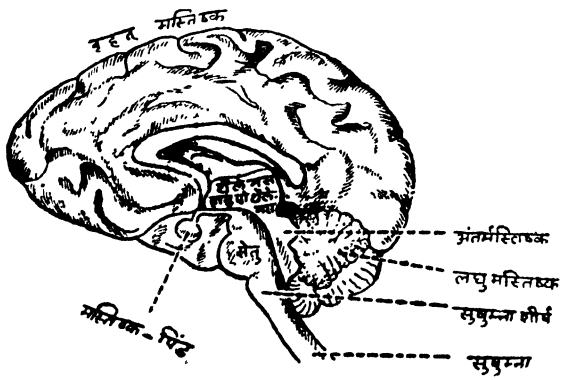
अनुमस्तिष्क (Metencephalon):—अनुमस्तिष्क के दो भाग हैं—(१) सेतु (Pons) और (२) लघु मस्तिष्क (Cerebellum)।

सेतु (Pons):—यह लघु मस्तिष्क के दोनों भागों को मिलाये रखता है। सेतु सुषुम्नाशीर्ष के ठीक ऊपर पाया जाता है। यह तन्तु-विस्तारों (Fibre-tracts) एवं विशेष प्रकार के व्यवस्था-केन्द्रों (Adjustment centres) से बना हुआ होता है।



चित्र-सं० ६—मानव-मस्तिष्क, जिसमें दाहिना बृहन्मस्तिष्कीय अर्द्धखंड तथा उसका खोपड़ी में स्थान दिखलाया गया है।

लघु मस्तिष्क (Cerebellum):—लघु मस्तिष्क, बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) के नीचे स्थित है। यह दो अर्द्धखंडों में बँटा हुआ है। एक ओर यह अनेक स्नायु-तन्तुओं (Nerve-fibres) के द्वारा सुषुम्नाशीर्ष (Medulla) से सम्बन्धित तथा दूसरी ओर सेतु के द्वारा बृहत् मस्तिष्क से संबंधित है। यह विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं में सम्बन्ध स्थापित करता है। यह सभी प्रकार की शारीरिक गतियों को संगठित रूप से संचालित एवं नियन्त्रित करता है। फलस्वरूप, शरीर की विभिन्न क्रियाओ में सन्तुलन (Balance) स्थापित हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि शरीर को संतुलित रखना, लघु मस्तिष्क का ही काम है। यदि किसी पशु के मस्तिष्क का यह भाग 'ऑपरेशन' (Operation) द्वारा बाहर निकाल लिया जाय, तो सम्भवतः उसकी शारीरिक क्रियाओं में संतुलन का अभाव हो जायगा। फलतः वह चल-फिर नहीं सकेगा। मनुष्य के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। प्रायः यह देखा जाता है कि शराबी नशे में चूर होकर अपनी सुध-बुध खो बैठता है। वह अपने को सँभाल नहीं पाता। कभी उसके पैर लड़खड़ाते हैं, तो कभी वह गंदी नालियों में जा गिरता है। इस प्रकार उसकी विभिन्न शारीरिक गतियों के संतुलन में स्पष्टतः अभाव जान पड़ता है। इसका प्रधान कारण है—लघु मस्तिष्क की विवशता एवं निष्क्रियता। लघु मस्तिष्क में यह निष्क्रियता शराब के प्रभाव से आ जाती है।



चित्र-सं० ७—मानव-मस्तिष्क, जिसमें वृहत् मस्तिष्क तथा लघु मस्तिष्क का स्थान दिखलाया गया है।

मध्य-मस्तिष्क (Mid brain or Mesencephalon):— मध्य मस्तिष्क (Mid-brain) अपेक्षाकृत छोटा होता है। यह अग्र-मस्तिष्क (Fore-brain) और पृष्ठ-मस्तिष्क (Hind-brain) के बीच संबंध स्थापित करता है। इसके दो महत्त्वपूर्ण भाग है—(१) छत (Tectum or roof) तथा सतह (Floor)। मध्य मस्तिष्क की सतह (Floor) स्नायु-मंडल (Nervous system) के उच्च तथा निम्न भाग (Higher and lower parts) को मिलानेवाला पथ है। इसमे ज्ञानवाही स्नायुएँ (Sensory nerves) ऊपर की ओर जाती है और गतिवाही स्नायुएँ (Motor nerves) नीचे की ओर। मध्य मस्तिष्क (Mid brain) की सतह पर कुछ गतिवाही प्रतिक्षेप-केन्द्र (Motor reflex centres) भी हैं, जिनके द्वारा गतिवाही प्रतिक्षेप-क्रियाएँ (Motor reflex actions) संचालित और नियंत्रित होती है; जैसे, सिर हिलाना इत्यादि।

मध्य मस्तिष्क (Mid-brain) की छत (Tectum or roof) ज्ञानवाही क्रियाओं (Sensory activities) को संचालित और नियंत्रित करती है। विशेष रूप से निम्नकोटि के प्राणियों (Lower organisms) में देखने तथा सुनने की क्रियाएँ इसीके द्वारा नियंत्रित होती है।

अन्तरमस्तिष्क (Diencephalon):— अन्तरमस्तिष्क के जिन दो प्रधान भागों का यहाँ उल्लेख किया जायगा, वे है—(१) थैलेमस (Thalamus) और (२) हाइपोथैलेमस (Hypothalamus)

थैलेमस (Thalamus):—थैलेमस, लघु मस्तिष्क (Cerebellum) के सामने तथा बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) के नीचे का भाग है। इसमें अनेक कोष-केन्द्र (Nuclei) पाये जाते है, जो परस्पर संबंधित होते हैं। उनका मस्तिष्क (Brain) तथा सुषुम्ना (Spinal cord) के निम्न केन्द्रों (Lower centres) और मस्तिष्क-खंड (Telencephalon) के बृहन्मस्तिष्कीय अर्द्धखंडो (Cerebral hemispheres) से संबंध रहता है। थैलेमस के समुचित ज्ञान के लिए उसके ऊपर स्थित बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) की जानकारी आवश्यक है। बृहन्मस्तिष्कीय बल्क की चर्चा आगे की जायगी। यहाँ उस ओर संकेत-मात्र ही पर्याप्त है। संवेगों (Emotions) के संचालन एवं नियंत्रण में थैलेमस का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका उल्लेख पुनः संवेग (Emotion) के अध्याय में किया जायगा।

हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) —हाइपोथैलेमस, थैलमस (Thalamus) के नीचे स्थित है। यह स्वत सचालित क्रियाओ (Autonomic functions) को नियत्रित करता है। इसका महत्त्व केवल इस बात को लेकर नही कि यह स्वत सचालित क्रियाओ (Autonomic functions) की सृष्टि करता है, बल्कि इससे भी अधिक महत्त्व इस बात को लेकर है कि यह स्वत सचालित क्रियाओ को एक सगठित रूप देता है। फलस्वरूप, प्राणी (Organism) अपने को आन्तरिक वातावरण (Internal environment) के साथ अभियोजित करने मे सफल होता है।

निस्सन्देह, हाइपोथैलेमस का स्वत सचालित स्नायु-मडल (Autonomic nervous system) से घनिष्ठ सबध है। अत जब कभी इसे बिजली द्वारा उत्तेजित किया जाता है, तब सहानुभूतिक (Sympathetic) तथा उपसहानुभूतिक (Parasympathetic), दोनो मडलो (Systems) में क्रियाशीलता आ जाती है। इसके अतिरिक्त, इसके द्वारा अन्य प्रकार की क्रियाएँ भी सपन्न होती है। शरीर-तापक्रम (Body temperature) इसी पर आधारित है। रक्त-चाप (Blood pressure) का नियत्रण (Control) तथा मस्तिष्क मे उसका वितरण (Distribution), प्रधान रूप से इसी पर निभर करता है। काम-सम्बन्धी क्रियाओ (Sexual activities) का नियत्रण भी इसीके द्वारा होता है। भूख-प्यास से सबद्ध शारीरिक अवस्थाएँ (Physiological conditions) प्रधानत हाइपोथैलेमस की क्रियाओ पर ही निर्भर है। शारीरिक पाक-क्रिया (Metabolism) का सचालन भी यही करता है। अन्त मे, यह उल्लेख्य है कि आन्तरिक शारीरिक क्रियाओ और सवेगात्मक व्यवहारो मे इसका बडा महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है।

मस्तिष्क-खंड (Telencephalon)—इसके अन्तर्गत मूलभूत स्नायु-पु जो (Basal ganglia) और बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) पर विचार किया जायगा।

मूलभूत स्नायु-पुंज (Basal ganglia) —मूलभूत स्नायु-पु ज (Basal ganglia) मस्तिष्क-खड (Telencephalon) के सबसे पुराने भाग है। ये भूरे पदार्थों (Gray matter) की राशि (Mass है, जो बल्क (Cortex) के नीचे पाये जाते है। अधिकाश थैलेमस के

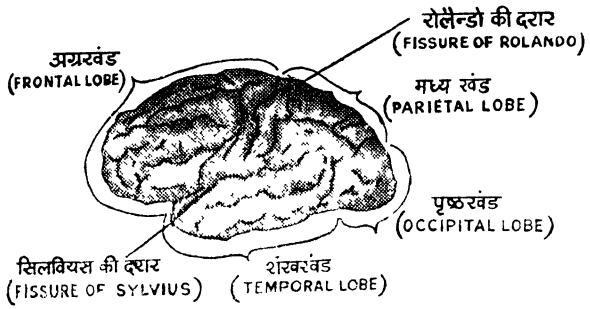
ऊपर और कुछ अन्तरमस्तिष्क (Diencephalon) एवं मध्य मस्तिष्क (Mid-brain) के बीच में होते हैं। इस मूलभूत स्नायु-पुंज (Basal ganglia) का ही एक भाग, जो धारीदार (Striped) दीख पड़ता है, 'कॉर्पस-स्ट्रीएटम' (Corpus striatum) कहलाता है। 'कॉर्पस स्ट्रीएटम' एक जटिल (Complex) एवं महत्त्वपूर्ण रचना (Structure) है।

अन्त में, मूलभूत स्नायु-पुंज (Basal ganglia) की कार्यवाही का उल्लेख करते हुए कहा जा सकता है कि प्राणी (Organism) की शारीरिक मुद्रा (Bodily posture) को कायम रखने में इसका बड़ा हाथ होता है। इसके अतिरिक्त, गति-संगठन (Co-ordination of movement) के कुछ पहलू (Aspects) भी मूलभूत स्नायु-पुंज (Basal ganglia) पर ही निर्भर हैं।

बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum)—बृहत् मस्तिष्क, मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। यह भी लघु मस्तिष्क (Cerebellum) की ही तरह दो अर्द्धखंडों में विभक्त है—(१) दाहिना अर्द्धखंड (Right hemisphere) तथा (२) बायाँ अर्द्धखंड (Left hemisphere)। दाहिना अर्द्धखंड शरीर के बायें हिस्से की सभी चेतन (Conscious) तथा अचेतन (Unconscious) क्रियाओं का संचालन एवं नियंत्रण करता है। उसी प्रकार बायाँ अर्द्धखंड शरीर के दाहिने हिस्से की सभी क्रियाओं का संचालन एवं नियंत्रण करता है। बृहत् मस्तिष्क की शक्ल अखरोट के समान ऊबड़-खाबड़ होती है।

विकासवाद (Evolution) पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) स्नायु-मंडल के अन्य भागों की अपेक्षा उत्तरोत्तर जटिल (Compex) और अपने आकार में बड़ा होता गया है। निम्न प्राणियों (Lower organisms) में संपूर्ण मस्तिष्क का यह एक छोटा-सा भाग है। किन्तु मनुष्य का बृहत् मस्तिष्क अत्यन्त जटिल होता है और आकार में भी बड़ा होता है। निम्न प्राणियों (Lower organisms) में बृहत् मस्तिष्क की सतह (Surface) अपेक्षाकृत चिकनी होती है। किन्तु उच्च प्राणियों (Higher organisms) में इसकी सतह ऊबड़-खाबड़ होती है। बृहन्मस्तिष्कीय अर्द्धखंडों (Cerebral hemispheres) की बाहरी परत (Outer layer) को बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral

cortex) कहते हैं। यह कहीं धँसा हुआ और कहीं उभरा हुआ होता है। धँसे हुए भाग को दरार (Fissures) कहते हैं। दो प्रधान दरारें (fissures) हैं, जिन्हें मध्य दरार (Central Fissure) और पार्श्व दरार (Lateral fissure) कहते हैं। इन्हें क्रमशः



चित्र-सं० ८—इसमें बृहन्मस्तिष्कीय बल्क की दरारों (Fissures) और बृहत् मस्तिष्क के खंडों (Lobes) को दिखलाया गया है।

रोलैण्डो की दरार (Fissure of Rolando) और सिलवियस की दरार (Fissure of Sylvius) भी कहते हैं। इनके द्वारा बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) चार खंडों में बँटा हुआ है—(१) अग्रखंड (Frontal lobe); (२) मध्यखंड (Parietal lobe), (३) पृष्ठखंड (Occipital lobe) और (४) शंख-खंड (Temporal lobe)।

बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के ऊपरी भाग में भूरे पदार्थ (Gray matter) पाये जाते हैं। यहाँ यह उल्लेख्य है कि बृहन्मस्तिष्कीय अर्द्धखंडों (Cerebral hemispheres) के अधिकांश भागों में श्वेत पदार्थ (White matter) ही पाये जाते हैं। श्वेत पदार्थ (White matter) बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के नीचे होते हैं, जो स्नायु-तन्तुओं (Nerve-fibres) के ही अंश होते हैं। इनके निम्नांकित प्रधान कार्य हैं—(१) ये एक अर्द्धखंड (Hemisphere) में बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के विभिन्न क्षेत्रों (Areas) के बीच सम्बन्ध स्थापित करते हैं। (२) एक अर्द्धखंड (Hemisphere) के बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) को दूसरे अर्द्धखंड (Hemisphere) के बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral

cortex) से संबंधित करते हैं। (३) बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) का सुषुम्ना (Spinal cord) या मस्तिष्क (Brain) के निम्न केन्द्रों (Lower centres) से संबंध स्थापित करते हैं।

वे तन्तु (Fibres), जो एक ही अर्द्धखंड (Hemisphere) में दो क्षेत्रों (Areas) के बीच संबंध स्थापित करते हैं, साहचर्य-तन्तु (Association fibres) कहलाते हैं। वे जो दोनों अर्द्धखंडों (Hemispheres) के बीच संबंध स्थापित करते हैं, संयोजक तन्तु (Commissural fibres) कहे जाते हैं और व जो बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) का निम्न केन्द्रों (Lower centres) से संबंध स्थापित करते हैं, प्रक्षेपण-तन्तु (Projection fibres) कहलाते हैं।

बृहन्मस्तिष्कीय बल्क की क्रियाएँ
(Functions of the Cerebral cortex)

बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum)–एक संयोजक केन्द्रके रूप में (The Cerebrum as a co-ordinating Centre):-

बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) एक संयोजक केन्द्र (Co-ordinating centre) अथवा संयोजक केन्द्रों के एक समुदाय (A group of co-ordinating centres) के रूप में काम करता है। यहाँ विभिन्न ग्राहकेन्द्रियों (Receptor organs) से स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) आते हैं एवं विभिन्न ऊँचे केन्द्रों (Highr centres) में जाते हैं और पुनः सारे शरीर की मांसपेशियों (Muscles) तथा पिण्डों (Glands) में चले जाते हैं। यह उल्लेखनीय है कि विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) से आये हुए स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के कुछ विशेष क्षेत्रों (Specific areas) में जाते हैं। कुछ ऐसे भी सुनिश्चित क्षेत्र (Areas) हैं, जिनके द्वारा वे स्नायु-प्रवाह (Nerve-impules) मांसपेशियों (Muscles) और पिण्डों में चले जाते हैं।

बृहन्मस्तिष्कीय बल्क में क्रियाओं का स्थान-निरूपण (Localization of functions in the cerebral cortex):—

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में मस्तिष्क-वैज्ञानिकों (Phrenologists) ने मस्तिष्क (Brain) में क्रियाओं के स्थान-निरूपण-संबंधी कुछ सिद्धांत

उपस्थित किये। उनका कहना था कि प्रत्येक मानसिक क्रिया का मस्तिष्क के विशेष क्षेत्र (Specific area) में स्थान-निरूपण (Localization) संभव है। वैज्ञानिक विधियों (Scientific methods) के सहारे जब इस समस्या का अध्ययन किया गया, तब जान पड़ा कि मस्तिष्क-वैज्ञानिकों (Phrenologists) के विचारों का कोई ठोस वैज्ञानिक आधार नहीं था, वे काल्पनिक ही थे। किन्तु वैज्ञानिक पद्धतियों (Scientific techniques) के आधार पर भी यह पाया गया कि संगठन की प्रक्रिया (Process of co-ordination) के रूप में बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) का मानचित्र (Map) खींचा जा सकता है और इस प्रकार उसके कुछ निश्चित क्षेत्र (Definite areas) बतलाये जा सकते हैं। वे ये हैं—(१) ज्ञानवाही क्षेत्र (Sensory area); (२) गतिवाही क्षेत्र (Motor area) और (३) साहचर्य क्षेत्र (Association area)।

बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के मानचित्र खींचने और विभिन्न क्षेत्रों (areas) के स्थान-निरूपण (Localization) में निम्नांकित पद्धतियों का प्रयोग किया गया है—

(१) बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के कुछ क्षेत्रों (Areas) के आकस्मिक विनाश (Accidental destruction) के कारण उत्पन्न ज्ञानवाही और गतिवाही प्रभावों (Sensory and motor effects) का अध्ययन।

(२) मस्तिष्क के कुछ भागों को ऑपरेशन द्वारा हटा लेने के कारण उत्पन्न प्रभावों (Effects) का अध्ययन।

(३) निम्न पशुओं (Lower animals) के मस्तिष्क के कुछ विशेष क्षत्रों (Specific areas) के प्रयोगात्मक विनाश (Experimental destruction) के कारण उत्पन्न प्रभावों (Effects) का अध्ययन।

(४) मनुष्य तथा निम्न पशुओं (Lower animals) के मस्तिष्क के कुछ क्षेत्रों (Areas) के विद्युद्दीपन (Electrical stimulation) के कारण उत्पन्न प्रभावों (Effects) का अध्ययन।

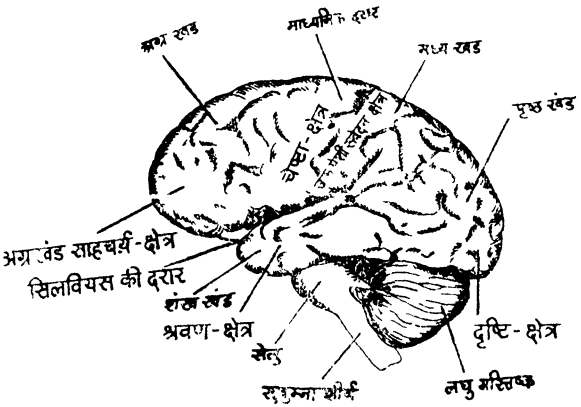
(५) स्नायु-ह्रास (Nerve-degeneration) की परीक्षा—व्यक्ति की मृत्यु के कुछ देर पहले स्नायु-कोशों (Nerve-cells) के आकस्मिक विनाश (Accidental destruction) के कारण स्नायु-ह्रास (Nerve-degeneration) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जब

व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तब स्नायु-ह्रास (Nerve-degeneration) की परीक्षा की जाती है।

उन्नीसवीं सदी में फ्लोरेंस (Flouraens) ने इस क्षेत्र में प्रथम प्रयोगात्मक अध्ययन किया। उनके अधिकाश अनुसंधान कबूतरों के मस्तिष्क से संबंधित थे। उनके बाद हिट्जिग (Hitzig) और फ्रिस्क (Fritsch) ने कुत्तों के बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के विभिन्न क्षेत्रों (Areas) के उद्दीपन (Stimulation) के कारण उत्पन्न प्रभाव का विस्तृत अध्ययन किया। आधुनिक शल्य-पद्धतियो (Surgical techniques) से भी मस्तिष्क की क्रियाओं के सबंध में कई महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात हुई है।

बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के ज्ञानवाही क्षेत्र
(**Sensory areas of the Cerebral Cortex**)

दृष्टि-क्षेत्र (Visual areas):—पृष्ठ-खंड (Occipital lobe) में पाये जानेवाले बल्कीय क्षेत्र (Cortical area) द्वारा दृष्टि-संवेदना (Visual sensation) संचालित और नियंत्रित होती है



चित्र-सं० ९—इसमे बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के विभिन्न क्षेत्र दिखलाये गये है।

दृष्टि-तन्तुओं (Visual fibres) के मार्ग बड़े ही विचित्र है। दृष्टि-स्नायुएँ (Optic nerves) ठीक आँखो के पीछे एक-दूसरी से मिलती है और तन्तुओ (Fibres) का पुनर्वितरण (Redistribution) होता है।

फलतः वे तन्तु (Fibres), जो दाहिनी आँख के अक्षिपट (Retina) के वामार्द्ध (Left-half) से आते हैं, बायीं दृष्टि-स्नायु (Left optic nerve) के अंग बन जाते हैं और वे जो बायीं आँख के अक्षिपट (Retina) के दक्षिणार्द्ध (Right-half) से आते हैं, दाहिनी दृष्टि-स्नायु (Right optic nerve) के अंग बन जाते हैं। फिर ये पुनर्वितरित (Redistributed) दृष्टि-स्नायुएँ (Optic nerves) क्रमशः बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) के बायें और दाहिने अर्द्धखंडों (Left and right hemisphere) में चली जाती हैं। फलस्वरूप, यदि दाहिने अर्द्धखंड (Right hemisphere) का दृष्टि-क्षेत्र (Visual areas) क्षतिग्रस्त हो जाता है तो दोनों आँखों के दक्षिणार्द्ध (Right half) में दृष्टि-दोष या अंधापन आ जाता है। इसी प्रकार बायें अर्द्धखंड (Left hemisphere) के दृष्टि-क्षेत्र के क्षतिग्रस्त हो जाने पर दोनों आँखों के वामार्द्ध (Left-half) में दृष्टि-दोष आ जाता है। यदि दोनों अर्द्धखंडों (Hemispheres) के दृष्टि-क्षेत्र (Visual areas) बिलकुल नष्ट हो जायँ, तो पूर्ण अंधापन (Total blindness) आ जाता है।

अन्य ज्ञानवाही क्षेत्रों (Sensory areas) की अपेक्षा दृष्टि-क्षेत्रों के संबंध में सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सकता है। हम यह भलीभाँति जानते हैं कि बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के दृष्टि-क्षेत्रों में पाये जानेवाले कोषाणु (Cells) आँख के ग्राहक कोशों (Receptor cells) का प्रतिनिधित्व करते हैं। हम यह भी जानते हैं कि यदि मस्तिष्क के इन दृष्टि-क्षेत्रों (Visual areas) को नष्ट कर दिया जाय तो व्यक्ति स्थायी रूप से पूर्ण अंधा हो जायगा। बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) का कोई भी दूसरा कोषाणु (Cell) दृष्टि-क्षेत्र की क्रियाओं को संपन्न नहीं कर सकता। सचमुच यह बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के द्वारा होनेवाली क्रिया के सर्वोच्च विशेषीकरण (Specilization) का उदाहरण है।

श्रवण-क्षेत्र (Auditory area)—श्रवण-क्षेत्र शंख-खंड (Temporal lobe) के ऊपरी भाग में पाया जाता है। जब अंतःकर्णों (Inner-ears) में पाये जानेवाले ग्राहक कोशों (Receptor cells) से स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) शंख-खंडों (Temporal lobes) के श्रवण-क्षेत्र में जाते हैं, तब सुनने की संवेदना (Sensation of hearing)

होती है। दृष्टि-स्नायुओ (Optic nerves) की तरह श्रवण-स्नायुओ (Auditory nerves) मे भी कई प्रकार के तन्तु (Fibres) होते हैं। उनमे से कुछ दाहिने कान से मस्तिष्क (Brain) के बाये शख-खड (Left temporal lobe) के श्रवण-क्षेत्र (Auditory area) मे जाते हैं और कुछ बाये कान से मस्तिष्क के दाहिने शख-खड (Right temporal lobe) के श्रवण-क्षेत्र (Auditory area) मे चले जाते हैं। मस्तिष्क (Brain) के केवल एक भाग के श्रवण-बल्क (Auditory cortex) के क्षतिग्रस्त हो जाने मे सुनने मे कुछ कमी आती है, किन्तु पूर्ण बहरापन नही आता। यदि दोनो ही श्रवण-क्षेत्र (Auditory areas) क्षतिग्रस्त हो जायँ तो पूर्ण बहरापन आ जाता है।

स्वाद तथा घ्राण-क्षेत्र (Gustatory and olfactory areas) – घ्राण-क्षेत्र (Olfactory area) को बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के श्रवण-क्षेत्र (Auditory area) के नजदीक निरूपित किया जा सकता है। अन्य क्षेत्रो की तरह स्वाद-क्षेत्र (Gustatory area का निश्चित रूप से स्थान-निरूपण (Localization) सभव नही है।

त्वक्पेशी सवेदन-क्षेत्र (Somesthetic area) –त्वक्पेशी सवेदन-क्षेत्र को रोलैण्डा की दरार (Fissure of Rolando) के ठीक पीछे निरूपित किया जा सकता है। यह क्षेत्र (Area) स्पर्श तथा गति-सवेदनाओ (Sensations of touch and movement) को सचालित और नियत्रित करता है। इसे शरीर-सवेदन-क्षेत्र (Body sensitivity area) भी कहते है। इस क्षेत्र (Area) मे स्नायु-तन्तुओ (Nerve-fibres) के क्षतिग्रस्त हो जाने पर व्यक्ति की स्पर्श-सवेदना मे कमी आ जाती है। यदि उसके शरीर के किसी भाग को स्पश किया जाता है तो वह दबाव (Pressure) का अनुभव करता है, किन्तु यह नही बतला सकता कि शरीर के किस भाग को स्पर्श किया जा रहा है। वह ठढी और गर्म वस्तुओ मे भी भेद नही कर सकता। आँखो ने बन्द रहने पर वह यह भी नही बतला सकता कि उसके हाथ, पैर तथा शरीर के अन्य भाग किस स्थिति (position) मे हैं। दर्द की सवेदना (Sensation of pain) का त्वक्पेशी-सवेदन-क्षेत्र या अन्य किसी भी क्षेत्र मे स्थान-निरूपण सभव नही है।

यह उल्लेख्य है कि जिस प्रकार कुछ अन्य ज्ञानेन्द्रियो की सवेदनाओ

(Sensations) का मस्तिष्क के कुछ निश्चित क्षेत्रों (Definite areas) में स्थान-निरूपण संभव है, उस प्रकार स्पर्श तथा गति-संवेदनाओं का मस्तिष्क के निश्चित क्षेत्रों में स्थान-निरूपण नहीं किया जा सकता। पहले बतलाया जा चुका है कि दृष्टि तथा श्रवण-क्षेत्रों (Visual and auditory areas) के बिल्कुल विनष्ट हो जाने पर स्थायी रूप से अंधापन और बहरापन आ जाता है। किन्तु त्वक्पेशी-संवेदन-स्नायु-तन्तुओं (Somesthetic nerve-fibres) के विनष्ट हो जाने पर भी स्पर्श (Touch और ताप (Temperature) की संवेदनाएँ होती है। इससे यह जान पड़ता है कि कुछ निम्न केन्द्र (Lower centres) कदाचित् थैलेमस (Thalamus) वृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के इस क्षेत्र (Area) की क्रियाओं को करने लगता है। अतएव, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि सामान्य अवस्थाओं (Normal conditions) में स्पर्श तथा गति-संवेदनाओं में वृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) का हाथ रहता है, किन्तु सभी प्रकार की स्पर्श एवं गति-संवेदनाओं के लिए मात्र यही नितान्त आवश्यक नहीं है।

बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के गतिवाही क्षेत्र
(Motor areas of the Cerebral cortex)

बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) का प्रधान गतिवाही क्षेत्र (Motor area) अग्रखंड (Frontal lobe) में मध्य दरार या रोलैण्डो की दरार (Central fissure or Fissure of Rolando) के ठीक-सामनेवाले मार्ग में है। इस क्षेत्र (Area) में अत्यधिक स्नायु-कोश (Nerve-cells) पाये जाते हैं। ये शुण्डाकार होते हैं। इसीलिए, इन्हें शुण्डाकार कोश (Pyramidal cells) कहते हैं। यहीं से गतिवाही स्नायु-प्रवाह (Motor nerve impulses) उत्पन्न होते हैं। इन कोशों के मुख्यतन्तु (Axons), जो सब से लंबे होते हैं, निम्न केन्द्रों (Lower centres) से होते हुए सुषुम्ना (Spinal cord) के विविध स्तरों (Various levels) पर अन्त कर जाते हैं और वहाँ से स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) गतिवाही स्नायु-कोशों (motor-neurons) में चले जाते हैं।

प्रत्येक गतिवाही स्नायु-कोश (motor neuron) स्नायु-मंडल के कई भागों से स्नायु-प्रवाहों (Nerve-impulses) को ग्रहण करता है।

सुषम्ना (Spinal cord), सुषुम्नाशीर्ष (medulla), मध्य मस्तिष्क (Mid-brain) तथा लघु मस्तिष्क (Cerebellum) के द्वारा संचालित प्रतिक्षेप-क्रियाएँ (Reflex actions) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। पर सभी जटिल (Complex) एवं सुसंगठित गतियाँ (Co-ordinated movements) बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के गतिवाही क्षेत्र (motor area) के स्नायु-प्रवाहों (Nerve-impulses) से ही उत्पन्न होती हैं तथा उस क्षेत्र (Area) द्वारा ही संचालित और नियंत्रित होती हैं।

बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के गतिवाही क्षेत्र (motor area) के स्नायु-कोशों (Nerve-cells) के विनिष्ट हो जाने पर उनके द्वारा उत्तजित होनवाली मांसपेशियों में गति-शून्यता (Paralysis) आ जाती है। इस गतिशून्यता (Paralysis) की मात्रा इस बात पर निर्भर है कि किस मात्रा में स्नायु-कोश (Nerve-cells) विनष्ट किये गये हैं। दूसरे शब्दों में, विनष्ट स्नायु-कोशों (Nerve-cells) की मात्रा पर गतिशून्यता (Paralysis) की मात्रा निर्भर है।

आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर पाया गया है कि बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के गतिवाही क्षेत्र (motor area) के स्नायु-कोषों (Nerve-cells) के विनष्ट होने के कारण आयी हुई गतिशून्यता (Paralysis) की पुनराप्ति (Recovery) हो जाती है और गतिशून्य अंग (Paralysed limb) क्रियाशील हो जाते हैं। क्रूज (Cruze) ने बतलाया है कि पुनराप्ति (Recovery) प्रायः गतिशून्य अंग (Paralysed limb) में मालिश और उसके संचालन द्वारा संभव है।* इसके अतिरिक्त, निम्न प्राणियों (Lower organisms) और मनुष्यों पर किये गये प्रयोगों के आधार पर पाया गया है कि मांस-पेशियों (muscles) को नियंत्रित करनेवाले बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cere-bral cortex) के स्नायु-कोशों (Nerve-cells) के विनष्ट हो

*"Recovery is usually accomplished by massage and by manipulation and movement of the paralysed limb either by some other person or by the non-paralysed limb of the patient himself."—*Cruze* : General Psychology for college students; pp. 149-150 (5th printing 1956)

जाने पर उनके समीपवर्त्ती स्नाय-कोश (Nerve-cells) इनकी क्रियाओं को करने लगते हैं ; फलतः गतिशून्य अंग (Paralysed limb) की पुनराप्ति (Recovery) हो जाती है ।

बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के साहचर्य-क्षेत्र
(Association areas of the Cerebral cortex)

ज्ञानवाही और गतिवाही क्षेत्र (Sensory and motor-areas) बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के सपूर्ण क्षेत्र (Total areas) के एक छोटे भाग को ही अपने मे समाहित करते है । बहुत बड़े क्षेत्र (Areas), जो इनसे बच जाते है, उन्हे साहचर्य-क्षेत्र (Association areas) कहते हैं। ये साहचर्य-क्षेत्र (Association areas) अपने समीपवर्त्ती ज्ञानवाही और गतिवाही क्षेत्रों (Sensory and motor areas) से घनिष्ठ रूप से संबंधित है। इनका परस्पर भी बड़ा घनिष्ठ संबंध है। ज्ञानवाही क्षेत्र (Sensory areas) ज्ञानेन्द्रियो से उत्पन्न स्नायु-प्रवाहों (Nerve-impulses) को ग्रहण करते है और गतिवाही क्षेत्र (Motor areas) उन्हें मांसपेशियों (muscles) में भेजते है । साहचर्य-क्षेत्रों (Associaton areas) का प्रधान कार्य है ज्ञानवाही तथा गतिवाही क्रियाओं को संबंधित करना तथा उनके बीच समन्वय (Integration) स्थापित करना ।

ज्ञानवाही साहचर्य-क्षेत्र (Sensory association areas):— बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के विभिन्न ज्ञानवाही क्षेत्र (Sensory areas) के समीपवर्त्ती साहचर्य-क्षेत्र (Association areas) उनकी क्रियाओं के सम्यक् रूप से संपन्न होने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होते है । ज्ञानवाही साहचर्य-क्षेत्रों (Sensory association areas) के स्नायु-तन्तुओं (Nerve-fibres) के विनष्ट हो जाने पर ज्ञानवाही स्नायु-प्रवाहों (Sensory nerve-impulses) में सन्निहित संबंधों (Relations) और अर्थों (meanings) को पहचानने और समझने की शक्ति जाती रहती है । उदाहरणार्थ, यदि पृष्ठ-खंड (Occipital lobe) में दृष्टि-साहचर्य-क्षेत्र (Visual association area) विनष्ट हो जाय, तो देखी हुई वस्तुओं को पहचानने और समझने की क्षमता चली जाती है। यह दृष्टि-दोष (Visual defect) नहीं है; क्योंकि व्यक्ति वस्तुओं को देख सकता है, किन्तु उन्हें समझ नहीं सकता,

परिचित वस्तुओ को पहचान नही सकता। इसे दृष्टि-प्रज्ञाशून्यता (Visual agnosia) कहते है। इसी प्रकार शख-खड (Temporal lobe) में साहचर्य-क्षेत्रो (Association areas) के विनष्ट हो जाने पर श्रवण-प्रज्ञाशून्यता (Auditory agnosia) उत्पन्न हो जाती है। फलत व्यक्ति सुन तो सकता है, पर सुने हुए शब्दो के अर्थ नही समझ सकता। वैसे ही, बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के त्वक्पेशो-सवेदन-क्षेत्र (Somesthetic area) के समीपवर्त्ती साहचर्य-क्षेत्रो (Association areas) के विनष्ट हो जाने पर त्वक्पेशी सवेदन-प्रज्ञाशून्यता (Somesthetic agnosia) उत्पन्न हो जाती है। फलत. व्यक्ति स्पर्श कर वस्तुओ को पहचान नहीं पाता तथा किसी वस्तु को उठाकर भी उसका वजन नही समझ पाता। निष्कर्ष यह कि इन सभी प्रकार की प्रज्ञाशून्यताओ (Agnosia) मे उत्तेजनाओ (Stimuli) की सवेदनाएँ (Sensations) होती है, किन्तु उनके अर्थ नही ज्ञात होते।

गतिवाही साहचर्य-क्षेत्र (Motor association areas) —गतिवाही साहचर्य-क्षेत्र (Motor association areas) को बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के गतिवाही क्षेत्र (Motor area) के समीप निरूपित किया जा सकता है। गतिवाही साहचर्य-क्षेत्र (Motor association area) के विनष्ट हो जाने पर कार्य-क्षमता (Ability to do) जाती रहती है। इसे पारिभाषिक शब्दो मे चेष्टा-शून्यता (Apraxia) कहते है। इससे आक्रात व्यक्ति अच्छी तरह टाईप नही कर सकता तथा हारमोनियम, सितार-जैसेवाद्ययन्त्रो को बजा नही सकता। यहाँ यह उल्लेख्य है कि हाथ और अगुलियाँ गतिशून्य नही होती, किन्तु उनमे सगठन (Co-ordination) या समन्वय (Integration) की क्षमता नही रह जाती।

एक फ्रेच शल्य-चिकित्सक (Surgeon), पॉल ब्रोका (Paul Broca) ने एक ऐसे रोगी का उल्लेख किया है, जिसमे बोलने की क्षमता नही रह गयी थी, अर्थात् वह वाक्-शून्यता (Aphasia) से ग्रसित था। इसका कारण बतलाते हुए उन्होने कहा है कि उस व्यक्ति मे यह कमी वाक्-साहचर्य-क्षेत्र (Speech association area) के विनष्ट होने के फलस्वरूप आई। इस दोष से ग्रसित व्यक्ति शब्दो को सुन सकता है, किन्तु उनके अर्थ नही समझ सकता। वह बोल भी सकता है, लेकिन उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दो अथवा वाक्यो से कोई अर्थ नही निकलता।

तात्पर्य यह कि वाक्-शून्यता (Aphasia) न तो ज्ञानवाही दोष (Sensory defect) कहा जा सकता है और न गतिवाही दोष (Motor defect), बल्कि यह एक साहचर्य-दोष (Association defect) है।

अग्र-साहचर्य-क्षेत्र (Frontal association areas) :—गतिवाही क्षेत्र (Motor area) के सामने अग्रखंडों (Frontal lobes) में अति विस्तृत साहचर्य-क्षेत्र (Association areas) है। पहले लोग समझते थे कि ये विस्तृत साहचर्य-क्षेत्र बुद्धि के स्थान (Seat) है। लोगों की यह धारणा थी कि मनुष्य सभी पशुओं से इसलिए अधिक बुद्धिमान् होता है कि उसके अग्रसाहचर्य-क्षेत्र (Frontal association areas) अन्य पशुओं की अपेक्षा बड़े होते है। किन्तु आधुनिक अनुसंधानो के आधार पर सिद्ध हो गया है कि उनकी यह धारणा समुचित नही है। अग्रखंडों (Frontal lobes) को मस्तिष्क (Brain) से निकाल देने के बाद व्यक्ति के व्यवहरों पर दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

अग्रखंडों के हटा लेने के बाद के व्यवहार (Behaviour after removal of frontal lobes) :—एक मस्तिष्क-शल्यचिकित्सा (Brain surgery) के फलों (Results) पर ध्यान देने से अग्रखंडों (Frontal lobes) की क्रियाओं का समुचित ज्ञान प्राप्त हो सकता है। न्यूयार्क स्टॉक एक्सचेंज का एक सफल दलाल, जिसकी आयु चालीस वर्ष की थी, सिर की अति तीव्र पीड़ा से पीड़ित रहने लगा, उसकी स्मरण-शक्ति क्षीण हो गयी और अ.ततोगत्वा वह बहुत दिनों तक चेतना-हीन रहा। परीक्षा करने पर जान पड़ा कि उसके अग्रखंडों (Frontal lobes) में बहुत बड़ी सूजन (Tumor) हो गयी है। ऑपरेशन द्वारा दोनों अग्रखंडों (Frontal lobes) के अधिकांश स्नायु-तन्तुओं (Nerve fibres) को निकाल दिया गया। यह सावधानी बरती गयी कि गतिवाही क्षेत्र (Motor area) पूर्वगतिवाही क्षेत्र (Premotor area) और वाक्-केन्द्र (Speech centre) को न छेड़ा जाय।

ऑपरेशन (Operation) के बाद उस रोगी का सिर-दर्द लुप्त हो गया। कई महीनों तक सावधानीपूर्वक उसके व्यवहार का अध्ययन किया गया। उसमें कई प्रकार के परिवर्त्तन पाये गये। किन्तु उन परिवर्त्तनों का बुद्धि से संबंध नहीं था। उनका संबंध व्यक्तित्व (Personality) और उसकी अनुप्रेरणा (Motivation) से था।

यद्यपि उसमें सुस्ती और निष्क्रियता नहीं आयी थी, तथापि वह अपने पेशा को अपनाना नहीं चाहता था। ऑपरेशन के पूर्व वह शान्तिप्रिय व्यक्ति था। किन्तु, अब चुपचाप बैठना और शान्त रहना उसके लिए असंभव हो गया था। वह बराबर बातचीत करने, घूमने और गान में मशगूल रहता था।

मनोवैज्ञानिक परीक्षा के आधार पर पाया गया कि उसकी बुद्धि सामान्य (Normal) थी। वह गणित-संबंधी समस्याओं को हल कर सकता था, कविताएँ याद कर सकता था, किन्तु वाक्य-पूर्त्ति (Sentence completion), चित्र-पूर्त्ति (Picture completion)-जैसे मनोवैज्ञानिक परीक्षणों (Psychological tests) में असफल हो जाता था। कारण स्पष्ट है। उसमें कई तत्वों के समन्वय द्वारा सार्थकता लाने की क्षमता नहीं रह गयी थी। दूसरे शब्दों में, उसमें संश्लेषणात्मक क्षमता (Synthesizing ability) का अभाव हो गया था।

सभी स्तरों के पशुओं पर किये गये प्रयोगों के आधार पर पाया गया है कि दोनों अग्रसाहचर्य-क्षेत्रों (Frontal association area) के पूर्णरूप से विनष्ट हो जाने पर उनमें तात्कालिक स्मरण-शक्ति का पूर्णरूपेण ह्रास हो जाता है। अग्रखंडों (Frontal lobes) के बाहर साहचर्य-केन्द्रों (Association centres) के विनष्ट होने से उनमें तात्कालिक स्मरण-शक्ति का बिलकुल ह्रास नहीं होता। यदि केवल एक अग्रखंड (Frontal lobe) विनष्ट हो जाय, किन्तु दूसरा बिलकुल ठीक रहे, तो भी उनकी तात्कालिक स्मरण-शक्ति में कोई कमी नहीं आती। जब दोनों ही अग्रखंड (Frontal lobes) विनष्ट कर दिये जाते हैं, तभी पशुओं के व्यवहार में परिवर्त्तन दीख पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में उनमें केवल तात्कालिक स्मरण-शक्ति का ही ह्रास नहीं होता, वरन् उनके व्यक्तित्व (Personality) में भी परिवर्त्तन दीख पड़ते हैं। ऑपरेशन (Operation) के पूर्व जो पशु सामान्यतः सक्रिय (Active) और उत्तेजनशील (Excitable) होते हैं, वे ऑपरेशन के बाद अग्र साहचर्य क्षेत्रों (Frontal association area) के अभाव में सुस्त, निष्क्रिय तथा शान्त हो जाते हैं। ये निष्कर्ष प्रधानतः बन्दरों तथा वनमानुषों (Apes) पर किये गये प्रयोगों पर आधारित हैं।

सम्पूर्ण बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के सामान्य कार्य
(General functions of the entire cerebral cortex)

बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) के कुछ विशेष क्षेत्रों (Specific areas) की विशिष्ट क्रियाओं (Specific activities) के उल्लेख-क्रम में ज्ञानवाही (Sensory), गतिवाही (Motor) या साहचर्य-क्षेत्रों (Association areas) की मुख्यतः चर्चा की गयी है। यहाँ यह निर्देशित करना अपेक्षित है कि संपूर्ण बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Entire cerebral cortex) एक इकाई (Unit) के रूप में काम करता है। फ्रैंज (Franz) और लैश्ले (Lashley) के प्रयोगों से यह बात प्रमाणित हो चुकी है। अतएव, यहाँ लैश्ले (Lashley) द्वारा प्रतिपादित मस्तिष्क की समक्षमता (Equipotentiality of the brain) तथा पूँजीभूत क्रिया (Mass action) के सिद्धांत का संक्षिप्त विवेचन अभीष्ट है।

मस्तिष्क की समक्षमता तथा पूँजीभूत क्रिया का सिद्धान्त
(Theory of equipotentiality and mass action of the brain):—लैश्ले (Lashley) ने मस्तिष्क की क्रियाओं का उल्लेख करते हुए बतलाया है कि मस्तिष्क के सभी भागों में समक्षमता (Equipotentiality) पायी जाती है।

यदि मस्तिष्क के किसी विशेष भाग में क्षति हो जाती है तो मस्तिष्क के अन्य क्षतिहीन भाग उसके कार्यों का संपादन करने लगते हैं। उन्होंने यह भी व्यक्त किया है कि मस्तिष्क की यह समक्षमता (Equipotentiality) पूँजीभूत क्रिया (Mass action) के सिद्धांत पर आधारित है। मस्तिष्क की इस पूँजीभूत क्रिया (Mass action) का तात्पर्य यह है कि किसी भी जटिल क्रिया (Complex activity) का अच्छी तरह संपन्न होना मस्तिष्क की मात्रा (Amount of brain) पर निर्भर है, न कि उसके किसी विशेष भाग पर। मास्तिष्क में जिस परिमाण में क्षति होती है, उसके अनुपात में ही जटिल क्रिया (Complex activity) के संपादन में भी कमी आती है। स्पष्ट ह कि जटिल क्रिया (Complex activity) के संपादन में आयी हुई कमी इस बात पर निर्भर है कि बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) किस परिमाण में क्षतिग्रस्त है, न कि किसी विशेष क्षेत्र (Specific area) के समन्वय (Integration) पर। समक्षमता (Equipotentiality) का यह सिद्धांत

बल्कीय विनाश (Cortical destruction) तथा उपबल्कीय विनाश (Subcortical destruction)—इन दोनों ही पर लागू होता है।

घिसेली (Ghishelli) और ब्राउन (Brown) ने एक प्रयोग में पैंतालीस चूहों के कई उपबल्कीय क्षत्रों (Subcortical regions) को विनष्ट कर उनके भूलभुलैया सीखने (Maze learning) की परीक्षा की। उन्होंने पाया कि कोई विशेष उपबल्कीय क्षेत्र (Particular subcortical region) भूलभुलैया सीखने की क्रिया को प्रभावित नहीं करता। चूहे का मस्तिष्क बन्दर और मनुष्य की अपेक्षा सरल होता है। इसलिए, प्रायः यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि लैश्ले (Lashley) के प्रयोगात्मक फलों (Experimental results) को उच्च प्राणियों (Higher organisms) और विशेषत: मनुष्य पर लागू करना उचित नहीं है। यह बात ठीक भी लगती है, किन्तु वनमानुषों (Apes) और मनुष्यों पर किय गये कई प्रयोगों से लैश्ले (Lashley) का सिद्धांत प्रतिपादित हो जाता है। वनमानुषों (Apes) पर किये गये जैकोब्सन (Jacobson) के प्रयोग भी लैश्ले (Lashley) के सिद्धात की ही पुष्टि करते हैं। क्लूवर (Kluver) और हार्लो (Harlow) के अध्ययन भी लैश्ले (Lashley) के सिद्धांत के पक्ष मे ही पड़ते है।

संक्षेप में, समक्षमता और पूँजीभूत क्रिया के सिद्धांत (Theory of equipotentiality and mass action) का यह अर्थ कदापि नहीं कि मस्तिष्क मे क्रियाओं का स्थान-निरूपण (Localization) नहीं हो सकता। निस्सन्देह, मस्तिष्क के कुछ क्षेत्रों (Areas) द्वारा विशेष प्रकार को क्रियाएँ संपादित होती है। उदाहरणार्थ, देखना, सुनना, बोलना, सूँघना इत्यादि ऐसी क्रियाएँ हैं, जिनका मस्तिष्क में स्थान-निरूपण (Localization) किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में यह कहना युक्तिसंगत जान पडता है कि स्थान-निरूपण (Localization) एक स्थापित तथ्य (Established fact) है। साथ ही, यह भी ठीक है कि मस्तिष्क के एक भाग का दूसरे भाग के साथ बहुत-कुछ क्रियात्मक तादात्म्य (Functional identification) है।*

*"Localization is an established fact. But our concepts of cortical areas must apparently be modified to allow for wide flexibility, and extended to permit of much functional identity of one part with another. The clinical as well as experimental

शेरिंग्टन (Sherrington) ने भी संपूर्ण केन्द्रीय स्नायु-मंडल की सामान्य कार्यवाही की विवेचना करते हुए उसे एक इकाई (Unit) के रूप में ही ग्रहण किया है। उन्होंने बतलाया है कि वह एक ऐसा अंग है, जो प्राणी के विभिन्न कार्यों एवं प्रतिक्रियाओं में एकता स्थापित कर उसकी आवश्यकता के अनुकूल बना देता है। फलस्वरूप, प्राणी वातावरण के सफल अभियोजन स्थापित कर लेता है।*

evidence indicates the equipotentiality found for rat's brain holds within broad limits for the brains of cats, monkeys and men."—H. E. Garret: Great Experiments in Psychology (Third edition); p. 34-35.

*"It is, in short, an organ of co-ordination, in which from a concourse of multitudinous excitations, there result orderly acts, reactions adapted to the needs of the organism marked by absence of confusion and proceed in sequences likewise free from confusion."—Sherrington

पाँचवाँ अध्याय

संवेदना

संवेदना की उत्पत्ति में उत्तेजना (Stimulus), ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organ) और मस्तिष्क (Brain) की प्रधानता रहती है। जब कोई भौतिक उत्तेजना (Physical stimulus) मनुष्य के सामन उपस्थित की जाती है तब उसकी कोई विशेष ज्ञानेन्द्रिय उसे ग्रहण करती है। फलतः वहाँ वैद्युत्-रासायनिक सक्षोभ (Electro-Chemical disturbance) उत्पन्न हो जाता है, जिसे पारिभाषिक शब्दों मे स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulse) कहते है। वह स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulse) ज्ञानवाही स्नायुओं (Sensory nerves) द्वारा मस्तिष्क में जाता है। तब मनुष्य उस उत्तजना के प्रति अपनी प्राथमिक प्रतिक्रिया (Initial reaction) प्रकट करता है। उत्तेजना (Stimulus) के प्रति प्रकट की गयी प्राथमिक प्रतिक्रिया (Initial reaction) को संवेदना (Sensation) की संज्ञा दी जाती है। इस प्राथमिक प्रतिक्रिया (Initial reaction) की विशेषता यह है कि इसके द्वारा मनुष्य को उस उत्तेजना का आभास-मात्र मिलता है, उसका अर्थ ज्ञात नहीं होता। उदाहरणार्थ तीव्र गति से आती हुई गाड़ी के कारण दो प्रकार की संवेदनाएँ संभव हैं—श्रवण-संवेदना (Auditory sensation) तथा दृष्टि-संवेदना (Visual sensation)। स्पष्टतः हम गाड़ी की गति से उत्पन्न शब्द-तरंगों (Sound waves) को सुनते है तथा गाड़ी से प्रतिबिम्बित (Reflected) प्रकाश-तरंगो (Light waves) को देखते हैं, न कि आती हुई गाड़ी को सुनते तथा देखते हैं। इस उदाहरण मे शब्द-तरंगों (Sound waves) के सुनने की प्राथमिक प्रतिक्रिया (Initial reaction) श्रवण-संवेदना (Auditory sensation) तथा प्रकाश-तरंगों (Light waves) के देखने की प्राथमिक प्रतिक्रिया (Initial reaction) दृष्टि-संवेदना (Visual sensation) है।

यहाँ उत्तेजना (Stimulus) एवं ज्ञानेन्द्रिय (Sense-organ) के संबंध को स्पष्ट करते हुए यह बतला देना आवश्यक है कि प्रत्येक

उत्तेजना प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय को उत्तेजना करने मे समर्थ नही होती, वरन् विशेष प्रकार की उत्तेजना विशेष प्रकार की ज्ञानेन्द्रिय को ही उत्तेजित कर पाती है। उदाहरणार्थ, प्रकाश-तरगे (Light waves) आँखो को, शब्द-तरगे (Sound waves) कानो को, गध नाक को, रस जीभ को तथा स्पर्श त्वचा को उत्तेजित करते है। इस प्रकार उपयुक्त उत्तेजना (Adequate stimulus) पाकर ही कोई ज्ञानेन्द्रिय उत्तेजित होती है। अनुपयुक्त उत्तेजना (Inadequate stimulus) ज्ञानेन्द्रिय को उत्तेजित नही कर पाती। उदाहरण के लिए, गध आँखो को उत्तेजित नही कर सकती। कारण, गध आँखो के लिए अनुपयुक्त उत्तेजना (Inadequate stimulus) है। आँखो के लिए उपयुक्त उत्तेजनाएँ है प्रकाश-तरगे (Light waves)। अतएव, प्रकाश-तरगो (Light waves) की उपस्थिति से आँखे उत्तेजित हो सकती है।

उत्तेजना एव ज्ञानेन्द्रिय के स्वरूप और सम्बन्ध पर विचार कर लेने के पश्चात् सवेदना के स्वरूप पर ध्यान देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, सवेदना मनुष्य की उत्तेजना के प्रति प्राथमिक प्रतिक्रिया है। इसमे उत्तेजना का अर्थ ज्ञात नही होता। उदाहरण के लिए, जब मनुष्य शब्द-तरगो (Sound waves) को सुनता है, तब श्रवण-सवेदना (Auditory Sensation) होती है। ये शब्द-तरगे कहाँ से आ रही है, किस वाद्ययत्र से निकली है, उनके क्या अर्थ है, इत्यादि बातो की जबतक जानकारी नही होती, तबतक उसे श्रवण-सवेदना कहना ही ठीक होगा, किन्तु जैसे ही इन बातो को वह मनुष्य समझ लेता है, अर्थात् उत्तेजना को अर्थ प्रदान कर देता है, वैसे ही उसे सवेदना न कहकर प्रत्यक्षीकरण (Perception) की सज्ञा दी जाती है। अतएव सवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण मे प्रधान भेद यह है कि "सवेदना उत्तेजना के प्रति प्राणी की प्राथमिक प्रतिक्रिया है और प्रत्यक्षीकरण उत्तेजना की व्याख्या या मूल्याकन।"*

प्राय यह प्रश्न किया जाता है कि क्या विशुद्ध सवेदना (Pure sensa-

*"Sensation refers to the initial response of the organism to a stimulus, perceiving involves an interpretation or evaluation of the stimulus."—Cruze Psychology for college students, p 522.

tion), जिसमें उत्तेजना का आभास-मात्र ही हो, उसका अर्थ बिलकुल ज्ञात न हो, संभव है ? इस प्रश्न के उत्तर में अक्सर कहा जाता है कि इस प्रकार की संवेदना शिशु में संभव हो सकती है, किन्तु प्रौढ़ व्यक्ति में नहीं। यह उत्तर समुचित जान पड़ता है। इसके पक्ष में यह तर्क किया जाता है कि शिशु का सांसारिक पदार्थों का ज्ञान अत्यन्त ही सीमित रहता है, उसके अनुभव बड़े ही थोड़े होते हैं। फलस्वरूप जब उसके सामने कोई अभिनव पदार्थ उपस्थित किया जाता है तब उसे उसकी संवेदना-मात्र ही हो पाती है, उसका प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। अतः बच्चे में विशुद्ध संवेदना (Pure sensation) जिसमें उत्तेजना के अर्थ बिलकुल ज्ञात न हों, की सम्भावना की जा सकती है। यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है विशुद्ध संवेदना के मूल में उत्तेजना की नवीनता (Novelty) और व्यक्ति की उत्तेजना-सम्बन्धी अनभिज्ञता (Unfamiliarity) विद्यमान रहती है। उत्तेजना की नवीनता और तत्सम्बन्धी शिशु की अनभिज्ञता को दृष्टिकोण में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि ये दोनों ही बातें बच्चे में विशुद्ध संवेदना का निर्णय करती हैं। जब बच्चे के सामने कोई ऐसी वस्तु उपस्थित की जाय, जो उसके लिए बिलकुल नई हो, जिसका ज्ञान उसे बिलकुल न हो, तब उसमें विशुद्ध संवेदना की संभावना की जा सकती है। उदाहरणार्थ जब शिशु, प्रथम बार शब्द सुनता है, तब उसे विशुद्ध श्रवण-संवेदना होती है। उसमें यह क्षमता नहीं होती कि वह पियानो के शब्द को हारमोनियम के शब्द से अलग कर सके; सितार की सुमधुर ध्वनि को मुरली की रसभरी ध्वनि से भिन्न समझ सके; वरन् वह तो ध्वनि और एकमात्र ध्वनि का ही अनुभव करता है—ध्वनि के विभिन्न स्वरूपों और उसके विभिन्न अर्थों का नहीं। वैसे ही, नवजात शिशु (Newly born child) अपने जीवन में सर्वप्रथम किसी वस्तु से प्रतिबिम्बित (Reflected) प्रकाश-तरंगों (light waves) को देखता है, तब उसे विशुद्ध दृष्टि-संवेदना होती है।

प्रौढ़ व्यक्ति में अर्थ-रहित विशुद्ध संवेदना संभव नहीं है। कारण स्पष्ट है। प्रौढ़ व्यक्ति को संसार के सभी पदार्थों का साधारणतः कुछ-न-कुछ ज्ञान रहता ही है। अतः उसके लिए शायद ही कोई साधारण वस्तु नई हो, जिससे वह बिलकुल अनभिज्ञ हो। फिर उसमें विशुद्ध संवेदना की क्योंकर संभावना की जा सकती है ? प्रौढ़ व्यक्ति के लिए कदाचित् कोई वस्तु नई भी हो, उसका अनुभव उसे न भी हो, तो भी उसके सदृश अन्य वस्तुओं के

अनुभव के आधार पर वह उसमें अर्थ जोड़ देता है। फलतः उस वस्तु की विशुद्ध संवेदना उसे नहीं हो पाती।

संवेदना की विशेषताएँ अथवा उसके गुण
(Characteristics or attributes of sensations)

संवेदना की विशेषताओं अथवा उसके गुणों पर प्रकाश डालने के पूर्व विशेषता अथवा गुण शब्द की व्याख्या अनिवार्य जान पड़ती है। किसी वस्तु का गुण उस वस्तु की वह विशेषता है, जिसके बिना उसकी सत्ता कायम नहीं रह सकती। प्रत्येक वस्तु के अपने अलग-अलग गुण हुआ करते हैं। उन गुणों के कारण ही एक वस्तु दूसरी से भिन्न जान पड़ती है। उदाहरणार्थ, अग्नि का गुण है जलाना, जल का गुण है शीतलता। जलाने के गुण के बिना अग्नि के अस्तित्व की कल्पना कभी नहीं की जा सकती। वैसे ही, शीतलता के बिना जल की सत्ता कायम नहीं रह सकती।

संवेदना के भी अपने कुछ विशिष्ट गुण हैं, जिनके बिना संवेदना संभव नहीं है। संवेदना के प्रायः ६ गुणों का उल्लेख मिलता है। वे ये हैं—प्रकार (Quality), तीव्रता (Intensity), व्याप्ति या विस्तार (Extensity), सत्ताकाल (Duration), स्थानीय चिह्न (Local sign) तथा स्पष्टता (Clearness)।

प्रकार—प्रत्येक संवेदना अपने विशिष्ट गुणों के कारण एक दूसरी से भिन्न हुआ करती है। उदाहरणार्थ, दृष्टि-संवेदना, श्रवण-संवेदना से भिन्न होती है। इन दोनों की भिन्नता अपने-अपने विशिष्ट गुणों के कारण ही है। संवेदना के ये विशिष्ट गुण ज्ञानेन्द्रियों तथा विभिन्न उत्तेजनाओं पर निर्भर करते हैं। प्रकाश-तरंगों को आँखें ग्रहण करती हैं और शब्द-तरंगों को कान। इसके विपरीत, प्रकाश-तरंगों से कान उत्तेजित नहीं हो सकते। ठीक वैसे ही, शब्द-तरंगों से आँखें भी उत्तेजित नहीं हो सकतीं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न ज्ञानेन्द्रियों एवं भिन्न-भिन्न उत्तेजनाओं के कारण प्रत्येक संवेदना अपने गुणों में एक-दूसरी से अलग प्रकार की हुआ करती है।

प्रत्येक संवेदना के गुणों (Qualities) का उल्लेख करते हुए कहा जा सकता है कि दृष्टि-संवेदना के कुछ विशिष्ट गुण हैं—लाल, हरा, नीला, पीला इत्यादि। श्रवण-संवेदना के विशिष्ट गुणों के अन्तर्गत ध्वनि की कोटि (Pitch) को रखा जा सकता है। कोई भी ध्वनि या तो ऊँचा

कोटि (Pitch) की होती है या नीची कोटि की। सबसे नीची और सबसे ऊँची कोटि के बीच हजारों कोटियाँ संभव हैं।

स्वाद-संवेदना के कुछ विशिष्ट गुण हैं--मीठा, कड़वा, खट्टा तथा नमकीन। घ्राण-संवेदना के विशिष्ट गुणों में फलों, फूलों, मसालों, जले तथा सड़े हुए पदार्थों को गन्ध को रखा जा सकता है। स्पर्श-संवेदना के विशिष्ट गुण हैं--शीत, दबाव, पीड़ा तथा ताप।

तीव्रता :--संवेदना में तीव्रता की भी विशेषता पायी जाती है। कोई संवेदना अधिक तीव्र (Intense) होती है, तो कोई अति क्षीण (Weak)। संवेदना की यह विशेषता प्रधानतः उत्तेजना पर निर्भर करती है। यदि उत्तेजना तीव्र हुई तो उससे उत्पन्न संवेदना भी तीव्र होगी। इसके विपरीत, क्षीण उत्तेजना से क्षीण संवेदना ही उत्पन्न होगी। उदाहरण के लिए, उच्च स्वर एक तीव्र उत्तेजना है। स्वभावतः इससे उत्पन्न श्रवण-संवेदना भी तीव्र होगी। मन्द स्वर अपेक्षाकृत एक क्षीण उत्तेजना है। अतः इससे उत्पन्न श्रवण-संवेदना भी क्षीण ही होगी। इसी प्रकार प्रखर प्रकाश से उत्पन्न दृष्टि-संवेदना क्षीण प्रकाश से उत्पन्न दृष्टि-संवेदना (Visual sensation) से तीव्रता में अवश्य ही भिन्न होगी। यह तीव्रता का भेद प्रत्येक संवेदन में पाया जाता है; जैसे--घ्राण-संवेदना (Olfactory sensation), स्वाद-संवेदना (Sensation of taste) और स्पर्श-संवेदना (Tactual Sensation) इत्यादि। इस सम्बन्ध में यह सामान्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उत्तेजना की तीव्रता में भेद होने के कारण उससे उत्पन्न संवेदना में भी भेद होता है।

व्याप्ति या विस्तार-- व्याप्ति अथवा विस्तार का गुण अन्य संवेदनाओं की अपेक्षा स्पर्श-संवेदना में सुस्पष्ट रूप से पाया जाता है। कभी तो ज्ञानेन्द्रिय का एक सीमित क्षेत्र ही उत्तेजित होता है और कभी उसका बहुत ही विस्तृत क्षेत्र उत्तेजित हो जाता है। सीमित अथवा लघु क्षेत्र के उत्तेजित होने से जो संवेदना उत्पन्न होती है, वह विस्तृत क्षेत्र के उत्तेजित होने से उत्पन्न संवेदना से भिन्न होती है। संवेदनाओं की यह भिन्नता व्याप्ति अथवा विस्तार के कारण होती है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अपने दाहिने पैर के अंगूठे को गर्म पानी में डालता है और साथ-ही-साथ सारे बायें पैर को भी, तो दाहिने पैर के अंगूठे में उत्पन्न गर्मी की संवेदना सारे बायें पैर में उत्पन्न गर्मी की संवेदना से भिन्न होगी। इन दो संवेदनाओं की

भिन्नता को हम व्याप्ति अथवा विस्तार की भिन्नता कह सकते हैं।

सत्ताकाल:—सत्ताकाल संवेदना का एक विशेष गुण है। किसी भी संवेदना के साथ उसका सत्ताकाल भी जुड़ा रहता है। जब कोई संवेदना होती है, तब वह एक क्षण, एक मिनट अथवा बहुत अधिक देर तक कायम रह सकती है। उस संवेदना की सत्ता (Existence) काल में बँधी हुई होती है। कोई भी संवेदना क्षणभंगुर होगी अथवा अधिक देर तक कायम रहेगी, यह उत्तेजना की अवधि पर निर्भर करता है। यदि उत्तेजना अधिक देर तक उपस्थित रही, तो संवेदना का सत्ताकाल भी दीर्घ होगा। इसके विपरीत, यदि उत्तेजना की उपस्थिति क्षण-भर के लिए ही हो, तो फिर संवेदना भी थोड़े समय की ही होगी। यदि कोई आवाज क्षण-भर के लिए हो तो उससे उत्पन्न संवेदना भी लघुकालीन ही होगी। यदि कोई आवाज अधिक देर तक ठहरे, तो उससे उत्पन्न श्रवण-संवेदना भी दीर्घकालीन होगी। यही बात अन्य संवेदनाओं के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

स्थानीय चिह्न:—संवेदना का शरीर में स्थान-निरूपण (Localization) संभव है। यह सुगमता से बतलाया जा सकता है कि कोई विशेष प्रकार की संवेदना शरीर के किस भाग में हो रही है। उदाहरणार्थ, यदि उँगली में पिन चुभाया जाय, तो उससे उत्पन्न स्पर्श-संवेदना के सम्बन्ध में हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि संवेदना उस पिन चुभायी गयी उँगली में ही हो रही है, शरीर के किसी अन्य भाग में नहीं। यह बात तो स्पर्श-संवेदना के सम्बन्ध में हुई। अन्य संवेदनाओं के सम्बन्ध में भी यही बात सत्य है। तदनुसार दृष्टि-संवेदना, श्रवण-संवेदना, घ्राण-संवेदना तथा स्वाद-संवेदना के स्थान को क्रमशः आँख, कान, नाक और जीभ में निरूपित किया जा सकता है।

अपने इस विशिष्ट गुण के कारण ही संवेदना भाव तथा संवेग से भिन्न होती है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि संवेदना के स्थान को शरीर में निरूपित किया जा सकता है। किन्तु संवेदना की तरह भाव (Feeling) तथा संवेग (Emotion) का शरीर के किसी विशेष भाग में स्थान-निरूपण संभव नहीं। सुख या दुःख के भाव का अनुभव शरीर का कोई विशेष भाग नहीं करता, वरन् सुख या दुःख की अनुभूति तो सारे शरीर को समान रूप से होती है। यही बात संवेग के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। क्रोध, भय अथवा प्रेम के संवेग को शरीर के किसी विशेष अंग

में निरूपित नहीं किया जा सकता। संवेग के अनुभव में तो सारा शरीर निहित रहता है।

स्पष्टता——सभी संवेदनाएँ समान ढंग से स्पष्ट नहीं होतीं। संवेदना की स्पष्टता तीव्रता, व्याप्ति तथा सत्ताकाल पर निर्भर करती है। क्षीण, सीमित तथा लघुकालीन संवेदना की अपेक्षा, विस्तृत तथा अधिक देर तक ठहरनेवाली संवेदना स्पष्ट होती है। इसके अतिरिक्त, संवेदना की स्पष्टता ध्यान देने की क्रिया पर भी निर्भर करती है। ध्यान केन्द्रीभूत करने से संवेदना अधिक स्पष्ट हो जाती है। इसे एक साधारण उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। प्रायः यह देखा जाता है कि खिलाड़ी खेल के मैदान में चोट खाने पर भी खेलते रहते हैं, शायद वे चोट की ओर से बिलकुल अन्यमनस्क रहते हैं, उसपर उनका ध्यान ही नहीं जाता। किन्तु जब वे खेल के मैदान से लौटकर घर आते हैं और अपने चोट खाये हुए शरीर के अंग पर ध्यान देते हैं, तो उन्हें तीव्र पीड़ा की संवेदना का अनुभव होता है। वस्तुतः तीव्र पीड़ा की संवेदना का यह अनुभव तो चोट खाते ही होना चाहिए था। यदि यह संवेदना उन्हें खेल के मैदान में होती भी है, तो बहुत अस्पष्ट और क्षीण ढंग की। लेकिन जब वे उस चोट की ओर अधिक ध्यान देते हैं तब पीड़ा की संवेदना बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार अन्तर्निरीक्षण द्वारा संवेदना की स्पष्टता बढ़ जाती है।

संवेदना की यह विशेषता भी उसे भाव एवं संवेग से भिन्न करती है। सुख या दुःख के भाव पर जब हम अधिक ध्यान देते हैं अथवा अन्तर्निरीक्षण करने लगते हैं तब वह भाव प्रायः लुप्त हो जाता है। ठीक इसी तरह संवेग, जैसे भय, क्रोध, प्रेम आदि ध्यान देने से अथवा अन्तर्निरीक्षण करने से लुप्त हो जाते हैं। इस प्रकार ध्यान अथवा अन्तर्निरीक्षण जहाँ संवेदना में स्पष्टता लाता है, वहाँ भाव एवं संवेग के अस्तित्व को ही मिटा देता है।

संवेदना के प्रकार

संवेदना विभिन्न प्रकार की होती है। इसके निम्नलिखित प्रधान विभाग किये जाते हैं:——

(१) दृष्टि-संवेदना (Visual Sensation)।
(२) श्रवण-संवेदना (Auditory Sensation)।
(३) घ्राण-संवेदना (Olfactory Sensation)।

(४) स्वाद-संवेदना (Taste-sensation)।

(५) स्पर्श-संवेदना (Tactual sensation)।

(क) दबाव की संवेदना, (ख) पीड़ा की संवेदना, (ग) उष्णता की संवेदना तथा (घ) शीत की संवेदना।

(६) गति-संवेदना (Kinesthetic sensation or sensation of movement)।

(७) अन्य अन्तरिन्द्रिय संवेदनाएँ (Other organic sensations)।

संवेदनाओं के उपर्युक्त विभागों के पश्चात् मुख्य इन्द्रियों की बनावट एवं उनसे उत्पन्न संवेदनाओं के सम्बन्ध में विचार उपस्थित किया जायगा। यहाँ प्रधानतः दृष्टि-संवेदना और श्रवण-संवेदना के ऊपर विचार करना ही अभीष्ट होगा। अन्य संवेदनाओं की भी संक्षेप में चर्चा की जायगी।

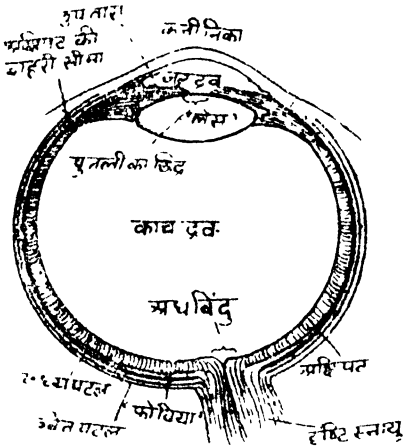
दृष्टि-संवेदना

आँख की बनावट—आँख की बनावट के सम्बन्ध में प्रायः यह कहा जाता है कि प्रत्यक्षतः यह कैमरा (Camera) के समान होती है। पुनः इसकी उपमा एक उस अन्धकारमय कमरे से दी जाती है, जिसमें एक छोटे छेद द्वारा ही प्रकाश प्रवेश कर पाता है। वस्तुतः आँख का वह छोटा छेद, जिससे होकर प्रकाश आँख में पहुँचता है, आँख की पुतली (Pupil) है। पुतली का आकार, अर्थात् छोटा या बड़ा होना, उपतारा (Iris) पर निर्भर करता है। वास्तव में उपतारा ही निरन्तर सहज भाव से पुतली के आकार पर नियन्त्रण रखता है। जब तीव्र प्रकाश आँखों पर पड़ता है, तब उपतारा की मांसपेशियों (Muscles) द्वारा पुतली सूई के अग्र भाग की तरह बिलकुल छोटी हो जाती है। इसके विपरीत, जब आँख पर क्षीण प्रकाश पड़ता है तब आँख की पुतली बड़ी हो जाती है? इस प्रकार आँख की पुतली आवश्यकता से अधिक प्रकाश आँख में प्रवेश नहीं करने देती है। इसका प्रधान कार्य है आँख में प्रवेश करनेवाले प्रकाश की मात्रा पर नियन्त्रण रखना। इसकी दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि इसके नियन्त्रण के फलस्वरूप अक्षिपट की प्रतिमा (Retinal image) स्पष्ट हो जाती है। ठीक यही बात पिनहोल कैमरा (Pinhole camera) के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। इस तरह के कैमरा के सहारे जो चित्र अथवा प्रतिमा ली जाती है, वह बिलकुल स्पष्ट होती है। इसके विपरीत जिस कैमरा के

छेद बड़े होते है, उसके द्वारा ली गई प्रतिमा अस्पष्ट होती है।

आँखें तीन आवरणों से ढँकी हुई होती है। प्रथम आवरण को श्वेत पटल (Sclerotic), दूसरे को मध्य पटल (Choroid) तथा तीसरे को अक्षिपट (Retina) कहते है। श्वेत पटल आँख का सबसे बाहरी आवरण है, जो इसे चारों ओर से ढंके हुए है। यह आवरण कड़ा और उजले रंग का होता है। आँख के सामने इसका वह भाग जो पारदर्शी (Transparent) होता है, उसे कनीनिका (Cornea) कहते हैं। कनीनिका को छोड़कर श्वेत पटल का कोई भी भाग पारदर्शी नहीं होता है। यह कनीनिका लेन्स (Lens) और उपतारा (Iris) की रक्षा करती है।

मध्यपटल (Choroid) काले और भूरे रंग का होता है। इसके अग्रभाग को उपतारा (Iris) कहते है, जो प्रकाश ग्रहण करता है। यह



चित्र-सं० १०—आँख का चित्र

कनीनिका (Cornea) के कुछ पीछे होता है। इसके बीच में एक छोटा छेद होता है, जिसे पुतली कहते हैं। पुतली और उपतारा के सम्बन्ध एवं कार्यों का उल्लेख पहले ही हो चुका है। अतः अब लेन्स के कार्यों का उल्लेख करना ही अभीप्सित है। लेन्स उपतारा के पीछे होता है। यह प्रकाश को आँख के उचित स्थान पर स्थापित करता है। यह अपनी मांसपेशियों के द्वारा आवश्यकता के अनुसार छोटा अथवा बड़ा होता रहता है। जब नजदीक की किसी चीज को देखना होता है तब यह छोटा हो जाता और जब दूर की चीज देखनी होती है, तब बड़ा हो जाता है।

तीसरा आवरण जो आँख का सबसे भीतरी भाग है, अक्षिपट (Retina) कहलाता है। अक्षिपट आँख का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। श्वेत पटल और मध्य पटल तो वस्तुतः सहायक अंग हैं। अक्षिपट के ठीक बीच में एक छोटी-सी धँसी हुई जगह है, जिसे 'फोविया' (Fovea) कहते हैं।

अक्षिपट की बनावट बड़ी ही जटिल (Complex) होती है। इसमें दो प्रकार के ग्राहक कोश (Receptor cells) पाये जाते हैं, जो दृष्टि-संवेदना की उत्तेजनाओं को ग्रहण करते हैं। उन्हें दंड (Rods) और सूचियाँ (Cones) कहते हैं। दंड और सूचियाँ अक्षिपट में चारों ओर फैली हुई हैं। 'फ़ोविया' और इसके समीपवर्त्ती स्थानों में केवल सूचियाँ होती हैं। अक्षिपट का यह भाग दंड से रहित होता है। इस भाग के बाहर दंड और सूचियाँ मिले-जुले रूप में पाई जाती हैं। लेकिन, हम जैसे-जैसे अक्षिपट के छोर की ओर बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे दंडों की संख्या भी बढ़ती जाती है। अक्षिपट के बिलकुल अन्तिम छोर पर तो दंडों का ही बाहुल्य होता है। मगर यह जगह भी सूचियों से बिलकुल खाली नहीं होती। यह बात तो दंड और सूचियों के वितरण के संबंध में हुई। जहाँ तक इनके कार्यों का सम्बन्ध है, ये दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं।

दृष्टि-संवेदना को दो प्रधान भागों में बाँटा जा सकता है—(१) रंगहीन संवेदना और (२) रंगों की संवेदना। रंगहीन-संवेदना से हमारा तात्पर्य है उजले, भूरे और काले की संवेदना से। यहाँ यह व्यक्त कर देना भी अप्रासंगिक न होगा कि उजले, भूरे और काले को रंगों के अन्तर्गत नहीं रखा जाता। इसलिए, इन तीनों की संवेदना को रंगहीन संवेदना की संज्ञा दी जाती है। रंगहीन संवेदना दंडों पर निर्भर करती है। दंडों के द्वारा ही उजले, भूरे और काले की संवेदना होती है। रंगों की संवेदना सूचियों पर निर्भर करती है। रंगों से हमारा तात्पर्य है कुछ प्रारम्भिक रंगों, जैसे लाल, हरा, नीला और पीला तथा इनके संयोग से उत्पन्न अनेक रंगों से।

अक्षिपट में एक ऐसा भाग है, जहाँ से दृष्टि-स्नायु (Optic nerve) मस्तिष्क की ओर जाती है। इस स्थान को अंधबिन्दु (Blind spot) कहते हैं। इस अंधबिन्दु पर कोई वस्तु दिखाई नहीं पड़ती; क्योंकि इस स्थान पर न तो दंड ही होते हैं और न सूचियाँ ही। ऐसा ही प्राचीन मनोवैज्ञानिकों का विश्वास था। किन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से जाहिर है कि प्रबल प्रकाश पड़ने से इस भाग में प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाती

है। इसलिए, इस भाग में भी दंड एवं सूचियों की संभावना जान पड़ती है और हम यह मान सकते हैं कि इस भाग में भी दंड एवं सूचियाँ अल्प संख्या में वर्त्तमान है तथा वे केवल प्रबल प्रकाश से ही उत्तेजित हो सकती हैं।

आँख का अधिकांश भाग दो प्रकार के तरल पदार्थों से भरा हुआ है, जिन्हें जलद्रव (Aqueous humor) तथा काचद्रव (Vitreous humor) कहते हैं। जलद्रव कनानिका और लेन्स के बीच में पाया जाता है तथा काचद्रव लेन्स और अक्षिपट के बीच में रहता है। ये दोनों प्रकार के तरल पदार्थ आँख को फूला हुआ रखते हैं तथा इस प्रकार आँख के स्वरूप को कायम रखते हैं।

दृष्टि-संवेदना के उद्दीपक

दृष्टि-संवेदना के उपर्युक्त उद्दीपक हैं प्रकाश-तरंग (Light-waves)। प्रकाश-तरंगें कई प्रकार की होती हैं। इनमें से कुछ तो बहुत छोटी और कुछ काफी बड़ी होती हैं। प्रकाश-तरंगों की लम्बाई की माप प्रायः एक मिलीमीटर के दस लाखवें भाग में की जाती है, जिसे संक्षेप में m.m. कहते हैं। रंगों की संवेदना प्रकाश-तरंगों की लम्बाई पर ही निर्भर करती है। सबसे लम्बी दृश्य प्रकाश-तरंग (Visual light-waves) से लाल रंग की संवेदना उत्पन्न होती है और सबसे छोटी दृश्य प्रकाश-तरंग गहरे नीले रंग की संवेदना उत्पन्न करती है। लाल रंग की संवेदना उत्पन्न करनेवाली प्रकाश-तरंग की लम्बाई करीब-करीब ७६० m.m होती है और गहरे नीले रंग की संवेदना उत्पन्न करनेवाली प्रकाश-तरंग की लम्बाई ३६० m.m.। अन्य रंगों की संवेदना ३६० m.m. से लेकर ७६० m.m. के अन्तर्गत विभिन्न लम्बाइयों की प्रकाश-तरंगों से उत्पन्न होती है। प्रकाश-तरंगों की इन दो सीमाओं (७६० m.m. की सबसे लम्बी दृश्य प्रकाश-तरंग एवं ३६० m.m की सबसे छोटी दृश्य प्रकाश-तरंग) के बाहर भी अत्यधिक लम्बी और अत्यन्त ही छोटी प्रकाश-तरंगें पायी जाती हैं, किन्तु उनसे रंगों की संवेदना नहीं होती, अपितु अत्यधिक लम्बी प्रकाश-तरंग से उष्णता की संवेदना उत्पन्न होती है और अत्यन्त ही छोटी प्रकाश-तरंग से शरीर के चमड़े सूख जाते हैं। इन प्रकाश-तरंगों को हम देख नहीं सकते।

प्रकाश-तरंगों की विभिन्न लम्बाइयों पर ही विभिन्न रंगों की संवेदनाएँ निर्भर करती हैं। उदाहरणार्थ, ७६० m.m. की प्रकाश-तरंग से लाल रंग,

५८० m.m. से पीले, ५३० m.m. से हरे, ४९० m.m. से नीले तथा ३९० m.m. से गहरे नीले रंग की संवेदना होती है।

मौलिक रंगों की संवेदनाएँ और उनका सम्मिश्रण

पहले कहा जा चुका है कि रंगों की संवेदनाएँ प्रकाश-तरंगों की लम्बाइयों पर निर्भर करती हैं। प्रत्येक रंग की संवेदना के लिए विशेष प्रकार की प्रकाश-तरंग को आवश्यकता पड़ती है। किन्तु ऐसा पाया जाता है कि किसी रंग की संवेदना उसकी विशेष प्रकार की प्रकाश-तरंग की अनुपस्थिति में भी हो सकती है। यह विभिन्न रंगों के सम्मिश्रण द्वारा संभव है। अतः हम विभिन्न रंगों के सम्मिश्रण और उसके नतीजे पर विचार करेंगे। लेकिन इसके पूर्व कुछ मौलिक रंगों और उनसे उत्पन्न संवेदनाओं पर विचार प्रस्तुत कर देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

यों तो हमलोग प्रतिदिन अनेक प्रकार के रंगों का अनुभव करते हैं, किन्तु मनोवैज्ञानिक, अध्ययनों के आधार पर चार ही मौलिक एवं प्रारंभिक रंग माने गये हैं। वे हैं—लाल, पीला, हरा और नीला। अन्य सभी रंग इन्हीं के सम्मिश्रण से उत्पन्न होते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मौलिक एवं प्रारंभिक रंगों की संख्या के संबंध में कुछ मतभेद है। यंग-हेल्महोज (Young-Helmholtz) ने अपने रंग-दृष्टि-सम्बन्धी सिद्धांत (Theory of colour vision) में तीन ही प्रारंभिक रंगों का उल्लेख किया है। वे हैं—लाल, हरा और नीला। पीले रंग को वे प्रारंभिक एवं मौलिक रंग नहीं मानते। उनका कहना है कि पीला रंग लाल और हरे रंग के सम्मिश्रण का फल है। इन तीन प्रकार के प्रारंभिक एवं मौलिक रंग की संवेदना की व्याख्या के लिए उन्होंने अक्षिपट (Retina) में तीन प्रकार की सूचियों (Cones) का अस्तित्व माना है। जब ये सूचियाँ अलग-अलग उत्तेजित होती हैं तब इनसे क्रमशः लाल, हरे एवं नीले रंग की संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। पीले रंग की संवेदना तभी होती है जब लाल और हरे रंगवाली सूचियाँ समान मात्रा में प्रकाश-तरंगों से उत्तेजित होती हैं। इसके अतिरिक्त, जब तीनों प्रकार की सूचियाँ प्रकाश-तरंगों के द्वारा बिलकुल समान अनुपात में उत्तेजित की जाती हैं तब हमें रंगविहीन दृष्टि-संवेदना होती है।

यंग-हेल्महोज का यह सिद्धांत रंग-अंधापन (Colour-blindness) पर सन्तोषजनक प्रकाश नहीं डाल पाता। कारण, जो व्यक्ति लाल और

हरे रंग के अंधे होते हैं, वे भी पीले रंग को देख लेते हैं। यदि पीले रंग की संवेदना लाल और हरे रंगवाली सूचियों के उत्तेजित होने से ही उत्पन्न होती तो ऐसे व्यक्तियों में पीले रंग की संवेदना सम्भव नहीं थी। अतः यंग-हेल्महोज ने जिन तीन प्रारंभिक एवं मौलिक रंगों की स्थापना की है, वे सर्वमान्य नहीं हैं।

लैड-फ्रैंकलिन (Ladd-Franklin) ने अपने रंग-दृष्टि-सम्बन्धी सिद्धांत (Theory of colour vision) में उपर्युक्त दोष को दूर करने की चेष्टा की है ; उन्होंने यह बतलाया है कि दृष्टि-संवेदना का प्रारंभिक स्वरूप रंगविहीन था। लेकिन विकास-क्रम में क्रमशः दृष्टि-संवेदना के स्वरूप में परिवर्त्तन होता गया। फलस्वरूप, नीले और पीले रंग के प्रति अक्षिपट की सूचियों में क्रियाशीलता आ गई। पुनः पीले रंग की सूचियाँ दो अन्य रंगों की सूचियों में विकसित हुई। वे दो रंग थे—लाल और हरा। इस प्रकार रंगों के विकास की तीन अवस्थाएँ स्पष्टतः ज्ञात होती हैं—

(१) रंगविहीन दृष्टि-संवेदना।

(२) नीले और पीले रंग की दृष्टि-संवेदना।

(३) नीले, पीले, लाल और हरे रंग की दृष्टि-संवेदना।

स्पष्ट है कि इस सिद्धांत के अनुसार पीला रंग भी एक प्रारंभिक एवं मौलिक रंग है।

प्रारंभिक एवं मौलिक रंगों के संबंध में हेरिंग (Hering) के विचारों का उल्लेख करना भी आवश्यक प्रतीत होता है। हेरिंग ने अपने रंग-दृष्टि-सम्बन्धी सिद्धांत (Theory of colour vision) में ६ प्रारंभिक एवं मौलिक रंगों की चर्चा की है। वे ये हैं—लाल, हरा, पीला, नीला, उजला और काला। लेकिन जैसा पहले बतलाया जा चुका है, उजले और काले की गणना रंगों में नहीं होती और उनसे उत्पन्न संवेदना को रंगविहीन संवेदना की संज्ञा दी जाती है। अतः हेरिंग के द्वारा उपस्थित की गई प्रारंभिक एवं मौलिक रंगों की यह सूची पूर्ण रूप से मान्य नहीं है।

प्रारंभिक एवं मौलिक रंगों के सम्बन्ध में यहाँ जितने भी विचार उपस्थित किये गये हैं, उनके आधार पर शायद यह निष्कर्ष निकालना समुचित ही होगा कि प्रारंभिक मौलिक रंग चार ही हैं—लाल, पीला, हरा और नीला। अन्य सभी रंग उनके सम्मिश्रण से उत्पन्न होते हैं। अतः रंगों के सम्मिश्रण का अध्ययन दृष्टि-संवेदना का एक प्रधान विषय है।

रंगो का सम्मिश्रण (Colour-mixing) --यहाँ रगो के सम्मिश्रण से हमारा तात्पर्य है अक्षिपट-सम्बन्धी रगो के सम्मिश्रण से। कई रगो को एक साथ मिलाकर उनका प्रभाव अक्षिपट पर देखा जाता है। रगो के सम्मिश्रण का तरीका यह है --

रगो के सम्मिश्रण के लिए एक यत्र होता है, जिसे रग-सम्मिश्रण-यत्र (**Colour-mixing instrument**) कहा जाता है। इसमे दो विभिन्न रगो की तख्तियो लगा दी जाती है और तब इसके पहिये को घुमाया जाता है। फलस्वरूप, विभिन्न रगो की तख्तियाँ भी घूमने लगती है। अक्षिपट कभी एक रग से उत्तेजित होता है, तो कभी दूसरे से। शुरू मे जब पहिये की गति धीमी होती है, तब दोनो ही रग झिलमिलाते हुए नजर आते है। लेकिन जैसे-जैसे पहिये की गति तेज होती जाती है, वैसे-वैसे दोनो रगो की झिलमिलाट भी लुप्त होती जाती है और अन्त मे एक ऐसी अवस्था आ जाती है, जहाँ दोनो रग बिलकुल लुप्त हो जाते है तथा एक तीसरे रग की सवेदना होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रारम्भ मे रगो की विविधरूपता अन्ततोगत्वा एकरूपता मे परिणत हो जाती है। उदाहरण के लिए, पीले और नीले रग को ल। यदि पीले और नीले रग की दो तख्तियो को रग-सम्मिश्रण-यत्र पर लगा दिया जाय और उसके पहिये को घुमाया जाय, तो शुरू मे ये दोनो ही रग झिलमिलाते हुए दीख पडेगे। लेकिन क्रमश उनकी यह झिलमिलाहट दूर होती जायगी और अन्त मे न तो पीले की सवेदना होगी और न नीले की, वरन भूरे की सवेदना होगी। वैसे ही, एक विशेष मात्रा मे लाल और पीले के सम्मिश्रण से नारगी का रग उत्पन्न होता है। रग-सम्मिश्रण के सम्बन्ध मे एक बात विशेष रूप से ध्यान देने की है और वह यह कि विभिन्न रगो का सम्मिश्रण समुचित मात्रा मे हो।

पूरक रंग (Complementary colours) --मनोवैज्ञानिक अध्ययनो के आधार पर पीले तथा नीले और लाल तथा हरे रगो को पूरक रग माना गया है। पूरक रगो के सम्मिश्रण से भूरे की सवेदना होती है। यदि पीले और नीले रगो को उचित परिमाण मे मिलाया जाय तो उनके सम्मिश्रण से भूरे की सवेदना होगी। कारण, पीला और नीला--- ये दोनो पूरक रग है। वैसे ही, लाल का पूरक रग है हरा। अत उनके उचित परिमाण मे सम्मिश्रण से भी पूरे की ही सवेदना होती है।

उजला और काला—ये दोनों भी एक-दूसरे के पूरक है। अतः विभिन्न अनुपातों में इनके सम्मिश्रण से भी विभिन्न प्रकार के भूरे की ही संवेदना होती है।

वे रंग जो एक-दूसरे के पूरक नहीं है, उनके सम्मिश्रण से उन दोनों रंगों के बीच के किसी रंग की संवेदना होती है। उदाहरणार्थ, लाल और पीले रंग एक-दूसरे के पूरक नहीं है। इन दोनों रंगों के सम्मिश्रण से नारंगी रंग उत्पन्न होता है। निरसन्देह, नारंगी रंग, लाल एवं पीले रंगों के बीच का रंग है। ऐसे ही लाल और नीले भी एक-दूसरे के पूरक नहीं है। अतः इनके सम्मिश्रण से भी जिस रंग की उत्पत्ति होती है, उसमें लाल एवं नीला, दोनों ही रंगों का आभास मिलता है। उसे लाल-नीला रंग की संज्ञा दी जा सकती है।

अंधकार-अभियोजन तथा प्रकाश-अभियोजन

(Dark adaptation and Light-adaptation)

आँखों में अभियोजन की क्षमता पर्याप्त रूप में वर्त्तमान रहती है। जब कभी हमलोग सूर्य की प्रखर किरणों से कुछ देर रहने के बाद अँधेरी कोठरी में जाते है, तब कुछ देर तक वहां की कोई भी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती। कारण, आँखें पहले से प्रकाश के प्रति अभियोजित रहती है। लेकिन धीरे-धीरे आँखों का अभियोजन अन्धकार के साथ होने लगता है। लगभग आध घंटे के अन्दर अँधेरी कोठरी की बहुत-सारी चीजें दिखाई पड़ने लगती है। इसे मनोविज्ञान में अंधकार-अभियोजन (Dark-adaptation) कहा जाता है। इसके विपरीत, जब हमलोग अँधेरी कोठरी से एकाएक सूर्य की प्रखर किरणों में आते है, तब आँखों में चकाचौंध उत्पन्न हो जाती है। कारण यह है कि अँधेरी कोठरी में अधिक देर तक रहने की वजह से आँखों को प्रकाश के साथ अभियोजित करने में कुछ समय की आवश्यकता पड़ती है। स्पष्ट है कि कुछ देर के बाद सूर्य की प्रखर किरणों के प्रति वे अपने को अभियोजित कर लेती है। इसे ही पारिभाषिक शब्दों में प्रकाश-अभियोजन (Light-adaptation) कहा जाता है।

अक्षिपट में स्थित 'फोविया' (Fovea) प्रकाश के प्रति क्रियाशील रहता है और वह अंधकार से उत्तेजित नहीं हो पाता है। आँख के किनारेवाले भाग में अंधकार में देखने की क्षमता अधिक रहती है। कारण स्पष्ट है। 'फोविया' में सूचियों (Cones) की संख्या अधिक रहती है

और वे प्रकाश में क्रियाशील होती हैं तथा आँख के किनारेवाले भाग में दंडों (Rods) की संख्या अधिक रहती है और वे अंधकार में क्रियाशील होती हैं। 'फोविया' (Fovea) में दंड नहीं होते। उल्लू, जो केवल रात में ही देख पाते हैं, उनकी आँखों में केवल दंड ही होते हैं, सूचियाँ बिलकुल नहीं होतीं। किन्तु इस सम्बन्ध में काफी मतभेद है।

अनुबिंब
(After-image)

जब कोई उत्तेजना आँखों के सामने से हटा ली जाती है, फिर भी उसकी संवेदना होती रहती है, तब उसे अनुबिंब कहा जाता है। उसे अनुसंवेदना (After-Sensation) की भी संज्ञा दी जाती है। अनुबिंब दो प्रकार के होते हैं:— (१) अनुरूप अनुबिंब (Positive after-images) तथा प्रतिरूप अनुबिंब (Negative after-images)।

अनुरूप अनुबिंब मूल संवेदना (Original Sensation) के ही समान होता है। उदाहरण के लिए, यदि लाल रंग उत्तेजना के रूप में उपस्थित किया जाय और फिर उसे हटा लिया जाय, तोभी लाल रंग की ही संवेदना हो, तो निश्चय ही यह अनुरूप अनुबिंब कहा जायगा। अनुरूप अनुबिंब का प्रधान कारण यह है कि जब उत्तेजनाएँ आँखों के सामने से हटा ली जाती हैं, तब भी आँख का अक्षिपट (Retina) थोड़े समय तक उस उत्तेजना के प्रति क्रियाशील रहता है। अनुरूप अनुबिंब का अस्तित्व निम्नलिखित प्रयोग के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है:—

यदि कोई व्यक्ति अपनी आँखों को कुछ देर बन्द रखने के बाद एकाएक उन्हें खोले और तीव्र प्रकाश पर ध्यान लगाये, उसे एकटक देखता रहे, और फिर कुछ देर बाद अपनी आँखों को बन्द कर ले, तोभी उसे पूर्व की भाँति ही कुछ सेकेंड तक वह तीव्र प्रकाश दिखाई पड़ता ही रहेगा। यह अनुबिंब, प्रकाश का अनुरूप अनुबिंब (Positive after-image) है। अनुरूप अनुबिंब मुश्किल से कुछ सेकेंड तक ठहर पाता है। फलस्वरूप, हमलोग प्रतिदिन के जीवन में शायद ही किसी अनुरूप अनुबिंब का अनुभव कर पाते हैं। इसका अनुभव तो प्रायः प्रयोगशाला की नियन्त्रित अवस्थाओं में ही होता है।

प्रतिरूप अनुबिंब (Negative after-image) मूल संवेदना के समान नहीं होता, बल्कि उसके विपरीत हुआ करता है।

उदाहरण के लिए, प्रकाश का प्रतिरूप अनुबिंब है अंधकार और किसी प्रकार के रंग का प्रतिरूप अनुबिंब ह उसका पूरक रंग; जैसे, लाल का हरा और नीले का पीला। इसे निम्नलिखित प्रयोग के द्वारा समझाया जा सकता है—

यदि एक सफेद आधार भूमि (Background) पर एक छोटे लाल रंग के कागज का टुकड़ा चिपका दिया जाय और कोई व्यक्ति लगातार एकटक उस लाल रंग के टुकड़े को १५–२० सेकेंड तक देखता रहे और फिर वहाँ से ध्यान हटाकर वह एक बड़ी सफेद आधार-भूमि पर गौर से देखे, तो उसे पहले के आकार का ही कागज का टुकड़ा दीख पड़ेगा। लेकिन वह लाल के बदले हरे रंग को देखेगा। हरे रंग की यह संवेदना वस्तुत: मूल रूप में देखे गये लाल रंग का ही प्रतिरूप अनुबिंब (Negative after-image) है।

रंग-अंधापन
(Colour-blindness)

सामान्यत: जब मनुष्य के सामने भिन्न-भिन्न रंगों को उपस्थित किया जाता है, तब उसे रंगों की संवेदना होती है। लेकिन कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें रंगों की संवेदना बिलकुल होती ही नहीं। ऐसे व्यक्तियों को रंगांध (Colour-blind) कहा जाता है और इस दोष को रंग-अंधापन की संज्ञा दी जाती है।

रंग-अंधापन प्राय: तीन तरह का होता है—लाल-हरे रंग का अंधापन (Red-green colour-blindness), नीले-पीले रंग का अंधापन (Blue-yellow colour-blindness) और पूर्ण रंग-अंधापन (Total colour-blindness)। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर पाया गया है कि मर्दों में प्राय: लाल-हरे रंग का अंधापन ३.५ या ४ प्रतिशत होता है। अपेक्षाकृत स्त्रियों में इस प्रकार का रंग-अंधापन बहुत कम पाया जाता है। हजार में एक स्त्री ही लाल-हरे रंग को अंधी पायी गयी है। यह दोष जन्मजात (Congenital) है। नीले-पीले रंगों का अंधापन बहुत कम पाया जाता है। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह दोष जन्मजात (Congenital) है, बल्कि साधारणत: यह कहा जाता है कि यह दोष मनुष्य अपने जीवन-काल में अर्जित करता है। जन्म से उसके अन्दर यह दोष नहीं पाया जाता है

पूर्ण रंग-अंधापन (Total colour-blindness) की अवस्था वह है, जिसमें मनुष्य को किसी भी रंग की संवेदना नहीं होती। उसे सिर्फ भूरे, उजले और काले की ही संवेदना होती है।

अर्जित रंग-अंधापन (Acquired Colour-blindness) :— जीवन-काल में अर्जित रंग-अंधापन अस्थायी स्वभाव का होता है। इसे आसानी से दूर किया जा सकता है। अर्जित रंग-अंधापन अधिक नशा के सेवन से होता है। इस प्रकार के रंग-अंधापन को दूर करने का सबसे अच्छा तरीका है—उसके कारण को ही दूर निकाल फेंकना।

रंग-अंधापन के अध्ययन से मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में काफी लाभ पहुंचा है। रेलवे में गार्ड की नियुक्ति के समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वह रंगांध न हो। ठीक उसी तरह ड्राइवर के लिए भी यह आवश्यक है कि वह रंगांध न हो। यदि रंगांध व्यक्तियों को गार्ड अथवा ड्राइवर की जगह पर रखा जाय, तो रेलवे-दुर्घटना की संभावना बहुत अधिक बढ़ जायगी।

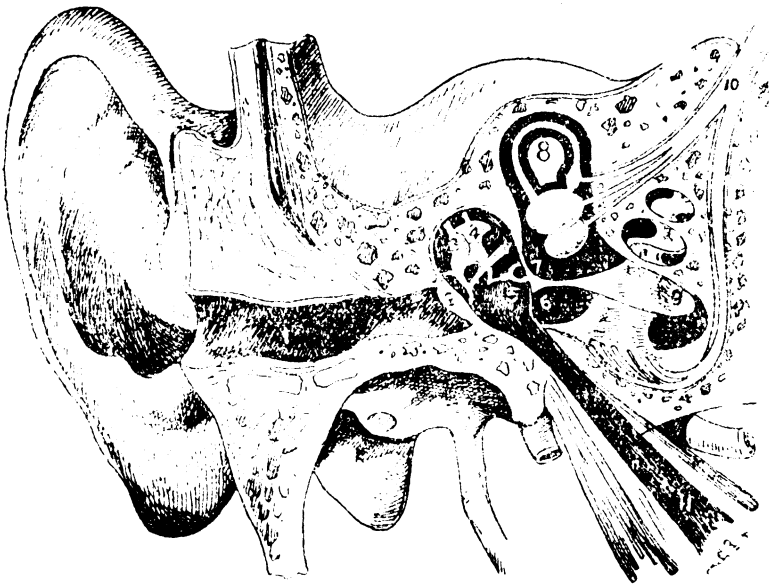
श्रवण-संवेदना
(Auditory Sensation)

शब्द-प्रकंपन (Ether-vibration) को कान ग्रहण करते हैं। शब्द कान को उत्तेजित करते हैं और तब मनुष्य में सुनने की संवेदना उत्पन्न होती है। इसकी पूर्ण व्याख्या आगे प्रस्तुत की जायगी। अभी कान की बनावट, कान के भिन्न-भिन्न भागों के कार्य और शब्द के स्वभाव पर प्रकाश डाला जायगा।

कान की बनावट—मनुष्य के कान को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) बाह्यकर्ण (The outer ear), (२) मध्यकर्ण (The middle ear) और (३) अन्तःकर्ण (The inner ear)।

बाहरी कान ध्वनि का संग्रह करता है। इसके दो प्रधान भाग हैं। पहला भाग वह है, जो सीप की तरह चौड़ा होता है और यह कान का सबसे बाहरी भाग है। मनुष्य में इस भाग का कोई प्रधान कार्य नहीं है। इसके नष्ट हो जाने पर भी सुनने में कोई खास कमी नहीं आती। दूसरे भाग को कान की नली (Auditory tube) कहते हैं। इसीके द्वारा ध्वनि कान के ढोल (Ear-drum) तक पहुँचती है। कान का ढोल मध्यकर्ण (Middle ear) की सीमा पर स्थित है।

मध्यकर्ण मे कान के ढोल से सटी हुई तीन छोटी हड्डियो (Ossicles) का समूह है, जिन्हे मुद्गर (Hammer), निहाई (Anvil) और रकाब (Stirrup) कहते है। जब कोई ध्वनि कान के ढोल के पास पहुँचकर उसे प्रकपित कर देती है, तब उन तीनो छोटी हड्डियो मे भी कपन शुरू हो जाता है। फलस्वरूप, ध्वनि तीस गुनी बढ जाती है। इस प्रकार मध्य कान का प्रधान कार्य यह है कि ध्वनि को श्रवण-सवेदना के पर्याप्त उद्दीपक के रूप मे परिवर्तित कर दे। जब ध्वनि पर्याप्त उद्दीपक के रूप मे परिणत हो जाती है तब अन्त कर्ण (Inner ear) मे प्रवेश कर सुनने की सवेदना उत्पन्न करती है।



चित्र-स०-११— मानव-कर्ण

बाह्यकर्ण	मध्यकर्ण	अन्तःकर्ण
१ कान की नली	६ गोलाकार खिडकी	१०. श्रवण-स्नायु
२ कान का ढोल	७ अडाकार खिड़की	११. कठ कर्णनली
३ मुद्गर	८ अर्द्ध-चक्राकार नलियाँ	
४. निहाई		
५ रकाब	९. 'कौकलिया'	

अन्तःकर्ण खोपड़ी की हड्डियों के भीतर स्थित है। इसके भीतर घोंघे के आकार की एक इन्द्रिय होती है, जिसे 'कौकलिया' (Cochlea) कहते हैं। 'कौकलिया' तरल पदार्थ से भरा रहता है। इस तरल पदार्थ में सेवार के समान अनेक केश-पेशियाँ (Hair cells) होती हैं। ये केश-पेशियाँ एक झिल्ली पर स्थित रहती हैं, जिसे 'बैसिलर मेम्ब्रेन' (Basilar membrane) कहते हैं। इसी 'बैसिलर मेम्ब्रेन' से श्रवण-संवेदना की स्नायुएं (Nerves) निकलकर मस्तिष्क के श्रवण-केन्द्र (Auditory centre) तक जाती हैं। जब ध्वनि कान के ढोल (Ear-drums) के पास पहुँचकर उसमें कंपन उत्पन्न कर देती है तब उसके पास की तीनों छोटी हड्डियाँ भी हिलने लगती हैं। उसके बाद वह ध्वनि-प्रकंपन (Sound-Vibration) कौकलिया' में स्थित केश-पेशियों (Hair-cells) को उत्तेजित करता है और इस प्रकार स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) उत्पन्न हो जाते हैं। उन स्नायु-प्रवाहों को श्रवण-संवेदना की स्नायुएँ मस्तिष्क के शंखखंड (Temporal lobe) में, जहाँ श्रवण-केन्द्र (Auditory centre) है, ले जाती हैं। फलतः मनुष्य को सुनने की संवेदना होती है।

कान के तीनों भागों के कार्यों के सम्बन्ध में संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कान का बाहरी भाग ध्वनि का संग्रह करता है। कान का मध्यभाग ध्वनि को श्रवण-संवेदना के पर्याप्त उद्दीपक (Adequate stimulus) के रूप में परिवर्त्तित कर देता है। वस्तुतः कान का भीतरी भाग ही ध्वनि का सच्चा ग्रहण करनेवाला है। कान के तीनों भागों के कार्यों को एक-एक शब्द में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है--

बाह्यकर्ण--संग्रहकर्त्ता (Collector)।
मध्यकर्ण--परिवर्त्तनकर्त्ता (Transformer)।
अन्तःकर्ण--ग्रहणकर्त्ता (Receptor)।

ध्वनि का स्वरूप (Nature of sound):--ध्वनि को दो प्रधान भागों में बाँटा जा सकता है :-- (१) लयात्मक ध्वनि (Tone) और (२) अलयात्मक ध्वनि (Noise)।

वाद्ययन्त्र से उत्पन्न ध्वनि को लयात्मक ध्वनि और चलती हुई गाड़ी इत्यादि से उत्पन्न ध्वनि को अलयात्मक ध्वनि की संज्ञा दी जा सकती है। जब कोई सितार, पियानो अथवा हारमोनियम बजाता है, तब उससे

लयात्मक ध्वनि की सृष्टि होती है। अलयात्मक ध्वनि अथवा शोर-गुल प्रायः व्यस्त नगर की गलियों में या सड़कों पर सुनने को मिलता है।

लयात्मक ध्वनि एवं अलयात्मक ध्वनि की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए यह कहना समीचीन प्रतीत होता है कि लयात्मक ध्वनि श्रवण-सुखद होती है तथा अलयात्मक ध्वनि कर्ण-कटु। लेकिन, इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि ये दोनों प्रकार की ध्वनियाँ एक-दूसरी से बिलकुल भिन्न होती हैं। वस्तुतः ऐसी कोई लयात्मक ध्वनि नहीं, जिसमें थोड़ी-सी लयात्मक ध्वनि उपस्थित न हो और कोई ऐसी अलयात्मक ध्वनि भी नहीं, जिसमें लयात्मक ध्वनि का पुट न हो। प्रतिदिन का अनुभव बतलाता है कि शायद ही कोई व्यक्ति विशुद्ध लयात्मक ध्वनि (Pure tone) अथवा विशुद्ध अलयात्मक ध्वनि (Pure noise) सुन पाता है।

लयात्मक ध्वनि और अलयात्मक ध्वनि की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न ढंग से होती है। जब शब्द-तरंगे (Ether-waves) क्रमबद्ध ढंग (Regular way) से कान के ढोल के पास पहुँचती है, तब लयात्मक ध्वनि उत्पन्न होती है और जब ये बिना किसी क्रम के (Irregular way) कान के ढोल के पास जाती हैं, तब अलयात्मक ध्वनि पैदा होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि लयात्मक ध्वनि मे एक क्रम वर्त्तमान रहता है, जहाँ अलयात्मक ध्वनि म इसका अभाव पाया जाता है। इस क्रमबद्धता के कारण ही लयात्मक ध्वनि प्रिय जान पड़ती है और अलयात्मक ध्वनि अप्रिय।

लयात्मक ध्वनि की प्रमुख विशेषताएँ

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, अनेक शब्द-तरंगों के निश्चित काल-व्यवधान (Regular intervals) के अनुसार कान के ढोल के पास पहुचकर उसे प्रकंपित करने से ही लयात्मक ध्वनि उत्पन्न होती है। यदि ये शब्द-तरंगें खूब तेजी के साथ कान के ढोल के पास पहुँचती हैं, तो ध्वनि ऊँची कोटि (Higher pitch) की होती है और यदि एक के बाद दूसरी शब्द-तरंगें धीमी गति से कान के ढोल के पास पहुँचती है तो ध्वनि नीची कोटि (Lower pitch) की होती है। कोई भी ध्वनि ऊँची कोटि की होगी अथवा नीची कोटि की, यह शब्द-तरंगों की संख्या पर निर्भर करता है। यदि एक निश्चित समय के भीतर, जैसे एक सेकेंड के भीतर अनेक शब्द-तरंगें कान के ढोल को उत्तेजित करें, तो ध्वनि ऊँची कोटि की होगी और यदि एक सेकेंड के अन्दर कान के ढोल को उत्तेजित

करनेवाली शब्द-तरंगों की संख्या अपेक्षाकृत कम हो तो ध्वनि नीची कोटि की होगी ।

ध्वनि की दूसरी प्रधान विशेषता है घनत्व (Loudness), अर्थात्, उसका भारी या हल्का होना । एक कोटि (Pitch) की दो ध्वनियों में प्रायः तीव्रता (Intensity) के कारण भेद पाया जाता है । ध्वनि का भारी या हल्का होना, शब्द-तरंगों के आकार अथवा विस्तार (Size or Amplitude) पर निर्भर करता है । शब्द-तरंगें जितनी लम्बी होंगी, ध्वनि उतनी ही भारी होगी । इसके विपरीत शब्द-तरंगें जितनी ही छोटी होंगी, ध्वनि भी उतनी ही हल्की होगी ।

ध्वनि की तीसरी विशेषता है नाद-गुण (Timbre)। नाद-गुण के कारण ही एक ध्वनि दूसरी से भिन्न जान पड़ती है । विभिन्न वाद्ययंत्रों से उत्पन्न ध्वनियों में स्वभावतः अन्तर पड़ता है। यह अन्तर नाद-गुण के कारण ही होता है । वस्तुतः कोई भी वाद्ययंत्र विशुद्ध ध्वनि नहीं उत्पन्न करता, वरन् उसमें ध्वनियों का सम्मिश्रण (Combination of tones पाया जाता है । प्रत्येक लयात्मक ध्वनि में मूल स्वर (Fundamental tone) तथा अनेक अधिस्वर (Overtones) पाये जाते हैं । मूल स्वर, ध्वनि की कोटि (Pitch) का निर्णय करता है और अधिस्वरों के कारण प्रत्येक वाद्ययंत्र की ध्वनि में एक विशेषता आ जाती है । अपनी इसी विशेषता के कारण एक वाद्ययंत्र की ध्वनि दूसरे वाद्ययंत्र की ध्वनि से भिन्न होती है। ध्वनियों की इस प्रकार की भिन्नता को ही नाद-गुण कहा जाता है। नाद-गुण के कारण ही हम एक मनुष्य की आवाज दूसरे मनुष्य की आवाज से भिन्न कर पाते हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने ध्वनि की एक चौथी विशेषता का भी उल्लेख किया है, और वह है ध्वनि का विस्तार (Volume of sound)। यदि समुद्र की लहरों से उत्पन्न ध्वनि पर विचार किया जाय, तो स्पष्ट रूप से जान पड़ेगा कि स्वर-कोटि (Pitch of sound), तीव्रता (Intensity) और नाद-गुण (Timbre) के सिवा उसमें एक चौथी विशेषता भी वर्त्तमान रहती है और वह है—ध्वनि का विस्तार । वह ध्वनि काफी फैली हुई होती है । अन्त में, यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि ध्वनि की इस विशेषता के सम्बन्ध में काफी विवाद है। इस विषय पर सभी मनोवैज्ञानिक एकमत नहीं हैं ।

स्वाद तथा गंध-संवेदनाएँ

मनुष्य-जीवन में जितना दृष्टि-संवेदना तथा श्रवण-संवेदना का महत्त्व है, उतना स्वाद तथा घ्राण-संवेदना का नहीं। कारण स्पष्ट है। मनुष्य देखकर अथवा सुनकर ही तो संसार की विविध वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है। हाँ, गन्ध और स्वाद से भी अनेक वस्तुओं का ज्ञान होता है। किन्तु यदि तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार किया जाय, तो मानना होगा कि मनुष्य के जीवन में जितना अधिक महत्त्व देखने और सुनने की संवेदनाओं का है, उतना स्वाद और गन्ध की संवेदनाओं का नहीं। कुछ पशुओं के जीवन में गंध का प्रमुख स्थान है। वे देखने और सुनने की अपेक्षा गंध का आधार लेकर ही अपने अधिकांश कार्य संपादित करते हैं। उदाहरण के लिए, हम कुत्ते को ले सकते हैं। कुत्ता प्रायः किसी वस्तु की गंध पाकर उसकी पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेता है। वह गन्ध से प्रेरित होकर ही अपने अधिकांश कार्य सम्पादित करता है। उसके जीवन में देखने और सुनने का अपेक्षाकृत कम महत्त्व है।

स्वाद तथा गन्ध की संवेदनाएँ देखने और सुनने की संवेदनाओं की अपेक्षा सरल होती हैं। इन दोनों का आपस में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। इनकी सन्निकटता का अनुभव हमलोग प्रायः प्रतिदिन करते हैं। भोजन का स्वाद केवल जीभ पर ही नहीं निर्भर करता, बल्कि सूँघने की शक्ति पर भी अवलम्बित रहता है। तभी तो सुगन्धि के कारण भोजन स्वादिष्ट बन जाता है और इसके अभाव में भोजन में कोई स्वाद नहीं मिलता। मनुष्य जब कभी कड़ी सर्दी का शिकार बना रहता है तो नाक के मार्ग बन्द हो जाते हैं और इसलिए भोजन की गन्ध नाक में नहीं पहुँचती। फलस्वरूप, भोजन में कोई स्वाद नहीं मिलता।

स्वाद की संवेदना जीभ में स्थित स्वाद-कलिकाओं (Taste-buds) पर निर्भर करती है। ये स्वाद-कलिकाएँ जीभ की ऊपरी सतह पर फैली हुई रहती हैं। जब ये स्वाद-कलिकाएँ भोजन की सामग्री पाकर उत्तेजित होती हैं, तब स्वाद की संवेदना का अनुभव होता है। जीभ में स्वाद के सिवा अन्य संवेदनाओं की क्षमता भी वर्त्तमान रहती है। उदाहरणार्थ, जीभ में स्पर्श, दबाव, गर्मी और ठंढक आदि संवेदनाओं का भी अनुभव होता है। जब कोई रसगुल्ला खाता है तब जीभ में स्पर्श, दबाव और ठंढक की संवेदनाएँ होती हैं और स्वाद-कलिकाओं के उत्तेजित होते ही स्वाद की संवेदना होने

लगती है। जब स्पर्श, दबाव और स्वाद की सवेदना मे गन्ध की सवेदना का सयोग हो जाता है, तब भोजन काफी जायकेदार बन जाता है। फलत भोजन बडा ही स्वादिष्ट मालूम पडता है। चाय, काफी आदि जायकेदार होने के कारण ही स्वादिष्ट जान पडते है।

स्वाद-कलिकाएँ तरल पदार्थो (Liquid substances) से उत्तेजित होती है। जब मनुष्य कोई चीज खाता है और वह तरल रूप ग्रहण कर लती है, तभी उसका स्वाद मिलता है। सूखी चीजे बेस्वाद होती है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनो के आधार पर मूलत चार प्रकार के स्वादो की अनुभूति का पता लगता है—मीठा, कडवा, खट्टा और नमकीन। समूची जीभ मे इन चारो स्वादो को ग्रहण करने की एक तरह की क्षमता नहीं होती, वरन् जीभ के भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न स्वादो को ग्रहण करते है। जीभ के अगले भाग के उत्तेजित होने से मीठे और नमकीन की सवेदनाए होती है। जीभ की जड कडवे की सवेदना के लिए सबसे उपयुक्त स्थान है तथा खट्टे की सवेदना का अनुभव जीभ के दोनो किनारो के उत्तेजित होने से होता है। इन चारो प्रकार की स्वाद-सवेदनाओ को उत्पन्न करने के लिए चार उपयुक्त उत्तेजनाओ को आवश्यकता पडती है। चीनी से मीठे, कुनैन से कडवी, नीबू के रस से खट्टी और नमक से नमकीन की सवेदनाएँ उत्पन्न होती है। नीचे दी गयी सूची से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है—

स्वाद-सवेदनाएँ	ग्राहकेन्द्रियाँ	समुचित उत्तेजनाएँ
मीठा	जीभ का अगला भाग	चीनी
कडवा	जीभ की जड	कुनैन
खट्टा	जीभ के दोनो किनारे	नीबू का रस
नमकीन	जीभ का अगला भाग	नमक

गध को ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ नासिका-रन्ध्र (Nasal cavity) के ऊपरी भाग मे स्थिति रहती है, जिन्हे घ्राण-कन्द (Olfactory bulbs) कहते है।

गध-सवेदना

गध की सवेदना के लिए समुचित उत्तेजना है गैस, जो हवा द्वारा नासिका-रन्ध्र मे प्रवेश कर गध की सवेदना उत्पन्न करती है। जिस प्रकार स्वाद-सवदना भोजन की सामग्री के तरल रूप मे आने पर उत्पन्न होती है

उसी प्रकार गंध की संवेदना के लिए यह आवश्यक है कि उत्तेजक पदार्थ गैस के रूप में हो ।

अन्तर्निरीक्षणात्मक पद्धति के आधार पर गंध-संवेदना के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त होता है। प्रारम्भिक गंधों के वर्गीकरण का प्रयास मनोवैज्ञानिकों ने किया है। हेन्निग (Henning) के अध्ययन के फलस्वरूप गंध छ प्रकार की माना गयी है:—

(१) फलों की गंध....जैसे आम, नारंगी इत्यादि की गंध ।
(२) फूलों की गंध.....जैसे गुलाब, चमेली इत्यादि की गंध ।
(३) मसालों की गंध...जैसे लवंग, इलायची, मिर्च आदि की गंध ।
(४) राल की गंध....जैसे तारपीन के तेल की गंध।
(५) सड़े हुए पदार्थों की गंध....जैसे सड़े हुए आलू की गंध।
(६) जले हुए पदार्थों की गंध.....जैसे जले कपड़े, जले हुए दूध आदि की गंध ।

गंध-संवेदना की विशेषताएँ

(१) गंध ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ बहुत जल्द थक जाती हैं । यदि एक ही गंध-उत्तेजना से बार-बार गंध ग्रहण करनेवाली इन्द्रियों को उत्तेजित किया जाय, तो कुछ देर बाद उनमें थकावट आ जायगी। उदाहरण के लिए, यदि गुलाब के फूल की सुगंधि का अनुभव लगातार कुछ मिनटों तक होता रहे तो संभवतः उसकी गंध धीरे-धीरे कम होती जायगी और अन्त मे वह गुलाब का फूल बिलकुल गन्धहीन जान पड़ेगा। ठीक वैसे ही, जब कोई व्यक्ति मछली-बाजार मे जाता है तब उसकी गन्ध ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ उत्तेजित हो जाती है और वह शीघ्र ही अपनी नाक रूमाल से ढँक लेता है। किन्तु, मछली की गंध उसकी नाक को अधिक देर तक प्रभावित नहीं कर पाती । कारण, गंधेन्द्रियाँ थक जाती है अथवा यह कहा जा सकता है कि गंध की इन्द्रियों का मछली की गध के साथ अभियोजन (Adjustment) स्थापित हो जाता है। फिर वह व्यक्ति उस गन्ध की ओर से बिलकुल अन्यमनस्क हो जाता है। गन्ध-संवेदना की इस विशेषता का व्यावहारिक जीवन में बड़ा महत्त्व है ;। गंध-संवेदना की इसी विशेषता का फल है कि दुर्गन्ध के बीच भी डाक्टर अस्पतालों में और मजदूर चमड़े के कारखानों में काम कर लेते हैं ।

भावों की अनुभूति। कोई भी गन्ध या तो प्रिय होती है या अप्रिय। उदाहरण के लिए, गुलाब की गंध प्रिय जान पड़ती है, तो सड़े हुए पदार्थों की गंध अप्रिय। गन्ध की प्रियता और अप्रियता (Pleasantness and Unpleasantness) गन्ध के उत्तेजक पदार्थ की मात्रा मे निर्भर करती है। यदि अच्छी-से-अच्छी गन्ध भी अधिक मात्रा मे उपस्थित की जाय, तो वह अप्रिय जान पडेगी और समुचित मात्रा मे प्रस्तुत की जाय, तो प्रिय मालूम पडेगी।

(३) अन्य संवेदनाओ की तरह गन्ध-सवेदना ही बाह्य जगत् की वस्तुओं का ज्ञान प्रदान करती है। आदिम मनुष्य गन्ध के आधार पर ही भोजन का पता लगाता था। लेकिन, जैसे-जैसे मनुष्य मे सभ्यता-सस्कृति का विकास होता गया, वैसे-वैसे उसके जीवन से गन्ध-सवेदना की प्रधानता जाती रही। इसका प्रज्ञात्मक पहलू (Cognitive aspect) मानव-जीवन के लिए गौण होता गया। किन्तु पशु के जीवन मे गन्ध-सवेदना के प्रज्ञात्मक पहलू का भी प्रमुख स्थान है। गन्ध के आधार पर ही कुत्ते प्रायः अपने भोज्य पदार्थों का पता लगाते हैं।

त्वक्-संवेदनाएँ

(Cutaneous sensations)

त्वचा-सम्बन्धी सभी अनुभवो को निम्नलिखित चार प्रारम्भिक त्वक्-संवेदनाओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है--

(१) दबाव की संवेदना,
(२) पीड़ा की संवेदना,
(३) उष्णता की संवेदना, और
(४) शीत की सवेदना।

ये चारों संवेदनाएँ एक-दूसरी से भिन्न हैं और चमड़े पर इनके भिन्न-भिन्न स्थान भी हैं। इन्हे जानने का तरीका यह है कि किसी वस्तु की बनी हुई पेंसिल की तरह नुकीली चीजो को ठंढा या गर्म करके चमड़े पर भिन्न-भिन्न स्थानों का स्पर्श किया जाय। फिर रुखड़े बाल और सूई की नोंक से चमड़े के भिन्न-भिन्न स्थानों का स्पर्श किया जाय। जब किसी ठंढे पदार्थ से चमड़े पर भिन्न-भिन्न विन्दुओं को स्पर्श किया जाता है, तब कुछ विन्दु क्रिया-शील हो उठते हैं और मनुष्य को ठंढक की संवेदना का अनुभव होता है। इन

विन्दुओं को ही शीत-विन्दु (Cold spots) कहते हैं। कुछ ऐसे विन्दु भी चमड़े पर होते हैं, जो गर्म उत्तेजना पाकर ही उत्तेजित होते हैं और तब मनुष्य गर्मी की संवेदना का अनुभव करता है। इन्हें तापविन्दु (Heat-spots) कहा जाता है। जब कड़े बाल की नोंक से चमड़े पर भिन्न-भिन्न विन्दुओं को स्पर्श किया जाता है, तब दबाव का अनुभव होता है। इन विन्दुओं को चाप-विन्दु (Pressure spots) कहा जाता है। चमड़े के वे विन्दु, जो सूई की नोंक से उत्तेजित होते हैं और जिनमें मनुष्य दर्द का अनुभव करता है, वेदना-विन्दु (Pain-spots) कहलाते हैं।

त्वक्-संवेदनाओं के सम्बन्ध में जो भी मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान हुए हैं, उनसे स्पष्ट है कि इन संवेदनाओं की पूरी जानकारी के लिए नये-नये तरीके काम में लाये जा रहे हैं। अभी जिन तरीकों का वर्णन किया गया है, उनमें कालान्तर में काफी संशोधन हुए हैं।

शीत, ताप, दबाव और पीड़ा के स्थल समस्त शरीर में बिखरे हुए हैं। शरीर के चमड़े पर जितने शीत-विन्दु होते हैं, उतने ताप-विन्दु नहीं। शीत-विन्दु सबसे अधिक ललाट और आँखों की पलकों के भीतरी भाग में होते हैं। चाप-विन्दु अंगुलियों के छोर पर पाये जाते हैं। आँख की कनीनिका (Cornea of the eye) में पीड़ा की संवेदना का अनुभव सबसे अधिक होता है। साधारणतः वेदना-विन्दु समस्त शरीर के चमड़े पर बिखरे हुए हैं। सबसे कम वेदना-विन्दु गालों और जाँघों में होते हैं। जिस तरह ये सभी विन्दु शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में स्थित हैं, उसी प्रकार ये संख्या में भी एक-दूसरे से भिन्न हैं। शरीर के चमड़े पर सबसे अधिक संख्या में वेदना-विन्दु पाये जाते हैं। चाप-विन्दु और शीत-विन्दु करीब-करीब बराबर संख्या में ही शरीर के चमड़े पर बिखरे हुए हैं। शरीर के चमड़े पर सबसे कम संख्या ताप-विन्दुओं की है।

शीत, दबाव, पीड़ा और ताप की संवेदना की प्रमुख विशेषता यह है कि जब शीत, दबाव, पीड़ा और ताप के विशेष विन्दुओं को उत्तेजित किया जाता है, तभी उनसे क्रमशः शीत, दबाव, पीड़ा और ताप की संवेदनाओं का अनुभव होता है। संक्षेप में, विशेष प्रकार के इन विन्दुओं में अपनी विशेष प्रकार की संवेदनाओं को उत्पन्न करने की शक्ति रहती है। ये दूसरी तरह की संवेदनाएँ उत्पन्न नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए, यदि

हम गर्म उत्तेजना का भी प्रयोग किसी शीत-विन्दु (Cold spot) पर करें तो वह शीत-विन्दु गर्मी की संवेदना के बदले शीत या ठंढक को ही संवेदना उत्पन्न करेगा ।

इन संवेदनाओं की दूसरी विशेषता यह है कि ये सभी बराबर समय में उत्पन्न और समाप्त नहीं होतीं । दबाव की संवेदना उत्तेजना के प्रयोग करते ही शीघ्र उत्पन्न हो जाती है और उत्तेजना के हटाते ही शीघ्र समाप्त भी हो जाती है। इसके उत्पन्न होने और समाप्त होने की अवधि (Duration) बहुत ही थोड़ी होती है । ठीक इसके विपरीत, उत्तेजना के प्रयोग करने पर पीड़ा की संवेदना का अनुभव बहुत धीरे-धीरे होता है और उत्तेजना के हटा लेने पर भी पीड़ा की संवेदना एकाएक खतम नहीं हो जाती, बल्कि धीरे-धीरे इसका अन्त होता है। पीड़ा उत्पन्न होने और समाप्त होने की अवधि अन्य त्वक्-संवेदनाओं की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। शीत-संवेदना दबाव की संवेदना के सदृश उत्तेजना के प्रयोग करते ही उत्पन्न हो जाती है और उत्तेजना के हटाते ही समाप्त भी हो जाती है। ताप-संवेदना, पीड़ा की संवेदना के समान ही उत्तेजना के प्रयोग करने पर बहुत धीरे-धीरे उत्पन्न होती है और उत्तेजना के हटा लेने पर भी यह धीरे-धीरे खतम होती है।

गति-संवेदना तथा अन्य अन्तरिन्द्रिय संवदनाएँ
(Kinesthetic sensation and other internal organic sensations)

गति-संवेदनाओं के द्वारा हमें शरीर की स्थिति, शरीर के विभिन्न अंगों के संचालन और उनके परस्पर-सम्बन्धों का ज्ञान होता है। ये संवेदनाएँ मांसपेशियों में गति आने के कारण उत्पन्न होती हैं। हमारे शरीर की मांसपेशियां (Muscles), पुट्ठे (Tendons) और संधियों (Joints) मे बहुत ही छोटे-छोटे स्नायविक जीवाणु (Nerve-cells) पाये जाते हैं, जो इन अंगों मे गति आने के कारण उत्तेजित हो उठते हैं फलस्वरूप, हमें गति-संवेदना होती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि गति-संवेदनाएँ अत्यन्त ही जटिल होती हैं। कारण, गति-संवेदनाओं में कई अन्य संवेदनाएँ भी शामिल रहती हैं--जैसे स्पर्श तथा दबाव इत्यादि की संवेदनाएँ।

गति-संवेदनाओं की प्रधान विशेषता यह है कि संवेदनाएँ मांसपेशियों, पुट्ठों तथा संधियों में गति आने पर स्वयं उत्पन्न हो जाती हैं । हमलोग

प्रायः अपने शरीर की गतियों पर विशेष ध्यान नहीं देते। किन्तु यदि हम इनपर ध्यान दें, तो प्रत्यक्षतः मालूम होगा कि शारीरिक अंगों के संचालन के समय ये संवेदनाएँ हम अपन-आप होती रहती हैं। यही कारण है कि आँखों के बन्द रहने पर भी हम साधारणतः अपने अंगों के संचालन का ध्यान रखते हैं। उदाहरण के लिए, यदि हम अपनी आँखों को बन्द कर अपने शरीर के किसी विशेष अंग, जैसे, हाथ या पैर को हिलायें तो हमें स्पष्ट अनुभव होगा कि हमारा हाथ या पैर हिल रहा है तथा वह किस स्थिति और किस दिशा में है।

यद्यपि मनुष्य सामान्यतः अपनी गति-संवेदनाओं पर ध्यान नहीं देता, तथापि ये संवेदनाएं उसका शारीरिक गतियों का निरन्तर निर्देशित करती रहती हैं। यही कारण है कि हम वाक्-सम्बन्धी मांसपेशियों की गतियों पर ध्यान दिये बिना ही किसी से घंटों बातचीत करते रह सकते हैं तथा टाइप करनेवाला अपनी अंगुलियों की मांसपेशियों पर ध्यान दिये बिना ही टाइप करता चला जाता है। स्पष्ट है कि इन सभी व्यवहारों में गति-संवेदनाएँ सन्निहित रहती हैं, किन्तु साधारणतः मनुष्य का ध्यान इनकी ओर नहीं जाता। जब किसी दोष के कारण शरीर की ये गतियाँ बन्द हो जाती हैं, तब मनुष्य का ध्यान इनकी ओर जाता है। कहना न होगा कि ये गति-संवेदनाएँ जीवन के लिए अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं।

आँख, कान, नाक, जीभ और स्पर्श की संवेदनाओं का उल्लेख पहले ही हो चुका है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन पाँच परंपरागत इन्द्रियों के सिवा कुछ अन्य आन्तरिक इन्द्रियाँ भी हैं, जिनकी संवेदनाओं का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये आन्तरिक इन्द्रियाँ कंठ, फेफड़ा, हृदय, आमाशय, अँतड़ी और कामेन्द्रिय आदि आन्तरिक अवयवों में पायी जाती हैं।

इन इन्द्रियों के उत्तेजित होने से विभिन्न आन्तरिक संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं; जैसे—भूख, प्यास, वमन (Nausea) या जी मिचलाने की संवेदनाएँ तथा कामातुरता (Sexual craving), रोमांच और दम घुटने की संवेदनाएँ इत्यादि।

हमारी अन्तरिन्द्रिय संवेदनाएँ प्रायः अस्पष्ट होती हैं। इनका जीवन के प्रेरणात्मक पक्ष में बड़ा प्रमुख स्थान है। वस्तुतः भूख, प्यास, काम की आतुरता आदि मनुष्य के जीवन में प्रेरक वृत्तियों (Motives) का काम करती ह। इनसे प्रेरित होकर मनुष्य क्रियाशील हो उठता है। जब मनुष्य

भूख से व्याकुल हो जाता है, तब भोजन पाने की चेष्टा करता है, प्यास का अनुभव होने पर जल पीने का प्रयास करता है तथा काम से आतुर होने पर काम को तृप्ति के लिए क्रियाशील हो जाता है। संक्षेप मे, अन्तरिन्द्रिय संवेदनाओं का जीवन के भावात्मक (Affective) तथा प्रेरणात्मक (Motivational) पक्षों मे बड़ा प्रमुख स्थान है।

छठा अध्याय

प्रत्यक्षीकरण

प्रत्यक्षीकरण एक ऐसी मानसिक क्रिया है, जिसके द्वारा वातावरण में उपस्थित वस्तु तथा ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित करनेवाली परिस्थितियों का तात्कालिक ज्ञान प्राप्त होता है। जब कोई उत्तेजना उपस्थित की जाती है तब मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ उसे ग्रहण करती हैं। फलस्वरूप, ज्ञानेन्द्रियों में स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) उत्पन्न हो जाते हैं। फिर वे स्नायु-प्रवाह मस्तिष्क में पहुँचते हैं और तब मनुष्य एक विशेष प्रकार की संवेदना का अनुभव करता है। इस अवस्था तक मनुष्य को उस वस्तु-विशेष की चेतना-मात्र ही होती है, आभास-मात्र ही मिलता है, उसका अर्थ ज्ञात नहीं हो पाता। वस्तु के आभास-मात्र की यह स्थिति प्राय. बच्चों में ही पायी जाती है। प्रौढ़ व्यक्ति तो संवेदना का अनुभव करते ही उसमें अर्थ जोड़ देता है। ये दोनों क्रियाएँ इतनी शीघ्रता से संपन्न हो जाती हैं कि इनमें भेद करना बड़ा ही कठिन जान पड़ता है। अतः स्पष्ट है कि सार्थक संवेदना (Meaningful sensation) ही प्रत्यक्षीकरण कहलाती है। उदाहरण के लिए, जब कोई आवाज उत्तेजना के रूप में उपस्थित की जाती है, तब कान उसे ग्रहण करते हैं। फलस्वरूप, उनमें स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) उत्पन्न हो जाते हैं। फिर वे स्नायु-प्रवाह बृहत् मस्तिष्क के श्रवण-केन्द्र (Auditory centre) में पहुँचते हैं और तब मनुष्य को श्रवण-संवेदना का अनुभव होता है। संवेदना का अनुभव होते ही वह उसमें अर्थ जोड़ देता है, अर्थात् यह जान लेता है कि कॉलेज की घंटी की आवाज है, दस बज गये और अब मनोविज्ञान का व्याख्यान प्रारम्भ होगा। इसे संवेदना न कहकर प्रत्यक्षीकरण कहा जायगा; क्योंकि इसमें सिर्फ आवाज का आभास-मात्र ही नहीं है, प्रत्युत उसका अर्थ भी ज्ञात है। संक्षेप में प्रत्यक्षीकरण की मानसिक क्रिया को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:—

(१) उत्तेजना की उपस्थिति।

(२) ज्ञानेन्द्रिय का उत्तेजना को ग्रहण करना तथा परिणाम-स्वरूप स्नायु-प्रवाहों की उत्पत्ति ।
(३) स्नायु-प्रवाहों का मस्तिष्क के केन्द्र-विशेष में पहुँचना ।
(४) एक विशेष प्रकार की संवेदना का अनुभव ।
(५) संवेदना में अर्थ का संयोग ।
(६) प्रत्यक्षीकरण ।

प्रत्यक्षीकरण का विश्लेषण
(Analysis of perception)

यदि प्रत्यक्षीकरण का विश्लेषण किया जाय तो उसमें निम्नांकित प्रक्रियाएँ सन्निहित पायी जायेंगी—

(१) ग्राहक प्रक्रियाएँ (Receptor processes) ।
(२) प्रतीकात्मक प्रक्रियाएँ (Symbolic processes) ।
(३) भावात्मक प्रक्रियाएँ (Affective processes) ।
(४) सौन्दर्यानुभूति (Aesthetic experience) ।

ग्राहक प्रक्रियाएँ (Receptor processes):—प्रत्यक्षीकरण में ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) की क्रियाएं शामिल रहती हैं । इसीलिए प्रत्यक्षीकरण में जिस ज्ञानेन्द्रिय-विशेष की प्रधानता रहती है उसीके अनुसार प्रत्यक्षीकरण का नामकरण किया जाता है, यथा दृष्ट्यात्मक प्रत्यक्षीकरण (Visual perception), श्रवणात्मक प्रत्यक्षीकरण (Auditory perception) इत्यादि । जब आँखें के उत्तेजित होने और उनकी क्रियाओं के फलस्वरूप प्रत्यक्षीकरण होता है, तब उसे दृष्ट्यात्मक प्रत्यक्षीकरण (Visual perception) कहते हैं। वैसे ही, जब कानों के उत्तेजित होने और उनका क्रियाओं के फलस्वरूप प्रत्यक्षीकरण होता है, तब उसे श्रवणात्मक प्रत्यक्षीकरण (Auditory perception) कहते हैं । यह व्यक्त किया जा चुका है कि जब आँख, कान, नाक या अन्य कोई ज्ञानेन्द्रिय उत्तेजित होती है, तब उसमें स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) उत्पन्न हो जाते हैं । वे स्नायु-प्रवाह ज्ञानवाही स्नायुओं (Sensory nerves) द्वारा मस्तिष्क के केन्द्र-विशेष में जाते हैं । वहाँ से वे मांसपेशियों (Muscles) में चले जाते हैं। फलतः हममें प्रत्यक्षीकरण की क्रिया होती है ।

प्रतीकात्मक क्रियाएँ (Symbolic processes) :—को

भी उत्तेजना ग्राहक प्रक्रियाओं (Receptor processes) के अतिरिक्त प्रतीकात्मक प्रक्रियाएँ (Symbolic processes) भी उत्पन्न करती है। यहाँ प्रतीकों (Symbols) से हमारा तात्पर्य है उनसे, जो किसी अन्य का प्रतिनिधित्व करते है। उदाहरणार्थ, शब्द प्रतीक हैं; क्योंकि ये वस्तुओं, घटनाओं अथवा परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्यक्षीकरण में प्रतीकात्मक प्रक्रियाएँ (Symbolic processes) सन्निहित रहती है। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। यदि किसी व्यक्ति को गुलाब के फूल की तसवीर का प्रत्यक्षीकरण होता है तो उसे उसकी गध का भी स्मरण हो आता है अथवा गंध की प्रतिमा (Image) का अनुभव होने लगता है। इसे प्रतीकात्मक प्रक्रियाओं (Symbolic processes) की ही संज्ञा दी जायगी। यहाँ गंध की प्रतिमा इस बात पर निर्भर है कि पहले कभी उसकी वास्तविक उपस्थिति के कारण व्यक्ति को उसकी गध का अनुभव हुआ होगा। फलस्वरूप व्यक्ति के स्नायु-मण्डल (Nervous system) मे परिमार्जन (Modification) हुआ' होगा और उसके चिह्न (Traces) भी छूट गये होंगे। अब उस गुलाब के फूल की तसवीर के सामने आते ही स्नायु-मंडल में अंकित वे चिह्न (Traces) उत्तेजित हो जाते हैं। फलतः व्यक्ति को उसकी गन्ध की प्रतिमा (Image) का अनुभव होने लगता है। निष्कर्ष यह है कि प्रत्यक्षीकरण में वर्त्तमान उत्तेजना (Present stimulus) से आबद्ध प्रतीकात्मक प्रक्रियाएँ (Symbolic processes) सन्निहित होती है।

भावात्मक प्रक्रियाएँ (Affective processes) :—किन्तु वस्तु या परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण में भावात्मक प्रतिक्रियाएँ (Affective processes) भी विद्यमान रहती है। उस वस्तु अथवा परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण प्रिय जान पड़ता है या अप्रिय। उदाहरण के लिए, यदि संगीत की मधुर ध्वनि का प्रत्यक्षीकरण प्रिय प्रतीत होता है तो शोर-गुल का अप्रिय। यदि रूपवती स्त्री का प्रत्यक्षीकरण प्रिय जान पड़ता है तो कुरूपा का अप्रिय। किसी वस्तु अथवा परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण में विद्यमान प्रियता या अप्रियता के भाव पूर्वानुभूति (Past experience) पर भी निर्भर करते है। प्रियता-अप्रियता के अतिरिक्त, प्रत्यक्षीकरण में तटस्थता का भाव (Feeling of neutrality) भी विद्यमान रह सकता है।

सौन्दर्यानुभूति (Aesthetic experience) :—कभी-कभा

किसी परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण में सौन्दर्यानुभूति भी वर्त्तमान रहती है। जिस वस्तु का प्रत्यक्षीकरण होता है, वह व्यक्ति को सुन्दर, कुरूप अथवा तटस्थ लग सकती है। सौन्दर्यानुभूतिक मूल्यांकन (Aesthetic evaluations) दो बातों पर निर्भर करते हैं—(१) भावात्मक प्रक्रियाएँ (Affective processes) और (२) पूर्वानुभूति का प्रत्याह्वान (Recall of past experience)। अतएव, यह कहा जा सकता है कि सौन्यानुभूतिक मूल्यांकन भावात्मक प्रक्रियाओं (Affective processes) और प्रतीकात्मक प्रक्रियाओं (Symbolic processes) से अति संबद्ध होते हैं। जो वस्तु प्रिय लगती है, वह प्रायः सुन्दर भी जान पड़ती है। जो वस्तु अप्रिय होती है, वह प्रायः कुरूप ही जान पड़ती है। जिस वस्तु के प्रत्यक्षीकरण में प्रियता या अप्रियता का कोई भाव (feeling) नहीं होता, उसमें सुन्दरता या कुरूपता की अनुभूति भी नहीं होती, व्यक्ति बिलकुल तटस्थ (Neutral) ही रहता है। पूर्वानुभूति (Past experience) की प्रियता, अप्रियता अथवा तटस्थता पर भी वर्त्तमान वस्तु या परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण में निहित सुन्दरता, कुरूपता अथवा तटस्थता की अनुभूति निर्भर करती है।

प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप
(Nature of perception)

प्रत्यक्षीकरण में प्रायः कई ग्राहकेन्द्रियाँ (Receptor organs) एक ही साथ उत्तेजित होती ह। फलस्वरूप, व्यक्ति को कई प्रकार की संवेदनाओं का अनुभव एक ही साथ होता है। फिर भी प्रत्यक्षीकरण एक को ही होती है, अनेक की नहीं। प्रतिदिन के जीवन में हम प्रायः किसी वस्तु को सिर्फ देखते ही नहीं, वरन् उसे स्पर्श करते तथा उनकी गंध भी लेते हैं। उदाहरणार्थ, प्रस्फुटित गुलाब के फूल को हम सिर्फ देखकर ही नहीं रह जाते, प्रत्युत उसे तोड़कर अपने हाथों में लेते हैं, स्पर्श करते हैं तथा उसकी सुगंध का आस्वादन करते हैं। स्पष्टतः गलाब के फूल के प्रत्यक्षीकरण में तीन इन्द्रियाँ एक ही साथ उत्तेजित होती हैं—आँख, त्वचा और नाक। फल यह होता है कि तीन प्रकार की संवेदनाओं का अनुभव एक ही साथ होता है। किन्तु जब हम इन संवेदनाओं में अर्थ जोड़ देते हैं तब हमें सिर्फ एक गुलाब के फूल का प्रत्यक्षीकरण होता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अभीष्ट है कि यद्यपि प्रत्यक्षीकरण में कई ग्राहकेन्द्रियाँ एक ही साथ उत्तेजित होती

हैं, फिर भी हमें जो प्रत्यक्षीकरण होता है वह किसी वस्तु की पूर्ण इकाई का ही। इस सम्बन्ध में जेस्टॉल्टवादी मनोवैज्ञानिकों (Gestalt Psychologists) के विचार उल्लेखनीय हैं। परंपरागत विचार यह था कि प्रत्यक्षीकरण संवेदनाओं का समूह है। इस विचार के अनुसार प्रत्यक्षीकरण कई संवेदनाओं का योग-मात्र समझा जाता था। जेस्टॉल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने इसका खंडन किया है। उन्होंने स्पष्टतः यह कहा है कि प्रत्यक्षीकरण किसी भी वस्तु के अलग-अलग भाग का नहीं होता, बल्कि उसके समग्र रूप अथवा पूर्ण इकाई का होता है। ऊपर के उदाहरण में जेस्टॉल्टवादी मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि गुलाब के फूल के देखने, सूँघने तथा स्पर्श करने के अनुभव अलग-अलग नहीं होते, वरन् गुलाब के फल का समष्टि के रूप में प्रत्यक्षीकरण होता है। इसे यों कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षीकरण समग्र गुलाब के फूल का होता है, न कि उसके अलग-अलग रूप अथवा उसकी अलग-अलग विशेषताओं का।

प्रत्यक्षीकरण में अनुभूति का महत्त्व

प्रत्यक्षीकरण में पूर्व अनुभूति का बड़ा प्रमुख स्थान है। जैसा कि पहले व्यक्त किया जा चुका है, जब संवेदना में अर्थ जोड़ दिया जाता है तब प्रत्यक्षीकरण की क्रिया सम्पन्न होती है। अब प्रश्न यह उठता है कि हम किस आधार पर संवेदना में अर्थ जोड़ते हैं? इसके उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि पूर्व अनुभूति के आधार पर संवेदना में अर्थ का संयोग कराया जाता है। वस्तुतः किसी भी वस्तु, परिस्थिति अथवा घटना को अर्थ प्रदान करते समय हमें पूर्व अनुभूति का सहारा लेना पड़ता है। किसी भी वस्तु का अर्थ इस बात पर निर्भर करता है कि उसने पूर्व में हमें किस रूप में उत्तेजित किया था और हमने उसके प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया प्रकट की थी। उदाहरणार्थ, जब एक नवजात शिशु के सामने सेव उपस्थित किया जाता है तब वह उसे खेलने की वस्तु समझकर खेलता है। इस प्रकार जब वह उन सेव के साथ कई बार खेल लेता है तब उसे ऐसा विश्वास हो जाता है कि वह खेल की वस्तु है। जब उसके सामने गेंद उपस्थित की जाती है तब वह उसके साथ भी खेलता है। सेव और गेंद में वह कोई अन्तर नहीं कर पाता है। रूप, रंग और आकार की समानता के कारण वह दोनों के बीच तादात्म्य (Identification) स्थापित कर लेता है। फलतः जब कभी उसके सामने इस रंग, रूप और आकार की कोई वस्तु, जैसे सेव

का एक चित्र-मात्र ही उपस्थित किया जाता है, तब उसे जो प्रत्यक्षानुभूति (Perceptual experience) होती है, वह बहुत कुछ पूर्व अनुभूति के समान होती है, जो वास्तविक सेव के उपस्थित होने से उत्पन्न हुई थी। जब वही शिशु युवा होता है और एक बार सेव खा लेता है, तब उसे सेव के स्वाद की भी अनुभूति हो जाती है। बाद में जब कभी भी उसे सेव की गंध मिलती है, तब उसे सेव के स्वाद की अनुभूति होने लगती है। अब सेव का प्रत्यक्षीकरण उसे इस रूप में होने लगता है कि सेव एक खाने की वस्तु है, न कि खेलने की। स्पष्ट है कि जबतक उसे सेव के रंग, रूप और आकार तक का ही अनुभव था, तबतक वह उसे खेल की वस्तु समझता था, लेकिन जब स्वाद और गंध का एक बार अनुभव हो गया, तब वह उसे खाने की वस्तु समझने लगा। यह पूर्व अनुभूति का ही परिणाम कहा जायगा। इस प्रकार एक ही वस्तु का प्रत्यक्षीकरण विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार का हो सकता है।

पहले व्यक्त किया जा चुका है कि प्रत्यक्षीकरण पूर्व अनुभूति पर निर्भर करता है। पूर्व अनुभूति के आधार पर ही हम किसी वस्तु अथवा परिस्थिति को अर्थ प्रदान करते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव एक-दूसरे से भिन्न होता है। यही कारण है कि एक वस्तु अथवा परिस्थिति का अर्थ भिन्न-भिन्न व्यक्ति अलग-अलग ढंग से करते हैं और इसलिए उस एक ही वस्तु अथवा परिस्थिति की प्रत्यक्षानुभूति उन्हें भिन्न-भिन्न तरह की होती है। तभी तो एक ही व्यक्ति को देखकर किसी को मित्र की प्रत्यक्षानुभूति होती है, तो किसी को शत्रु की। उसी प्रकार एक साहित्यिक को विचारपूर्ण साहित्यिक निबन्ध अर्थपूर्ण जान पड़ता है, पर साहित्य से अनभिज्ञ व्यक्ति को वह शब्दों का समूह-मात्र मालूम पड़ता है। जब कोई भावमय चित्र एक कलाकार के सामने उपस्थित किया जाता है तब उसे उसकी विशेषताओं की प्रत्यक्षानुभूति होती है, पर एक कला-विहीन व्यक्ति को तो वह आड़ी-तिरछी रेखाओं का समूह-मात्र ही जान पड़ता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पूर्व अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण में प्रमुख हाथ रहता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति की ग्राहकेन्द्रियों की क्रियाओं में समानता रहती है, तथापि पूर्व अनुभूति की भिन्नता के कारण उनकी प्रत्यक्षानुभूति भिन्न-भिन्न ढंग की हो जाती है।

प्रत्यक्षीकरण में आकार और आधार-भूमि का महत्त्व
(Role of figure and ground in perception)

किसी भी वस्तु या परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण शून्य में नहीं होता, बल्कि उसका कुछ-न-कुछ आधार रहता है। बिना आधार (Ground) के आकार (Figure) का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता। उदाहरण के लिए, यदि टेबुल के ऊपर रखी हुई पुस्तक आकार है, तो टेबुल उसके लिए आधार-भूमि; यदि टेबुल को ही आकार (Figure) मान लिया जाय, तो जमीन, जहाँ पर वह टेबुल है, उसकी आधार-भूमि कही जायगी। हमें जब पुस्तक का प्रत्यक्षीकरण होगा, तब टेबुल का भी। स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण में आकार और आधार-भूमि दोनों ही का समावेश रहता है।

उदाहरण:—

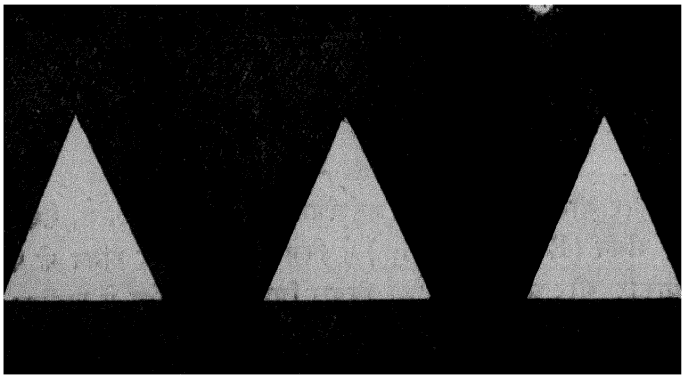


चित्र-सं०—१२

आकार और आधार-भूमि के मनोवैज्ञानिक महत्त्व का उल्लेख, सर्वप्रथम एडगर रुबिन (Edger Rubin) ने किया था। एडगर रुबिन के पहले भी आकार और आधार-भूमि का विचार चित्रकला के क्षेत्र में प्रचलित था किन्तु इसके मनोवैज्ञानिक महत्त्व पर सर्वप्रथम प्रकाश डालने का श्रेय एडगर रुबिन को ही है। एडगर रुबिन ने स्पष्ट रूप से बतलाया है कि प्रत्यक्षीकरण में आकार और आधार-भूमि दोनों ही वर्त्तमान रहते हैं। आकार और आधार-भूमि में अन्तर करते हुए उनका कहना है कि आकार की एक निश्चित रूपरेखा होती है, किन्तु आधार-भूमि अपेक्षाकृत अनिश्चित

स्वरूप की होती है। आकार आधार-भूमि के आगे फैला हुआ जान पडता है, किन्तु आधार-भूमि आकार के पृष्ठ भाग मे फैली हुई रहती है। आकार आधार-भूमि की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक और सार्थक होता है। प्रभावोत्पादकता तथा सार्थकता के कारण आकार आधार-भूमि की अपेक्षा अधिक दिनो तक स्मृति मे बना रहता है।

आकार और आधार-भूमि का प्रत्यक्षीकरण सिर्फ दृष्टि तक ही सीमित नहीं है, बल्कि अन्य ज्ञानेन्द्रियो मे भी पाया जाता है। वरनन (Vernon) ने स्पष्ट रूप से बतलाया है कि ध्वनि के प्रत्यक्षीकरण मे भी आकार और आधार-भूमि—ये दोनो ही तत्त्व वर्त्तमान रहते है। उदाहरणार्थ यदि कहीं निरन्तर एक ही तरह की धीमी आवाज हो रही हो और वहाँ कोई व्यक्ति एकाएक जोर से बोल उठे तो हमे उस व्यक्ति की जोर की आवाज का आकार के रूप में और निरन्तर एक ही तरह की होनेवाली वहाँ की धीमी आवाज का पृष्ठभूमि के रूप मे प्रत्यक्षीकरण होगा। संगीत मे भी आकार और आधार-भूमि का अन्तर पाया जाता है। यदि वाद्ययन्त्र से निकला हुआ लयात्मक स्वर (Tone) आकार है तो वाद्ययत्र से निकले हुए अन्य अधिस्वर (Over-tones), जिनके सहयोग से राग (Melody) की सृष्टि होती है, उसकी आधार-भूमि। इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण में आकार और आधार-भूमि का बडा प्रमुख स्थान है।

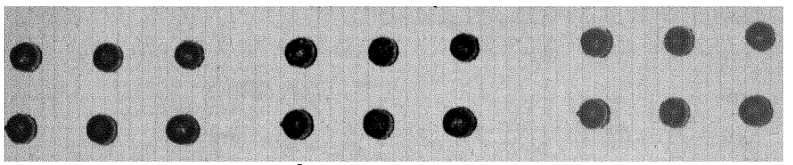


चित्र-स०—१३

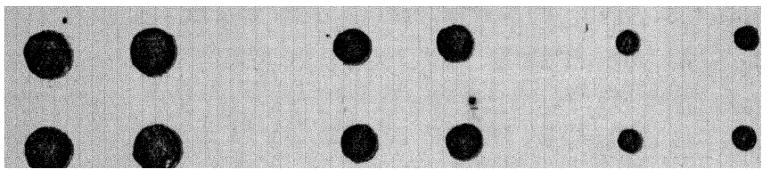
आकार और आधार-भूमि के महत्त्व पर विचार करते हुए जेस्टॉल्टवादी



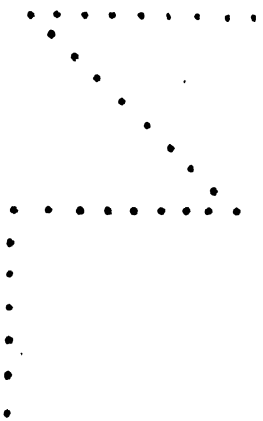
चित्र सं०—१४



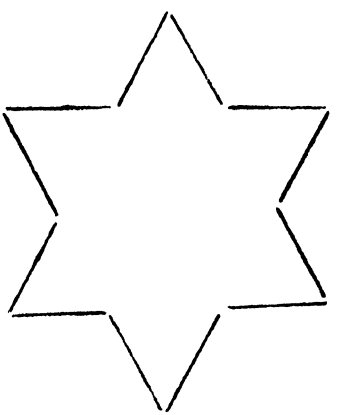
चित्र सं०—१५



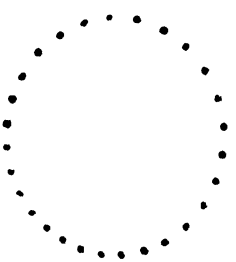
चित्र सं०—१६



चित्र सं० —१७



चित्र सं०—१८



चित्र सं०—१९

मनोवैज्ञानिकों (Gestalt psychologists) ने यह बतलाने की चेष्टा की है कि हमें क्यों किसी वस्तु का आकार के रूप में प्रत्यक्षीकरण होता है। जब दृष्टि-क्षेत्र (Visual field) में अनेक उत्तेजनाएँ आती हैं तब उनमें से कुछ हमें अलग पूर्ण इकाई के रूप में दीख पड़ती हैं तथा कुछ इस पूर्ण इकाई की पृष्ठभूमि के रूप में। अब प्रश्न यह है कि क्यों कुछ उत्तेजनाएँ आपस में मिलकर पूर्ण इकाई का रूप ग्रहण कर लेती हैं तथा अन्य उत्तेजनाएँ पृष्ठभूमि में चली जाती हैं ? इस सम्बन्ध में वर्दिमीयर (Wertheimer) का अध्ययन उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने अध्ययन के द्वारा उन तत्त्वों की चर्चा की है, जिनके आधार पर कई उत्तेजनाएँ आपस में मिलकर एक इकाई (unit) का रूप ग्रहण कर लेती हैं। वे तत्त्व निम्नलिखित हैं:—

(१) **समीपता** :—दृष्टि-क्षेत्र के वे तत्त्व, जो एक-दूसरे के समीप होते हैं, आसानी से आपस में मिले हुए या एक इकाई के रूप में दीख पड़ते हैं। चित्र-सं० १४ में उपस्थित ६ विन्दुओं को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। समीपता के कारण ही हमें ये विन्दु अलग-अलग न दीखकर दो-दो की इकाई में दीख पड़ते हैं।

(२) **समानता या सादृश्य**—दृष्टि-क्षेत्र के उन तत्त्वों को, जो रंग अथवा आकार में एक तरह के होते हैं, हम एक इकाई के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिए, यदि लाल, नीले और पीले रंग के विन्दु उत्तेजना के रूप में उपस्थित किये जायँ, तो हम लाल विन्दुओं को एक इकाई के रूप में देखेंगे वैसे ही, नीले और पीले रंग के विन्दुओं का भी एकाई के रूप में ही प्रत्यक्षीकरण होगा। समान आकार के विन्दुओं का भी प्रत्यक्षीकरण एक इकाई के रूप में होता है। चित्र-सं० १५ और १६ से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है।

(३) **अविच्छिन्नता** (Continuity):—दृष्टि-क्षेत्र के वे तत्त्व, जो एक ही साथ एक निश्चित दिशा की ओर जाते हुए दीख पड़ते हैं, उनका प्रत्यक्षीकरण एक इकाई के रूप में ही होता है। गति-सादृश्य के कारण वे आपस में मिलकर एक पूर्ण इकाई के रूप ग्रहण कर लेते हैं, जैसा कि चित्र-सं० १७ से स्पष्ट है।

(४) **उत्तम आकार** (Good figure) :—उत्तम आकार से हमारा अभिप्राय है वस्तु की पूर्णता से। जब दृष्टि-क्षेत्र के कुछ तत्त्व

मिलकर एक ऐसा आकार बना लेते है, जो अपनी पूर्णता के कारण अच्छा मालूम पड़ता है, तब हमें आसानी से उनका एक इकाई के रूप में प्रत्यक्षीकरण होता है। जेस्टॉल्टवादी मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि मनुष्य किसी आकार (Figure) में उपस्थित रिक्त स्थानों को भरकर उसे पूर्ण इकाई के रूप में ही देखता है। ऐसी अवस्था में आकार पूर्ण, उत्तम और प्रभावोत्पादक हो जाता है। जेस्टॉल्टवाद के अनुसार इसकी व्याख्या इस प्रकार हो सकती है कि अपूर्ण आकार मानसिक संतुलन (Mental balance) को भंग कर देता है तथा पूर्ण आकार मानसिक संतुलन को बनाये रखता है। इसलिए मनुष्य को स्वभावतः पूर्ण आकार का ही प्रत्यक्षीकरण होता है, अपूर्ण आकार का नहीं। उत्तम आकार के उदाहरण-स्वरूप चित्र-सं० १८ और १९ को प्रस्तुत किया सकता है।

(५) **मानस-वृत्ति (Mental Set) का प्रभाव**—किसी वस्तु अथवा परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण मनुष्य की मानव-वृत्ति पर निर्भर करता है। अपनी मानस-वृत्ति के अनुकूल ही उसे किसी वस्तु या परिस्थिति की पूर्ण इकाई का प्रत्यक्षीकरण होता है। तभी तो एक ही वस्तु अथवा परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न तरह का होता है। वस्तुतः सभी व्यक्तियों की मानस-वृत्ति में विभिन्नता पाई जाती है। अतएव, उनका प्रत्यक्षीकरण भी विभिन्न प्रकार का ही होता है।

मानस-वृत्ति प्रायः दो तरह की होती है—(१) अभ्यासजन्य (Habitual) तथा (२) तात्कालिक या क्षणिक (Immediate or Momentary)। अभ्यासजन्य मानस-वृत्ति आदतों से उत्पन्न होती है। अपनी अलग-अलग आदतों के कारण ही एक मनोवैज्ञानिक प्रायः प्रत्येक वस्तु अथवा परिस्थिति को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखता है तथा इतिहासकार उसे ही ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखता है। इस प्रकार दोनों की मानस-वृत्तियाँ दो ढंग की होती है। जब कभी भी उनके सामने कोई वस्तु अथवा परिस्थिति उपस्थित होती है, तब वे अपनी मानस-वृत्ति से प्रभावित होकर उसे अपनी मानस-वृत्ति के अनुकूल रूप में ही ग्रहण करते हैं। अतएव, यह कहना समुचित जान पड़ता है कि किसी भी वस्तु अथवा परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण ज्यों-का-त्यों नहीं होता, वरन् वह व्यक्ति की मानस-वृत्ति से अनुरंजित हुआ करता है। तभी तो प्रकृति की कोई भी वस्तु सभी वैज्ञानिकों को एक-सी नहीं लगती, प्रत्युत सभी को उस वस्तु की अलग-अलग ढंग की प्रत्यक्षानुभूति होती है।

तात्कालिक अथवा क्षणिक मानस-वृत्ति का भी प्रत्यक्षीकरण पर कम प्रभाव नहीं पडता। इसे विभ्रम (Hallucination) के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। जब प्रबल रूप मे किसी व्यक्ति को मानस-वृत्ति किसी वस्तु को देखने अथवा शब्द को सुनने की ओर होती है, तब उसे बिना किसी वस्तु के भी उस वस्तु के दर्शन होते है तथा बिना शब्द के भी उस शब्द की प्रत्यक्षानुभूति होती है।

(६) **पूर्वानुभूति** (Past experience)—पूर्वानुभूति से प्रभावित होकर भी मनुष्य किसी भी वस्तु को समग्र रूप में दखता है। उदाहरण के लिए यदि कुछ शब्द एक ही साथ छपे हुए हों और उनके बीच मे जगह नहीं छोड़ी गई हो, तोभी हम उन शब्दों को अलग-अलग एक पूर्ण शब्द के रूप मे पढ़ते है, उन्हें अक्षरों का समूह-मात्र नही मानते। इसका प्रधान कारण है पूर्वानुभूति। उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया गया है—

वह अच्छा लड़का है।

इन अक्षरों क सामने आते ही हम इन्हे अलग-अलग व, ह, अ, इत्यादि पढने क बदले 'वह अच्छा लडका है" पढ लेते है। यहाँ पूर्वानुभूति का प्रभाव स्पष्ट है।

संवेदना और प्रत्यक्षीकरण में अन्तर

सवेदना और प्रत्यक्षीकरण की क्रियाओं में कुछ समानता होते हुए भी अन्तर है। इनके कुछ प्रधान अन्तरों पर यहाँ प्रकाश डाला जायगा।

(१) सवेदना एक सरल मानसिक क्रिया है। इसमे केवल उत्तेजना की सत्ता-मात्र ही वर्त्तमान रहती है। किन्तु प्रत्यक्षीकरण एक जटिल मानसिक क्रिया है। इसमे कई मानसिक क्रियाएँ सन्निहित रहती है। वर्त्तमान उत्तेजना की चेतना तो रहती है, साथ-ही-साथ इसमें पूर्व अनुभूति का भी सहारा लेना पड़ता है। उदाहरण के लिए, जब आम उत्तेजना के रूप में उपस्थित किया जाता है तब उसके आकार और रंग की सवेदनाएँ होती है, किन्तु जब हम पूर्व अनुभूति के आधार पर यह जान लेते हैं कि यह फल है, जो स्वाद में मीठा, छूने में मुलायम और सूँघने में सुगन्धित होता है, तब हमे उस आम की प्रत्यक्षानुभूति हो जाती है। स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण में वर्त्तमान उत्तेजना की चेतना और पूर्व अनुभूति—इन दोनों का संयोग पाया जाता है। इसीलिए प्रत्यक्षीकरण को एक जटिल मानसिक क्रिया कहा गया है।

(२) संवेदना और प्रत्यक्षीकरण में दूसरा प्रधान अन्तर यह है कि संवेदना में किसी भी उत्तेजना का केवल आभास मिलता है, उसका अर्थपूर्ण

ज्ञान नहीं होता। किन्तु, प्रत्यक्षीकरण म उत्तजना का ज्ञान अर्थपूर्ण होता है। इसीलिए संवेदना को निरर्थक और प्रत्यक्षीकरण को सार्थक कहा गया है। ऊपर के उदाहरण से यह स्पष्ट है।

(३) संवेदना उस उत्तेजना का बोध कराती है, जो मनुष्य की ज्ञानेन्द्रिय-विशेष को उत्तेजित करती है। वस्तुत. जब समुचित उत्तेजना उपस्थित होती है तब ज्ञानेन्द्रिय उत्तेजित हो जाती है और मनुष्य एक विशेष प्रकार की संवेदना का अनभव करता है। प्रत्यक्षीकरण से उस वस्तु का बोध होता है, जो व्यक्ति को प्रभावित करती है। वह ज्ञानेन्द्रिय-विशेष तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि प्रभाव के फलस्वरूप मस्तिष्क और मासपेशियाँ भी क्रियाशील हो उठती हैं। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण के लिए सवेदना और मस्तिष्क तथा मांसपेशियों की क्रियाशीलताएँ—ये दोनो ही आवश्यक ह। मस्तिष्क वर्तमान उत्तेजना और पूर्व अनुभूति मे सम्बन्ध स्थापित करता है और तभी हम वर्तमान उत्तेजना का अर्थ लगाते है। अतएव, स्पष्ट है कि प्रत्यक्षीकरण मे अनेक क्रियाएँ शामिल रहता है और सपूर्ण व्यक्ति इससे प्रभावित होता है, न कि उसको कोई ज्ञानेन्द्रिय-विशेष।

(४) संवेदना एक ऐसी अव्यावहारिक अथवा अमूर्त्त अनुभूति (Abstract experience) है, जो हमारे प्रतिदिन के वास्तविक जीवन मे बहुधा नहीं आती है। जब हमें किसी रग और आकार को ता चतना हो, लेकिन उससे किसी वस्तुविशेष का ज्ञान न हो तब उस दृष्ट सवदना कहगे। वैसे ही, जब हमें किसी आवाज़ को तो चेतना हो, किन्तु यह ज्ञान न हो कि यह किस चीज़ की आवाज़ है और कहाँ से आ रही है, तब निश्चय ही उसे श्रवण-संवेदना कहेगे। अब प्रश्न यह है कि क्या व्यावहारिक जीवन में इस प्रकार की विशुद्ध संवेदनाएँ मनुष्य का होती है ? उत्तर मे यहा कहा जा सकता है कि जब हमें किसी रग और आकार की चेतना होती है तब उस रंग और आकार से युक्त वस्तु-विशेष का भी अनुभव हो जाता है। वैसे ही जब आवाज़ की चेतना होती है तब यह भी ज्ञान हो जाता है कि यह आवाज़ घंटी की है अथवा हारमोनियम की। अतएव, स्पष्ट है कि हमें प्रतिदिम के जीवन में वस्तु अथवा परिस्थिति का प्राय: प्रत्यक्षीकरण होता है, नकि उसकी संवेदना-मात्र होती है। इसलिए यह कहना अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है कि संवेदना अव्यावहारिक अथवा अमूर्त्त अनुभव है तथा प्रत्यक्षीकरण एक व्यावहारिक या मूर्त्त (Concrete) अनुभव।

विपर्यय और प्रत्यक्षीकरण
(Illusion and perception)

अयथार्थ प्रत्यक्षीकरण (False perception) को ही विपर्यय (Illusion) कहा जाता है। प्रत्यक्षीकरण की अयथार्थता का तात्पर्य है वस्तु अथवा परिस्थिति का गलत ज्ञान। यदि रस्सी को देखकर कोई उसे रस्सी समझता है, तो यह उस रस्सी का यथार्थ ज्ञान कहा जायगा। किन्तु यदि रस्सी को देखकर कोई उसे साँप समझ ले, तो यह रस्सी का अयथार्थ ज्ञान कहलायेगा। रस्सी का रस्सी के रूप मे अनुभव होना प्रत्यक्षीकरण तथा उसका साँप के रूप मे अनुभव होना विपर्यय कहलाता है। कभी-कभी चाँदनी रात मे जब हम एकाएक बिछावन से उठकर कमरे के बाहर आते है, तब ऐसा लगता है कि सबेरा हो गया, लेकिन, जब दीवार मे टँगी हुई घडी पर अचानक दृष्टि जाती है तब यह पाकर कि अभी कुल बारह बजे है, आश्चर्यचकित रह जाते है। चारो ओर छिटकी हुई चाँदनी को देखकर आधी रात को सबेरा समझना, सचमुच हमारा अयथार्थ ज्ञान है, विपर्यय है। उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि किसी वस्तु अथवा परिस्थिति का यथार्थ ज्ञान प्रत्यक्षीकरण कहलाता है तथा उसका अयथार्थ ज्ञान विपर्यय।

विपर्यय और प्रत्यक्षीकरण, दोनो मे एक ही तरह की सवेदनाएँ वर्त्तमान रहती है। इस दृष्टिकोण से दोनो मे कुछ समानता है। किन्तु इस समानता के रहते हुए भी दोनो मे अन्तर यह है कि जहाँ विपर्यय में हम सवेदनाओ का गलत अर्थ लगाते है, वहाँ प्रत्यक्षीकरण मे उनका सही अर्थ करते है।

विपर्यय और प्रत्यक्षीकरण के स्वभाव मे भी भेद होता है। विपर्यय प्राय क्षणिक होता है, किन्तु प्रत्यक्षीकरण स्थायी। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अभीष्ट जान पडता है कि कुछ रेखागणित-सम्बन्धी दृष्टि-विपर्यय (Geometrical optical illusions) स्थायी भी होते है। कुछ इन अपवादो को छोडकर हमारे जीवन के प्राय अन्य विपर्यय क्षणिक ही होते है। इसका प्रधान कारण यह है कि जब किसी वस्तु का झूठा ज्ञान दूर हो जाता है, तब विपर्यय भी खतम हो जाता है। उदाहरण के लिए, अँधेरी रात मे कुछ दूर स्थित ठूँठे पेड को देखकर हमे चोर या भूत का विपर्यय होता है, लेकिन जैसे ही हम उसे तीव्र प्रकाश के साहरे निकट से अच्छी तरह देख लेते है, वैसे ही वह भ्रम या विपर्यय दूर हो जाता है। फलत

उसे हम चोर या भूत के बदले ठूँठा पेड़ समझने लगते हैं। चूँकि प्रत्यक्षीकरण किसी वस्तु अथवा परिस्थिति का यथार्थ ज्ञान होता है, इसलिए यह अपेक्षाकृत एक-सा बना रहता है, इसमें परिवर्त्तन होने की कोई विशेष संभावना नहीं रहती। यदि हमें अपने सामने रखी हुई कुर्सी का प्रत्यक्षीकरण यथार्थतः कुर्सी के ही रूप में होता है तो यह उस कुर्सी के बारे में हमारा अपेक्षाकृत स्थायी ज्ञान कहा जायगा।

विपर्यय और विभ्रम
(Illusion and Hallucination)

विपर्यय की तरह विभ्रम (Hallucination) में भी अयथार्थ प्रत्यक्षीकरण होता है, लेकिन फिर भी इन दोनों में काफी अन्तर है। विपर्यय और विभ्रम में पहला भेद यह है कि विपर्यय के लिए बाह्य उत्तेजना की उपस्थिति अनिवार्य है। जब हमारे सामने कोई वस्तु उत्तेजना के रूप में उपस्थित की जाती है और हमें उसका अयथार्थ प्रत्यक्षीकरण होता है तब उसको विपर्यय कहते हैं—जैसे अँधेरी रात में जमीन पर पड़ी हुई रस्सी को देखकर उसे साँप समझना, ठूँठे पेड़ को देखकर उसे चोर या भूत समझना, हमारा विपर्यय है। किन्तु विभ्रम तो कभी-कभी बिना किसी प्रत्यक्ष बाह्य उत्तेजना के भी होता है। उदाहरणार्थ, सुनसान स्थान में कभी-कभी किसी के पुकारने की आवाज सुनाई पड़ती है अथवा ऐसा जान पड़ता है कि कोई हमारा पीछा कर रहा है। वास्तव में वहाँ न तो कोई आवाज़ ही होती है और न कोई पीछा करनेवाला ही। वस्तुतः यह हमारा विभ्रम (Hallucination) है।

विपर्यय और विभ्रम में दूसरा प्रधान भेद यह है कि विपर्यय का अनुभव प्रायः सभी व्यक्तियों को होता है, किन्तु विभ्रम का अनुभव बहुत थोड़े-से व्यक्तियों को ही होता है। विभ्रम प्रायः मानसिक रोगयुक्त तथा नशे में चूर व्यक्तियों को ही होता है। हाँ, कभी-कभी सामान्य व्यक्तियों (Normal persons) में भी विभ्रम पाया जाता है। किसी-किसी मानसिक रोगयुक्त व्यक्ति को ऐसा अनुभव होता है कि किसी ने पीछे से आकर उसकी गर्दन चाँप दी। वैसे ही, नशे में चूर व्यक्ति को ऐसा लगता है कि वह राजा है और सभी लोग उसकी प्रजा। वस्तुतः ये मानसिक प्रतिमा-मात्र हैं।

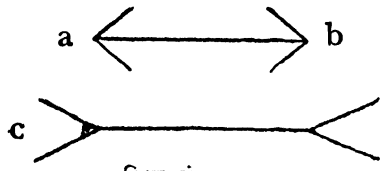
विपर्यय और विभ्रम में तीसरा अन्तर यह है कि एक तरह की परिस्थिति

सभी व्यक्तियों में एक ही तरह का विपर्यय उत्पन्न करती है, किन्तु विभ्रम के साथ ऐसी बात नहीं है। उदाहरण के लिए, हम मूलर-लायर-विपर्यय (Muller-Lyer-illusion) को ले सकते हैं, जिसकी विशद व्याख्या विपर्यय के प्रकार की चर्चा करते समय की जायगी। जहाँ तक विभ्रम का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि एक ही परिस्थिति विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार के विभ्रम उत्पन्न कर सकती है। उदाहरणार्थ, सुनसान रात में किसी को अपना नाम सुनने का विभ्रम होता है, तो किसी को चोरों के पैरों की आहट का; किसी को भूत का विभ्रम होता है, तो किसी को हत्यारे का।

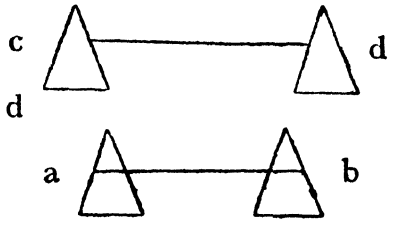
विपर्यय के प्रकार

(**Kinds of Illusion**)

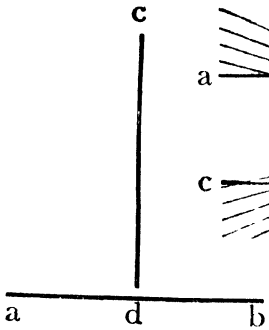
विपर्यय दो प्रकार के होते हैं--(१) क्षणिक और (२) स्थायी। प्रत्यक्षीकरण और विपर्यय में अन्तर बतलाते हुए क्षणिक विपर्यय पर प्रकाश डाला जा चुका है। अतः स्थायी विपर्यय पर प्रकाश डालना ही यहाँ अपेक्षित है। स्थायी विपर्यय के सुन्दर उदाहरण हमें रेखागणित-सम्बन्धी दृष्टि-विपर्ययों (Geometrical Optical Illusions) में मिलते हैं। अतएव, रेखागणित-सम्बन्धी दृष्टि-विपर्ययों का उल्लेख ही यहाँ वांछनीय है। इन विपर्ययों से यह स्पष्ट हो जायगा कि प्रत्यक्षीकरण समष्टि (Whole) का होता है, न कि व्यष्टि (Part) का। किसी भी वस्तु अथवा परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण में प्रसंग (Context) का बड़ा हाथ रहता है। किसी भी प्रसंग-विशेष में उपस्थित वस्तु के पूर्ण रूप के प्रत्यक्षीकरण की स्वाभाविक प्रवृत्ति मनुष्य में होती है। मनुष्य की इसी प्रवृत्ति के कारण रेखागणित-सम्बन्धी अनेक दृष्टि-विपर्यय उत्पन्न होते हैं। उदाहरण-स्वरूप कुछ ऐसे विपर्यय प्रस्तुत किये जा रहे हैं--



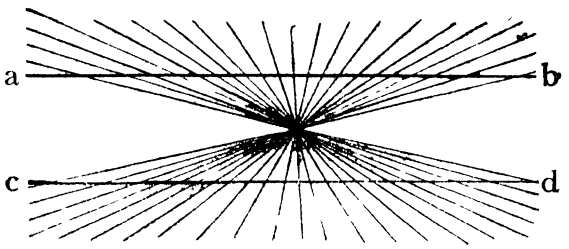
चित्र-सं०--२०



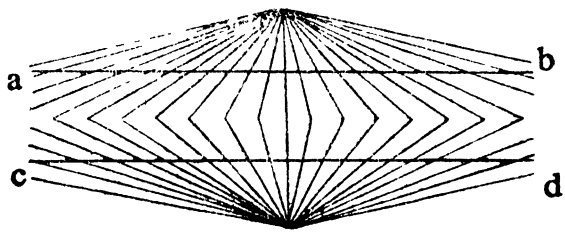
चित्र-सं०--२१



चित्र-सं०—२२



चित्र-सं०—२३



चित्र-सं०—२४

स्पष्टतः रेखागणित-सम्बन्धी इन सभी चित्रों से विपर्यय झलकता है। यहाँ एक-एक कर सबकी व्याख्या की जायगी। यदि किसी के सामने चित्र-सं० २० उपस्थित की जाय और उससे ab और cd रेखाओं की लम्बाई की तुलना करने को कहा जाय, तो सम्भवतः उसका यही उत्तर होगा कि cd रेखा ab स बड़ी है। किन्तु वास्तविकता यह है कि ये दोनों रेखाएँ बराबर हैं। इस विपर्यय का प्रमुख कारण यह है कि हमें ab का प्रत्यक्षीकरण तीर के निशानों क साथ होता है। तीर के निशानों से घिरी होने के कारण ही ab रेखा छोटी जान पड़ती है। cd रेखा बड़ी इसलिए मालूम होती है कि तीर के निशान इसके बाहर की ओर हैं। यहाँ प्रत्यक्षीकरण पर प्रसंग (Context) का प्रभाव स्पष्ट ह। यदि हम ab और cd दोनों रेखाओं से तीर के निशान हटा लें, तो दोनों ही बराबर दीख पड़ेंगी और हमारा विपर्यय दूर हो जायगा।

चित्र-सं० २१ में ab रेखा cd से छोटी जान पड़ती है। यह हमारा विपर्यय-मात्र ही है। वस्तुतः दोनों रेखाएँ बराबर हैं। इस विपर्यय का कारण यह है कि हमें ab और cd रेखाओं का प्रत्यक्षीकरण उनके

समीपस्थ त्रिभुजों के साथ ही होता है। इस विशेष प्रकार के प्रसंग के फलस्वरूप ही हमें इस विपर्यय का अनुभव होता है।

चित्र-सं० २२ में खड़ी लकीर cd पड़ी लकीर ab से बड़ी जान पड़ती है। वस्तुत: ये दोनों ही लकीरें बराबर हैं।

चित्र-सं० २३ में ab और cd रेखाएँ बीच में कुछ उभरी हुई जान पड़ती हैं, किन्तु वास्तव में वे एक-दूसरी के समानान्तर हैं। हमारे इस विपर्यय का कारण भी प्रसंग ही है। ये रेखाएँ जिस प्रसंग में उपस्थित की गई हैं, उसके कारण सहज ही यह विपर्यय उत्पन्न हो जाता है।

चित्र-सं० २४ में ab और cd रेखाएँ बीच मे कुछ धँसी हुई जान पड़ती हैं; परन्तु वास्तव में ये दोनों रेखाएँ समानान्तर है। इस चित्र के देखने से जो विपर्यय उत्पन्न होता है, उसपर प्रसंग (Context) का प्रभाव स्पष्टत: लक्षित होता है।

विपर्यय उत्पन्न होने के प्रमुख कारण

रेखागणित-सम्बन्धी दृष्टि-विपर्ययों से स्पष्ट है कि विपर्यय की उत्पत्ति में प्रसंग (Context) तथा किसी वस्तु को समष्टि रूप में देखने की प्रवृत्ति का प्रमुख हाथ होता है। इन दो प्रधान कारणों के सिवा कुछ अन्य कारण भी हैं, जिनसे विपर्यय उत्पन्न होता है। उन कारणों का उल्लेख भी आवश्यक है।

परिचय और आदत—प्रतिदिन के जीवन में परिचय के कारण उत्पन्न अनेक विपर्यय देखने को मिलते हैं। उदाहरणार्थ, हम अपने किसी घनिष्ठ मित्र की सुपरिचित वेश-भूषा में सुसज्जित किसी अन्य व्यक्ति को देखकर भी उसे अपना वही मित्र समझ बैठते हैं। स्पष्ट है कि अपने मित्र की वेश-भूषा से अत्यधिक परिचित होने के कारण ही हमें इस प्रकार के विपर्यय का अनुभव होता है। प्रूफ के पढ़ने में भी प्राय: इस प्रकार का विपर्यय होता है। प्रूफ पढ़नेवाले प्राय: सभी शब्दों से पूर्व-परिचित रहते हैं और उन्हें शुद्ध पढ़ने का अभ्यास बना रहता है। अतएव, अशुद्ध शब्द को भी वे कहीं-कहीं शुद्ध पढ़ लेते हैं। अशुद्ध शब्द को शुद्ध पढ़ना प्रूफ पढ़नेवाले का विपर्यय है, जो अधिकांश शब्दों से पूर्व-परिचित होने के कारण उत्पन्न होता है।

मानस-वृत्ति एवं प्रतीक्षा (Mental set and expectation) :—मनुष्य प्राय: अपनी विशेष प्रकार की मानस-वृत्ति के कारण

विपर्यय का अनुभव करता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई अँधेरी रात में कहीं जा रहा हो और उसे बराबर यह संशय बना रहे कि कहीं से चोर न आ जाय तो सभवत: आसपास के वृक्षो की पत्तियो की खड़खड़ाहट सुनकर भी उसे चोर के पैरों की आहट ही मालूम पड़ेगी। वृक्षों की पत्तियो का खडाखड़ाहट को को चोर के पैरों की आहट समझना विपर्यय ही तो है। यह विपर्यय उस व्यक्ति की मानस-वृत्ति का परिणाम है।

प्रतीक्षा के क्षणों मे भी प्राय विपर्यय का अनुभव होता है। जब कोई व्यक्ति अपने एकान्त कमरे मे बैठे-बैठे अपने मित्रो के आने की प्रतीक्षा करता रहता है, तब किसी दूसरे व्यक्ति के पैरा की आहट सुनकर भी वह अपने मित्र को ही आया हुआ समझता है। किन्तु जैसे ही वह कमरे के बाहर आता है और अपने मित्र के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को पाता है, तो उसी क्षण उसका विपर्यय दूर हो जाता है। स्पष्ट है कि अनेक विपर्यय मानस-वृत्ति एव प्रतीक्षा के कारण उत्पन्न होते है।

सातवाँ अध्याय

ध्यान

प्राय. हमलोग कहा करते है कि अमुक वस्तु पर 'ध्यान' देना चाहिए तथा अमुक वस्तु पर ध्यान नही देना चाहिए। 'ध्यान' शब्द के इस प्रकार के प्रयोग से ऐसा जान पड़ता है कि ध्यान कोई शक्ति है, जो मनुष्य मे वर्त्तमान रहती है तथा वह इच्छानुकूल उसे कभी इस वस्तु और कभी उस वस्तु पर लगाता है। वस्तुत. ध्यान की यह व्याख्या स्तुत्य नही है। अन्य मानसिक क्रियाओ की तरह ध्यान भी एक क्रिया (Process, Act or Function) है। अतएव 'ध्यान' शब्द के स्थान पर 'ध्यान देना' शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

ध्यान देना एक प्रेरणात्मक प्रक्रिया (Motivational process) है। व्यक्ति जिस वातावरण मे रहता है, उस वातावरण मे उपस्थित उत्तेजनाएँ उसे निरन्तर, प्रभावित करती रहती है। अब प्रश्न यह है कि क्या वातावरण की सभी उत्तेजनाएँ व्यक्ति को समान रूप से प्रभावित करती है तथा वह सबके प्रति समान रूप से प्रतिक्रियाएँ प्रकट करता है? इस प्रश्न को दृष्टिकोण मे रखते हुए कहा जा सकता है कि व्यक्ति न तो वातावरण की सभी उत्तेजनाओ से समान रूप से प्रभावित ही होता है और न समान रूप से उनके प्रति प्रतिक्रिया ही प्रकट करता है। वास्तव मे व्यक्ति अपनी अभिरुचि (Interest) एव मनोवृत्ति (Attitude) से प्रेरित होकर कुछ उत्तेजनाओ के प्रति प्रतिक्रिया प्रकट करने के लिए तत्पर हो जाता है। उसकी यह तत्परता (Set) वातावरण मे उपस्थित अनेक उत्तेजनाओ मे से किसी एक उत्तेजना को चुन लेने के लिए बाध्य करती है। फलत. किसी भी क्षण वह वातावरण की एक विशेष चुनी हुई उत्तेजना के प्रति ही अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करता है तथा अन्य उत्तेजनाओ की उपेक्षा करता है। इसीलिए ध्यान देने की क्रिया को चयनात्मक क्रिया (Selective process) भी कहा जाता है। उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि ध्यान देने की क्रिया मे प्रधानत: तीन तत्त्वों का समावेश रहता है। वे ये है —

(१) प्रेरणा (Motivation)।

(२) तत्परता (Set)।

(३) चुनाव (Selection)।

अब एक उदाहरण द्वारा यह दिखलाने की चेष्टा की जायगी कि ध्यान देने की क्रिया किस प्रकार सपन्न होती है। यदि किसी कमरे मे कोई प्रोफेसर व्याख्यान दे रहा हो, बगल के कमरे मे कुछ विद्यार्थी बातचीत कर रहे हो तथा समीप की सडक से सगीत की ध्वनि आ रही हो, तो वातावरण मे उपस्थित ये तीनो ही चीजें, अर्थात् प्रोफेसर का व्याख्यान, विद्यार्थियो की बातचीत तथा सडक से आती हुई सगीत की ध्वनि उत्तेजनाओ (Stimuli) का काम करेगी। अब प्रश्न यह है कि क्या प्रोफेसर के कमरे मे बैठे हुए सभी विद्यार्थी वातावरण मे उपस्थित इन तीनो उत्तेजनाओ के प्रति समान रूप से अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करेगे? उत्तर होगा 'नही'। वस्तुत ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक विद्यार्थी अपनी अभिरुचि एव मनोवृत्ति के अनुकूल किसी एक उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया प्रकट करने को तत्पर हो जायगा। फलत वह उस उत्तेजना को चुन लेगा तथा अन्य उत्तेजनाओ की उपेक्षा करेगा। दूसरे शब्दो मे, वह चुनी हुई उत्तेजना पर ध्यान देगा, अन्य उत्तेजनाओ पर नही। स्पष्टत जिस विद्यार्थी की अभिरुचि व्याख्यान मे होगी, वह प्रोफेसर के व्याख्यान पर तो ध्यान देगा, परन्तु बगल के कमरे की बातचीत तथा सडक से आती हुई सगीत की ध्वनि की ओर से बिलकुल अन्यमनस्क रहेगा। वैसे ही, कोई विद्यार्थी अपनी अभिरुचि से प्रेरित होकर सगीत की ध्वनि को तो सुनेगा, परन्तु प्रोफेसर के व्याख्यान एव बगल के कमरे की बातचीत की ओर से अन्यमनस्क रहेगा। कुछ विद्यार्थी सभवत बगल के कमरे की बातचीत पर ही ध्यान देगे तथा अन्य दो उत्तेजनाओ की उपेक्षा करेगे। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ध्यान देने की निम्नलिखित परिभाषा की जा सकती है—

ध्यान देना एक ऐसी प्रक्रिया है, जो व्यक्ति को वातावरण मे उपस्थित अनेक उत्तेजनाओ मे से उसकी अभिरुचि एव मनोवृत्ति (Interest and Attitude) के अनुकूल किसी एक उत्तेजना को चुन लेने तथा उसके प्रति प्रतिक्रिया प्रकट करने को बाध्य करती है एव अन्य उत्तेजनाओ की उपेक्षा के लिए भी उसे तैयार करती है।

ध्यान में शारीरिक मुद्रा

(Bodily attitude in attention)

जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु पर ध्यान देता है तब उस समय उसका

सारा शरीर सक्रिय (Active) हो उठता है। वस्तुतः शरीर की सक्रियता ध्यान देने की क्रिया के लिए आवश्यक है। यदि शरीर शिथिल हो, उसमें सक्रियता का अभाव हो, तो किसी वस्तु पर ध्यान नहीं टिक सकता। अतः हम यहाँ कुछ प्रधान शारीरिक अभियोजनों (Bodily adjustments) का उल्लेख करेंगे, जो प्रायः ध्यान देने की क्रिया में सन्निहित रहते हैं।

(१) **ग्राहकेन्द्रिय-अभियोजन** (Receptor-adjustment):— ध्यान देने की क्रिया में ग्राहकेन्द्रियों का अभियोजन पाया जाता है। उदाहरणार्थ, जब किसी व्याख्यानदाता के व्याख्यान पर ध्यान देते हैं तब हमारी आँखें उस व्याख्यानदाता की ओर लग जाती हैं तथा कान उसके व्याख्यान को सुनने के लिए तैयार हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, आँखें व्याख्यानदाता के साथ अपना अभियोजन (Adjustment) स्थापित कर लेती हैं तथा कान भी व्याख्यानदाता के शब्दों के साथ अपना अभियोजन कायम कर लेते हैं।

(२) **तनमुद्रात्मक अभियोजन** (Postural adjustment):— केवल ग्राहकेन्द्रियों के अभियोजन तक ही ध्यान की क्रिया सीमित नहीं रहती, वरन् हम जिस वस्तु पर ध्यान देते हैं, उस वस्तु के साथ सम्पूर्ण शरीर ही अपना अभियोजन स्थापित कर लेता है। उदाहरण के लिए व्याख्यानदाता के व्याख्यान पर ध्यान देने से सारा शरीर उस ओर झुक जाता है तथा गर्दन भी उस ओर मुड़ जाती है। तात्पर्य यह कि शरीर की कुछ ऐसी स्थिति हो जाती है, जो व्याख्यान पर ध्यान स्थित किये रहने में सहायक सिद्ध होती है। इसे ही तनमुद्रात्मक अभियोजन (Postural-Adjustment) की संज्ञा दी जाती है।

(३) **मांसपेशियों का तनाव** (Muscle-tension):—जब हम किसी वस्तु पर ध्यान देते हैं, तब सामान्यतः सारे शरीर की मांसपेशियों और विशेषतः ग्राहकेन्द्रिय की मांसपेशियों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। फलतः हम उस वस्तु पर ध्यान लगाये रहने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील हो उठते हैं। उदाहरण के लिए, जब हम किसी व्याख्यानदाता के व्याख्यान पर ध्यान देते हैं तब आँख, कान तथा शरीर के अन्य भागों की मांसपेशियाँ उत्तेजित हो उठती हैं, उनमें तनाव पैदा हो जाता है। फलतः हम

अत्यधिक क्रियाशील हो उठते हैं और हमारा ध्यान व्याख्यान पर अधिक समय तक टिका रह जाता है।

(४) **केन्द्रीय स्नायु-सम्बन्धी अभियोजन** (Central nervous adjustment):—ध्यान देने की क्रिया में केन्द्रीय स्नायुओं का अभियोजन भी पाया जाता है। इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या ग्राहकेन्द्रिय-अभियोजनों तथा तनमुद्रात्मक अभियोजनों (Receptor adjustments and Postural adjustments) से स्वतन्त्र केन्द्रीय स्नायुओं का अभियोजन संभव है? इस प्रश्न पर दो तरह के विचार उपस्थित किये जा सकते है। पहले विचार के अनुसार ध्यान देने की क्रिया ग्राहकेन्द्रिय-अभियोजन तथा तनमुद्रात्मक अभियोजन-मात्र समझी जाती है तथा केन्द्रीय स्नायु-मंडल (Central nervous system) के स्वतन्त्र प्रभाव को स्वीकार नहीं किया जाता। दूसरा विचार यह प्रतिपादित करता है कि ध्यान देने की क्रिया में कभी-कभी स्नायु-मंडल स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है तथा उसे प्रभावित भी करता है। इस विवादग्रस्त विषय पर अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोग एवं अनुसंधान हुए हैं। उनके आधार पर कहा जा सकता है कि ध्यान देने की क्रिया में केन्द्रीय स्नायुओं का अभियोजन (Central nervous adjustment) पाया जाता है। किन्तु इस बात का स्पष्ट रूप से प्रमाण नहीं मिलता कि ध्यान देने की क्रिया को यह ग्राहकेन्द्रिय-अभियोजन तथा तनमुद्रात्मक अभियोजन से स्वतन्त्र रूप में प्रभावित करता है। पूर्वकथित व्याख्यान-सम्बन्धी उदाहरण में केन्द्रीय स्नायुओं का अभियोजन भी सन्निहित है; क्योंकि जब हम व्याख्यान पर ध्यान देते हैं, तब साँस लेने की क्रिया अति मन्द हो जाती है अथवा रुक-सी जाती है। इसीलिए एकाग्र ध्यान सामान्यतः 'श्वास-रहित ध्यान' (Breathless attention) कहा जाता है।

विभिन्न प्रकार के अभियोजनों की व्याख्या से स्पष्ट है कि जब हम किसी वस्तु अथवा विषय पर ध्यान देते हैं, तब हमारे शरीर में अनेक प्रकार के बाह्य एवं आन्तरिक (External and Internal) परिवर्त्तन होते हैं। ये परिवर्त्तन ध्यान को कायम रखने में सहायता करते हैं। इतना ही नहीं, इनके कारण ध्यान की वस्तु के भी सभी पहलू बिलकुल स्पष्ट हो जाते हैं, उसके सभी अंगों का स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण (Clear perception) हो जाता है।

ध्यान के प्रकार
(Kinds of attention)

ध्यान प्रधानतः तीन प्रकार का हो सकता है—

(१) अनैच्छिक ध्यान (Involuntary attention)।

(२) ऐच्छिक ध्यान (Voluntary attention)।

(३) स्वाभाविक ध्यान (Habitual attention)।

अनैच्छिक ध्यान का शाब्दिक अर्थ होता है ऐसा ध्यान, जो व्यक्ति की इच्छा से प्रेरित न हो, जिसमें व्यक्ति की इच्छाओं की प्रधानता न हो। अनैच्छिक ध्यान की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी इसी ढंग की है। जब बाह्य उत्तेजनाएँ अथवा परिस्थितियाँ मनुष्य को अपनी ओर ध्यान देने के लिए विवश कर देती है, चाहे वह इसके लिए तैयार हो अथवा नहीं, तब ऐसे ध्यान को अनैच्छिक ध्यान कहा जाता है। स्पष्ट है कि अनैच्छिक ध्यान बाह्य उत्तेजनाओं अथवा परिस्थितियों से प्रेरित होता है, न कि व्यक्ति की इच्छाओं, मनोवृत्तियों तथा मानसिक तत्परताओं से। उदाहरण के लिए संगीत की मधुर ध्वनि, बन्दूक की आवाज एकाएक उपस्थित की गयी तेज रोशनी आदि उत्तेजनाएँ इतनी प्रबल एवं प्रभावोत्पादक होती हैं कि मनुष्य चाहे अथवा न चाहे, उसका ध्यान उनकी ओर बरबस चला जाता है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य उन उत्तेजनाओं के प्रभाव से विवश होकर उनकी ओर ध्यान देता है।

ऐच्छिक ध्यान उसे कहते हैं, जिसमें मनुष्य अपनी इच्छा के अनुकूल उत्तेजना अथवा परिस्थिति पर ध्यान देता है। ऐच्छिक ध्यान स्पष्टतः मनुष्य की इच्छाओं से प्रेरित होता है। इस प्रकार के ध्यान में मनुष्य की इच्छाएँ, उसके लक्ष्य (Intention) तथा प्रयत्न शामिल रहते हैं। ऐच्छिक ध्यान मनुष्य की स्वाभाविक अभिरुचि एवं मनोवृत्ति से प्रेरित नहीं होता। अतः इसमें अनेक प्रकार की बाधाओं के उपस्थित होने की संभावना बराबर बनी रहती है। इन बाधक उत्तेजनाओं (Distracting stimuli) के रहते हुए भी हमारा ध्यान अभीष्ट वस्तु की ओर लगा रह, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम अत्यधिक प्रयत्नशील हों तथा हमारा लक्ष्य निरन्तर उस वस्तु की ओर ध्यान देने के लिए हमें प्रेरित करता रहे। उदाहरणार्थ, जब परीक्षा के दिन समीप होते हैं, तब विद्यार्थी सिनेमा, खेल आदि अनेक बाधक उत्तेजनाओं के रहते हुए भी अपना ध्यान पाठ्य-पुस्तक पर लगाते हैं।

यों पाठ्य-पुस्तक का पढना उन्हे नीरस लग सकता है तथा सिनेमा, खेल आदि में उनका अधिक आकर्षण हो सकता है। किन्तु, जब परीक्षा मे उत्तीर्ण होने की उनकी इच्छा हो उठती है, तब वे अत्यधिक प्रयत्न कर पाठ्य-पुस्तक पर ध्यान देते हैं तथा सभी बाधक उत्तेजनाओं— जैसे, खेल-कूद आदि—की अवहेलना करते है। स्पष्ट है कि परीक्षा में उत्तीर्ण होने का लक्ष्य, विद्यार्थियो को पाठय-पुस्तक पर ध्यान देने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील बना देता है तथा सिनेमा, खेल आदि बाधक उत्तेजनाओं की उपेक्षा के लिए भी उन्हे तैयार कर देता है।

प्राय: प्रत्येक व्यक्ति स्थायी रूप से कुछ उत्तेजनाओं को ग्रहण करने के लिए निरन्तर तैयार रहता है। फलत उन उत्तेजनाओ की ओर उसका ध्यान बरबस चला जाता है। इस प्रकार के ध्यान को ही स्वाभाविक ध्यान (Habitual attention) कहते है। स्वाभाविक ध्यान न तो व्यक्ति की इच्छाओ से प्रेरित होता है और न बाह्य उत्तेजनाओं अथवा परिस्थितियो से ही, बल्कि यह व्यक्ति की अभिरुचि (Interest), पूर्वधारणा (Prejudice) तथा प्रेरक वृत्तियो (Motive) से प्रेरित होता है। वस्तुत प्रत्येक व्यक्ति अपनी अभिरुचि, पूर्वधारणा तथा प्रेरक वृत्तियों से प्रभावित एव निर्देशित होकर विशेष प्रकार की उत्तेजनाओ पर स्वभावत. अपना ध्यान देता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अभिरुचियो, पूर्वधारणाओ एव प्रेरक वृत्तियो मे एक दूसरे से भिन्न हुआ करता है। अतएव, व्यक्ति के ध्यान देने के विषय अथवा ध्यान देने की वस्तु मे भी भिन्नता पायी जाती है। अब हम कुछ उदाहरणों के द्वारा यह दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि किस प्रकार स्वाभाविक ध्यान मे अभिरुचि, पूर्वधारणा तथा प्रेरक वृत्तियाँ काम करती है। अभिरुचि से प्रेरित होकर ही माली का ध्यान फूलों की ओर, कवि का ध्यान कविता की ओर तथा संगीतज्ञ का ध्यान संगीत की ओर चला जाता है। वैसे ही, पूर्वधारणाओ (Prejudices) से प्रभावित होकर मनुष्य स्वभावत अपने मित्र के गुणो पर तथा शत्रु के दोषों पर ध्यान देता है। पुरुष का ध्यान स्वभावत. सुन्दर स्त्री की ओर तथा स्त्री का ध्यान स्वभावत: सुन्दर पुरुष की ओर चला जाता है; क्योंकि मनुष्य-मात्र यौन-प्रवृत्ति (Sex-motive) से निरन्तर प्रेरित हुआ करता है।

ध्यान की अवस्थाएँ अथवा निर्धारक
(Condition or Determiners of attention)

ध्यान के प्रकारों की विवेचना से यह बिलकुल स्पष्ट है कि मनुष्य को

ध्यान किसी वस्तु की ओर प्राय. दो कारणों से जाता है.—

(१) बाह्य उत्तेजनाओं (External stimuli) के प्रवाह के कारण तथा (२) व्यक्ति की आन्तरिक स्थितियों (Internal conditions) के कारण। अनैच्छिक ध्यान (Involuntary attention) में हम देख चुके है कि किस प्रकार बाह्य उत्तेजनाएँ मनुष्य को अपनी ओर ध्यान देने के लिए विवश कर देती है। इससे स्पष्ट है कि ध्यान आकर्षित करने के कारण बाह्य उत्तेजनाओं में उपस्थित रहते है। इस प्रकार के कारणों को ही ध्यान की बाह्य अवस्थाएँ अथवा निर्धारक (Objective conditions or determiners of attention) कहते है। इसके सिवा, ध्यान आकर्षित करने के कुछ कारण व्यक्ति के अन्दर भी मौजूद रहते है, जैसा कि हमलोग स्वाभाविक ध्यान (Habitual attention) पर विचार करते समय देख चुके है। वस्तुत. व्यक्ति के भीतर वर्त्तमान उसकी अभिरुचि, पूर्वधारणा, मनोवृत्ति तथा प्रेरक वृत्ति वस्तु-विशेष की ओर ध्यान देने के लिए उसे बाध्य करती है। इन्हे ही ध्यान की आन्तरिक अवस्थाएँ अथवा निर्धारक (Subjective conditions or determiners of attention) कहते है। ध्यान के बाह्य एवं आन्तरिक निर्धारक को ध्यान-निर्धारक (Determiners of attention) कहा जाता है। अब ध्यान के बाह्य एवं आन्तरिक निर्धारकों पर अलग-अलग विचार प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

ध्यान की बाह्य अवस्थाएँ अथवा निर्धारक
(Objective Conditions or determiners of attention)

(१) **उत्तेजना का स्वरूप** (Nature of the stimulus) — उत्तेजना का स्वरूप ध्यान आकृष्ट करने का प्रधान कारण है। उदाहरण के लिए, हम श्रव्य (Auditory) तथा दृश्य (Visual) उत्तेजनाओं के स्वरूप पर विचार करेंगे। श्रव्य उत्तेजनाओं (Auditory stimuli) में भाषण, वर्णन, संगीत तथा वाद्ययंत्रों की ध्वनि आदि को रखा जा सकता है। निस्सन्देह, मधुर संगीत, भाषण अथवा वर्णन की अपेक्षा अधिक ध्यान आकृष्ट करता है। अतएव, स्पष्ट है कि श्रव्य उत्तेजनाओं के स्वरूप ही इस बात का निर्णय करते है कि हमारा ध्यान किस ओर अधिक आकृष्ट होगा—भाषण की ओर अथवा वर्णन की ओर, संगीत की ओर अथवा वाद्ययंत्रों की ध्वनि की

की ओर। वैसे ही, दृश्य उत्तेजनाओं (Visual stimuli) में यदि एक चित्र किसी पुरुष-नारी का हो तथा दूसरा पेड़-पौधों का हो, तो संभवतः हमारा ध्यान पेड़-पौधों के चित्र की अपेक्षा पुरुष-नारी के चित्र की ओर अधिक आकर्षित होगा। वास्तव में, मानव-चित्र निर्जीव वस्तुओं के चित्रों की अपेक्षा अधिक ध्यान आकृष्ट करते हैं।

(२) **उत्तेजना का आकार** (Size of the stimulus) :— उत्तेजना के आकार का, ध्यान आकृष्ट करने मे प्रधान हाथ रहता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर पाया गया है कि छोटे आकार के उत्तेजकों की अपेक्षा बडे आकार के उत्तेजक हमारा ध्यान अधिक आकर्षित करते हैं। इसीलिए, समाचारपत्रों में जो विज्ञापन दिये जाते है, वे प्रायः बड़े-बड़े तथा मोटे-मोटे अक्षरों में। समाचारपत्र के सभी अक्षर सामान्यतः कुछ छोटे रहते है, किन्तु विज्ञापन के अक्षर बड़े-बडे होते है। जब हम समाचारपत्र हाथ मे लेते है, तब स्वभावतः बडे-बड़े अक्षरो मे लिखे गये विज्ञापनो की ओर हमारा ध्यान चला जाता है। यहाँ विरोध का नियम (Law of contrast) काम करता है। बड़े अक्षर हमारे ध्यान को इसलिए आकृष्ट कर लेते है कि वे सामान्यतः छोटे अक्षरों के बीच मे प्रस्तुत किये गय होते है। यह भी सत्य है कि यदि किसी पृष्ठ के सभी अक्षर बड़े हों और केवल एक शब्द के अक्षर छोटे तो हमारा ध्यान उस शब्द के ऊपर चला जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि उत्तेजना के आकार को ध्यानाकर्षक बनाने में विरोध का बहुत बड़ा हाथ रहता है।

(३) **उत्तेजना की स्थिति** (Location of the stimulus):— उत्तेजना की स्थिति ध्यान आकृष्ट करने में सहायक होती है। जहाँ तक दृष्टि-उत्तेजना का संबंध है, यह कहा जा सकता है कि वे वस्तुएँ, जो आँखों के सामने होती है, हमारे ध्यान को अधिक आकर्षित करती है। उदाहरणार्थ, सभा में सामने के रंगमंच पर बैठे हुए व्यक्तियों की ओर औरों की अपेक्षा हमारा ध्यान अधिक आकृष्ट होता है। इस प्रकार अन्य स्थलों में भी विशेष प्रकार की स्थिति के कारण विशेष प्रकार की उत्तेजना पर हमारा ध्यान चला जाता है।

(४) **उत्तेजना की प्रबलता** (Intensity of the stimulus):— अन्य विशेषताओं में दूसरी उत्तेजनाओं के समान रहने पर जो उत्तेजना जितनी ही प्रबल होगी, वह उतनी ही शीघ्रता के साथ हमारे ध्यान को

आकर्षित कर लेगी। उदाहरण के लिए, धुँधले प्रकाश की अपेक्षा तीव्र प्रकाश, फीके रंग की अपेक्षा चमकीले रंग, धीमे स्वर की अपेक्षा कर्कश स्वर, क्षीण वेदना की अपेक्षा प्रबल वेदना तथा हल्की गंध की अपेक्षा तेज गंध इत्यादि प्रबल उत्तेजनाएँ ध्यान को अधिक आकृष्ट करती हैं।

(५) **उत्तेजना का रंग** (Colour of the stimulus):— रंगों तथा रंगों के सम्मिश्रण से ज्ञात है कि कुछ रंग अन्य रंगों की अपेक्षा अधिक प्रिय होते हैं। प्रिय रंगों की ओर हमारा ध्यान आसानी से चला जाता है। विज्ञापन करनेवालों ने विज्ञापन को अधिक आकर्षक बनाने के लिए रंगों का अत्यधिक उपयोग किया है। अन्य रंगों की अपेक्षा लाल एवं नीले रंग अधिक प्रिय तथा आकर्षक समझे जाते हैं। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि रंगों को आकर्षक बनाने में विरोध का बहुत बड़ा हाथ रहता है। जहाँ समाचारपत्रों में सभी बातें काले अक्षरों में छपी हुई रहती हैं, वहाँ विज्ञापन में प्रायः लाल, नीले तथा हरे रंगों का प्रयोग किया जाता है। ये रंग काले का विरोध उपस्थित करते हैं। अतः हमारा ध्यान बरबस इनकी ओर आकृष्ट हो जाता है।

(६) **उत्तेजना की पुनरावृत्ति** (Repetition of the stimulus):— यदि कोई उत्तेजना बार-बार दुहराई जाती है, तो उसकी ओर मनुष्य का ध्यान आसानी से चला जाता है। संभव है कि किसी उत्तेजना को एक ही बार उपस्थित करने से हमारा ध्यान उसपर न जाय। किन्तु, उसे कई बार उपस्थित करने से संभवतः हमारा ध्यान उसपर चला ही जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी समाचारपत्र में कोई विज्ञापन सिर्फ एक ही दिन निकले, तब संभव है कि हमारा ध्यान उसपर न जाय, किन्तु जब वह लगातार कई दिनों तक निकलता रहेगा तब अवश्य ही वह हमारे ध्यान को आकृष्ट कर लेगा। सामान्यतः किसी सिद्धांत के प्रचार (Propaganda) में भी पुनरावृत्ति को अपनाया जाता है। प्रचार मे पुनरावृत्ति अत्यधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई है। प्रचार करनेवाला (Propagandist) एक ही बात को बार-बार दुहराता है। उस बात की ओर अधिकांश व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट हो जाता है। किन्तु, इस सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि जब उत्तेजना की पुनरावृत्ति एक निश्चित सीमा का अतिक्रमण कर जाती है, तब वह नीरस तथा प्रभावशून्य हो जाती है। फलतः हमारा ध्यान उस ओर से हटने लगता है और कालक्रम में उस ओर से हम बिलकुल

अन्यमनस्क हो जाते है। अधिक दुहराने के कारण उत्पन्न उत्तेजना की नीरसता तथा प्रभाव-शून्यता को उसमे थोडा परिवर्त्तन तथा नवीनता लाकर दूर किया जा सकता है। विज्ञापन (Advertisement) मे प्राय. एक ही उत्तेजना को दुहराने के साथ-साथ उसमे परिवर्त्तन तथा नवीनता का भी ध्यान रखा जाता है। एक ही उत्तेजना मे थोडा परिवर्त्तन तथा नवीनता लाकर उसे बहुत बार दुहराने पर भी उसम नीरसता तथा प्रभावशून्यता नही आने पाती तथा वह ध्यानाकर्षक ही बनी रहती है। अब परिवर्त्तन तथा नवीनता पर कुछ विचार कर लेना अभीप्सित जान पडता है।

(७) **परिवर्त्तन** (Change) --जब वातावरण मे एकाएक कोई परिवर्त्तन होता है, तब हमारा ध्यान उस ओर चला जाता है। यहा यह उल्लेखनीय है कि क्रमिक परिवर्त्तन (Gradual changes) की अपेक्षा अचानक परिवर्त्तन (Sudden change) अधिक ध्यानाकर्षक होता है। ऋतुए क्रमश बदलती रहती है, व्यक्ति का क्रमश विकास होता रहता है, दिन के बाद रात तथा रात के बाद दिन क्रमश आते रहते है, किन्तु हमारा ध्यान उनकी ओर उतना अधिक नही जाता, जितना अचानक आये हुए परिवर्त्तन की ओर, यथा, यदि कोई व्यक्ति अपने एकान्त कमरे म बिजली के पखे के नीचे बैठा कुछ लिख रहा हो, सामने की दीवार पर लगी हुई घड़ी से टिक्-टिक् की आवाज हो रही हो, लेकिन इसी बीच एकाएक पखा बन्द हो जाय तथा घडी की टिक्-टिक् की आवाज रुक जाय, तो स्वभावत उसका ध्यान घडी तथा पखे की ओर चला जायगा। ऐसे ही, जब चलती हुई गाडी एकाएक रुक जाती है तथा उसकी आवाज बन्द हो जाती है, तब सभी यात्रियो का ध्यान उस ओर चला जाता है।

(८) **नवीनता** (Novelty) --उत्तेजना की नवीनता भी हमारे ध्यान को बरबस आकर्षित कर लेती है। सभव है कि वे वस्तुए, जिनके अनुभव के हम अभ्यस्त हो चुके है, हमारे ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट न कर सकें, किन्तु, नइ तथा विचित्र चीजे शीघ्र ही हमारे ध्यान को अपनी ओर खीच लेती है। उदाहरण के लिए, वे शब्द, स्वाद, गध तथा रूप, जिनके सुनने, चखने, सूँघने तथा देखने के हम अभ्यस्त हो चुके है, सभव है कि हमारे ध्यान को अपनी ओर न खीच सके, किन्तु नये शब्द, नये स्वाद, नई गध तथा नवीन रूप की ओर हमारा ध्यान अवश्य ही चला जायगा। वस्तुत वातावरण में उपस्थित कोई भी नवीन अथवा विचित्र वस्तु हमारे ध्यान

को खीच लेती है, जैसे—विचित्र जानवर तथा नवीन पोशाक। यहाँ यह स्मरणीय है कि नवीनता का ध्यानाकर्षक होना विरोध का एक उदाहरण है। वास्तव मे हम उन्हो वस्तुओ का नवीन कहते है, जो परिचित अथवा अभ्यस्त वस्तुओ से भिन्न होती हैं। दूसरे शब्दो मे, जिन वस्तुओ का परिचित अथवा अभ्यस्त वस्तुओ से विरोध रहता है, उन्हे हम नवीन समझते है तथा उनकी ओर हमारा ध्यान अनायास ही आकृष्ट हो जाता है।

(६) उत्तेजना का गति (Movement of the stimulus) – अन्य विशेषताओ मे दूसरा उत्तेजनाओ के समान रहने पर गतिशील उत्तेजना स्थिर उत्तेजना की अपेक्षा हमारा ध्यान अधिक आकर्षक करती है। उदाहरणार्थ टिमटिमाता हुआ दीपक स्थिर दीपक की अपेक्षा हमारा ध्यान अधिक आकृष्ट करता है। इसी प्रकार सडक पर चुपचाप खडे व्यक्ति की अपेक्षा हाफ्ते हुए दौडनेवाले व्यक्ति की ओर हमारा अधिक ध्यान आकर्षित होता है। ध्यान आकर्षित करने मे गतिशीलता के महत्त्व को समझने ही के कारण अनेक वस्तुओ का विज्ञापन चलचित्रो के द्वारा होता है।

ध्यान की आन्तरिक अवस्थाएँ अथवा निर्धारक
(Subjective Conditions or determiners of attention)

(१) अभिरुचि—ध्यान आकर्षित करने मे अभिरुचि का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस वस्तु मे जिसकी अभिरुचि होती है, उसी की ओर वह ध्यान देता है। उदाहरण के लिए विद्यार्थी अध्ययन की ओर, डाक्टर रोगी की ओर, कलाकार कला की ओर तथा सगीतज्ञ सगीत की ओर अपना ध्यान देते हैं। इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि व्यक्तिगत अभिरुचि के अनुकूल ध्यान देने का वस्तु अलग-अलग हुआ करती है। यहा यह उल्लेख कर देना आवश्यक जान पडता है कि अभिरुचि के निर्माण मे मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts) एव शिक्षा-दीक्षा—इन दोनो का हाथ रहता है। मूल प्रवृत्तियो के अनुकूल वस्तु-विशेष मे व्यक्ति की अभिरुचि होती है तथा वह उसी पर ध्यान भी देता है। उदाहरण के लिए, भूखे व्यक्ति का ध्यान भोजन की सामग्री की ओर, प्यास से व्याकुल व्यक्ति का ध्यान पानी की ओर तथा कामातुर व्यक्ति का ध्यान स्त्री की ओर शीघ्र ही चला जाता है। मूल प्रवृत्तियो की ही तरह शिक्षा का भी अभिरुचि के निर्माण मे बहुत अधिक हाथ रहता है। प्राय ऐसा पाया जाता है कि सभी व्यक्ति अपनी-अपनी शिक्षा के अनुसार

भिन्न-भिन्न विषयों अथवा वस्तुओं में अपनी अभिरुचि अधिक रखते हैं। फलतः उन्हीं विषयों अथवा वस्तुओं की ओर उनका ध्यान भी अधिक आकृष्ट होता है। उदाहरणार्थ, मनोवैज्ञानिक मनोविज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नों पर, दार्शनिक दर्शन-सम्बन्धी बातों पर तथा राजनीतिज्ञ राजनीतिक समस्याओं पर अधिक ध्यान देते हैं। किन्तु सामान्य व्यक्तियों का ध्यान इन विषयों पर उतना आकृष्ट नहीं होता। जो कुछ ऊपर कहा गया है, उससे स्पष्ट है कि शिक्षा और मूल वृत्तियों से अभिरुचि का निर्माण होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति अपने ध्यान के द्वारा अपनी अभिरुचि को ही अभिव्यक्त करता है। इस विचार का प्रतिपादन करते हुए स्टाऊट (Stout) ने कहा है—

"अभिरुचि अस्फुट ध्यान है तथा ध्यान अभिरुचि का ही स्फुट रूप है।"*

(२) **अर्थ**—मनुष्य जिस विषय के अर्थ को भलीभाँति समझता है, उस विषय की ओर उसका ध्यान आसानी से चला जाता है। प्रायः ऐसा पाया जाता है कि जो विद्यार्थी जिस विषय को भलीभाँति समझते हैं, उस विषय की ओर उनका ध्यान अधिक आकृष्ट होता है। यदि मनोविज्ञान को कोई विद्यार्थी अच्छी तरह समझता है, तो अन्य विषयों की अपेक्षा उसका ध्यान मनोविज्ञान की ओर ही अधिक जायगा। वैसे ही, एक साहित्य-मर्मज्ञ का ध्यान साहित्य की ओर अनायास ही चला जाता है; क्योंकि साहित्य की उसे परख होती है। इसके विपरीत, जिस विषय को मनुष्य नहीं समझ पाता, उस ओर उसका ध्यान भी नहीं जाता। ऐसे अनेक विद्यार्थी मिलेंगे, जिनका ध्यान गणित की ओर नहीं जाता; क्योंकि वे उसे समझ ही नहीं पाते। अतएव स्पष्ट है कि हम जिस विषय के अर्थ को समझते हैं, उस विषय की ओर हमारा ध्यान अधिक जाता है। किन्तु, जिस विषय के अर्थ को नहीं समझ पाते, उस ओर ध्यान भी आकृष्ट नहीं होता।

(३) **आदत**—आदत के कारण भी हमारा ध्यान किसी वस्तु-विशेष की ओर चला जाता है। वस्तुतः जिस प्रकार की हमारी आदतें होती हैं, उन्हीं के अनुकूल विषयों अथवा वस्तुओं पर हमारा ध्यान जाता है। जिस मनुष्य को प्रतिदिन प्रातःकाल चाय पीने की आदत हो जाती है, उसका ध्यान प्रातःकाल होते ही चाय की ओर चला जाता है और तबतक उसका ध्यान चाय की ओर लगा रहता है, जबतक वह चाय पी नहीं लेता। किन्तु

---

*"Interest is latent attention and attention is interest in action."—Stout

जिसे चाय पीने की आदत नहीं है, उसका ध्यान सामान्यतः चाय की ओर नहीं जाता। आदत के निर्माण में अभ्यास का प्रमुख हाथ रहता है। किसी कार्य को बार-बार करने से उसकी आदत हो जाती है और आदत हो जाने पर हमारा ध्यान उस ओर चला जाता है।

(४) **लक्ष्य अथवा अभिप्राय**—मनुष्य के ध्यान को आकर्षित करने में उसके लक्ष्य अथवा अभिप्राय का प्रमुख हाथ रहता है। अपने लक्ष्य के अनुकूल विषयों अथवा वस्तुओं पर मनुष्य का ध्यान स्वभावतः चला जाता है। जिस विद्यार्थी का लक्ष्य आगामी परीक्षा में उत्तीर्ण होना रहता है, वह शिक्षक के द्वारा बतलाये गये प्रमुख प्रश्नों की ओर अत्यधिक ध्यान देता है, किन्तु शिक्षक की अन्य बातों की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। जिस विद्यार्थी का लक्ष्य विषय को जानकारी होता है, वह आगामी परीक्षा में आनेवाले प्रमुख प्रश्नों की उपेक्षा कर विषय को तह में पहुँचानेवाली बातों की ओर अधिक ध्यान देता है। अतएव, स्पष्ट है कि लक्ष्य अथवा अभिप्राय से प्रेरित होकर मनुष्य अपने लक्ष्य-सम्बन्धी विषयों की ओर ही अधिक आकृष्ट होता है।

(५) **जिज्ञासा** (Curiosity)—जिज्ञासा की प्रवृत्ति के कारण ही व्यक्ति का रहस्यमयी वस्तुओं अथवा घटनाओं की ओर अधिक ध्यान जाता है। उदाहरणार्थ, कुछ बड़े बच्चों को काम-सम्बन्धी रहस्यात्मक बातों के जानने की प्रबल इच्छा रहती है। फलतः काम-सम्बन्धी बातों अथवा घटनाओं की ओर अति शीघ्र ही उनका ध्यान चला जाता है। जासूसी उपन्यासों की ओर प्रायः बड़े बच्चों तथा नवयुवकों का ध्यान चला जाता है; क्योंकि उन उपन्यासों में रहस्यमयी घटनाओं की प्रधानता रहती है।

(६) **मनोवृत्ति** (Attitude)—जिस वस्तु की ओर मनुष्य की मनोवृत्ति होती है, उसकी ओर अनायास उसका ध्यान चला जाता है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक मनुष्य की मनोवृत्ति एक-दूसरे से भिन्न हुआ करती है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति के ध्यान के विषय या वस्तु में भी स्वभावतः भिन्नता पाई जाती है; क्योंकि वह अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल विषय या वस्तु पर ही ध्यान देता है तथा अन्य विषय या वस्तुओं की साधारणतः उपेक्षा करता है। उदाहरण के लिए यदि मनोवैज्ञानिक का ध्यान लोगों के व्यवहार की ओर जाता है, तो शरीर-वैज्ञानिक (Physiologist) का ध्यान उनकी शारीरिक बनावट की ओर जाता है। कारण, मनोवैज्ञानिक

तथा शरीर-वैज्ञानिक—इन दोनों की मनोवृत्ति भिन्न-भिन्न तरह की होती हैं तथा ये अपनी मनोवृत्ति स प्रभावित होकर ही लोगों की ओर ध्यान देते हैं।

ऊपर ध्यान आकर्षित करने के जिन आन्तरिक निर्धारकों का उल्लेख किया गया है, उन्हे हम मानस-वृत्ति (Mental set) के अन्तर्गत रख सकते हैं। वस्तुत. मनुष्य की मानस-वृत्ति ही उसके ध्यान को आकर्षित करने का सबसे प्रमुख आन्तरिक निर्धारक कही जा सकती है। अन्य सभी आन्तरिक निर्धारक मानस-वृत्ति के निर्माण मे योग प्रदान करते है। अभिरुचि, अर्थ, आदत, लक्ष्य, जिज्ञासा, मनोवृत्ति आदि निर्धारकों के कारण मनुष्य में एक विशेष प्रकार की मानस-वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। फलत: वह वस्तु-विशेष पर ध्यान देने के लिए विवश हो जाता है।

ध्यान की अस्थिरता

(Fluctuation of attention)

ध्यान अत्यन्त ही अस्थिर या चचल स्वभाव का होता है। यह सर्वदा एक वस्तु से हटकर दूसरी वस्तु पर जाता रहता है। उदाहरण के लिए, यदि हम एक घड़ी को इतनी दूरी पर रख दे कि उसकी टिक्-टिक् की ध्वनि सुनाई भर पड़ती रहे, तो यह पाया जायगा कि कभी तो टिक्-टिक् की ध्वनि सुनाई पड़ेगी और कभी वह बिलकुल लुप्त हो जायगी। इस प्रकार कभी टिक्-टिक् की ध्वनि का सुनाई पड़ना और कभी लुप्त हो जाना, हमारे ध्यान का एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर जाते रहने का परिचायक है। वास्तव मे, हम किसी भी एक वस्तु पर अपना ध्यान अधिक देर तक नहीं रख सकते। बिलिग्स (Billings) ने अपने अध्ययन के आधार पर बतलाया है कि मनुष्य का ध्यान किसी भी एक वस्तु पर सामान्यत: पाँच सेकेण्ड से अधिक देर तक नही टिक सकता। यहाँ यह उल्लेख कर देना अभीष्ट जान पड़ता है कि प्रत्येक व्यक्ति के ध्यान हटते रहने की गति एक-दूसरे से भिन्न हुआ करती है। यदि किसी का ध्यान अतिशीघ्रता से एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर जाता रहता है, तो किसी का ध्यान एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर अपेक्षाकृत कुछ देर से जाता है। एक ही व्यक्ति के ध्यान बदलते रहने की गति मे भी भिन्नता पायी जाती है। कभी उसका ध्यान एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर अतिशीघ्र चला जाता है, तो कभी अपेक्षाकृत कुछ देर स। इससे यह स्पष्ट है कि एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर ध्यान जाते रहने की गति अत्यन्त ही अस्थिर एवं चंचल होती है।

ध्यान का विभाजन
(Division of attention)

क्या दो कार्यों को एक ही साथ करते समय हमारा ध्यान उन दोनों की ओर बँटा रहता है ? साधारणतः ऐसा जान पड़ता है कि हमारा ध्यान एक ही समय मे कई कार्यों मे बटा रहता है। हम प्रायः एक समय मे एक से अधिक कार्य करते रहते है, यथा, सभव है कि हम टहलते समय अपने बाय हाथ मे पुस्तक लिये रहे, दाहिने हाथ म सामने का ओर सकेत करत रहे, सर्वदा समीप से आनेवाली ध्वनि सुनत रहे ओर सामन का वस्तु का दखत भी रहे। अब प्रश्न यह है कि क्या इन विभिन्न कार्यों का एकसाथ सम्पादित करते समय हमारा ध्यान उन सबका ओर बटा रहता है ? इस समस्या पर अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयाग एव अनुसधान हुए है । उन्ह दृष्टिकाण मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि वस्तुत. एक हा साथ कई काया क करते समय हमारा ध्यान उन सबका ओर नहीं बटा रहता, बल्कि ऐसी अवस्था मे ध्यान दने का क्रिया मे निम्नांकित बाते पायी जाती है—

(१) दो कार्यों मे से एक स्वत सम्पादित हाता जाता है। फलत. उस पर ध्यान देने की कोई आवश्यकता ही नही पड़ता। अतः व्यक्ति अपन एक कार्य की ओर ही अपना समग्र ध्यान देता है। इस प्रकार एक ही समय म दो कार्य भी सपादित हो जाते है तथा व्यक्ति का ध्यान भी नहीं बँटता।

(२) जब दो कार्यों को एक इकाई (Single unit) के रूप मे ग्रहण कर लिया जाता है, तब ध्यान के बटने का प्रश्न ही नही उठता, कारण, व्यक्ति उन दोनो कार्यों को तो एक ही समग्र कार्य के दो अग मानता है, उनके स्वतन्त्र अस्तित्व की बात तो वह सोचता ही नही।

(३) कभी-कभी दो कठिन कार्यों को एक ही साथ सम्पादित करते समय संभवतः हमारा ध्यान बहुत जल्दी-जल्दी दोनों कार्यों की ओर जाता रहता है। किन्तु एक ही क्षण मे दोनो कार्यों पर हमारा ध्यान कभी भी नहीं टिकता। स्पष्टतः एक ही क्षण मे दो कार्यों मे ध्यान का बँटना तथा बहुत जल्दी-जल्दी ध्यान का एक कार्य से दूसरे कार्य की ओर जाना—ये दोनों दो बातें हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामान्यत ध्यान का एक ही समय कई कार्यों में बँटना संभव नहीं है । टिचेनर (Titchener), ह्विपुल

(Whipple) आदि मनोवैज्ञानिकों के विचारों से भी इसी बात की पुष्टि होती है।*

---

*"Simultaneity of two Psychologically disparate attention is, in my experience, altogether impossible."—Titchener

"If both activities are difficult, attention alternates between them and the activity not attended at any moment is temporarily reduced, if not altogether suspended; and if one activity is relatively easy, it becomes, after short practice, reduced to automatism, so that attention can be given freely to the other."

-Whipple

आठवाँ अध्याय

सीखना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका विकास समाज की विभिन्न परिस्थितियों में होता है। जब वह किसी नयी परिस्थिति के सपर्क मे आता है, तब उसके साथ अपने को सफलतापूर्वक अभियोजित करने का प्रयास करता है। उसका यह प्रयास उसके पूर्व-व्यवहार और अनुभूति मे परिवर्त्तन लाता है। उसके व्यवहार एवं अनुभूति का यह परिवर्त्तन (Change) अथवा परिमार्जन (Modification) ही सीखना कहलाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सीखना कोई एक प्रकार की विशिष्ट क्रिया (Specific activity) नहीं है, वरन् वह तो एक ऐसा परिवर्त्तन है, जो विभिन्न क्रियाओं के संपादन के क्रम मे प्राणी मे आता है।* स्पष्टत. यह परिवर्त्तन प्राणी की अपनी ही क्रियाओं का प्रतिफल है।† यह परिवर्त्तन अथवा परिमार्जन लगभग स्थायी ढंग का होता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई बच्चा एक बार गर्म लोहे को छूता है और उसका हाथ जल जाता है, तो फिर जब कभी उसके सामने गर्म लोहा उपस्थित किया जाता है तब वह उसे कभी नहीं छूता। स्पष्ट है कि उसके पहले व्यवहार मे लगभग स्थायी परिवर्त्तन आ गया। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अभीष्ट प्रतीत होता है कि व्यवहार का प्रत्येक परिवर्त्तन या परिमार्जन सीखना नहीं कहलाता। वस्तुतः मनुष्य के व्यवहार में कुछ ऐसे भी परिवर्त्तन देखने को मिलते हैं, जो सीखने के कारण नहीं उत्पन्न होते, प्रत्युत परिपक्वता (Maturation) के कारण होते हैं।

*"Learning is no one specific kind of activity. It is a change that occurs in the organism during many kinds of activity." —R. S. Woodworth and Harold Schlosberg: Experimental Psychology (Third edition, 1955), p. 530.

†Learning is "change or modification of an organism's behaviour that results from the organism's own activity". —Asher, Tiffin and Knight: Introduction to General Psychology; p. 174.

सीखने की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि व्यवहार का परिवर्त्तन प्रगतिशील स्वभाव का होता है। पहली बार की सीखी हुई क्रिया में बार-बार परिवर्त्तन होता है, इसे भी सीखना ही कहते हैं। उदाहरण के लिए, एक नवजात शिशु यह अच्छी तरह नहीं जानता कि वह क्या खाये और किस प्रकार खाये। सर्वप्रथम वह किसी प्रकार खाना सीख लेता है। लेकिन, उसका यह सर्वप्रथम सीखना भी कालक्रम से परिवर्त्तित होता जाता है। यदि पहले उसने यह सीखा कि हाथ-पैर धोकर साफ-सुथरी जगह पर बैठकर खाना चाहिए, तो बाद में उसके इस व्यवहार में सम्भवतः परिवर्त्तन होता है और वह यह भी सीख लेता है कि खाने के कमरे में कुर्सी पर बैठकर चम्मच आदि के सहारे खाना चाहिए। सारांश यह है कि एक बार की सीखी हुई क्रिया में उत्तरोत्तर वृद्धि या उन्नति होती रहती है। इसीलिए, व्यवहार के प्रगतिशील परिवर्त्तन को 'सीखना' कहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यदि सीखने की क्रिया का विश्लेषण किया जाय तो उसके अन्तर्गत निम्नलिखित बातें पायी जायेंगी:—

(१) अभिनव परिस्थिति की उपस्थिति;
(२) उस परिस्थिति में अभियोजन के लिए व्यक्ति का प्रयास, उसकी क्रियाशीलता;
(३) परिणाम-स्वरूप पूर्वानुभूति एवं व्यवहार में परिवर्त्तन अथवा परिमार्जन;
(४) इस परिवर्त्तन अथवा परिमार्जन का लगभग स्थायी ढंग का होना;
(५) सीखने में प्रगतिशीलता का वर्त्तमान रहना।

सीखना तथा परिपक्वता
(Learning and maturation)

यह बतलाया जा चुका है कि पूर्व व्यवहार एवं अनुभूति में परिवर्त्तन का होना ही 'सीखना' कहलाता है। यह परिवर्त्तन प्रायः दो कारणों से होता है। पहला, परिपक्वता के कारण तथा दूसरा सीखने के कारण। परिपक्वता (Maturation) से हमारा तात्पर्य अंग-प्रत्यंग के स्वाभाविक विकास से है। शरीर के विभिन्न अंगों का यह स्वाभाविक विकास केन्द्रीय स्नायु-मंडल की समर्थता पर निर्भर करता है। केन्द्रीय स्नायु-मंडल में उम्र बढ़ने के साथ-साथ स्वयं सामर्थ्य आता जाता है। फलस्वरूप प्राणी के व्यवहार में भी परिवर्त्तन होता रहता है। उदाहरण के लिए, चलने-फिरने, बोलने, सीखने,

आदि क्रियाओं में परिपक्वता का विशेष हाथ रहता है। उम्र बढ़ने के साथ-ही-साथ इन क्रियाओं का भी विकास होता जाता है। तभी तो बच्चा शुरू में सिर्फ अपना सिर उठा पाता है, फिर बैठना शुरू करता है और तब उसमें खड़ा होने, टहलने और दौड़ने की क्रियाएँ भी क्रमशः आ जाती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि चलने-फिरने की क्रिया के लिए हाथ-पैर आदि अंगों की परिपक्वता अनिवार्य है। बाल-मनोविज्ञानवेत्ताओं ने बतलाया है कि बच्चे में भिन्न-भिन्न क्रियाओं का विकास परिपक्वता पर ही निर्भर करता है। अतएव, परिपक्वता के कारण होनेवाले व्यवहार के परिवर्त्तन को सीखने के कारण आये हुए व्यवहार के परिवर्त्तन से अलग कर लेना चाहिए।

सीखना परिपक्वता से भिन्न है। सर्वप्रथम तो इन दोनों में भिन्नता यह है कि सीखने की क्रिया में बाह्य परिस्थिति के प्रभाव से उत्पन्न प्राणी की क्रियाशीलता विद्यमान रहती है। किन्तु परिपक्वता प्राणी का एक स्वाभाविक विकास-मात्र है। इन दोनों में दूसरा अन्तर यह है कि सीखने के कारण प्राणी में भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाओं का विकास होता है, जो उसके व्यक्तित्व को विशेषता प्रदान करती है। वस्तुतः अपनी विशेषताओं के कारण ही प्रत्येक प्राणी एक-दूसरे से भिन्न होता है। एक ही प्रकार की प्रतिक्रियाएँ सभी प्राणियों में नहीं पायी जातीं। किन्तु परिपक्वता के कारण उत्पन्न प्रतिक्रियाएँ प्रायः किसी जाति के सभी सामान्य व्यक्तियों (Normal individuals) में समान रूप से पायी जाती हैं। उदाहरणार्थ, प्रायः सभी सामान्य बच्चों (Normal children) का परिपक्वता के कारण उत्पन्न भाषा-विकास समान ढंग का ही होता है। एक खास अवस्था होने पर ही वे बोलना शुरू करते हैं।

यद्यपि सीखना तथा परिपक्वता—इन दोनों में कुछ अन्तर है, फिर भी ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी नहीं कहे जा सकते; प्रत्युत इन्हें हम एक ही क्रिया के दो पहलू मान सकते हैं। मनुष्य के व्यवहार का विकास निरन्तर होता रहता है। विकास की यह क्रिया परिपक्वता एवं सीखना दोनों ही से प्रभावित होती है। वस्तुतः परिपक्वता एवं सीखना—इन दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। चलने-फिरने, बोलने आदि क्रियाओं का विकास प्रायः परिपक्वता के कारण होता है। लेकिन, ये क्रियाएँ भी बाह्य परिस्थिति के प्रभाव से नहीं बच पातीं। वैसे ही, सीखने की क्रिया पर भी परिपक्वता का प्रभाव पाया जाता है। किसी भी सीखने की क्रिया के लिए एक हद तक परिपक्वता की आवश्यकता पड़ती है और सीखने के साथ-

साथ केन्द्रीय स्नायु-मंडल मे कुछ सूक्ष्म परिवर्त्तन भी होते हैं। अतएव, परिपक्वता और सीखना—इन दोनों में कुछ अन्तर होते हुए भी दोनों एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं।

सीखने में प्रेरणा का स्थान

(The place of motivation in learning)

सीखने में प्रेरणा का प्रमुख हाथ होता है। किसी भी प्रकार का सीखना प्रेरणा के बिना संभव नहीं है। प्रेरणा प्राणी को क्रियाशील बनाती है और उसे एक निश्चित दिशा की ओर ले जाती है। उसकी यह क्रियाशीलता तबतक जारी रहती है, जबतक उसे सन्तोष प्राप्त नहीं हो जाता। उदाहरण के लिए, भूख से प्रेरित होकर प्राणी भोजन पाने के लिए क्रियाशील हो जाता है। उसकी यह क्रियाशीलता तबतक जारी रहती है, जबतक वह भोजन पाकर अपनी क्षुधा को तृप्त नहीं कर लेता। प्रेरणा प्राणी की आन्तरिक स्थिति का बोध कराती है; जैसे, भूख-प्यास, यौन-प्रवृत्ति (Sexual desire) इत्यादि।

सीखने के सम्बन्ध में किये गये मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर पाया गया है कि पशु प्रायः उन पुरस्कारों से अधिक प्रेरित होते है, जो उनकी बुनियादी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति मे सहायक होते है। उदाहरणार्थ, भोजन, पानी आदि पुरस्कारों से उन्हे कार्य करने की प्रेरणा मिलती है; क्योंकि इनसे उनकी भूख-प्यास आदि बुनियादी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति होती है। क्षुधातृप्त मानव अधिकतर भौतिक तथा सामाजिक पुरस्कारों से प्रेरित होकर कोई काम करता है। धन-सम्पत्ति, भौतिक पुरस्कार (Material rewards) तथा मान-प्रतिष्ठा (Prestige and recognition)—सामाजिक पुरस्कार है। थौर्नडाइक (Thorndike) ने चूहे और बिल्लियों पर प्रेरणा-सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये। उन प्रयोगों के आधार पर यह पाया गया कि जब भूखी बिल्ली या भूखे चूहे को पुरस्कार के तौर पर भोजन दिया गया, तब उन्होंने उलझन-बक्स (Puzzle-box) से बाहर निकलना या भूल-भुलैया (Maze) में सही रास्ते से जाना आसानी से सीख लिया। भोजन द्वारा अपुरस्कृत (Non-rewarded) बिल्ली एवं चूहों की अपेक्षा पुरस्कृत (Rewarded) बिल्ली एवं चूहों ने कम गलतियाँ कीं और थोड़े समय में ही कार्य संपादित करना सीख लिया। 'प्रयत्न और भूल-विधि' के विवेचन के समय यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी।

एवं सफलताएँ प्राप्त होती हैं, उन्हे वह बार-बार दुहराता है और इसीलिए उन्हें सरलता से सीख भी लेता है। अतएव, स्पष्ट है कि सीखने में प्रभाव (Effect) तथा अभ्यास (Exercise)-- इन दोनों का प्रमुख हाथ रहता है ।

साहचर्य के नियम
(Laws of Association)

सीखना और साहचर्य--इन दोनो का बड़ा घनिष्ट संबंध है। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के प्रारम्भ होने के सदियो पूर्व ही साहचर्य के सम्बन्ध मे अध्ययन प्रारम्भ हो गया था। सर्वप्रथम अरिस्टोट्ल (Aristotle ने साहचर्य-नियमो का प्रतिपादन किया था। उनके द्वारा प्रतिपादित साहचर्य के नियम अट्ठारहवीं तथा उन्नीसवीं सदियो तक प्रधान रूप में बने रहे। उनके तीन प्रधान नियम थे --

(१) समीपता का नियम (Law of Contiguity),

(२) समानता का नियम (Law of Similarity),

(३) विरोध का नियम (Law of Contrast) ।

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ मे ब्राउन (Brown) ने तीन और सहायक साहचर्य-नियमों का प्रतिपादन किया। उनके नियम ये थे:--

(१) आसन्नता का नियम (Law of Recency),

(२) बारंबारता का नियम (Law of Frequency),

(३) स्पष्टता का नियम (Law of Vividness) ।

मनोविज्ञान की पुस्तकों से जान पड़ता है कि साहचर्य-नियमों के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के कई मत हैं। किन्तु सामान्यतः साहचर्य-नियमों के दो विभाग किये जाते हैं:--

(१) साहचर्य के प्राथमिक नियम (Primary laws of Association) तथा

(२) साहचर्य के सहायक नियम (Secondary Laws of Association) ।

जहाँ तक साहचर्य के प्राथमिक नियमों का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि अरिस्टोटल (Aristotle) के द्वारा प्रतिपादित साहचर्य-नियमों को मनोवैज्ञानिको ने साहचर्य के प्राथमिक नियमों के रूप मे ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया। ब्राउन के तीन नियमो मे एक और नियम जोड़कर उन्हे

साहचर्य के सहायक नियमो के अन्तर्गत रखा गया। इस प्रकार साहचर्य के सहायक नियम तीन के बदले चार माने गये--

(१) प्राथमिकता का नियम(Law of Primacy),
(२) आसन्नता का नियम (Law of Recency),
(३) बारबारता का नियम (Law of Frequency),
(४) स्पष्टता का नियम (Law of Vividness)।

समीपता का नियम--साहचर्य के प्राथमिक नियमो का विवेचन प्रस्तुत करते हुए कहा जा सकता है कि समीपता का नियम (Law of Contiguity) ही साहचर्य का मूल नियम है। जब एक ही स्थान पर और एक ही समय मे कई प्रकार की अनुभूतियाँ होती है तब उनमे से किसी एक के प्रस्तुत होने पर अन्य अनुभूतियो की भी याद आ जाती है। कारण, उन सभी अनुभूतियो मे स्थान तथा समय-सम्बन्धी समीपता का सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ, 'क' के याद आते ही 'ख' का स्मरण हो आता है; 'ग' के प्रस्तुत होत ही 'घ' की याद आने लगती है। इसका प्रधान कारण यह है कि हम प्राय. इसी क्रम मे सभी अक्षरो का सीखते है। फलत स्थान तथा समय को समीपता के कारण उनमे साहचर्य स्थापित हो जाता है।

समानता का नियम--समानता का नियम यह बतलाता है कि समान अनुभूतियो मे साहचर्य स्थापित हो जाता है। फलत उनमे से किसी एक के प्रस्तुत होते ही अन्य अनुभूतियो का भी स्मरण होने लगता है। उदाहरणार्थ, किसी एक फूल को देखकर उसके समान आकार और रगवाले अन्य फूलो की भी याद हो आती है। वैसे ही, किसी नवयुवक का देखकर उसके समान रूप-रग के अन्य नवयुवको का भी स्मरण होने लगता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि समानता का यह अर्थ कदापि नहीं कि दो वस्तुए एक-दूसरी से सर्वथा अभिन्न हो, वरन् यह कि दो वस्तुओ मे किसी एक विशेष गुण अथवा कई गुणो का लेकर समानता है।

विरोध का नियम--विरोधी अनुभूतियो मे सहज ही साहचर्य स्थापित हो जाता है। फलत. उनमे से किसी एक की ही उपस्थिति मे अन्य विरोधी अनुभूति का भी स्मरण होने लगता है। उदाहरण-स्वरूप, हम सुख-दु.ख, आशा-निराशा, दिन-रात, अन्धकार-प्रकाश, मित्र-शत्रु आदि को ले सकते है। विरोध पर प्रकाश डालते हुए यह कह देना समीचीन जान पड़ता है कि विरोध के मूल मे सादृश्य पाया जाता है। इसीलिए विरोधी वस्तुओ अथवा

अनुभूतियों में साहचर्य स्थापित हो जाता है। सुख इसलिए दुःख की याद दिलाने में समर्थ होता है कि विरोधी होते हुए भी दोनों के मूल मे सादृश्य है। उनका सादृश्य इस बात में है कि दोनो ही मनुष्य के भाव (Feelings) है। यही बात अन्य विरोधी अनुभूतियों के लिए भी कही जा सकती है। वस्तुतः विरोध का सम्बन्ध सादृश्य-सम्बन्ध के अन्तर्गत आ जाता है।

प्रायः सभी प्रकार के साहचर्य-प्रयोगों (Association experiments) में उपर्युक्त साहचर्य के प्राथमिक नियमो का पर्याप्त रूप से उपयोग पाया जाता है। साहचर्य-प्रयोगों में प्रधान है—स्वतन्त्र साहचर्य (Free Association) तथा नियन्त्रित साहचर्य (Constrained Association)। इन दोनो प्रकार के प्रयोगों मे प्रयोज्य (Subject) के सामने उत्तेजना के रूप मे शब्दों की एक सूची प्रस्तुत की जाती है। उत्तेजक शब्दों के प्रति प्रयोज्य को अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करनी पड़ती है। स्वतन्त्र साहचर्य मे प्रयोज्य को इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि प्रयोगकर्त्ता के द्वारा उपस्थित किये गये उत्तेजक शब्दों को सुनते ही सर्वप्रथम जो शब्द उसे याद आ जाय, उसे ही प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट कर दे। नियन्त्रित साहचर्य मे प्रयोज्य को नियन्त्रित ढंग से प्रतिक्रिया प्रकट करनी पड़ती है। उसे ऐसे शब्द के द्वारा प्रतिक्रिया प्रकट करनी पड़ती है, जिसका उत्तेजक शब्द से निश्चित सम्बन्ध हो। नियन्त्रित साहचर्य में प्रतिक्रिया का नियन्त्रण दो प्रकार का होता है—पहला पूर्ण तथा दूसरा आंशिक। जब उत्तेजक शब्द का एक ही समुचित प्रत्युत्तर (Response) हो, तब उसे पूर्ण नियन्त्रण कहा जायगा तथा जब उत्तेजक शब्द के कई समुचित प्रत्युत्तर हो और प्रयोज्य को उनमें से किसी एक को चुन लेने की स्वतन्त्रता रहे, तब उसे आंशिक नियन्त्रण कहा जायगा। इन साहचर्य-प्रयोगों में प्रयोज्य के प्रत्युत्तर (Responses) प्रायः साहचर्य के प्राथमिक नियमों के द्वारा ही संचालित होते है। समीपता (Contiguity), समानता (Similarity) और विरोध (Contrast) से प्रभावित होकर ही प्रयोज्य उत्तेजक शब्द के प्रति अपना प्रत्युत्तर प्रकट करता है। इसके सिवा, साहचर्य के इन प्राथमिक नियमो क आधार पर साहचर्य का वर्गीकरण भी किया जाता है। अतएव, साहचर्य के वर्गीकरण के आधार के रूप में भी इन नियमों की प्रधानता है।

साहचर्य के सहायक नियमों का अध्ययन प्रयोगात्मक अवस्थाओं मे किया गया है। अतएव, इनकी व्याख्या बहुत सुलभ हो गयी है। प्राथमिकता के नियम (Law of Primacy) का उल्लेख करते हुए कहा जा

सकता है कि अन्य बातों में समान रहते हुए मस्तिष्क पर पड़े हुए प्रथम प्रभाव (Impressions) तथा पूर्व अनुभूतियों के साथ स्थापित प्रथम साहचर्य बहुत दिनों तक बने रह जाते हैं और अत्यन्त सुलभता से उनका प्रत्याह्वान भी हो जाता है। आसन्नता का नियम (Law of Recency) यह बतलाता है कि आसन्न (Recent), प्रभाव तथा साहचर्य मस्तिष्क में बहुत दिनों तक बने रहते है और सुलभता से उनका प्रत्याह्वान भी हो जाता है। बारंबारता का नियम (Law of Frequency) यह प्रतिपादित करता है कि जो प्रभाव मस्तिष्क पर बार-बार पड़ते है तथा जो साहचर्य बार-बार स्थापित होते हैं, वे मस्तिष्क में बहुत दिनों तक बने रहते हैं तथा उनका प्रत्याह्वान भी सुलभता से हो जाता है। अन्तिम नियम, जिसे स्पष्टता का नियम (Law of Vividness) कहा जाता है, यह बतलाता है कि अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट तथा साहचर्य मस्तिष्क में बहुत दिनों तक बने रह जाते है तथा उनका प्रत्याह्वान भी अत्यन्त सुलभ होता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि प्राथमिकता के नियम (Law of Primacy) की भाँति ही अन्य तीनों नियमों में भी सर्वप्रथम 'अन्य बातों में समान रहते हुए' जोड़ लेना चाहिए, तभी ये नियम पूर्ण रूप ग्रहण कर सकेंगे।

साहचर्य के सहायक नियमों के उदाहरण-स्वरूप निरर्थक शब्द-खंडों की एक सूची (A list of nonsense syllables) को लें--

VOS
ZIR
BOZ
LEF
ZIK
BOZ
VUD
XOL
BOZ
FEP
SUG
ZEV

यदि इस सूची को किसी के सामने एक निश्चित समय तक प्रस्तुत किया जाय तथा उसे इस सूची को सीख लेने को कहा जाय, तो संभवतः उसे इस

उपर्युक्त प्रयोग की पद्धति का अनुसरण करते हुए पावलव और उनके साथियों ने अनेक प्रयोग किये। अपने प्रयोगों के आधार पर उन्होंने बतलाया है कि कुत्ते के मुँह से लार का टपकना सिर्फ घंटी की आवाज से ही संभव नहीं है, वरन् घ्राण तथा स्पर्श-सम्बन्धी अन्य उत्तेजनाओं से भी संभव है। इससे यह स्पष्ट है कि सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया (Conditioned response) भिन्न-भिन्न उत्तेजनाओं के साथ स्थापित हो जाती है। यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि पावलव ने अपने अध्ययन के आधार पर मानव-जीवन के अन्य पहलुओं पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की, जैसे आदत-निर्माण (Habit-formation), असामान्य व्यवहार का विकास (Development of abnormal behaviour) आदि। उन्होंने जोर देकर कहा है कि सभी प्रकार के सीखने के मूल में प्रतिक्षेपों अथवा सहज क्रियाओं (Reflexes) का सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन ही पाया जाता है। उन्हीं के शब्दों में—

"विभिन्न प्रकार की आदतें, जो किसी प्रकार की शिक्षा एवं अनुशासन पर निर्भर करती हैं सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन की एक लम्बी शृंखला-मात्र है।"*

मनुष्य के सीखने में सम्बन्ध-प्रत्यावर्तन का महत्त्व

सम्बन्ध के द्वारा केवल पशु ही नहीं, बल्कि मनुष्य भी सीखते हैं। इस प्रकार का सीखना अधिकतर बच्चों में पाया जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में बच्चे के भाषा-विकास में सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन का अत्यधिक हाथ रहता है। मनुष्य की अधिकांश मनोवृत्तियों (Attitudes) का निर्माण उसके प्रारम्भिक जीवन में सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन के द्वारा ही होता है। बच्चों के सीखने में इस सिद्धांत के महत्त्व को दो-एक उदाहरणों के द्वारा प्रस्तुत करना समुचित प्रतीत होता है।

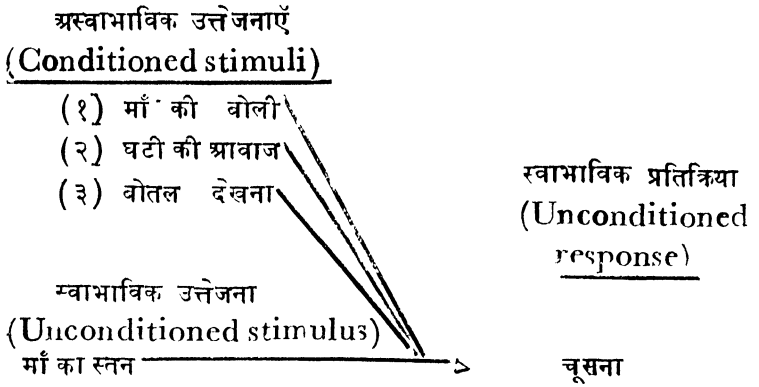
---

*"Different kinds of habits based on training, education and discipline of any sort are nothing but a long chain of conditioned reflexes."—Pavlov : I. P. Conditioned Reflexes (translated by G. V. Aurep), London, Oxford University Press, 1927; p. 386.

(१) एक पाँच वर्ष की लड़की पर प्रयोग किया गया। उसके ललाट पर एक पट्टी बाँध दी गयी। वह पट्टी इस प्रकार बँधी थी कि वहाँ से वह आसानी से आँखों पर लायी जा सकती थी और फिर शीघ्र ही ललाट पर कर दी जा सकती थी। उसके कंठ के समीप एक यंत्र (Pnematic tambour) लगा दिया गया। उस यंत्र के द्वारा लड़की के कंठ की गति की माप की गयी।

जब लड़की चुपचाप बैठी थी, तब उसके ललाट की पट्टी आँखों पर गिरा दी गयी। फलस्वरूप, उसकी आँखें पट्टी से छिप गयीं। इसके ठीक दस सेकेण्ड बाद मीठे चॉकलेट का एक छोटा टुकड़ा उसके मुँह में डाल दिया गया। जब वह चॉकलेट को निगलने का प्रयास करने लगी, तब उसके कंठ की गति की माप कर ली गयी। फिर दस सेकेण्ड बाद पट्टी आँखों से हटाकर ललाट पर कर दी गयी। तीस मिनट तक लड़की के आराम कर चुकने के बाद पुनः वह पट्टी उसकी आँखों पर गिरा दी गयी। दस सेकेण्ड बाद मीठे चॉकलेट का छोटा टुकड़ा उसके मुँह में डाल दिया गया। प्रयोग के इस तरीके को कई बार दुहराया गया। तीसरी या चौथी बार यह पाया गया कि जैसे ही आँखों पर पट्टी लायी गयी कि लड़की के कंठ में निगलने की गति शुरू हो गयी, मुँह में चॉकलेट पड़ने की उसने तनिक भी प्रतीक्षा न की। चॉकलेट की अनुपस्थिति में भी केवल आँखों पर पट्टी गिरते ही लड़की के कंठ में निगलने की गति का प्रारम्भ होना, सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन का सुन्दर उदाहरण है। स्पष्ट है कि इस उदाहरण में पट्टी अस्वाभाविक उत्तेजना है, चॉकलेट स्वाभाविक उत्तेजना तथा अस्वाभाविक उत्तेजना पाकर (आँखों पर पट्टी गिरते ही) कंठ में निगलने की गति का शुरू होना, सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया।

(२) बच्चों में चूसने की प्रतिक्रिया के लिए स्वाभाविक उत्तेजना है—माँ का स्तन। किन्तु अनेक प्रयोगों में यह पाया गया है कि बच्चे अपनी इस स्वाभाविक प्रतिक्रिया का संबंध कुछ अस्वाभाविक उत्तेजनाओं, जैसे, माँ की बोली, घंटी की आवाज़ और बोतल देखने आदि के साथ स्थापित कर लेते हैं। फल यह होता है कि माँ के स्तन के बिना भी वे इन अस्वाभाविक उत्तेजनाओं के प्रति चूसने की प्रतिक्रिया प्रकट करते है। इन स्वाभाविक उत्तेजनाओं के प्रति बच्चों की यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया ही कहलायगी। इसे इस प्रकार उपस्थित किया जा सकता है—



सम्बन्ध-प्रत्यावर्तन का स्वरूप

सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन के स्वरूप पर विचार करते समय निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है —

(१) अनुक्रम एवं काल-सम्बन्ध (Sequence & time relations)।

(२) बाधक उत्तेजनाओं की अनुपस्थिति (Absence of distracting stimuli)

(३) सामान्यीकरण तथा विशेषीकरण (Generalization and specialization)।

(४) सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया का अन्त (Extinction or elimination of conditioned response)।

अनुक्रम एवं काल-सम्बन्ध (Sequence & time relation).—

सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन के सभी उदाहरणों में यह एक विचारणीय प्रश्न है कि स्वाभाविक एवं अस्वाभाविक उत्तेजनाओं को किस क्रम के अनुसार उपस्थित किया जाय तथा इन दोनों की उपस्थिति में कितने समय का अन्तर हो। प्रश्न के पहले भाग के सम्बन्ध में पावलव ने अपने प्रयोगों के आधार पर बतलाया है कि स्वाभाविक और अस्वाभाविक (Unconditioned & Conditioned) दोनों प्रकार की उत्तेजनाएँ या तो एक ही साथ उपस्थित की जायं, या अस्वाभाविक उत्तेजना (Conditioned stimulus) पहले और स्वाभाविक उत्तेजना (Unconditioned stimulus) बाद में। प्रश्न के दूसरे भाग के सम्बन्ध में उनका कहना है कि अस्वाभाविक उत्तेजना (Conditioned stimulus) उपस्थित करने के बाद

शीघ्र ही स्वाभाविक उत्तेजना (Unconditioned stimulus) उपस्थित करना वाछनीय है ।

पशु एव मनुष्य पर किये गये अन्य प्रयोगो के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते है--

(१) अस्वाभाविक उत्तेजना (Conditioned stimulus) उपस्थित करने के बाद स्वाभाविक उत्तेजना (Unconditioned stimulus) उपस्थित करना सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन के लिए सबसे अधिक प्रभावशाली होता है।

(२) स्वाभाविक एव अस्वाभाविक उत्तेजनाओ की उपस्थिति मे एक सेकेण्ड के अल्पाश से लेकर सेकेण्ड तक के समय का अन्तर वाछनीय होता है ।

बाधक उत्तेजनाओं की अनुपस्थिति (Absence of distracting stimuli) --सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन की स्थापना हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रयोग करते समय सभी प्रकार की बाधक उत्तेजनाएँ अनुपस्थित रहे और प्रयोज्य (Subject) के सामने सिर्फ एक ही उत्तेजना उपस्थित की जाय । इस बात को दृष्टिकोण मे रखते हुए ही पावलव ने अपनी प्रयोगशाला को ध्वनि-रक्षक (Sound-proof) बनवाया था। तभी तो पावलव ने अपने प्रयोग मे सिर्फ घटी की आवाज को ही प्रयोगशाला मे पहुँचने दिया, अन्य बाहर की आवाजो के प्रयोगशाला मे पहुँचने की कोई भी गुजाइश नही रहने दी ।

सामान्यीकरण तथा विशेषीकरण (Generalization and Specialization) --सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन एक विशेष प्रकार की उत्तेजना तक ही सीमित नही रहकर उस श्रेणी की, अथवा उसके सदृश सभी उत्तेजनाओ मे फैल जाता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई कुत्ता किसी खास आवाज के प्रति लार टपकाने की प्रतिक्रिया प्रकट करना सीख लेता है, तो उसको लार टपकाने की प्रतिक्रिया उस खास आवाज तक ही सीमित न रहकर सभवत. उस तरह की दूसरी-दूसरी आवाजो के प्रति भी प्रकट होने लगती है। स्पष्ट है कि पहले तो कुत्ता एक खास आवाज को सुनकर ही लार टपकाता है, लेकिन बाद को साधारणत उस तरह की दूसरी-दूसरी आवाजो को सुनकर भी लार टपकाने लगता है । इसे ही सामान्यीकरण कहा जाता है ।

वाट्सन के द्वारा किये गये एक प्रयोग का उल्लेख कर सामान्यीकरण पर प्रकाश डालना अभीष्ट प्रतीत होता है । वाट्सन ने अपना प्रयोग एक बच्चे

पर किया। अलबर्ट (Albert) नामक एक बच्चे में उजले चूहे के प्रति भय उत्पन्न किया गया। वह पहले सिर्फ एकाएक उपस्थित की गयी आवाजों को सुनकर ही डरता था। लेकिन, बाद को वह उजले चूहे को देखकर भी डरने लगा। यह परिस्थिति इस प्रकार उत्पन्न की गयी थी—

जब अलबर्ट के सामने चूहा उपस्थित किया गया, तब वह उसके साथ खेलने लगा, भय का कोई भी चिह्न उसमें नहीं दीख पड़ा। इसके बाद पर्दे की आड़ से जोर की आवाज की गयी। अलबर्ट भयभीत होकर भाग पड़ा। फिर उसके सामने उजला चूहा उपस्थित किया गया और शीघ्र ही पर्दे की आड़ से जोर की आवाज की गयी। इस क्रिया को कई बार दुहराया गया। फल यह हुआ कि अब वह उजले चूहे को देखते ही डर जाता था, जोर की आवाज की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। जोर की आवाजों की अनुपस्थिति में भी सिर्फ उजले चूहे को देखकर अलबर्ट का डर जाना, संबंध-प्रत्यावर्त्तन का सुन्दर उदाहरण है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि उसका डरना सिर्फ उस उजले चूहे तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि वह अन्य सभी उजले चूहों, यहाँ तक कि उजले रोएँदार कोट, उजले खरगोश तथा उजली रूई के समूह से भी डरने लगा। तात्पर्य यह कि उसका डरना उजले चूहे के सदृश सभी वस्तुओं में सामान्यतः फैल गया। इसे ही उत्तेजना का सामान्यीकरण (Generalization) कहा जाता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यदि कोई प्रतिक्रिया एक उत्तेजना-विशेष तक ही सीमित नहीं रहकर उस श्रेणी की सभी उत्तेजनाओं अथवा उसके सदृश सभी उत्तेजनाओं में फैल जाय, तो यही सामान्यीकरण है। उपर्युक्त उदाहरण के द्वारा सामान्यीकरण को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

अस्वाभाविक उत्तेजना (Conditioned stimulus)	सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया (Conditioned response)
उजला चूहा	

अस्वाभाविक उत्तेजना के सदृश अन्य उत्तेजनाएँ —— > भय

(१) साधारणतः सभी उजले चूहे,
(२) उजले रोएँदार कोट,
(३) उजले खरगोश,
(४) उजली रूई के समूह।

उत्तेजना के सामान्यीकरण पर विचार कर लेने के बाद उत्तेजना के

विशेषीकरण पर प्रकाश डालना आवश्यक जान पडता है। यद्यपि ऊपर कहा जा चुका है कि सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन प्राय उत्तेजनाओं की एक श्रेणी (A class of stimuli) के साथ स्थापित होता है, न कि किसी विशिष्ट उत्तेजना के साथ, फिर भी ऐसा पाया गया है कि यदि समुचित पद्धतियो का अनुसरण किया जाय, तो किसी विशिष्ट उत्तेजना के साथ भी सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन स्थापित हो सकता है। किसी विशिष्ट उत्तेजना के साथ सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन का स्थापित होना ही उत्तेजना का विशेषीकरण कहलाता है। उदाहरणार्थ, यदि हम चाहे कि सिर्फ घटी की आवाज से ही लार टपकने की प्रतिक्रिया उत्पन्न हो, अन्य प्रकार की आवाजो से नही, तो यह आवश्यक है कि घटी की आवाज के बाद ही भोजन उपस्थित करे, अन्य प्रकार का आवाजो के बाद नही। यदि हर बार घटी की आवाज के बाद ही भोजन उपस्थित किया जायगा और अन्य आवाजो के बाद नही, तो घटी की आवाज सुनकर ही लार टपकेगी, दूसरी आवाजो को सुनकर नही। कारण यह है कि प्रयोज्य (Subject) घटी की आवाज को अन्य प्रकार की आवाजो से भिन्न कर लेगा और लार टपकाने की प्रतिक्रिया का सम्बन्ध सिर्फ घटी की आवाज के साथ ही स्थापित करेगा तथा अन्य आवाजो की उपेक्षा कर देगा। इस उदाहरण मे लार टपकाने की प्रतिक्रिया का घटी की आवाज के साथ सबध स्थापित होना ही उत्तेजना का विशेषीकरण है।

सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया का अन्त (Extinction or elimination of conditioned response) —सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन को मिटाने की सबसे अधिक उपयुक्त पद्धति यह है कि अस्वाभाविक उत्तेजना (Conditioned stimulus) को बार-बार उपस्थित किया जाय, किन्तु उसके बाद स्वाभाविक उत्तेजना (Unconditioned stimulus) को कभी भी नही उपस्थित किया जाय। उदाहरण के लिए, घटा की आवाज सुनकर लार का टपकना सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया है। इसे मिटाने का सुन्दर तरीका यह है कि घटी की आवाज के बाद भोजन नही प्रस्तुत किया जाय। इसे कई बार दुहराने पर स्वभावत लार टपकने की मात्रा मे क्रमश कमी होती जायगी और अन्ततागत्वा घटी की आवाज सुनकर लार टपकने की प्रतिक्रिया बिलकुल होगी ही नहीं। इस प्रकार प्रयोगात्मक तरीके से पूर्व स्थापित सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन को मिटाया जा सकता है, उसका अत किया जा सकता है। इसे ही मनोविज्ञान मे सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया का

प्रयोगात्मक अन्त (Experimental extinction of the conditioned response) कहा जाता है।

सम्बन्ध-प्रत्यावर्तन-सिद्धान्त की समीक्षा

प्रारम्भिक व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन के सिद्धांत का खूब स्वागत किया। उन्होंने सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन को सभी प्रकार के सीखने का मूल आधार माना। उनके दृष्टिकोण का ऐतिहासिक महत्त्व अभी भी है। किन्तु, अब यह सिद्धांत सीखने के मूल आधार के रूप में मान्य नहीं है। कारण अनेक हैं।

सीखने का वह सिद्धांत यान्त्रिक (Mechanical) है। इस सिद्धांत के अनुसार सीखने का मूल आधार अस्वाभाविक उत्तेजनाओं का स्वाभाविक उत्तेजनाओं के साथ बार-बार दुहराया जाना है। सीखनेवाले की अभिरुचि, मनोवृत्ति एवं गतिशील स्वभाव (Dynamic nature) इत्यादि पर यह सिद्धांत प्रकाश नहीं डालता। किन्तु, वास्तविकता यह है कि नियन्त्रित अवस्थाओं (Controlled conditions) में केवल अस्वाभाविक उत्तेजनाओं की स्वभाविक उत्तेजनाओं के साथ पुनरावृत्ति ही सब कुछ नहीं है, बल्कि सीखने में सीखनेवाले का भी बड़ा प्रमुख हाथ रहता है। सीखनेवाला व्यक्ति अनेक वस्तुओं में से अपनी अभिरुचि एवं मनोवृत्ति के अनुकूल किसी एक वस्तु को चुन लेता है और उसे पूर्ण रूप से ग्रहण करने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है। कहना न होगा कि वस्तु के चुनते समय वह उसी वस्तु को अपनाता है, जिससे उसे सन्तोष प्राप्त होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सीखने में सीखनेवाले व्यक्ति की अभिरुचि, मनोवृत्ति एवं उसका प्रयास तथा वस्तु का स्वभाव आदि बातें महत्त्वपूर्ण हैं। इनके सिवा, व्यावहारिक जीवन में यह देखा जाता है कि मनुष्य अधिकांश बातों को एक अनुभव में ही सीख लेता है; उसे बार-बार दुहराने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतएव, इस निष्कर्ष पर पहुँचना समुचित जान पड़ता है कि सीखना "सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया" की केवल एक लम्बी शृंखला-मात्र" (A long chain of conditioned reflexes) नहीं है, प्रत्युत यह एक ऐसा प्रयास है, जिसमें सीखनेवाला प्राणी (पशु एवं मनुष्य) संपूर्ण रूप से क्रियाशील रहता है। सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन का सिद्धांत सीखने में प्राणी के महत्त्व पर प्रकाश नहीं डालता। अतः यह सिद्धात एकांगी तथा अपर्याप्त

है। इसकी अपर्याप्तता पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध शरीर-वैज्ञानिक फ्रैंज (Franz) ने कहा है—

"अति साधारण शारीरिक क्रियाओं के अतिरिक्त और सभी सीखी गयी क्रियाओं के लिए यह एक असन्तोषजनक व्याख्या है तथा सरलतम सीखने की क्रियाओं की व्याख्या के लिए भी यह अत्यन्त अपर्याप्त है।"*

सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन की दूसरी बड़ी त्रुटि यह है कि इस प्रकार का सीखना अस्थायी होता है। जितनी शीघ्रता के साथ सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन स्थापित किया जा सकता है, उतनी ही शीघ्रता से इसे मिटाया भी जा सकता है। सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन के स्वरूप पर विचार करते हुए बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन को मिटाया जा सकता है या उसका अन्त किया जा सकता है। इससे यह स्पष्टतः लक्षित होता है कि सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन की विधि का अनुसरण कर कोई भी बात जितना जल्द सीखी जा सकती है, उतना ही जल्द मिटायी भी जा सकती है। इस प्रकार के अस्थायी ढंग के सीखने का जीवन में विशेष महत्त्व नहीं होता।

यद्यपि सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन का सिद्धांत एकांगी एवं अपर्याप्त जान पड़ता है, लेकिन फिर भी इसका व्यावहारिक महत्त्व कुछ कम नहीं। यह भी सत्य है कि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने इसे सीखने तथा आदत-निर्माण के सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया है और अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं में इसका उपयोग भी किया है। सामाजिक तथा असामान्य मनोविज्ञान (Social and Abnormal psychology) के आचार्यों ने सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन के सिद्धांत के आधार पर अनेक विषयों की व्याख्या प्रस्तुत की है। सामाजिक मनोविज्ञान के विद्वानों ने दल-निर्माण (Group-formation) की व्याख्या में सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन का महत्त्व स्वीकार किया है। असामान्य मनोविज्ञान में मनुष्य के असामान्य व्यवहारों की व्याख्या इस सिद्धांत के आधार पर की जाती है। मनुष्य के व्यक्तित्व तथा संवेगों के अभियोजन (Personality and emotional adjustment) की व्याख्या में भी इस सिद्धांत का उपयोग किया गया है। मनुष्य की बुरी आदतों को मिटाने में सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन की पद्धति अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुई है।

---

*"Except for the simplest physiological activities, it is unsatisfactory interpretation and the concept must be greatly stretched to explain even the simplest forms of learning by man." —Franz

संक्षेप में सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन पर समीक्षात्मक दृष्टिकोण से विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन का एक पद्धति (Technique) के रूप में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। पशु-मनोविज्ञान (Animal psychology) में अनुसंधान की यह अत्यन्त ही उपयोगी पद्धति मानी जाती है। जैसा कि हमलोग जानते ही हैं, पशु न तो अपनी मानसिक क्रियाओं का अन्तर्निरीक्षण (Introspection) ही कर सकता है और न शब्दों के द्वारा उन्हें व्यक्त ही कर सकता है। किन्तु सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन की पद्धति का प्रयोग कर उसकी मानसिक क्रियाओं और विशेषतः सीखने की क्रिया का निश्चित ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस पद्धति के समुचित प्रयोग द्वारा शब्द, प्रकाश एवं स्पर्श-सम्बन्धी उत्तेजनाओं में भेद करने की पशु की क्षमता का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

प्रयत्न और भूल का सिद्धान्त
(Trial and Error Theory)

प्रयत्न और भूल के सिद्धान्त के समुचित परिज्ञान के लिए इसके क्रमिक विकास के इतिहास पर दृष्टिपात करना आवश्यक जान पड़ता है। प्रयत्न और भूल का सर्वप्रथम प्रयोग अलेक्जेंडर बेन (Alexander Bain) ने अपने 'रचनात्मक बुद्धि' (Constructive intellect) के सिद्धान्त में किया था। उन्होंने यह बतलाया कि कलाकार अथवा आविष्कारक के लिए दो बातें आवश्यक होती हैं—पहली तो यह कि उसे जिन तत्त्वों का प्रयोग करना है, उनसे वह भलीभाँति परिचित हो और दूसरी यह कि वह कोई भी कार्य लक्ष्य-प्राप्ति अथवा अभिप्राय-सिद्धि की भावना से प्रेरित होकर सम्पादित करे। ऐसी अवस्था में, बेन का कहना है कि उसे प्रयत्न और भूल का सहारा लेना पड़ेगा। वस्तुतः लक्ष्य-प्राप्ति की भावना से प्रेरित होकर किये गये सभी कठिन कार्यों में प्रयत्न और भूल का सहारा लेना उपयोगी सिद्ध हुआ है।

पशु-मनोविज्ञान में इस विचार का प्रथम प्रयोग लॉयड मॉर्गन ने किया था। लॉयड मॉर्गन (Lloyd Morgan) के पहले के विचारक यह मानते थे कि मनुष्य की भाँति पशुओं में भी विचारने और तर्क करने की शक्ति होती है। उन विचारकों के इस विश्वास के मूल में पशु की बुद्धि अथवा तर्क-सम्बन्धी अनेक कहानियाँ थीं। निस्सन्देह, उन विचारकों के कथन में वैज्ञानिकता का सर्वथा अभाव था। अतएव, लॉयड मॉर्गन ने उनके विचारों

का खंडन किया और स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि पशु सीखने में बुद्धि अथवा तर्क आदि का सहारा नहीं लेता, बल्कि वह कोई भी कार्य प्रयत्न और भूल के द्वारा ही सीखता है। अभ्यास ही करते-करते पशु क्रमशः किसी कार्य में कुशलता प्राप्त कर लेता है। लॉयड मॉर्गन ने मनुष्य के सीखने में भी प्रयत्न और भूल के महत्त्व की ओर संकेत किया। उन्होंने यह बतलाया कि यद्यपि मनुष्य किसी कार्य में निपुणता प्राप्त करने के लिए कुछ नियमों और सिद्धांतों को दृष्टिकोण में रखता है, लेकिन फिर भी उसमें कार्य-कुशलता तभी आती है जब वह प्रयत्न करता है, विफल होता है और फिर-फिर प्रयत्न करता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि उन्होंने कार्य में कुशलता प्राप्त करने के लिए अभ्यास का प्रधान माना है।

लॉयड मार्गन के विचारों से थॉर्नडाइक (Thorndike) बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने शीघ्र ही (१८९८ ई०) कुछ समस्या समाधान-सम्बन्धी प्रयोगों (Problem-solving experiments) का निर्माण किया और प्रयोगशाला की नियन्त्रित अवस्थाओं (Controlled conditions) में चूहे, बिल्ली आदि पशुओं पर प्रयोग किये। अपने प्रयोग-फलों के आधार पर उन्होंने प्रयत्न और भूल का बड़े ही जोरदार शब्दों में समर्थन किया है। किन्तु, उन्होंने प्रयत्न और भूल (Trial and error) शब्द का प्रयोग नहीं करके 'प्रयत्न और आकस्मिक सफलता' (Trial and accidental success) का प्रयोग किया है तथा इसे विचारों के द्वारा सीखने (Learning by ideas) से भिन्न बतलाया है। अपने प्रयोगों के आधार पर थॉर्नडाइक ने सीखने के इस सिद्धांत का व्यापक रूप दिया है। अब हम थॉर्नडाइक द्वारा किये गये कुछ प्रयोगों के आधार पर प्रयत्न और भूल के सिद्धांत की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

उलझन-बक्स की समस्या

(Puzzle-Box Problem)

थॉर्नडाइक द्वारा किये गये प्रयोगों की चर्चा करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि समस्या किसे कहते हैं। मनोविज्ञान में समस्या से एक ऐसी नयी परिस्थिति का बोध होता है, जिससे प्राणी (पशु एवं मनुष्य) पहले से अनभिज्ञ रहता है तथा जिससे वह किसी विशेष प्रकार के लक्ष्य की प्राप्ति की कामना करता है। इस तरह की समस्या उपस्थित होने पर प्राणी प्रायः उसका समाधान प्रयत्न और भूल अथवा सूझ '(Insight)

के द्वारा करता है। थार्नडाइक का कहना है कि उलझन-बक्स की समस्या उपस्थित होने पर पशु प्रयत्न और भूल के द्वारा ही उसका समाधान करते हैं। इस सम्बन्ध में बिल्लियों पर किये गये उनके प्रयोग बड़े प्रसिद्ध हैं।

एक भूखी बिल्ली को उलझन-बक्स में छोड़ दिया गया। उसका दरवाजा इस प्रकार बना हुआ था कि भीतर के एक बटन को दबाने से वह खुल सकता था। उलझन-बक्स के बाहर मछली का एक टुकड़ा रख दिया गया। बिल्ली के सामने समस्या यह थी कि वह उलझन-बक्स से बाहर निकलकर मछली खा ले और इस प्रकार अपनी भूख मिटाये। उलझन-बक्स में बन्द होते ही बिल्ली बाहर आने के लिए बेचैन हो गयी तथा भूख और बेचैनी से प्रेरित होकर उलझन-बक्स के दरवाजे को खोलने के निमित्त उसमें इधर-उधर उछल-कूद मचाने लगी। वह उलझन-बक्स के भिन्न-भिन्न भागों को दबाती रही और उससे बाहर निकलने का प्रयास करती रही। उसके इन व्यर्थ प्रयासों के सिलसिले में संयोगवश उसका पंजा बटन के ऊपर पड़ गया और उलझन-बक्स का दरवाजा खुल गया। बिल्ली उलझन-बक्स से बाहर निकल आया और मछली खाकर उसने अपनी भूख मिटायी। इस प्रयोग को उस बिल्ली पर लगातार कई दिनों तक दुहराया गया। इसका फल यह हुआ कि दरवाजा खोलने में व्यर्थ प्रयासों (Random movements) की संख्या क्रमशः कम होती गयी। अन्ततोगत्वा बिना व्यर्थ प्रयास अथवा किसी गलती के ही बिलकुल थोड़े समय में उलझन-बक्स का दरवाजा खोलना, बिल्ली ने सीख लिया। बिल्ली के इस सीखने की व्याख्या थार्नडाइक ने प्रयत्न और भूल के आधार पर की है। उनका कहना है कि बिल्ली ने बार-बार प्रयत्न किया, अनेक भूलें हुईं, भूलों की संख्या धीरे-धीरे कम होती गयी और तब आखिर में उसने दरवाजा खोलना सीखा। थार्नडाइक के इस प्रयोग का विश्लेषण करने पर इसमें निम्नांकित बातें मिलती हैं--

(१) प्रारम्भ में व्यर्थ प्रयास अधिक हुए।

(२) संयोगवश सही प्रतिक्रिया हो गयी।

(३) एक बार सही प्रतिक्रिया हो जाने पर आगे के प्रत्येक प्रयत्न में व्यर्थ प्रयासों की संख्या क्रमशः कम होती गयी और सही प्रतिक्रिया की संभावना बढ़ती गयी।

(४) आगे के प्रत्येक प्रयत्न (Trial) में क्रमशः कम समय में ही सही प्रतिक्रिया का सीखना सम्पन्न होता गया।

भूलभुलैया सीखने की समस्या
(Maze learning Problem)

थौर्नडाइक ने चूहों पर भी कई प्रयोग किये। उन प्रयोगों में थौर्नडाइक के चूहों के सामने समस्या यह थी कि वे सही मार्ग से दौड़कर भूलभुलैया के मध्य में रखी गयी भोजन की सामग्री को खा लें। थौर्नडाइक के इस प्रकार के एक प्रयोग का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। एक भूल-भुलैया के मध्य में पनीर का टुकड़ा रख दिया गया और एक भूखे चूहे को उस भूलभुलैया के प्रवेश-द्वार पर छोड़ दिया गया। उसमें अनेक अन्ध-पथ (Blind alleys) भी थे, जिनसे होकर जाने से रास्ते में रुकावटें मिलती थीं। फलतः चूहे को फिर-फिर प्रवेश-द्वार पर लौट आना पड़ता था। चूहा बार-बार यह प्रयत्न करता था कि वह भूलभुलैया के मध्य में पहुँचकर पनीर को खा ले। किन्तु प्रत्येक बार उसे असफलता ही हाथ लगती थी। कारण, वह कोई अन्ध-पथ पकड़कर गन्तव्य स्थान पर पहुँचने की चेष्टा करता था। इस प्रकार वह बहुत देर तक प्रयास करता रहा। इन प्रयासों के सिलसिले में उसे सयोगवश सही मार्ग मिल गया और वह भूलभुलैया के मध्य में पनीर के समीप पहुंच गया तथा पनीर के टुकड़े को खाकर उसने अपनी भूख मिटायी। इस प्रयोग को उस चूहे पर लगातार कई दिनों तक दुहराया गया। इसका फल यह हुआ कि प्रत्येक प्रयत्न में गलतियों की संख्या कम होती गयी, अर्थात्, चूहा अन्ध-पथों का परित्याग करता गया तथा सही प्रतिक्रिया की सम्भावना बढ़ती गयी, अर्थात्, चूहा सही मार्ग को अपनाता गया। इसके सिवा, प्रत्येक प्रयत्न में क्रमशः कम समय में ही चूहे ने सही मार्ग पकड़कर भूलभुलैया के मध्य भाग में पहुँचकर पनीर खाना सीख लिया। इस प्रकार के कई प्रयत्नों के बाद आखिर में बिना गलती के ही थोड़े समय के भीतर सही मार्ग अपनाकर पनीर के नजदीक तक पहुँचना, चूहे ने सीख लिया। चूहे के इस सीखने की व्याख्या थौर्नडाइक ने प्रयत्न और भूल-विधि के आधार पर की है। थौर्नडाइक के इस प्रयोग का विश्लेषण करने पर भी ठीक वे ही चार बातें मिलेंगी, जो बिल्ली के ऊपर किये गये उनके प्रयोग के सम्बन्ध में ऊपर बतलायी जा चुकी हैं।

उपर्युक्त प्रयोग के आधार पर थौर्नडाइक ने यह पाया कि पशु गलत प्रतिक्रियाओं का क्रमशः परित्याग करते जाते हैं तथा सही प्रतिक्रियाओं को

अपनाते जाते हैं।* अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसा क्यों होता है ? इसके उत्तर में थार्नडाइक ने 'प्रभाव-नियम' (The law of effect) को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि गलत प्रतिक्रियाओं से प्राणी की आवश्यकताओं की पूर्त्ति नहीं होती तथा उसे असन्तोष होता है। अतः वह उन्हें छोड देता है। इसके विपरीत, सही प्रतिक्रियाओं से उनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति होती है तथा सन्तोष प्राप्त होता है। अतएव, वह उन्हें अपना लेता है। इसका विस्तृत विवेचन पहले ही 'प्रभाव-नियम' के प्रसंग में किया जा चुका है। अतएव, यहाँ इस सम्बन्ध में कुछ अधिक कहना अभीष्ट नहीं है।

इन प्रयोगों से यह भी स्पष्ट झलकता है कि एक बार सही प्रतिक्रिया मिल जाने से ही किसी कार्य-विशेष में निपुणता नहीं प्राप्त हो जाती, बल्कि उसकी पुनरावृत्ति (Repetition) की आवश्यकता होती है। बार-बार दुहराने से ही कार्य-कुशलता प्राप्त होती है। इसकी पूर्ण व्याख्या 'अभ्यास-नियम' (The law of exercise) के प्रसंग में की जा चुकी है।

'प्रयत्न और भूल'-विधि सिर्फ पशुओं के सीखने में ही नहीं पायी जाती, वरन् मनुष्य भी प्रयत्न और भूल द्वारा ही अनेक समस्याओं का समाधान करना सीखते हैं। अनेक प्रयोगों में यह पाया गया है कि भूलभुलैया एवं उलझन-बक्स की समस्याओं के समाधान के सीखने में मनुष्य भी पशु की ही भाँति प्रयत्न और भूल का सहारा लेते हैं।

मनुष्य का भूलभुलैया सीखना
(Human maze learning)

मनुष्य के सीखने की प्रणाली को जानने के लिए कई प्रकार के भूल-भुलैयों का निर्माण किया गया है। इन भूलभुलैयों के सहारे मनुष्य के सीखने की परीक्षा की गयी है। भूलभुलैया-सम्बन्धी प्रयोगों में प्रायः प्रयोज्य (Subject) की आँखें बन्द रखी जाती हैं। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य का सीखना भी बहुत-कुछ चूहे के भूलभुलैया सीखने के समान ही होता है। दूसरे शब्दों में, शिशु एवं मनुष्य दोनों ही प्रयत्न और भूल के द्वारा सीखते हैं।

चूहे के समान ही भूल-भुलैया का प्रयोग मनुष्य के सीखने में भी किया गया है। जब कुछ विद्यार्थियों ने भूलभुलैया में चूहे को सूझ-रहित व्यर्थ

*Wrong responses are 'stamped out' and right ones are 'stamped in.'

प्रयास करते हुए देखा, तब उन्हें आश्चर्य हुआ। किन्तु, जब उनके सामने ठीक वैसी ही भूलभुलैया की समस्या प्रस्तुत की गयी तब उन्होंने भी चूहे की ही तरह स्पष्टतः प्रयत्न और भूल से काम लिया। प्रारम्भ में उनसे भी अनेक गलतियाँ हुईं, परन्तु अभ्यास के साथ-साथ क्रमशः गलतियों की संख्या कम होने लगी और समय भी कम लगने लगा। अन्ततोगत्वा कुछ प्रयत्नों के बाद उन्होंने भूलभुलैया की समस्या को सुलझाना सीख लिया। चूहे और उन विद्यार्थियों के भूलभुलैया सीखने की तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि दोनों के सीखने में प्रयत्नों की संख्या तथा समय में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जाता। इस तरह के सीखने में कभी-कभी चूहे आगे बढ़ जाते हैं तो कभी-कभी विद्यार्थी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पशु एवं मनुष्य (चूहे और विद्यार्थी), दोनों के सीखने में कोई मौलिक अन्तर नहीं है और जो कुछ अन्तर की गुंजाइश जान पड़ती है, वह भी इसीलिए कि किसी भी सीखी जानेवाली परिस्थिति के कुछ पहलू तो मानव के अनुकूल होते हैं, और कुछ पशु के। उनमें से प्रधान ये हैं:—

मनुष्य पशु की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् एवं तर्कशील होता है। उसमें भाषा की अपूर्व क्षमता पायी जाती है, जिसका पशु में नितान्त अभाव रहता है। अपनी बुद्धि, तर्कशीलता एवं भाषा की योग्यता का प्रयोग कर मनुष्य पशु की अपेक्षा किसी परिस्थिति को समझने में अधिक सफल हो सकता है। भूलभुलैया के प्रयोग से स्पष्ट है कि भूलभुलैया सीखने की प्रेरणा पशु में मनुष्य की अपेक्षा अधिक होती है। भूलभुलैया में दौड़नेवाला भूखा पशु भूलभुलैया के मध्य में पहुँचकर भोजन पा लेना जीवन-रक्षा के लिए अति आवश्यक समझता है। मनुष्य को भूलभुलैया सीखते समय ऐसी प्रबल प्रेरणा नहीं होती। पशु के पक्ष में दूसरी प्रधान बात यह है कि मनुष्य की अपेक्षा उसका ध्यान प्रस्तुत समस्या पर अधिक केन्द्रीभूत रहता है। उसका ध्यान वातावरण की बाधक उत्तेजनाओं (Distracting Stimuli) पर अधिक नहीं जाता। मनुष्य सीखते समय प्रायः प्रस्तुत समस्या से ऊबकर दिवा-स्वप्नों (Day-dreams) में विचरण करने लगता है। तीसरी बात यह है कि पशु विराम-विधि (Spaced method) से सीखता है और मनुष्य अविराम विधि (Massed method) द्वारा सीखता है। पशु प्रायः भूलभुलैया सीखने में एक दिन एक ही प्रयत्न (Trial) करता है और इस

प्रकार के कई दिनों के प्रयत्नों के बाद उसे सीखता है। किन्तु मनुष्य प्रायः एक ही दिन में बार-बार प्रयत्न कर सीख लेता है। आगे यह बतलाया जायगा कि सीखने की विराम-विधि अविराम-विधि से कैसे श्रेष्ठतर होती है।

उलझन-बक्स की समस्याएँ तथा अन्य कठिन कार्य

भूलभुलैया की तरह ही उलझन-बक्स की समस्याओं को सीखने में भी मनुष्य प्रयत्न और भूल का सहारा लेता है। इतना ही नहीं, अन्य कठिन एवं जटिल कार्यों में निपुणता प्राप्त करने के लिए भी उसे इसी विधि का सहारा लेना पड़ता है। उदाहरण के रूप में टाइप करना सीखना, साइकिल चालाना सीखना तथा हारमोनियम या सितार बजाना सीखना आदि कार्य लिये जा सकते हैं। इन कार्यों में कुशलता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न और भूल का अनुसरण करना अति आवश्यक है। यदि किसी को साइकिल पर सवार व्यक्ति का चित्र दिखला दिया जाय अथवा वह वास्तव में साइकिल पर चढ़कर जाते हुए किसी व्यक्ति को देख ले, तोभी उसे एकाएक साइकिल चलाना नहीं आ सकता। उसे स्वयं कई बार प्रयत्न करना पड़ेगा, अनेक भूलें होंगी, बार-बार साइकिल से जमीन पर गिरेगा और तब कई प्रयत्नों के बाद ही उसे निपुणता प्राप्त हो सकेगी। यही बात टाइप करना तथा हारमोनियम या सितार बजाना आदि सीखने में भी लागू होगी। संक्षेप में, मनुष्य अपने प्रतिदिन के जीवन में अधिकांश कार्यों को प्रयत्न और भूल के द्वारा ही सीखता है।

'प्रयत्न और भूल' सिद्धान्त की समीक्षा

प्रयत्न और भूल के सम्बन्ध में कई प्रकार की गलतफहमियाँ हैं। सबसे प्रधान गलफहमी यह है कि प्रयत्न और भूल का सिद्धांत यह बतलाता है कि पशु अथवा मनुष्य किसी नयी समस्या के सीखने में परिस्थिति को समझने का प्रयास किये बिना व्यर्थ प्रयत्न करना प्रारम्भ कर देता है। वस्तुतः यह धारण मान्य नहीं हो सकती। कई मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से ऐसा ज्ञात होता है कि पशु अथवा मानव नवीन परिस्थिति की वस्तुस्थिति को समझते हुए ही उस परिस्थिति में अपना व्यवहार प्रकट करता है। ऐडम्स (Adams) ने थौर्नडाइक के प्रयोग को दुहराने पर यह पाया कि पशु किसी नयी परिस्थिति में उस परिस्थिति की कुछ निश्चित वस्तुओं को ध्यान में रखकर ही अपना व्यवहार प्रकट करता है। तात्पर्य यह है कि उसके व्यवहार

निरर्थक नही होते, वरन् सार्थक एव निश्चित वस्तुओ से सम्बन्धित होते है। हाँ, इतनी बात अवश्य है कि लक्ष्य (Goal) प्राप्त होने के पहले कई प्रकार के व्यवहार करने पडते है। जैसे-जैसे अभ्यास बढता जाता है, वैसे-वैसे इन विभिन्न प्रकार के परिवर्त्तनशील (Variable) व्यवहारो की सख्या कम होती जाती है। और, अन्त मे इस प्रकार के व्यवहार बिलकुल कम हो जाते है तथा पशु अथवा मानव सही प्रतिक्रिया सीख जाता है।

'प्रयत्न और भूल' सिद्धात के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि यह सिद्धात इस बात का वर्णन करता है कि पशु अथवा मानव किस प्रकार सीखता है, यह नही बतलाता है कि वह क्यो सीखता है, अर्थात् उसके सीखने के लिए कौन-कौन से तत्त्व आवश्यक है। सक्षेप मे, यह सिद्धात सीखने के ढग का वर्णन-मात्र करता है, सीखने की पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत नही करता। इसीलिए यह वर्णनात्मक (Descriptive) कहा गया है, न कि व्याख्यात्मक (Explanatory)।

अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ का सिद्धान्त
(The Theory of insight)

अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ के सिद्धात का प्रतिपादन जर्मनी के प्रसिद्ध जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक केहलर (Kohler) ने किया था। केहलर ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि पशु अथवा मनुष्य 'सूझ' के द्वारा सीखता है, न कि 'प्रयत्न और भूल' के द्वारा। उन्होने 'सूझ' के द्वारा सीखने को 'प्रयत्न और भूल' के द्वारा सीखने से भिन्न बतलाया है। 'सूझ' की व्याख्या करते हुए उन्होने स्वय कहा कि सूझ एक ऐसी प्रतिक्रिया है, जो समस्त परिस्थिति के निरीक्षण के फलस्वरूप एकाएक उत्पन्न होती है तथा लक्ष्य की प्राप्ति तक अविराम गति से चलती रहती है। सूझ की इस परिभाषा का विश्लेषण करने पर स्पष्टत इसमे तीन बाते दृष्टिगत होती है—

(१) सीखनेवाले के समक्ष परिस्थिति स्पष्ट रूप से वर्त्तमान रहे, जिससे वह उस परिस्थिति के सभी पहलुओ के पारस्परिक सम्बन्ध को भली-भाँति समझ सके। परिस्थिति के इस विशेष प्रकार के निरीक्षण के फलस्वरूप ही सीखनेवाले मे सूझ उत्पन्न होती है।

(२) सूझ एक ऐसी प्रतिक्रिया है, जो एकाएक उत्पन्न होती है।

(३) एक बार उत्पन्न होने के बाद सूझ की प्रतिक्रिया तबतक चलती रहती है जबतक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती।

सूझ की उपर्युक्त परिभाषा में यदि पहली बात को आवश्यक मान लिया जाय, जैसा कि केहलर ने कहा है, तो फिर सूझ के द्वारा सीखना दृष्टि-संवेदनाओं तक ही सीमित रह जायगा। यह सिर्फ सीखने के उन्हीं व्यवहारों की व्याख्या में समर्थ हो सकेगा, जो दृष्टि-संवेदनाओं से उत्पन्न होते हैं। अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या सूझ, जिसके आधार पर केहलर ने पशु अथवा मनुष्य में सभी प्रकार के सीखने की व्याख्या की है, इतनी संकुचित एवं सीमित हो सकती है? उत्तर होगा नहीं। वास्तव में सूझ की यह विशेषता मान्य नहीं हो सकती। अस्तु, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सूझ एक ऐसी प्रतिक्रिया है, जो एकाएक उत्पन्न होती है और तबतक चलती रहती है जबतक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती।

सूझपूर्ण सीखने (Insightful learning) की व्याख्या करते हुए यर्कस् (Yerks) ने उसमें निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है—

(१) समस्यापूर्ण परिस्थिति की छानबीन—सीखनेवाला सर्वप्रथम परिस्थिति के सारे पहलुओं पर गौर करता तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध को समझने की चेष्टा करता है।

(२) हिचकिचाहट, विश्राम तथा एकाग्रचित्त होकर ध्यान देने की मनोवृत्ति—इस अवस्था में सीखनेवाला हिचकिचाहट प्रकट करता है, उसे विश्राम अच्छा लगता है तथा वह एकाग्रचित्त होकर समस्यापूर्ण परिस्थिति पर ध्यान देता है।

(३) उपयुक्त प्रतिक्रिया प्रकट करने की चेष्टा—इस अवस्था में सीखनेवाला उपयुक्त प्रतिक्रिया (Adequate response) प्रकट करने का प्रयास करता है।

(४) पहली प्रतिक्रिया के अनुपयुक्त सिद्ध होने पर दूसरी-दूसरी प्रतिक्रियाएँ—यदि पहली प्रतिक्रिया अनुपयुक्त सिद्ध होती है, तो सीखनेवाला दूसरी तरह की प्रतिक्रियाएँ प्रकट करता है।

(५) लक्ष्य पर निरन्तर ध्यान तथा उससे उत्पन्न प्रेरणा—सीखनेवाला इस बात के लिए सदैव सतर्क रहता है कि उसका अन्तिम अभिप्राय अथवा लक्ष्य (Purpose or Goal) क्या है? लक्ष्य की ओर निरन्तर

ध्यान रहने से उपयुक्त प्रतिक्रिया प्रकट करने की प्रेरणा मिलती है।

(६) एकाएक उपयुक्त प्रतिक्रिया का प्रकट होना—लक्ष्य को दृष्टि-कोण मे रखकर प्रयत्न करते-करते एकाएक सीखनेवाले को सही प्रतिक्रिया सूझ जाती है और वह निश्चित रूप से सही प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करता है।

(७) उपयुक्त प्रतिक्रिया की पुनरावृत्ति—एक बार उपयुक्त प्रतिक्रिया हो जाने पर सीखनेवाला उसे बार-बार दुहराता है।

(८) समस्यापूर्ण परिस्थिति (Problematic situation) के आवश्यक पहलुओ पर ध्यान देने तथा अनावश्यक पहलुओ को त्याग देने की योग्यता—सूझपूर्ण सीखने की इस अन्तिम विशेषता का तात्पर्य यह है कि सीखनेवाले मे ऐसी क्षमता आ जाती है कि वह परिस्थिति के आवश्यक पहलुओ को अनावश्यक पहलुओ से अलग कर लेता है।

केहलर के प्रयोग
(Experiments of Kohler)

सूझ के स्वरूप (Nature of insight) पर प्रकाश डालने के उपरान्त केहलर के द्वारा किये गये प्रयोग उल्लेख्य जान पडते है। केहलर ने अपने प्रयोगो के आधार पर ही 'सूझ' के सिद्धात का प्रतिपादन किया था। उन्होने अपने प्रयोग वनमानुषो पर किये। प्रयोग करते समय उन्होने परिस्थिति को यथासम्भव स्वाभाविक ही रखा। उन्होने वनमानुपो के सामने कुछ समस्याएँ प्रस्तुत की। वनमानुपो ने जिस प्रकार समस्याओ का समाधान किया, उसकी व्याख्या करते हुए केहलर ने बतलाया है कि वन-मानुषो ने बुद्धि अथवा सूझ का सहारा लिया और तभी समस्याओ का समाधान सम्भव हो सका।

एक भूखे वनमानुष को पिजडे मे बन्द कर दिया गया। पिजडे के बाहर एक केला इतनी दूरी पर रखा गया कि वनमानुप उसे हाथ अथवा पैरो खीचकर न पा सके। पिजडा इस प्रकार का बना हुआ था कि वनमानुप पिजडे के भीतर से बाहर रखे हुए केले को आसानी से देख सकता था। पिजडे के एक कोने मे एक डडा रख दिया गया। उस वनमानुष के सामने समस्या यह थी कि वह केले को किस प्रकार खीचकर खा ले। वनमानुष ने शुरू मे कई बार पिजडे के छडो से बाहर अपने हाथ-पैर फैलाकर केला खीचने की चेष्टा की, किन्तु हर बार वह असफल हुआ। तब वह

कुछ क्षणों तक चुपचाप बैठा रहा। फिर एकाएक उसने डंडा उठाकर केले को खींच लिया तथा उसे खा गया।

दूसरे प्रयोग में केहलर ने परिस्थिति में थोड़ा परिवर्त्तन कर दिया। अब एक डंडे के बदले पिंजड़े में दो डंडे रख दिये गये। प्रयोग उसी वनमानुष पर किया गया, जिसने बाहर रखे हुए केले को एक डंडे से खींचकर खाना सीख लिया था। केला पिंजड़े के बाहर इतनी दूरी पर रखा गया कि वह अकेले एक डंडे से नहीं खींचा जा सकता था, लेकिन दोनों डंडों को आपस में मिला देने से वह आसानी से खींचा जा सकता था। वे डंडे इस प्रकार के बने हुए थे कि एक को दूसरे में जुटाकर आसानी से एक बड़ा डंडा बनाया जा सकता था। वनमानुष के सामने इस बार समस्या यह थी कि किस प्रकार वह दोनों डंडों को आपस में जोड़कर पिंजड़े के बाहर रखे हुए केले को खींचकर खा ले। यह प्रयोग सुल्तान नामक एक तीव्रबुद्धि वनमानुष पर किया गया था।

सुल्तान ने सर्वप्रथम एक डंडे से केला खींचने की चेष्टा की, किन्तु अपने इस प्रयास में वह बिलकुल विफल रहा। फिर दूसरे डंडे से केला खींचना चाहा, किन्तु इसमें भी उसे सफलता न मिली। इस प्रकार कुछ देर तक विफल प्रयास करने के बाद सुल्तान ने निराश होकर प्रयास छोड़ दिया। अब वह दोनों डंडों के साथ खेलने लगा। खेलते-खेलते उसने एक डंडे को दाहिने हाथ में ले लिया और दूसरे को बायें हाथ में तथा दोनों के छोरों को वह पास-पास ले आया। एकाएक दोनों डंडे आपस में जुट गये। उस नये जुटे हुए बड़े डंडे से वह पिंजड़े के बाहर रखे हुए केले को अपनी ओर खींचने लगा। ये डंडे कुछ ढिलाई से जुटे हुए थे, अतएव, अलग-अलग होकर जमीन पर गिर पड़े। सुल्तान ने इन्हें फिर झट आपस में जोड़ दिया तथा पिंजड़े के बाहर रखे हुए केले को अपने पास खींच लिया। दूसरे दिन भी प्रयोग किये जाने पर सुल्तान ने कुछ ही व्यर्थ प्रयासों (Useless efforts) के बाद दोनों डंडों को आपस में मिलाकर केले को अपने पास खींच लिया।

इस प्रयोग के आधार पर केहलर ने सूझ के सिद्धांत का समर्थन करते हुए कहा है कि दोनों डंडों को आपस में जोड़कर वनमानुष का केला खींचना उसकी सूझ का परिचायक है। जब वनमानुष ने दोनों डंडों को जोड़कर उन्हें एक बड़ा डंडा बना लिया, तभी वह पिंजड़े के बाहर रखे हुए केले को पा सका। दूसरे शब्दों में, दो छोटे-छोटे डंडों को एक इकाई (Single

unit) के रूप मे ग्रहण करना, वनमानुष की सूझ का द्योतक है।

केहलर ने अपने अन्य प्रयोगो मे डडो के बदले बक्सो की समस्याओ का उपयोग किया। एक प्रयोग मे वनमानुष भूखा रखा गया। उसके पिजडे के ऊपर से कुछ केले लटका दिये गये। जहाँ केले लटक रहे थे, वहाँ से थोडी दूर पर पिजडे मे एक बक्स रख दिया गया। वनमानुष के सामने समस्या यह थी कि वह किस प्रकार छत से लटकते हुए केले को तोडकर खा ले। केले को तोडने का प्रयास उसने शुरू किया। पिजडे मे पडे हुए बक्स की ओर उसने बिलकुल ध्यान नही दिया। केले को पाने के लिए वह बार-बार ऊपर की ओर उछलता था तथा दीवार पर चढकर केले को तोडने की चेष्टा करता था। इस प्रकार वनमानुष बहुत विफल प्रयास करता रहा। अन्ततोगत्वा प्रयोगकर्त्ता ने बक्स को छत मे लटकते हुए केले के ठीक नीचे खीच लिया, उसपर चढ गया तथा केले को उसने छू लिया। फिर वह बक्स के नीचे उतर गया तथा उसे पहले की भाँति ही कुछ दूरी पर रख दिया। अब वनमानुष यह समझ गया कि केले को किस भाँति तोडा जा सकता है। फलत उसने बक्स को केले के नीचे खीच लिया तथा उसपर चढकर केले को तोड लिया। इस प्रयोग के सम्बन्ध मे केहलर का कहना है कि जैसे ही वनमानुष ने सम्पूर्ण परिस्थिति को समझ लिया, समस्या का समाधान उसके लिए आसान हो गया। केले, बक्स तथा इन दोनो के बीच की दूरी की सूझ के ही फलस्वरूप वनमानुष केले को तोड सका।

इस प्रयोग के बाद केहलर ने वनमानुष के सामने कई बक्स इधर-उधर बिखेर दिये। केले भी इतनी ऊँचाई पर लटक रहे थे कि उन्हे तोडने के लिए सभी बक्सो को एक-पर-एक रखकर उन्हे ऊँचा बनाना आवश्यक था। पहले तो वनमानुष केले को पाने के लिए अपने पैरो पर उछलने लगा। फिर वह चारो ओर गौर से देखने लगा। कुछ बक्सो को इधर-उधर पडे हुए देखकर उसने एक बक्स को खीच लिया, उसे लटकते हुए केले के समीप लाया, उसपर चढ गया तथा केले को पाने के लिए अपने हाथो को फैलाया। केले इतनी ऊँचाई पर थे कि वनमानुष अपने प्रयास मे असफल रहा। तब वह दूसरा बक्स उठा लाया और पहले बक्स के ऊपर रख दिया। फिर भी केले के नजदीक न पहुँच सका। अन्तत. जब उसने तीन बक्से एक-एक करके रखे और उनके ऊपर चढकर केले को पाने की चेष्टा की, तब वह सफल हुआ, अर्थात् केले को तोडकर अपनी भूख मिटा सका।

इन प्रयोगो के आधार पर केहलर का कहना है कि पशु भी 'अन्तर्दृष्टि' अथवा 'सूझ' के द्वारा ही सीखता है न कि 'प्रयत्न और भूल' के द्वारा। इन प्रयोगो के सम्बन्ध मे उनका कहना है कि वनमानुष केले को तोडने मे तभी सफल हो सका, जब उसने सम्पूर्ण परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लिया। सम्पूर्ण परिस्थिति से उनका तात्पर्य यह है कि जब वनमानुष ने जमीन की सतह, बक्स और लटकते हुए केले—इन तीनो के परस्पर-सम्बन्ध को समझ लिया, तभी वह केले को तोडने मे सफल हो सका। यदि उसे जमीन की सतह और लटकते हुए केले के बीच की दूरी का ज्ञान न होता, तो वह अपने प्रयास मे कभी भी सफल नही होता। अतएव, जेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिको के अनुसार अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ किसी भी परिस्थिति के सभी पहलुओ के परस्पर-सम्बन्ध जानने मे निहित रहती है।

बच्चो एव प्रौढ व्यक्तियों के सीखने में अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ का स्थान

बच्चो पर किये गये प्रयोगो के आधार पर कहा जा सकता है कि बच्चो का सीखना बहुत कुछ पशुओ के सीखने के समान ही होता है। अलपर्ट (Alpert) ने कुछ तीन-चार वर्ष के बच्चो पर कई प्रयोग किये। प्रयोग की परिस्थिति बहुत-कुछ केहलर की प्रयोगात्मक परिस्थिति के ही समान रखी गई। अपने इन प्रयोगो के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसी समस्या के उपस्थित होने पर बच्चे पहले तो 'प्रयत्न और भूल' का सहारा लेते है, किन्तु बाद मे उनके अन्दर 'सूझ' आती है और तभी समस्या का समाधान भी सम्भव हो पाता है। सूझ के स्वभाव पर प्रकाश डालते हुए उन्होने बतलाया है कि सूझ आंशिक (Partial) अथवा पूर्ण (Complete) हो सकती है तथा आकस्मिक (Sudden) या क्रमिक (Gradual) भी हो सकती है।

लिण्डले (Lindley) ने प्रौढ व्यक्तियो (Adult human beings) पर भूलभुलैया-सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये। उन्होने भाषा, गणित तर्क तथा यन्त्र-सम्बन्धी कई प्रकार के भूलभुलैयो का निर्माण किया। उन भूलभुलैयो की सहायता से प्रौढ व्यक्तियो के समस्या-समाधान (Problem-solution) की प्रणाली को जाँचने की चेष्टा की। अपने प्रयोगो के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रौढ व्यक्ति अपनी गलतियों से बहुत शीघ्र लाभ उठाते है, अर्थात्, वे गलतियो का शीघ्र ही परित्याग कर देते है तथा सम्पूर्ण

परिस्थिति को समझकर प्रतिक्रिया प्रकट करते है। संक्षेप में, प्रौढ़ व्यक्तियों में बच्चों की अपेक्षा सूझ अधिक पाई जाती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूझ बच्चों की अपेक्षा पशुओं में कुछ कम होती है तथा प्रौढ़ व्यक्तियों के सीखने में पशु एवं बच्चों की अपेक्षा सूझ अधिक पाई जाती है। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रौढ़ व्यक्तियों के सीखने मे भी 'सूझ' प्रकट होने के पहले प्राय. 'प्रयत्न और भूल' की क्रिया होता है। पशु एवं बच्चों के सम्बन्ध मे भी यही बात कही जा सकती है।

सीखने में 'प्रयत्न और भूल' तथा 'सूझ' का तुलनात्मक महत्त्व

यदि 'प्रयत्न और भूल' का यह अर्थ लिया जाय कि किसी नयी परिस्थिति के उपस्थित होने पर भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाओं के प्रकट करने के बाद ही सफल प्रतिक्रिया होती है, तो हमे यह मानना पड़ेगा कि प्रत्येक नयी समस्या के समाधान में 'प्रयत्न और भूल' की क्रिया निहित रहती है। इसके विपरीत, यदि हम 'प्रयत्न और भूल' को बिलकुल निरर्थक प्रयास मान ले, तो ऐसा करना गलत होगा; क्योंकि प्रयोगात्मक फल (Experimental results) इसका समर्थन नही करते। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर यह कहना समुचित जान पड़ता है कि जब कठिन समस्या प्रस्तुत होती है, तब पशु एवं मनुष्य समाधान पाने के पहले अनेक गलत प्रतिक्रियाएं प्रकट करते है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शुरू से ही पशु अथवा मनुष्य परिस्थिति पर ध्यान रखते हुए प्रतिक्रिया प्रकट करते है। उनकी प्रतिक्रिया गलत होती है, किन्तु बिलकुल निरर्थक नहीं। उनकी प्रत्येक प्रतिक्रिया का सम्बन्ध समस्या-समाधान (Problem-solution) से रहता है।

'अन्तर्दृष्टि' अथवा 'सूझ' शब्द की आलोचना करते हुए प्रायः कहा जाता है कि यह शब्द वर्णनात्मक है, न कि व्याख्यात्मक। तात्पर्य यह कि 'सूझ' सीखने की प्रणाली का वर्णन-मात्र करती है, उसकी व्याख्या प्रस्तुत नहीं करती। स्पष्टतः 'सूझ' शब्द की परिभाषा दो तरह से दी जा सकती है। एक तो यह कि यह शब्द विशेष प्रकार के व्यवहार का वर्णन-मात्र प्रस्तुत करता है और दूसरे, यह कि इससे सीखनेवाले का व्यवहार प्रभावित और नियंत्रित होता है। दूसरे शब्दों में, 'सूझ' सीखने के तरीके का वर्णन करती है, अथवा यह एक सिद्धांत है, जिसके आधार पर सीखने की व्याख्या की

जा सकती है। 'सूझ' के पहले अर्थ को स्वीकार करने में शायद किसी को आपत्ति नहीं। किन्तु दूसरा अर्थ बहुतों को मान्य नहीं। वस्तुतः जस्टॉल्ट-वादी मनोवैज्ञानिकों के अतिरिक्त दूसरे मनोवैज्ञानिक 'सूझ' को व्याख्यात्मक सिद्धांत के रूप में ग्रहण नहीं करते। जेस्टॉल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने भी 'सूझ' का प्रयोग दोनों अर्थों में किया है। कभी तो उन्होंने इसे एक वर्णनात्मक शब्द-मात्र ही माना है और कभी इसका प्रयोग व्याख्यात्मक सिद्धांत के रूप में भी किया है। दोनों अर्थों का यह मिश्रण ही इस शब्द को स्पष्ट नहीं रहने देता तथा इसे आपत्तिजनक बना देता है।

वर्दीमेयर एवं केहलर (Wertheimer and Kohler) की परंपरा का अनुसरण करते हुए डंकर (Dunker) ने यह पाया कि सूझ को 'सर्वस्व-या-कुछ नहीं' (All-or-none) के सिद्धांत में नहीं बाँधा जा सकता। इसे 'हाँ या नहीं' के द्वारा द्योतित नहीं किया जा सकता। कारण, यह क्रमिक (Gradual) होती है तथा इसकी अनेक श्रेणियाँ (Grades) सम्भव है। यह क्रमिक इसलिए मानी गई है कि किसी भी कठिन समस्या का समाधान, जिसे 'सूझ' के द्वारा द्योतित किया जाता है, कई प्रयत्नों के बाद आता है। इन सभी प्रयत्नों में कुछ-न-कुछ 'सूझ' वर्त्तमान रहती है। जब प्रयोज्य (Subject) के सामने कोई समस्या उपस्थित की जाती है, तब वह समस्त परिस्थिति एवं लक्ष्य का विश्लेषण करता है। तत्पश्चात् शुरू करता है। जैसे-जैसे वह अपने प्रयास में आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे 'सूझ' की सम्भावना भी बढ़ती जाती है। तात्पर्य यह कि 'सूझ' आकस्मिक (Sudden) नहीं होती, वरन् क्रमिक (Gradual) होती है। डंकर 'सूझ' को कई श्रेणियाँ (Grades) इसलिए मानता है कि संभवतः कोई भी व्यक्ति परिस्थिति को या तो भली-भाँति समझता है अथवा अपेक्षाकृत कम। यदि कोई व्यक्ति परिस्थिति को अच्छी तरह समझते हुए कुछ प्रयास करता है, तो हम कह सकते हैं कि उसकी 'सूझ' बड़ी है। इसके विपरीत, यदि वह परिस्थिति के कुछ पहलुओं को समझकर ही प्रयास शुरू कर देता है, तो हम कह सकते है कि उसकी 'सूझ' बहुत थोड़ी है। यहाँ सिर्फ इतना ही कहना अभीष्ट है कि 'सूझ' की कई श्रेणियाँ हो सकती हैं।

जब हम सूझ' की कई श्रेणियाँ स्वीकार कर लेते हैं, तब फिर 'सूझ' एवं 'प्रयत्न और भल' में कोई मौलिक अन्तर नहीं रह जाता है। वस्तुतः

यदि हम पशु, बच्चे एवं प्रौढ़ व्यक्तियों पर किये गये समस्या-समाधान-सम्बन्धी प्रयोगों पर दृष्टि डाले तो स्पष्टत. ऐसा जान पड़ेगा कि किसी भी समस्या के समाधान मे 'सूझ' एवं 'प्रयत्न और भूल'—ये दोनों ही बातें वर्त्तमान रहती है। केवल 'सूझ' अथवा केवल 'प्रयत्न और भूल' के द्वारा किसी भी समस्या का समाधान सम्भव नही है। किसी समस्या के समाधान को सिद्धात-रूप मे समझ लेने पर भी उसे वस्तुत: प्राप्त करने के लिए कितने ही प्रयास करने पडते है, 'प्रयत्न और भूल' का सहारा लेना पड़ता है। अतएव, 'सूझ' के सम्बन्ध मे यह मानना समुचित जान पड़ता है कि यह सापेक्ष (Relative) होती है, न कि निरपेक्ष (Ultimate)।

सीखने की विधियाँ

(Methods or Procedures of Learning)

सीखने की अनेक विधिया है, जिनमे से तीन प्रमुख विधिया पर प्रकाश डालना ही अभीष्ट है। वे ये है.—

(१) आवृत्तीकरण (Recitation)

(२) अविराम अथवा विराम-रीति से सीखना (Learning by massed or spaced method);

(३) पूर्ण अथवा आंशिक रीति से सीखना (Learning by whole or part method)।

आवृत्तीकरण

(Recitation)

किसी विषय को अच्छी तरह याद करने के लिए उसे केवल कई बार पढ जाना ही पर्याप्त नही है, वरन् उसका आवृत्तीकरण भी अत्यन्त आवश्यक है। केवल पढ़ना तथा आवृत्तीकरण का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और यह जानने की चेष्टा की गयी है कि दोनो मे अधिक उपयोगी कौन है। इस सम्बन्ध में कई मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुए है, जिनमे गेट्स (Gates) का प्रयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गेट्स ने अपने प्रयोज्यो (Subjects) को एक निश्चित समय के भीतर याद करने के लिए कुछ विषय दिये। सभी लोगों ने प्रयोगकर्त्ता के द्वारा दिये गये निश्चित समय को पढने और आवृत्तीकरण मे भिन्न-भिन्न ढंग से बाँट लिया। किसी ने पढ़ने मे अधिक समय दिया और आवृत्तीकरण मे कम तथा किसी ने आवृत्तीकरण

मे अधिक समय दिया और पढने मे कम। सभी अवस्थाओ मे यह पाया गया कि आवृत्तीकरण मे जितना ही अधिक समय लगा, विषय की स्मति उतनी ही अच्छी हुई।

गेट्स के प्रयोगो मे यह पाया गया कि जब प्रयोज्यो (Subjects) ने अपना सारा समय केवल पढने मे ही लगाया, निर्धारित समय का थोडा अश भी आवृत्तीकरण मे नही दिया और पढने के बाद तुरत ही पढे हुए विषय का प्रत्याह्वान (Recall) किया, तब उसके प्रत्याह्वान का औसत फलाक (Average Score) केवल ३५ प्रतिशत हुआ। किन्तु जब प्रयोज्यो ने पढने की अपेक्षा आवृत्तीकरण मे अधिक समय लगाया, तब उनके प्रत्याह्वान (Recall) का आसत फलाक अपेक्षाकृत अच्छा हुआ, जैसा कि निम्नलिखित तालिका मे स्पष्ट है —

अध्ययन का विषय—सोलह निरर्थक शब्द-खड
(16 nonsense syllables)

समय का वितरण (Division of time)	तात्कालिक प्रत्याह्वान फलाक (Immediate recall-score)
सारा समय पढने मे	३५ प्रतिशत
$\frac{1}{4}$ समय आवृत्तीकरण मे	५० ,,
$\frac{2}{4}$ समय आवृत्तीकरण मे	५८
$\frac{3}{4}$ समय आवृत्तीकरण मे	५७ ,,
$\frac{4}{4}$ समय आवृत्तीकरण मे	७८ ,,

इस प्रयोग के फल से स्पष्ट है कि किसी विषय को अच्छी तरह से याद करने लिए पढने की अपेक्षा आवृत्तीकरण अधिक उपयोगी है।

गेट्स के प्रयोग के आधार पर निम्नलिखित बाते कही जा सकती है —

(१) आवृत्तीकरण मे जितना ही अधिक समय दिया जाता है किसी भी विषय की स्मृति उतनी ही अच्छी होती है।

(२) आवृत्तीकरण से सार्थक विषयो की अपेक्षा निरर्थक विषयो मे अधिक लाभ होता है।

(३) आवृत्तीकरण से किसी भी विषय को अच्छी तरह याद करने की प्रेरणा मिलती है। जब मनुष्य किसी विषय को इस लक्ष्य से पढता है कि उसे पढने के बाद शीघ्र ही आवृत्तीकरण करना है, तब उसे उस विषय को अच्छी तरह से जान लेने की प्रबल इच्छा होती है। फलत उसका ध्यान

सभी ओर से हटकर उस विषय पर केन्द्रीभूत हो जाता है। ध्यान के एकाग्र होने का फल यह होता है कि उस विषय की गहरी छाप, उसके अपेक्षाकृत स्थायी स्मृति-चिह्न मस्तिष्क पर अंकित हो जाते हैं। फलस्वरूप वह विषय उसे अधिक दिनों तक याद रह जाता है।

(४) पढ़ने की अपेक्षा आवृत्तीकरण से फल का ज्ञान अच्छा होता है। फल के ज्ञान से सही प्रतिक्रिया को अपनाने तथा गलत प्रतिक्रियाओं को छोड़ देने की प्रेरणा मिलती है। फलस्वरूप, सही प्रतिक्रिया के अपेक्षाकृत स्थायी स्मृति-चिह्न मस्तिष्क पर छुट जाते हैं और इसलिए वह विषय अधिक दिनों तक याद रह जाता है।

(५) आवृत्तीकरण पढ़े हुए विषय को संगठित रूप देने में अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

आवृत्तीकरण की उपयोगिता पर प्रकाश डालने के अनन्तर निष्क्रिय अध्ययन (Passive reading) के सम्बन्ध में विचार उपस्थित करना समीचीन जान पड़ता है। गेट्स के प्रयोज्यों (Subjects) के विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि निष्क्रिय ढंग का पढ़ना मनुष्य में थकावट एवं अन्यमनस्कता उत्पन्न करता है तथा अभिरुचि बनाये रखने के लिए उसे अधिक शक्ति व्यय करना पड़ता है। गेट्स के प्रयोज्यों के ही शब्दों में "पढ़ना अत्यन्त थकावट उत्पन्न करनेवाला तथा एकरसता से परिपूर्ण जान पड़ा और उसमें अभिरुचि बनाये रखने के लिए मुझे अपनी सारी शक्ति लगा देनी पड़ी।"*

आवृत्तीकरण के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि आवृत्तीकरण कब शुरू करना चाहिए? इसपर विचार करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आवृत्तीकरण शुरू करने के पहले एक हद तक विषय को पढ़ लेना वांछनीय है। सबसे पहले विषय को एक हद तक अच्छी तरह पढ़ लेने के बाद ही आवृत्तीकरण शुरू करना उपयोगी होता है। किसी विषय को अच्छी तरह याद करने के लिए क्रमशः चार अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है :—

(१) समूचे पाठ्य-विषय को आदि से अन्त तक एक या दो बार पढ़ लेना आवश्यक है।

* "Reading most fatiguing—monotonous—took all my energy to keep up interest."

(२) फिर पाठ्य-विषय में प्रतिपादित सभी पहलुओं की विस्तृत रूप मे छानबीन श्रेयस्कर है। इस अवस्था मे व्यक्ति को समूचे पाठ्य-विषय का एक हद तक ज्ञान हो जाता है। इस अवस्था तक पढ़ना आवृत्तीकरण की अपेक्षा अच्छा है।

(३) तीसरी अवस्था में पाठ्य-विषय के सभी अंगों को भलीभाँति समझते हुए एक संगठित रूप देने की चेष्टा की जाती है।

(४) अन्ततः आवृत्तीकरण के द्वारा पाठ्य-विषय के स्मृत-चिह्न अपेक्षाकृत स्थायी रूप से प्राणी पर अंकित हो जाते है और वह विषय बहुत दिनों तक याद रहता है।

अविराम अथवा विराम-रीति से सीखना

(Learning by Massed or Spaced method)

यदि किसी विषय को सीखने के लिए कुछ समय निर्धारित कर दिया जाय, तो उस सम्पूर्ण समय का उपयोग दो ढग स हो सकता है। एक तो यह कि सम्पूर्ण समय का लगातार पढ़ने मे लगा दिया जाय और दूसरा, यह कि उसे कई भागों मे बाँटकर कई बार पढ़ने मे लगाया जाय। इस दूसरे ढंग से किसी विषय को पढ़ने अथवा सीखने मे सीखनेवाले को विराम मिलता है। सीखने की इस पहली विधि को अविराम-रीति (Massed method) तथा दूसरी को विराम-रीति (Spaced method) कहते है। उदाहरण के लिए, यदि सीखने के कुल समय ६ घंटे है, तो अविराम-रीति के अनुसार सीखनेवाला व्यक्ति उस सारे समय को एक ही बार पढ़ने मे लगा देगा। किन्तु विराम-रीति से सीखनेवाला व्यक्ति उसे कई भागो मे बाँटकर पढ़ेगा। अब प्रश्न यह है कि किसी विषय को अच्छी तरह सीखने के लिए इन दोनों मे कौन-सी रीति अधिक उपयोगी है ?। इस समस्या के ऊपर अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुए है। उन प्रयोगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विराम-रीति अविराम-रीति की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। इसके कई कारण है, जिनमे से कुछ प्रधान कारणों की चर्चा की जा रही है।

विराम-रीति का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इस रीति का अनुसरण करने से पढ़े हुए विषय की छाप दृढ़ हो जाती है। किसी विषय को पढ़ने के बाद कुछ देर विश्राम करने से विश्राम के समय में पढ़े हुए विषय को

छाप दृढ़ होती है। फलतः वह विषय अधिक दिनों तक याद रह जाता है। इसके विपरीत, अविराम-रीति के द्वारा पढ़ने में स्मृति-चिह्न के दृढ़ होने के लिए अवकाश ही नहीं मिल पाता। इस सम्बन्ध में जोस्ट का नियम (Jost's law) उल्लेखनीय है। जोस्ट का कहना है कि पुनः अभ्यास के द्वारा पुराना साहचर्य (Old association) नये साहचर्य (New association) की अपेक्षा अधिक प्रबल होता जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी ने एक विषय को दो सप्ताह पहले पढ़ा हो और उसे हो एक दिन पूर्व भी पढ़ा हो, तो आगे अभ्यास करने से दो सप्ताह पहले के पढ़े हुए विषय का स्मृति-चिह्न (Memory-trace) एक दिन पहले पढ़े हुए विषय के स्मृति-चिह्न की अपेक्षा अधिक दृढ़ तथा प्रबल होगा।

विराम-रीति का दूसरा लाभ यह है कि इस रीति के अनुसार पढ़ने में गलत साहचर्यों के भूल जाने और सही साहचर्यों के याद रहने की सम्भावना अधिक रहती है। वस्तुतः वे बातें, जो गलत होती हैं, बड़ी शीघ्रता के साथ भूल जाती हैं। कारण यह है कि गलत बातों के अंकित होने के लिए प्रेरणा का अभाव रहता है। किसी पाठ्य-विषय को पढ़ने के बाद जो अवकाश मिलता है, उसमें पढ़नेवाला व्यक्ति गलत बातों की ओर ध्यान नहीं देता। फलतः वे बातें भूलती जाती हैं। ठीक इसके विपरीत, सही साहचर्य (Right associations) अवकाश के क्षणों में दृढ़ रूप से अंकित होते जाते हैं। कारण यह है कि अवकाश (Interval) में सही बातों की बार-बार आवृत्ति होती है; क्योंकि उन्हें याद करने के लिए व्यक्ति सचेष्ट रहता है। दूसरे शब्दों में, सही बातों को याद करने की प्रबल प्रेरणा व्यक्ति में वर्त्तमान रहती है। अतएव, स्पष्ट है कि विराम-रीति से सीखने में गलत साहचर्य तीव्र गति से मिटते जाते हैं; क्योंकि उनके पीछे प्रेरणा का अभाव रहता है तथा सही साहचर्य दृढ़ रूप से अंकित होते जाते हैं; क्योंकि उनके पीछे निरन्तर प्रेरणा वर्त्तमान रहती है।

विराम-रीति का तीसरा लाभ यह है कि इस रीति से किसी विषय को पढ़कर सीखने में थकावट आने की सम्भावना नहीं रहती। जब किसी विषय को अविराम गति से बार-बार पढ़ा जाता है, तब उसमें रुचि कम हो जाती है और शीघ्रता से थकावट आ जाती है। फलतः उस पढ़े हुए विषय का स्मृति-चिह्न दृढ़ नहीं होने पाता। जब किसी विषय को पढ़ लेने के बाद थोड़ी देर तक विश्राम किया जाता है, तब विश्राम के क्षणों में पढ़े हुए विषय का स्मृति-चिह्न दृढ़ होता जाता है।

विराम-रीति मनुष्य को पूरी शक्ति के साथ कार्य करने की प्रेरणा देती है। जब व्यक्ति यह जानता है कि पाठ्य-विषय को पढ़ लेने के बाद शीघ्र ही विश्राम मिलेगा, तब वह अधिक रुचि के साथ पढ़ता है। अविराम-रीति में अधिक रुचि के साथ काम करने की प्रेरणा नहीं रहती। अतएव, यह स्पष्ट है कि विराम-रीति अविराम-रीति की अपेक्षा अधिक प्रेरणात्मक होती है। फलतः विराम-रीति द्वारा पढ़ा हुआ विषय अधिक दिनों तक याद रहता है।

पूर्ण अथवा आंशिक रीति से सीखना

(Learning by whole or part method)

किसी पाठ्य-विषय को प्रायः दो तरह से सीखा जा सकता है। एक तो यह कि संपूर्ण पाठ्य-विषय को हर बार समग्र रूप से पढ़ा जाय और दूसरा यह कि उसे कई भागों में बाँटकर प्रत्येक भाग को अलग-अलग पढ़ा जाय। अब प्रश्न यह है कि दोनों में कौन-सी विधि अधिक उपयुक्त है? मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर यह कहना उचित जान पड़ता है कि यह विषय बड़ा ही विवादग्रस्त है। कुछ मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से पूर्ण रीति के द्वारा सीखना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है, तो कुछ मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से आंशिक रीति, अर्थात् किसी विषय को कई भागों में बाँटकर अलग-अलग पढ़ने की रीति ही अधिक अच्छी जान पड़ती है। कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि न तो पूर्ण रीति ही सबसे उपयुक्त है और न आंशिक रीति ही, बल्कि प्रगतिशील आंशिक रीति (Progressive part method)* अधिक श्रेयस्कर है। नीचे

---

*प्रगतिशील आंशिक रीति (Progressive part method) उसे कहते हैं, जिसमे पढ़नेवाला व्यक्ति पाठ्य-विषय को कई भागों में बाँटकर पढ़ता अवश्य है, किन्तु प्रत्येक भाग का दूसरे भाग से सम्बन्ध स्थापित करता जाता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई ६ छन्दों (Six stanzas) की कविता है, तो इस रीति का अनुसरण करनेवाला पहले छन्द को याद कर लेगा, फिर दूसरे छन्द को याद करेगा, तब पहले और दूसरे में संबंध स्थापित करेगा। पुनः तीसरे को याद करेगा फिर, पहले, दूसरे और तीसरे का आपस में संबंध स्थापित करेगा। इस तरह प्रगतिशील आंशिक रीति द्वारा सभी छन्दों को याद करेगा।

कुछ प्रयोगो को उद्धृत करते हुए इन रीतियो की विवेचना प्रस्तुत की जायगी ।

लोट्टी स्टीफेन्स (Lotti Steffens) ने कुछ शिक्षित व्यक्तियो के स्वेच्छानुसार याद करने के तरीको का निरीक्षण किया । उन्होने यह पाया कि सभी व्यक्तियो ने मिश्रित रीति (Mixed Procedures), अर्थात्, पूर्ण रीति तथा आशिक रीति—इन दोनो ही का प्रयोग किया। इस प्रयोग के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी भी विषय को सीखने मे न तो केवल 'पूर्णरीति' ही काम मे लायी जाती है और न केवल 'आशिक रीति' ही, बल्कि इन दोनो का मिश्रण पाया जाता है ।

फिर लोट्टी स्टीफेन्स न एक दूसरा प्रयोग किया। वह प्रयोग पाँच युवको एव दो बच्चो के ऊपर किया गया। इस प्रयोग मे युवको एव बच्चो को कुछ कविता के छन्द (Stanzas of Poetry) तथा निरर्थक शब्द-खडो की सूचियाँ (Lists of nonsense syllables) पढने को दी गयी। उन्होने यह पाया कि पढनेवाले युवको एव बच्चो ने कुछ छन्दो एव निरर्थक शब्द-खडो की सूचियो को तो आशिक रीति से याद किया और कुछ को पूर्ण रीति मे। दोनो रीतियो के द्वारा याद करने मे जो समय लगा, उसका उन्होने तुलनात्मक अध्ययन किया। अपने तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर लोट्टी स्टोफेन्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि छन्दो एव निरर्थक शब्द-खडो की सूचियो को याद करने मे आशिक रीति की अपेक्षा पूण रीति मे कम समय लगता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पूर्ण रीति के द्वारा सीखना आशिक रीति को अपेक्षा श्रेष्ठ होता है।

विच (Winch) ने कुछ स्कूल के विद्यार्थियो के ऊपर प्रयोग किया। उनके आदेशानुसार विद्यार्थियो ने कविता को याद करने मे पूर्ण एव आशिक रीतियो का उपयोग किया। इस प्रयोग के फल से आशिक रीति पूर्ण रीति की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध हुई । विच के प्रयोग को दृष्टिकोण मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि आशिक रीति, पूर्ण रीति की अपेक्षा श्रेष्ठ है ।

अन्त मे रीड (Reed) के द्वारा किये गये प्रयोगो का उल्लेख वाछनीय है, जिससे प्रगतिशील आशिक रीति की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध होती है। रीड ने ११३ विद्यार्थियो के ऊपर प्रयोग किया। विद्यार्थियो को चार छदोवाली कविताएँ याद करने को दी गयी । प्रत्येक विद्यार्थी ने कविता के तीन सग्रहो को याद किया और तीनो को याद करने मे तीन रीतियो का

प्रयोग किया। पहले संग्रह को उन्होंने पूर्ण रीति द्वारा, दूसरे को आंशिक रीति द्वारा और तीसरे को प्रगतिशील आंशिक रीति द्वारा सीखा। तीनों रीतियों द्वारा सीखने में जो औसत समय लगा, वह नीचे उद्धृत किया जाता है—

	औसत समय
(१) पूर्ण रीति द्वारा सीखना	५.९५ मिनट
(२) आंशिक रीति द्वारा सीखना	५.२५ ,,
(३) प्रगतिशील आंशिक रीति द्वारा सीखना	५.२१ ,,

रीड के प्रयोगों के फलों से स्पष्ट है कि प्रगतिशील आंशिक रीति, पूर्ण रीति तथा आंशिक रीति, दोनों ही से श्रेष्ठ है।

उपर्युक्त प्रयोगों के ऊपर ध्यान देने से ऐसा लगता है कि तीनों रीतियों द्वारा प्राप्त प्रयोगों के फलों में कुछ विरोध है। किन्तु यदि गंभीरता से विचार किया जाय, तो ऐसा मानना होगा कि पूर्ण रीति, आंशिक रीति तथा प्रगतिशील आंशिक रीति, दोनों के मूल में वर्त्तमान रहती है। पूर्ण रीति के सम्बन्ध मे दूसरी आवश्यक बात यह है कि कि इसके सफल प्रयोग के लिए एक हद तक अभ्यास जरूरी है। कुछ अभ्यास के बाद सीखनेवाले को पूर्ण रीति का उचित प्रयोग करना आ जाता है और तब निस्सन्देह यह रीति सब रीतियों से अधिक उपयोगी एवं श्रेष्ठ सिद्ध होती ह। प्रगतिशील आंशिक रीति मे अधिकांशतः पूर्ण रीति का सहारा लेना पड़ता है। केवल आंशिक रीति मे भी पूर्ण रीति का सहारा लिये बिना काम नहीं चल सकता। उदाहरण के लिए, जब हम आंशिक रीति द्वारा किसी पाठ्य-विषय के प्रत्येक भाग को अलग-अलग सीख लेते है, तब उन सभी भागों को एक साथ मिलाने के लिए संपूर्ण पाठ्य-विषय को कई बार पढ़ना पड़ता है। अतएव, स्पष्ट है कि आखिर में पूर्ण रीति का सहारा लिये बिना आंशिक रीति द्वारा हम किसी विषय को अच्छी तरह नहीं सीख सकते।

पूर्ण रीति द्वारा सीखने से लाभ यह होता है कि हम सीखे जानेवाले विषय के सभी अंगों का परस्पर-सम्बन्ध जान लेते हैं तथा उनके अर्थों से भलीभाँति परिचित हो जाते है। कहना न होगा कि अर्थपूर्ण बातें बहुत दिनों तक याद रह जातीं है। आंशिक रीति की विशेषता यह होती है कि इसमें थकावट आने की कोई गुंजाइश नहीं रहती। किसी विषय के एक-एक भाग को अलग-अलग सीखना आसान होता है। एक भाग को सीख

लेने के बाद सीखनेवाले मे सफलता की भावना आती है। सफलता की भावना से प्रेरित होकर वह दूसरे भाग को अधिक उत्साह के साथ सीखता है। इसी प्रकार थकावट का अनुभव किये बिना ही वह उस विषय के सभी भागों को सीख जाता है। लेकिन अन्ततोगत्वा जब वह सभी भागों को एक साथ मिलाने की चेष्टा करता है, तब उसे बहुत अधिक समय और शक्ति लगाने की आवश्यकता पड़ती है। फलत. प्रारम्भ का लाभ मिट जाता है और आंशिक रीति, पूर्ण रीति की अपेक्षा अधिक कठिन मालूम होने लगती है। इसमे समय भी अधिक लगता है और अधिक शक्ति भी व्यय होती है। अतः यह वांछनीय है कि हम किसी भी विषय को पूर्ण रीति के द्वारा सीखना प्रारम्भ करें। किन्तु बीच-बीच मे जहाँ आवश्यकता पड़े, वहाँ किसी विशेष भाग पर अधिक ध्यान देते जायें। दोनों मे कोई भी एक रीति श्रेष्ठ नही कही जा सकती। वस्तुत परिस्थिति, विषय के स्वरूप एव व्यक्ति-विभिन्नताओ के अनुसार ही इन रीतियो की श्रेष्ठता का भान होता है। अन्त में वुडवर्थ के शब्दो को उद्धृत करना उपयुक्त जान पड़ता है, जिनसे पूर्ण रीति एवं आंशिक रीति के तुलनात्मक महत्त्व पर अत्यधिक प्रकाश पड़ता है:—

"व्यावहारिक परिस्थिति मे पूर्ण रीति से प्रारम्भ करना सम्भवत. सबसे अच्छा है; किन्तु जहाँ कोई विशेष बात सीखनी हो, वहाँ किसी भी समय किसी विशेष भाग पर ध्यान देने की स्वतन्त्रता रहनी चाहिए।"*

पशु एवं मनुष्य के सीखने में अन्तर

मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से ज्ञात होता है कि पशु तथा मनुष्य के सीखने मे बहुत कुछ समानता होते हुए भी कुछ अन्तर है। मनुष्य का सीखना पशु से श्रेष्ठ होता है। इसके कई कारण है, जिनमे से कुछ प्रधान कारणों का उल्लेख ही यहाँ अपेक्षित है।

पशु की अपेक्षा मनुष्य का स्नायु-मंडल (Nervous system) जटिल होता है। अतएव, मनुष्य में जटिल समस्याओं तथा कठिन कार्यों के सीखने की क्षमता अधिक वर्त्तमान रहती है। इसके विपरीत, पशु का स्नायु-मंडल

*"In a practical situation it is probably best to start with the whole method while feeling free to concentrate at any time on a part where something special is to be learned."
—Woodworth, R. S. : Experimental Psychology, Page—223.

अपेक्षाकृत सरल होता है । फलत उसमे सरल क्रियाओ को ही सीखने की अधिक क्षमता पायी जाती है। तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष बिलकुल युक्तिसगत जान पडता है कि पशु की अपेक्षा मनुष्य मे सीखने की अधिक क्षमता पायी जाती है, क्योकि मनुष्य का स्नायु-मडल अधिक जटिल होता है ।

पूर्व-अनुभूति तथा साहचर्य (Associations) सीखने मे अत्यधिक सहायता प्रदान करते है। जहाँ तक पूर्व-अनुभूति और साहचर्य का सम्बन्ध है, यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इनसे लाभ उठाने की जितनी क्षमता मनुष्य मे है, उतनी पशु मे नहीं। प्राय यह देखा जाता है कि इनका प्रयोग कर मनुष्य किसी नये कार्य को अति शीघ्रता से सीख लेता है ।

पशु की अपेक्षा मनुष्य मे बुद्धि अधिक होती है । बुद्धि का सीखने मे बडा हाथ होता है । अत पशु की अपेक्षा मनुष्य किसी नयी समस्या को अति शीघ्र सीख लेता है ।

तर्क, चिन्तन एव नियन्त्रण मे मनुष्य पशु से श्रेष्ठ होता है। तर्क एव चिन्तन के आधार पर मनुष्य किसी भी नयी परिस्थिति के सभी पहलुओ के परस्पर-सम्बन्ध को अच्छी तरह समझने का प्रयास करता है। सीखते समय वह अपने व्यवहारो पर यथासभव नियन्त्रण भी रखता है। फलत वह विफल प्रयासो का परित्याग कर सफल प्रयासो के अपनाने मे समर्थ होता है । तर्क, चिन्तन तथा नियत्रण की क्षमता के कारण ही मनुष्य का सीखना पशु की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है ।

मनुष्य मे भाषा तथा सख्या के उपयोग करने की क्षमता अधिक होती है। पशु मे इसका नितान्त अभाव पाया जाता है। भाषा की सहायता से मनुष्य अनुपस्थित विषयो तथा परिस्थितियो के सम्बन्ध मे भी चिन्तन कर सकता है। अन्य प्राणियो की अपेक्षा मनुष्य मे चिन्तन एव भाषा का उपयोग करने की क्षमता अधिक उन्नत तथा विकसित रूप मे पायी जाती है। अतएव, मनुष्य का सीखना पशु की अपेक्षा अधिक उन्नत तथा श्रेष्ठ होता है ।

मनुष्य मे हस्त-कौशल (Manual dexterity) पशु की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। फलत मनुष्य हस्त-कौशल-सम्बन्धी कार्यों को अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह सम्पन्न करता है। शिल्पकला, चित्रकला इत्यादि कलाओ मे हस्त-कौशल की प्रधानता होती है । कहना न होगा कि मनुष्य इन कलाओ मे बडा ही निपुण होता है। अतएव, यह निष्कर्ष

अत्यन्त ही स्वाभाविक है कि पशु की अपेक्षा मनुष्य का सीखना अधिक उन्नत होता है।

पशु की अपेक्षा मनुष्य में देखने की शक्ति अधिक विकसित रूप में पायी जाती है। फलतः मनुष्य किसी भी नयी परिस्थिति के सभी पहलुओं का भलीभाँति निरीक्षण कर लेता है। किन्तु पशु का निरीक्षण अपेक्षाकृत सीमित होता है। अतः मनुष्य का सीखना पशु के सीखने से उन्नत होता है।

पशु एवं मनुष्य दोनों ही, सीखने में 'प्रयत्न और भूल' विधि का प्रयोग करते हैं। किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि मनुष्य में 'प्रयत्न और भूल' अधिक मानसिक स्तर (Mental level) पर होता है, परन्तु पशु में यह अधिक आचरणात्मक स्तर (Behavioural level) पर होता है। अतः मनुष्य का सीखना, पशु की अपेक्षा उन्नत होना स्वाभाविक ही है।

———

नवाँ अध्याय

स्मरण-विस्मरण

मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर कहा जा सकता है कि स्मृति (Memory) कोई शक्ति नहीं है, वरन् एक मानसिक क्रिया है। इस मानसिक क्रिया के द्वारा व्यक्ति भूतकाल की अनुभूतियों अथवा घटनाओं को अपनी वर्त्तमान चेतना (Present consciousness) में लाता है। स्पष्ट है कि स्मरण करने की क्रिया में निरन्तर भूतकालिकता (Pastness) विद्यमान रहती है। इससे यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति पहले किसी वस्तु का अनुभव कर चुका है अथवा किसी घटना को देख चुका है। दूसरे शब्दों में, पूर्वानुभूत अनुभवों अथवा घटनाओं को पुनः वर्त्तमान चेतना (Present consciousness) में लाने की क्रिया को ही स्मरण कहते हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई व्यक्ति दो वर्ष पहले की किसी नाव-दुर्घटना को पुनः वर्त्तमान चेतना में लाता है, तब हम कहते हैं कि वह पूर्वानुभूत नाव-दुर्घटना का स्मरण कर रहा है। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति किसी कविता अथवा निरर्थक शब्दों-खंडों की सूची (List of nonsense Syllables) को सीखने के दो सप्ताह बाद बिना उसे देखे अपनी वर्त्तमान चेतना में लाने की चेष्टा करता है, तब हम कहते हैं कि वह पूर्वपठित कविता अथवा निरर्थक शब्द-खंडों की सूची का स्मरण कर रहा है।

स्मरण करने की क्रिया का विश्लेषण करने पर उसके चार प्रधान अंग पाये जायेंगे--(१) सीखना अथवा किसी घटना का पूर्वानुभव होना, (२) धारण करना (Retaining), (३) प्रत्याह्वान करना (Recalling) तथा (४) पहचानना (Recognizing)।

सीखना (Learning) :--सीखने की क्रिया का विस्तृत विवेचन पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है। यहाँ सिर्फ इतना ही कहना अभीष्ट है कि किसी वस्तु अथवा कार्य को सीखे बिना उसका स्मरण करना संभव नहीं है। अतएव, स्पष्ट है कि हम उसी वस्तु अथवा घटना का स्मरण करते हैं, जिसे पहले से सीखे रहते हैं, अथवा जिसका पहले से अनुभव किये रहते हैं।

धारण करना (Retaining):—जब प्राणी प्रथम बार कोई कार्य सीखता है और बाद को उसे वही कार्य करने को दिया जाता है, तब वह बहुत आसानी से उस कार्य को संपादित कर देता है। कारण, सीखने से प्राणी के शरीर की रचना मे परिवर्त्तन आ जाता है। वह परिवर्त्तित शारीरिक रचना, जो किसी निर्दिष्ट स्मृति को धारण करती है, उसे 'स्मृति-चिह्न' (Memory-trace) कहते है। इस स्मृति-चिह्न के स्वरूप (Nature) पर ठीक-ठीक प्रकाश डालना कठिन है, किन्तु इतना माना जा सकता है कि प्रत्येक सीखने की क्रिया मस्तिष्क पर अपना कुछ-न-कुछ चिह्न अवश्य छोड़ जाती है। मस्तिष्क पर छुटे हुए ये चिह्न यदि स्थायी रूप मे कायम नहीं रह पाते, तो भी कुछ समय के लिए तो अवश्य ही मस्तिष्क मे बने रह जाते है। फलत पहले की सीखी हुई बातो के स्मरण करने मे सहायता प्रदान करते है। सभवत. ये स्मृति-चिह्न मस्तिष्क से क्रमश मिटते जाते है। फलस्वरूप, पहले की सीखी हुई बात बिलकुल भूल भी सकते है। अब प्रश्न यह है कि क्या कोई भी सीखी हुई बात बिलकुल भूल सकती है? इसके उत्तर मे कुछ लोग कहते है कि कोई भी सीखी हुई बात कभी भी नही भूल सकती। किन्तु इस विचार मे अतिशयोक्ति जान पड़ती है तथा इसके लिए कोई निश्चित प्रमाण नही मिलता। वास्तविकता यह है कि पहले की सीखी हुई बातो मे से अधिकाश को हम भूल जाते है।

धारण करने की क्रिया कई बातो से प्रभावित होती है, जिनमे निम्नलिखित बात प्रमुख मानी जाती है—(१) स्वास्थ्य, (२) मस्तिष्क की बनावट, (३) रुचि एव मानस-वृत्ति (Interest and mental set), (४) सीखे हुए विषय का स्वरूप तथा (५) सीखने की विधि इत्यादि।

स्वास्थ्य—धारण करने की क्रिया पर स्वास्थ्य का प्रभाव पड़ता है। बीमारी या अस्वस्थता की अवस्था मे स्मृति-चिह्न (Memory-trace) दृढ नही हो पाते। अतएव, कोई भी बात अधिक दिनो तक याद नहीं रह पाती। इसके विपरीत, स्वस्थ व्यक्ति की धारण-क्रिया प्रबल होती है। उस पर छुटे हुए स्मृति-चिह्न अपेक्षाकृत स्थायी होते है। यही कारण है कि प्राय: रुग्ण व्यक्ति की अपेक्षा स्वस्थ व्यक्ति किसी बात को अधिक दिनो तक याद रख लेता है।

मस्तिष्क की बनावट—धारण करने की क्रिया मस्तिष्क की बनावट पर भी निर्भर करती है। पशु तथा मनुष्य, दोनों के मस्तिष्क की बनावट पर

ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। पशु की अपेक्षा मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट जटिल (Complex) होती है। फलत मनुष्य के मस्तिष्क पर कठिन-से-कठिन विषयो के स्मृति-चिह्न बहुत दिनो तक बने रह जाते है। दूसरे शब्दो मे, मनुष्य की धारण-क्रिया (Process of retaining) प्रबल होती है। किन्तु पशु के मस्तिष्क की बनावट अपेक्षाकृत सरल होती है। परिणामत उसकी धारण-क्रिया भी दुर्बल होती है। अतएव, यह स्पष्ट है कि धारण-क्रिया की प्रबलता अथवा दुर्बलता मस्तिष्क की जटिलता या सरलता पर निर्भर करती है।

रुचि एवं मानस-वृत्ति—धारण करने की क्रिया का व्यक्ति की रुचि (Interest) एव मानस-वृत्ति (Mental set) से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस विषय मे व्यक्ति की रुचि अधिक होती है, उस विषय की गहरी छाप, उसके प्रभावशाली स्मृति-चिह्न उसके मस्तिष्क पर छूट जाते है। फलत: वह विषय बहुत दिनो तक याद रह जाता है। वैसे ही, जो विषय व्यक्ति की मानस-वृत्ति के अनुकूल होता है, उसकी प्रबल छाप मस्तिष्क पर पड़ जाती है। फलस्वरूप, वह विषय अधिक दिनो तक याद रहता है। उदाहरण के लिए एक मनोवैज्ञानिक को मनोविज्ञान की बाते, साहित्यिक को साहित्य की बाते एव सगीतज्ञ को सगीत की बाते बहुत दिनों तक याद रह जाती हैं, क्योकि इनकी प्रबल छाप उनके मस्तिष्क पर पडी रहती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रुचि एवं मानस-वृत्ति की अनुकूलता व्यक्ति के मस्तिष्क की धारण करने की क्रिया को सबल बनाती है।

सीखे हुए विषय का स्वरूप—धारण करने की क्रिया पर सीखे जाने-वाले विषय के स्वरूप का प्रभाव पडता है। जो विषय सार्थक होता है उसका मस्तिष्क के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है। फलत वह बहुत दिनो तक मस्तिष्क मे बना रह जाता है। निरर्थक विषय के सीखने से मस्तिष्क के ऊपर छुटे हुए स्मृति-चिह्न बड़े ही क्षीण होते है। अतएव, वे अति शीघ्र ही भूल जाते है। स्पष्ट है कि विषय की सार्थकता एव निरर्थकता का धारण करने की क्रिया पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

सीखने की विधि—अन्त मे सीखने की विधि एव धारण-क्रिया के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए यह कहा जा सकता है कि सीखने की विधि की उपयुक्तता (Adequacy) पर भी धारण-क्रिया की सबलता बहुत-कुछ निर्भर करती है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर यह कहा जा सकता

है कि यदि सीखने की विधि उपयुक्त हुई, तो धारण-क्रिया भी सबल होगी और यदि सीखने मे अनुपयुक्त विधि का प्रयोग किया गया, तो धारण-क्रिया भी क्षीण होगी। सीखने की विधियों पर विचार करते समय उनकी उपयुक्तता और अनुपयुक्तता पर पूर्णरूपेण प्रकाश डाला जायगा ।

धारण-क्रिया का स्वरूप

(Nature of Retention)

मस्तिष्क की धारण-क्रिया को हम प्रत्यक्षतः देख नहीं सकते। किन्तु इसका जो प्रभाव सीखे हुए कार्य के पुनः संपादन मे अभिव्यक्त होता है, देखा जा सकता है। स्मृति-सम्बन्धी प्रयोगों (Memory experiments) से स्पष्ट है कि धारण-क्रिया प्रत्याह्वान (Recall), पहचान (Recognition) तथा पुनः सीखने (Relearning) के द्वारा प्रमाणित होती है। वस्तुतः ये तीनों ही धारण-क्रिया के प्रयोगात्मक परीक्षण (Experimental tests) है । यहाँ यह स्पष्ट कर देना अभीष्ट प्रतीत होता है कि इनमें से कोई भी परीक्षण पूर्ण नहीं है ।

प्रत्याह्वान के द्वारा धारण-क्रिया की जाँच की जाती है । हम प्रायः उन्हीं अनुभवों अथवा घटनाओं का प्रत्याह्वान करते है, जिन्हे हम पहले से सीखे रहते हैं तथा जिनके स्मृति-चिह्न मस्तिष्क पर छुटे रहते है। दूसरे शब्दों में, धारण किये हुए अनुभव अथवा घटनाओं का प्रत्याह्वान होता है । किन्तु यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि सभी धारण की हुई बातों का प्रत्याह्वान संभव नहीं है। प्रायः ऐसा होता है कि हम किसी खास क्षण में कोई परिचित नाम अपनी चेतना में लाना चाहते है, परन्तु उसका प्रत्याह्वान संभव नहीं होता। उस क्षण ऐसा अनुभव होता है कि वह नाम हमारे होठों पर ही है। फिर भी हम उस क्षण में उसका प्रत्याह्वान नहीं कर पाते। इसलिए प्रत्याह्वान धारण-क्रिया की अनुपयुक्त जाँच समझी जाती है। पहचान तथा पुनः सीखने के विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जायगा कि प्रत्याह्वान उन दोनों से धारण की अधिक अनुपयुक्त जाँच है ।

प्रत्याह्वान की अपेक्षा पहचान तथा पुनः सीखना (Relearning) धारण-क्रिया के अच्छे परीक्षण है । हम जिन धारण की हुई बातों का प्रत्याह्वान नहीं कर पाते, उन्हें अक्सर देखकर पहचान जाते हैं । इसलिए पहचानना धारण-क्रिया की एक अच्छी जाँच समझी जाती है। इसी प्रकार पुनः सीखना (Relearning) भी प्रत्याह्वान की अपेक्षा धारण-क्रिया

की एक अच्छी जाँच है। कभी की सीखी हुई कोई कविता, हो सकता है कि याद न आय, उसका प्रत्याह्वान न हो सके और न उसकी पहचान ही संभव हो और इस अर्थ मे वह कविता भूल गयी हो। यदि हम पुनः उसे सीखना प्रारम्भ करे, तो बहुत आसानी से कम समय और कम श्रम मे ही सीख सकते है। पुनः सीखने मे समय और श्रम की यह बचत इस बात को प्रमाणित करती है कि उस कविता का धारण (Retention) अभी भी व्यक्ति मे है, उसके स्मृति-चिह्न मस्तिष्क पर अभी भी वर्त्तमान है।

प्रत्याह्वान करना
(**Recalling**)

प्रत्याह्वान करना (Recalling) एक ऐसी मानासक क्रिया है, जिसके द्वारा हम पूर्व घटनाओं अथवा अनुभूतियो का बिना मौलिक उत्तेजक परिस्थिति (Original stimulus situation) की उपस्थिति के ही अपनी वर्त्तमान चेतना मे लाते है। स्पष्टतः प्रत्याह्वान मे मौलिक उत्तेजक परिस्थिति की अनुपस्थिति मे हा व्यक्ति अपनी पूर्व अनुभूतियो का वर्त्तमान चेतना मे लाता है। प्रत्याह्वान करने पर अक्सर पूर्व अनुभूति अपने यथार्थ रूप मे नही आती, वरन् उसमे कई प्रकार के परिवर्त्तन दीख पड़ते है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बार्टलेट (Bartlet) का अध्ययन उल्लेखनीय है। बार्टलेट ने अपने प्रयोगो के आधार पर स्मरण करने के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए बतलाया है कि धारण किये हुए विषय का प्रत्याह्वान कभी भी पूर्ण एव ज्यो-का-त्यो नही होता। वह पूर्व अनुभूति अथवा घटना की बिलकुल नकल नही होता, वरन् वह तो रचनात्मक (Constructive) एव गतिशील (Dynamic) मानसिक क्रिया है। बार्टलेट के कहानी-सम्बन्धी प्रयोगो से सिद्ध है कि जब कोई व्यक्ति किसी पूर्व पठित कहानी का प्रत्याह्वान करने लगता है, तब वह उस कहानी की अधिकांश बातों को छोड़ देता है और उसमें बहुत-सी बाते अपनी ओर से जोड़ देता है। इसका मुख्य कारण यह है कि वह तटस्थ होकर किसी कहानी को नहीं पढ़ता, बल्कि कहानी पढ़ते समय वह अपने विशेष प्रकार के दृष्टिकोण से प्रभावित रहता है। फलत. उस कहानी को पढ़ने के बाद वह उसे मूल रूप मे नही ग्रहण करता, वरन् अपनी विशेष प्रकार की रुचि एवं मनोवृत्ति के अनुकूल उसे एक नया रूप दे देता है। वस्तुत उस कहानी के प्रत्याह्वान मे वह पूर्व पठति कहानी के सामान्य वातावरण एव स्वरूप को तो प्रकट

करता है, किन्तु उसमें अनेक नयी बातें जोड़कर उसे बिलकुल नवीन रूप दे देता है। बार्टलेट के द्वारा प्रतिपादित प्रत्याह्वान के रचनात्मक स्वरूप को अन्य मनोवैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। तभी तो प्रत्याह्वान के रचनात्मक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कुह्लमन (Kuhlmann) ने कहा है—

"प्रत्याह्वान बहुत अंशों में बिलकुल ही प्रत्याह्वान नहीं होता और उसे मूल की नकल कहने में तो आधी सत्यता भी नहीं रह जाती। वस्तुतः यह पुनर्रचना नहीं, बल्कि एक रचना है, ऐसी रचना जो फलतः मूल वस्तु के स्थान पर स्वीकृत कर ली जाती है तथा जो पूर्व-प्रत्यक्षीकरण की पुनर्रचना से बहुत भिन्न होती है।"*

प्रत्याह्वान धारण-क्रिया पर निर्भर करता है। अतएव, धारण-क्रिया के लिए जो बातें आवश्यक हैं, वे प्रत्याह्वान के लिए भी। धारण के प्रसंग में उन बातों, जैसे—स्वास्थ्य, मस्तिष्क की बनावट, रुचि एवं मानस-वृत्ति, सीखे हुए विषय का स्वरूप, सीखने की विधि आदि का उल्लेख किया जा चुका है। प्रत्याह्वान में भी उनकी अत्यधिक प्रधानता है। उसके सिवा, प्रत्याह्वान में सामाजिक वातावरण एवं पृष्ठभूमि का भी कुछ कम हाथ नहीं रहता। इस सम्बन्ध में बार्टलेट ने बतलाया है कि व्यक्ति प्रत्याह्वान में निरन्तर ही सामाजिक पृष्ठभूमि से प्रभावित होता है। प्रायः ऐसा पाया जाता है कि व्यक्ति उन बातों का प्रत्याह्वान आसानी से कर लेता है, जो बातें सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुकूल होती हैं।

प्रत्याह्वान में उत्तेजना का स्थान (The Place of stimulus in Recall)—जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कोई भी व्यक्ति अनुपस्थित मौलिक उत्तेजक परिस्थिति का ही प्रत्याह्वान करता है, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि प्रत्याह्वान बिना किसी उत्तेजना के ही होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस परिस्थिति अथवा घटना-विशेष का प्रत्याह्वान किया जाता है, वह अनुपस्थित रहती है। किन्तु अन्य उत्तेजनाएँ प्रत्याह्वान

*"Recall is very largely not recall at all, and can never be described even half correctly by calling it reproduction. It is rather a construction not, a reconstruction, a construction of a certain result that is accepted in place of the original, and far from a reconstruction of past perception".

—Kuhlmann

में सहायता पहुँचाती है। वे उत्तेजनाएँ प्रायः ऐसी होती हैं, जिनका सम्बन्ध उस अनपस्थित घटना विशेष से रहता है। वस्तुतः मस्तिष्क के ऊपर जो स्मृति चिह्न छूटे रहते हैं, उन सबों में एक तरह का सम्बन्ध कायम हो जाता है, जिसे साहचर्य (Association) की संज्ञा दी जाती है। इस साहचर्य के कारण एक अनुभव दूसरे के अनुभव के प्रत्याह्वान के लिए उत्तेजना का काम करता है। उदाहरण के लिए, यदि हमें गुलाब के फूल की गंध मिलती है, तो अपनी वाटिका का स्मरण हो आता है, जिसमें गुलाब के फूलों की अनेक पंक्तियाँ हैं। यदि कोई घुँघराले केशवाली युवती को देखता है, तो उसे अपने बचपन की उस प्रेमिका का प्रत्याह्वान हो जाता है, जिनके केश घुँघराले थे। तात्पर्य यह है कि साहचर्य (Association) प्रत्याह्वान में सहायता पहुँचाता है। साहचर्य के प्रकार और स्वरूप और साहचर्य के प्रसंग में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है।

पहचानना
(Recognizing)

पहचानना एक ऐसी मानसिक क्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति परिचित वस्तुओं को अपरिचित वस्तुओं से तथा पूर्वानुभूत वस्तुओं को अभिनव वस्तुओं से अलग करता है। वस्तुतः जब उसके सामने परिचित वस्तुओं के साथ-साथ कुछ अपरिचित वस्तुओं को भी उपस्थित किया जाता है, तब स्पष्टतः वह उनमें भेद कर लेता है। यह पहचानने की क्रिया का ही फल है। इसी तरह, जब किसी के सामने पूर्वानुभूत वस्तुओं के साथ-साथ नयी वस्तुएँ भी प्रस्तुत की जाती हैं, तब वह पूर्वानुभूत वस्तुओं को नई वस्तुओं से अलग कर लेता है। यह भी पहचानने की क्रिया का ही परिणाम है। पहचानने की क्रिया की जाँच प्रायः इस प्रकार की जाती है:—

प्रयोज्य (Subject) के सामने कुछ निरर्थक शब्द-खंड (Nonsense syllables), शब्द (Words) अथवा चित्र (Pictures) उपस्थित किये जाते हैं। फलतः वह उनसे परिचित हो जाता है। तत्पश्चात् उन्हें कुछ नये निरर्थक शब्द-खंडों, शब्दों अथवा चित्रों के साथ मिला दिया जाता है और तब अव्यवस्थित ढंग से उन्हें फिर प्रयोज्य के सामने प्रस्तुत किया जाता है। अब प्रयोज्य को यह बतलाना होता है कि उसके समक्ष प्रस्तुत किये गये निरर्थक शब्द-खंडों, शब्दों अथवा चित्रों में कौन परिचित तथा पूर्वानुभूत है स्पष्टतः इस प्रकार के प्रयोगों से पहचानने की क्रिया की जाँच सरलता से हो जाती है।

प्रत्याह्वान और पहचान
(Recall and Recognition)

पहचानने की क्रिया अपने कार्यों में प्रत्याह्वान की क्रिया से भिन्न होती है। पहचानने की क्रिया में वस्तु उपस्थित रहती है। किन्तु प्रत्याह्वान में वस्तु उपस्थित नहीं होती। उदाहरण के लिए, प्रत्याह्वान की क्रिया में प्रायः ऐसा होता है कि यदि 'क' उत्तेजना के रूप में उपस्थित किया जाता है, तो हमें एक दूसरी वस्तु 'ख' का प्रत्याह्वान करना पड़ता है। पहचानने की क्रिया में यदि 'क' उपस्थित किया जाता है, तो हमें उसे ही पहचानना भी पड़ता है

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि प्रत्याह्वान एवं पहचान अपने-अपने कार्यों में एक-दूसरे से भिन्न है। किन्तु यहाँ यह बतला देना अभीष्ट जान पड़ता है कि ये दोनों ही क्रियाएं परस्पर-सम्बन्धित है। इनका परस्पर-सम्बन्ध एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट हो जायगा। मान लीजिए कि यदि कोई व्यक्ति भूतकाल में देखी हुई घटना का प्रत्याह्वान करता है और यह निश्चय कर लेता है कि वह घटना कब और कहाँ घटी थी, तो हम कह सकते हैं कि उसने भूत-काल की स्वानुभूत घटना को पहचान लिया है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि पहचानने की क्रिया में 'कब और कहाँ', अर्थात् समय और स्थान का ज्ञान वर्त्तमान रहता है।

समय और स्थान को दृष्टिकोण में रखते हुए पहचान को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) निश्चित पहचान (Definite recognition), और

(२) अनिश्चित पहचान (Indefinite recognition)।

जब भूतकाल की घटना के विषय में निश्चयपूर्वक ज्ञान हो जाता है कि यह घटना कब और कहाँ घटी थी, तब उसे निश्चित पहचान (Definite recognition) कहा जाता है। अनिश्चित पहचान में ऐसा जान पड़ता है, मानों अमुक वस्तु या व्यक्ति परिचित तो है, किन्तु उसे कब और कहाँ देखा था, इसका ज्ञान नहीं रहता। दूसरे शब्दों में, अनिश्चित पहचान में केवल परिचय की भावना-मात्र वर्त्तमान रहती है, समय और स्थान का ज्ञान नहीं रहता है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से प्रमाणित होता है कि पहचानने की क्रिया प्रत्याह्वान से सरल एवं आसान होती है। वस्तुतः हम जिस वस्तु अथवा व्यक्ति का प्रत्याह्वान नहीं कर पाते, उसे देखकर आसानी से पहचान लेते

हैं। एचिल्स (Achills) के द्वारा किये गये एक प्रयोग से स्पष्टतः प्रकट होता है कि पहचानने की क्रिया प्रत्याह्वान की क्रिया से सरल एवं आसान होती है। निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है कि एक वस्तु अथवा विषय के प्रत्याह्वान का फलांक (Recall score) पहचानने के फलांक (Recognition score) से बहुत ही कम है। इससे प्रत्याह्वान की कठिनाई और पहचानने की क्रिया की सुगमता प्रकट होती है—

	शब्द-खंड (Syllables)	शब्द (Words)	कहावतें (Proverbs)
प्रत्याह्वान-फलांक (Recall-score)	१२%	३६ %	२२%
पहचान-फलांक (Recognition score)	४२%	६५%	६७%

भूलना
(Forgetting)

भूलना एवं उसका स्वरूप (Forgetting and its nature;— जब हम किसी विषय को याद करते हैं, तब उसके स्मृति-चिह्न (Memory-trace) मस्तिष्क पर छुट जाते हैं। मस्तिष्क पर छुटे हुए स्मृति-चिह्नों का कमजोर पड़ना अथवा मिट जाना ही भूलना कहलाता है। उदाहरण के लिए, यदि हम कोई कविता याद करते हैं, तो उस कविता की छाप मस्तिष्क पर छुट जाती है, अथवा उसका साहचर्य (Association) पूर्व अनुभूतियों के साथ स्थापित हो जाता है। कुछ दिनों के बाद जब हम उस कविता का प्रत्याह्वान (Recall) करने लगते हैं, तब वह कविता याद नहीं आती; क्योंकि उसकी छाप उस समय तक मस्तिष्क पर से मिट गयी रहती है अथवा साहचर्य समाप्त हो गया होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भूलना एक ऐसी मानसिक क्रिया है, जिसमें मस्तिष्क पर छुटे हुए स्मृति-चिह्न मिट जाते हैं तथा पूर्व अनुभूतियों के साथ उनके साहचर्य का अन्त हो जाता है।

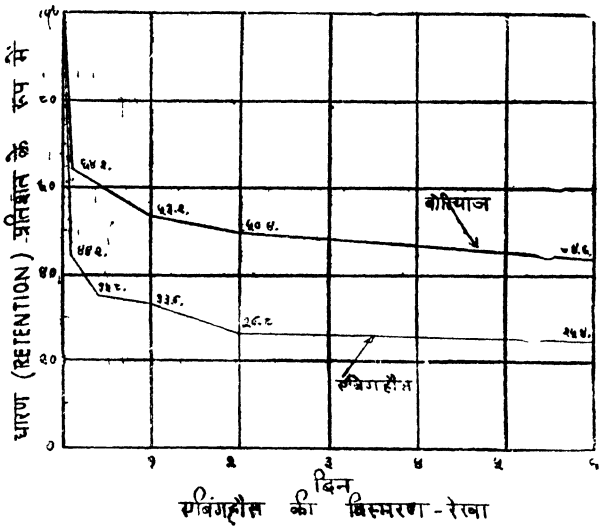
भूलने के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए प्राचीन मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि यह एक निष्क्रिय क्रिया (Passive process) है। इसे निष्क्रिय क्रिया इसलिए माना गया है कि हम प्रायः किसी विषय को काल-व्यवधान (Lapse of time) के कारण भूल जाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि हमने कोई कविता सीख ली और एक वर्ष बाद उसका प्रत्याह्वान (Recall) करते

है, तो उसका प्रत्याह्वान नही हो पाता, क्योकि हम उसे भूल गये रहते है। यहाँ भूलने का कारण एक वर्ष का समय है, जो याद करने और पुनः प्रत्याह्वान के बीच गुजर चुका है। स्पष्ट है कि किसी विषय को सीखने अथवा याद करने के बाद जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे वह विषय भी भूलता जाता है, क्योकि उसकी छाप मस्तिष्क से मिटती जाती है। इस सबध मे एबिगहौस (Ebbinghaus) का प्रयोगात्मक अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी विस्मरण-रेखा (Forgetting curve) यह प्रकट करती है कि हम प्राय. किसी विषय को समय बीतने के कारण भूलते जाते है। उन्होने यह प्रयोग अपने ही ऊपर किया। उन्होने कई निरर्थक शब्द-खडो की सूचियो (Lists of nonsense syllables) को याद किया। कुछ निरर्थक शब्द-खडो की सूचियो को तो उन्होने २० मिनट बाद फिर से याद किया, कुछ को एक दिन बाद, कुछ को दो दिन बाद, कुछ को ६ दिन बाद और कुछ को ३१ दिन बाद फिर से याद किया। पुन सीखने (Relearning) मे समय और पढ़ने की सख्या मे जो बचत हुई, उसे उन्होंने नोट कर लिया। इस प्रयोग मे यह पाया गया कि २० मिनट की अवधि (Interval) मे ४७ प्रतिशत, एक दिन मे ६६ प्रतिशत, दो दिन मे ७२ प्रतिशत, ६ दिन मे ७५ प्रतिशत और ३१ दिन मे ७९ प्रतिशत बाते भूल गयी। नीचे प्रस्तुत की गयी एबिगहौस की विस्मरण-रेखा (Forgetting curve) से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

एबिगहौस की इस विस्मरण-रेखा (Forgetting curve) की विशेषता यह है कि प्रारम्भ मे भूलना बडी तेजी से होता है। फिर भूलना क्रमशः धीरे-धीरे होता है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, भूलना एक निष्क्रिय क्रिया है, जो समय बीतने के कारण होती है। कुछ मनोवैज्ञानिको का मत इसके विरुद्ध है। उनका कहना है कि भूलना एक सक्रिय क्रिया (Active process) है और यह समय बीतने के कारण नहीं होता है, वरन् उस समय के भीतर होनेवाली अनेक क्रियाओ के प्रभाव के फलस्वरूप हम किसी विषय को भूल जाते है। जैसा कि वुडवर्थ ने कहा है, समय स्वत. मस्तिष्क के ऊपर छुटे हुए स्मृति-चिह्न को नहीं मिटा सकता, प्रत्युत किसी विषय को सीखने और प्रत्याह्वान (Recall) करने के समय के बीच की अवधि मे होनेवाली

भिन्न-भिन्न क्रियाओं का प्रभाव स्मृति-चिह्न पर पड़ता है। फलतः स्मृति चिह्न मस्तिष्क से मिट जाते है और हम उस विषय को भूलते जाते हैं।*



एबिंगहौस की विस्मरण-रेखा

(Ebbinghaus's forgetting curve)

मनोविश्लेषण के मननशील विद्वान् सिगमंड फ्रायड (Sigmond Freud) ने भी भूलने को एक सक्रिय क्रिया माना है। उनका कहना है कि भूलना सर्वदा काल-व्यवधान (Lapse of time) के ही कारण नही होता, वरन् यह एक सक्रिय क्रिया है, जो किसी विषय को भूल जाने की प्रबल इच्छा के कारण उत्पन्न होती है। हम प्राय. अपने अप्रिय अनुभवो को भुला देना चाहते है, इसलिए, उन्हे भूल जाते है। दु.खद एव अप्रिय घटनाओ तथा अनुभूतियो को हम दबा देते है, उन्हे चेतना मे नही रहने देना चाहते। फलत. वे घटनाएँ अथवा अनुभूतियाँ अचेतन मानस (Unconscious mind) मे चली जाती है। अतएव, यह स्पष्ट है कि दु.खद एव अप्रिय घटनाओं तथा अनुभूतियों का दमन (Repression) ही भूलने का कारण है। किसी विषय को भूलने मे व्यक्ति-विशेष का हाथ रहता है, क्योंकि

*"When we speak of forgetting as due to the lapse of time, we do not really mean that mere time does anything to the trace. Time is not a force or agency, only the processes that go on in time accomplish results."—Woodworth R. S. : Experimental Psychology, P. 52.

भूलने से उसके अभिप्राय की सिद्धि होती है और फलतः वह आत्मरक्षा का अनुभव करता है। इसीलिए, फ्रायड ने भूलने की क्रिया को सक्रिय (Active), साभिप्राय (Purposive) और रक्षात्मक (Protective) कहा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भूलना एक निष्क्रिय क्रिया नहीं, बल्कि एक सक्रिय क्रिया है। कारण, जिस काल-व्यवधान (Lapse of time) के आधार पर इसे निष्क्रिय क्रिया कहा जाता है, उस काल-व्यवधान की अवधि यों ही नहीं बीतती, बल्कि उसमें अनेक प्रकार की क्रियाएँ होती रहती हैं, जिनका प्रभाव स्मृति-चिह्न (Memory-trace) पर पड़ता रहता है। फलस्वरूप, वह स्मृति-चिह्न मस्तिष्क से मिटता जाता है और हम उसे भूल जाते हैं। अतएव, यह निष्कर्ष अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है कि भूलना निष्क्रिय नहीं, बल्कि एक सक्रिय क्रिया है।

भूलने के कारण

(१) **विषय की निरर्थकता**—प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सार्थक विषयों की अपेक्षा निरर्थक विषय अति शीघ्र भूल जाते हैं। कारण, निरर्थक विषयों की गहरी छाप मस्तिष्क पर नहीं पड़ने पाती तथा दृढ़ रूप में उन विषयों का साहचर्य पूर्व अनुभूतियों के साथ स्थापित नहीं हो पाता। फलतः कालक्रम से उन विषयों के स्मृति-चिह्न मस्तिष्क से मिटते जाते हैं और अन्ततोगत्वा हम उन विषयों को भूल जाते हैं। इसके सिवा, निरर्थक विषयों का व्यक्ति के जीवन के साथ किसी भी तरह का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। फलस्वरूप, उन विषयों का कभी मानसिक पर्यवेक्षण (Mental review) भी नहीं हो पाता। ऐसी अवस्था में निरर्थक विषयों का भूल जाना स्वाभाविक ही है।

(२) **पाठ्य-विषय की लम्बाई का प्रभाव**—प्रयोगों के आधार पर कहा जा सकता है कि यदि लम्बे और छोटे विषय समान रूप से याद कर लिये जायँ, तो छोटे विषय लम्बे विषय की अपेक्षा जल्दी भूल जायेंगे। एबिंगहौस के द्वारा किये गये प्रयोगों से यही बात प्रमाणित होती है। अन्य प्रयोगकर्त्ता भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। पाठक को यह बात आश्चर्यजनक लग सकती है कि छोटे विषय जल्दी भूल जायँ और बड़े विषय अधिक दिनों तक याद रह जायँ। किन्तु, उनका यह आश्चर्य शीघ्र ही दूर हो जायगा, यदि वे इस बात पर विचार कर लें कि लम्बे विषय को याद करने में

अधिक अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है तथा छोटे विषय कम अध्ययन में ही अति शीघ्र याद हो जाते हैं। अधिक अध्ययन के कारण लम्बे विषयों की गहरी छाप मस्तिष्क पर पड़ जाती है। अतः वे जल्द नहीं भूलते। इसके विपरीत, छोटे विषय अति शीघ्र याद हो जाते हैं; इसलिए उनकी बहुत हल्की छाप मस्तिष्क पर पड़ती है। फलतः वे अति शीघ्र भूल भी जाते हैं। इसके अतिरिक्त छोटे विषय का याद करने में विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती; किन्तु बड़े विषय को याद करने के लिए विशेष रूप से प्रयास करना पड़ता है। याद करनेवाला व्यक्ति लम्बे विषय के सभी अंगों में उनके अर्थ के आधार पर सम्बन्ध स्थापित करता है। फलतः उस विषय के अपेक्षाकृत स्थायी स्मृति-चिह्न मस्तिष्क पर अंकित हो जाते हैं। अतएव, लम्बे विषय जल्द नहीं भूलते तथा छोटे विषय शीघ्र ही भूल जाते हैं।

(३) **अविराम-रीति द्वारा सीखना** (Learning by massed method):—सीखने की विधियों का उल्लेख करते हुए यह बतलाया जा चुका है कि अविराम-रीति द्वारा सीखा हुआ विषय जल्द भूल जाता है। कारण, इस रीति के अनुसार सीखे हुए विषय के स्मृति-चिह्न मस्तिष्क पर दृढ़ रूप से अंकित नहीं हो पाते। बिना विराम (Interval) के एक ही बार में किसी विषय को सीख लेने से उस विषय के मानसिक पर्यवेक्षण (Mental review) का अवसर नहीं मिलता। फलतः उस विषय की छाप मस्तिष्क पर दृढ़ रूप से अंकित नहीं हो पाती। अतएव, वह विषय शीघ्र ही भूल जाता है। इसके विपरीत, जिस विषय को विराम (Interval) दे-देकर सीखा जाता है, वह जल्दी नहीं भूलता; क्योंकि उसकी गहरी छाप मस्तिष्क पर पड़ी रहती है। एबिंगहौस के द्वारा किये गये प्रयोगों से भी यह बात प्रमाणित होती है; अर्थात् अविराम-रीति द्वारा सीखे गये विषय, विराम-रीति द्वारा सीखे गये विषय की अपेक्षा जल्द भूल जाते हैं।

(४) **अल्प रूप से सीखना** (Under-learning):—जब कोई विषय पूर्ण रूप से नहीं सीखा जाता, तब वह जल्द भूल जाता है। जब किसी विषय को साधारणतः सीख लेने के बाद भी हम उसे पूर्व उत्साह के साथ ही पढ़ते जाते हैं तब वह अच्छी तरह सीख लिया जाता है। इसे मनोवैज्ञानिक शब्दों में विशेष रूप से सीखना (Over-learning) कहते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सीखना दो तरह का होता है—(१) अल्प

रूप मे सीखना और (२) विशेष रूप से सीखना। जब हम साधारणत: किसी विषय को अच्छी तरह सीखने के कुछ पहले ही छोड देते है, तब उस विषय का अल्प रूप से सीखना (Under-learning) होता है। अल्प रूप मे सीखना, भूलने का प्रधान कारण है। अल्प रूप से सीखने मे सीखे गये विषय के स्मृति-चिह्न दृढ रूप से अकित नही हो पाते। अतएव, वे शीघ्र ही मस्तिष्क से मिटने लगते है। फलत हम उस विषय को भूल जाते है। इसके विपरीत, विशेष रूप से सीखने मे सीखे गये विषय के स्मृति-चिह्न मस्तिष्क पर दृढ रूप मे अकित हो जाते है। फलत, उस विषय को हम जल्द नही भूल पाते। मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से सिद्ध है कि अल्प रूप से सीखना, भूलने का एक प्रधान कारण है।

(५) **सीखने के बाद शीघ्र ही सो जाने का प्रभाव**—क्या सोई हुई अवस्था मे भूलना धीरे-धीरे होता है? इस प्रश्न की जाँच जेन्किन्स (Jenkins) और डेलेनबैक (Dallenbach) ने प्रयोग के आधार पर की। उन्होने दो विद्यार्थियो को १० निरर्थक शब्द-खडो की सूचियाँ सीखने के लिए दी। सीख चुकने के कुछ घटो के बाद उनके प्रत्यास्मरण (Recall) की परीक्षा की गयी। सीखने और प्रत्यास्मरण करने के बीच के समय का विद्यार्थियो ने या तो सोने मे बिताया या दिन के कार्यो मे। इस प्रयोग मे यह पाया गया कि सीखने के बाद शीघ्र ही सो जाने मे भूलने की क्रिया बहुत धीरे-धीरे हुई और सीखने के बाद दिन के कार्यो मे लग जाने से भूलने की क्रिया बडी तेजी से आई। अपने प्रयोग के आधार पर पाये हुए इस निष्कर्ष की व्याख्या करते हुए जेन्किन्स (Jenkins) और डेलेनबैक (Dallenbach) ने कहा है कि "भूलना सिर्फ मस्तिष्क पर अकित पुराने चिह्न अथवा पुराने साहचर्य (Association) का मिटना ही नही है, बल्कि उससे कही अधिक नयी क्रियाओ के द्वारा मस्तिष्क पर अकित पुराने चिह्न अथवा पुराने साहचर्य मे बाधा का उपस्थित होना है।"*

जब हम किसी विषय को सीखने के बाद शीघ्र ही किसी दूसरे काम मे लग जाते है, तब नये कार्य पुराने सीखे हुए विषय के मस्तिष्क पर दृढ रूप मे अकित होने मे बाधा पहुँचाते है। फलत हम उस विषय को भूल

---

* "Forgetting is not so much a matter of the decay of the old impression and association as it is a matter of the interference, inhibition or obliteration of the old by the new."
—Jenkins and Dallenbach

जाते हैं। किन्तु जब हम किसी विषय के सीखने के बाद शीघ्र ही सो जाते हैं, तब फल यह होता है कि सीखे हुए विषय की छाप मस्तिष्क में दृढ़ हो जाती है। फलस्वरूप, भूलने की क्रिया जल्द शुरू नहीं होती; क्योंकि सोई हुई अवस्था में अन्य क्रियाओं द्वारा बाधा उपस्थित होने की गुंजाइश बहुत कम हो जाती है।

(६) **पृष्ठोन्मुख अवरोध** (Retroactive inhibition):— पहले कहा जा चुका है कि यदि किसी विषय के सीखने और उसके प्रत्याह्वान के समय के बीच की अवधि में कोई अन्य मानसिक क्रिया हो, तो वह पहले सीखे हुए विषय के प्रत्याह्वान (Recall) को कमजोर करती है अथवा उसमें बाधा उपस्थित करती है। इसे ही पृष्ठोन्मुख अवरोध कहते हैं। पृष्ठोन्मुख अवरोध भूलने का एक प्रधान कारण है। मान लीजिए कि यदि कोई विषय किसी को सीखने के लिए दिया जाय और आधे घंटे के बाद उसके प्रत्याह्वान (Recall) की परीक्षा की जाय, तो सीखने के समय और प्रत्याह्वान के समय के बीच की अवधि को वह दो तरह से बिता सकता है— एक तो विश्राम में और दूसरे, अन्य मानसिक क्रियाओं में। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर यह पाया गया है कि जब किसी विषय के सीखने के समय और प्रत्याह्वान के समय के बीच की अवधि को विश्राम में बिताया जाता है, तब प्रत्याह्वान अच्छा होता है। इसके विपरीत, यदि उस अवधि को अन्य मानसिक क्रियाओं में बिताया जाता है, तो प्रत्याह्वान अच्छा नहीं होता। उस सीखे हुए विषय की अनेक बातें भूल जाती हैं। उदाहरण-स्वरूप, मूलर और पिलजेकर (Muller and Pilzecker) द्वारा किये गये प्रयोग के फलों को नीचे उद्धृत किया जाता है—

सीखना	विश्राम	प्रत्याह्वान	५६ प्रतिशत
सीखना	अन्य मानसिक क्रिया	प्रत्याह्वान	२६ प्रतिशत

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सीखने तथा प्रत्याह्वान के समय के बीच की अवधि में विश्राम की अपेक्षा अन्य मानसिक क्रिया के होने से ३० प्रतिशत अधिक बातें भूल गयीं। इसकी व्याख्या करते हुए यह कहा जा सकता है कि सीखने और उसके प्रत्याह्वान के समय के बीच की अवधि में जो अन्य मानसिक क्रियाएँ होती हैं, वे पहले सीखे हुए विषय के प्रत्याह्वान में बाधा पहुँचाती हैं। फलतः पहले सीखे हुए विषय की अधिकांश बातें प्रत्याह्वान करते समय भूल जाती हैं। किन्तु जब सीखने तथा प्रत्याह्वान के समय के बीच की अवधि में विश्राम किया जाता है, तब प्रत्याह्वान के

अच्छा होने की संभावना बढ़ जाती है; क्योंकि पहले सीखे हुए विषय की छाप मस्तिष्क पर दृढ़ रूप से अंकित हो जाती है। इस सम्बन्ध में कई मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की स्थापना की गयी है, जिनका उल्लेख यहाँ अभीष्ट नहीं है।

पृष्ठोन्मुख अवरोध के सम्बन्ध में किये गये अनेक प्रयोगों के आधार पर यह पाया गया है कि जब किसी विषय को सीखने के बाद हम शीघ्र ही दूसरी मानसिक क्रिया में लग जाते हैं, तब पृष्ठोन्मुख अवरोध की संभावना अधिक हो जाती है। दूसरी प्रधान बात यह है कि जब हम किसी एक विषय को सीख लेने के बाद उससे मिलता-जुलता कोई दूसरा विषय सीखते हैं और तब पहले सीखे हुए विषय का प्रत्याह्वान करने लगते हैं, तब उसकी अधिकांश बातें भूल जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि समान विषयों में पृष्ठोन्मुख अवरोध अधिक होता है। उदाहरण के लिए, निरर्थक शब्द-खंडों की एक सूची (A list of nonsense syllables) सीख लेने के बाद यदि निरर्थक शब्द-खंडों की दूसरी सूची सीखी जाती है, तो पहले सीखी हुई निरर्थक शब्द-खंडों की सूची के प्रत्याह्वान में अत्यधिक बाधा पहुँचती है। कारण, दोनों ही विषय बहुत कुछ एक ढंग के हैं—दोनों निरर्थक शब्द-खंडों की सूचियाँ हैं। अतः दोनों में अत्यधिक समानता है।

(७) अप्रिय अनुभूतियों का दमन (Repression of unpleasant experiences):—फ्रायड ने अपनी पुस्तक 'साइकोपैथोलौजी ऑफ एवरी-डे लाइफ (Psycho-pathology of Everyday life) में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि हम किसी विषय को इसलिए भूल जाते हैं कि उसे भुलाने की हमारी प्रबल इच्छा रहती है। आगे उन्होंने यह भी बतलाया है कि हम प्रायः अपनी अप्रिय अथवा दुःखद अनुभूतियों को ही भूलते हैं; क्योंकि उनको अपने भीतर से निकाल फेंकने की हमारी प्रबल इच्छा रहती है। फलतः उन अनुभूतियों का दमन हो जाता है और वे चेतना से हट जाती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जीवन की अप्रिय अनुभूतियाँ प्रिय अनुभूतियों की अपेक्षा जल्द भूल जाती हैं। इसके पक्ष में कई प्रयोगात्मक प्रमाण भी मिलते हैं। यहाँ दो-एक प्रयोगों का उल्लेख कर देना आवश्यक जान पड़ता है।

जर्सिल्ड ने सन् १९३१ ई० में एक प्रयोग किया। उनके प्रयोग का लक्ष्य यह जानना था कि क्या जीवन की अप्रिय घटनाएँ अथवा अनुभूतियाँ प्रिय घटनाओं अथवा अनुभूतियों की अपेक्षा जल्द भूल जाती हैं? उन्होंने

कॉलेज के ५१ विद्यार्थियो के ऊपर प्रयोग किया। विद्यार्थियों को कागज का एक टुकड़ा दे दिया गया और उसपर पिछले तीन सप्ताहो की प्रिय अनुभूतियों का प्रत्याह्वान (Recall) कर लिखने को कहा गया। इसी प्रकार उन्हे पुन कागज का एक टुकडा देकर उसपर पिछले तीन सप्ताहो की सारी अप्रिय अनुभूतियों का प्रत्याह्वान कर लिखने को कहा गया। २१ दिनों के बाद फिर उन विद्यार्थियों को उन्ही तीन सप्ताहो की सारी प्रिय एवं अप्रिय अनुभूतियों का प्रत्याह्वान कर लिखने को कहा गया, जिन्हे वे पहले प्रयोग में लिख चुके थे। प्रयोगकर्त्ता ने पहले प्रत्याह्वान और २१ दिनों के बाद के प्रत्याह्वान की तुलना की। इस तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उन्हे निम्नांकित बाते मिलीं --

	प्रिय अनुभूतिया	अप्रिय अनुभूतियाँ
प्रथम प्रत्याह्वान	१६ ३५ प्रतिशत	१३ ७ प्रतिशत
२ दिनो के बाद का प्रत्याह्वान	७ प्रतिशत	३ १८ प्रतिशत

अपने प्रयोग के फलो के आधार पर जर्मिल्ड इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अप्रिय घटनाएं अथवा अनुभूतियाँ, प्रिय घटनाओ अथवा अनुभूतियो की अपेक्षा जल्द भूल जाती है। अपने इस निष्कर्ष की व्याख्या करते हुए उन्होंने बतलाया है कि अधिकांश अप्रिय बातें इसलिए भूल जाती है कि मनुष्य उनका मानसिक पर्यवेक्षण (Mental review) नही करता, वरन् अपने मस्तिष्क से उन्हें निकाल फेकना चाहता है। वस्तुत उनकी यह व्याख्या अत्यन्त समुचित जान पडती है। प्रतिदिन के जीवन मे यह पाया जाता है कि मनुष्य प्राय अपनी प्रियतमा के प्रेम-पत्र को जल्द नही भूलता, लेकिन अपमानजनक बातों को भूल जाता है। कारण यह है कि वह प्रेम-पत्र को बार-बार पढता है, उसका मानसिक पर्यवेक्षण करता है, किन्तु अपमानजनक बातों को वह जल्द-से-जल्द मस्तिष्क से निकाल फेकना चाहता है, अथवा उन्हें भुला देना चाहता है।

कौक (Koch) ने भी इस सम्बन्ध मे एक प्रयोग किया है। कौक के प्रयोग के फल भी जर्मिल्ड के पहले के ही समान है। उन्होने कुछ व्यक्तियो को प्रिय अथवा अप्रिय शब्दों की सूचियाँ सीखने के लिए दी। तत्पश्चात उनके प्रत्याह्वान की जाँच की। प्रयोग के आधार पर निम्नलिखित फल पाये गये--

	अति प्रिय शब्द	प्रिय शब्द	अति अप्रिय शब्द	अप्रिय शब्द
प्रत्याह्वान (Recall)	५२%	४१%	३२%	३२%

कौक ने यह पाया कि अधिकाश व्यक्ति अपनी प्रिय अनुभूतियो को ही याद रखते है तथा अप्रिय अनुभूतियो को भूल जाते है। किन्तु कुछ ऐसे भी व्यक्ति है, जो अपनी अप्रिय अनुभूतियो को प्रिय अनुभूतियो की अपेक्षा अधिक याद रखते है।

उपर्युक्त प्रयोगो के फलो से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि मनुष्य अप्रिय घटनाओ अथवा अनुभूतियो को प्रिय घटनाओ अथवा अनुभूतियो की अपेक्षा जल्द भूल जाता है।

स्मृति-शिक्षण

(Memory Training)

स्मृति-शिक्षण के सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है--"क्या शिक्षण के द्वारा स्मृति सुधारी जा सकती है?" परम्परागत लोग ऐसा मानते थे कि शिक्षण से स्मृति सुधारी जा सकती है। किन्तु विलियम जेम्स ने इस विचार का खंडन किया है। उन्होने यह बतलाया है कि धारण की क्रिया (Retention) एक शारीरिक गुण अथवा विशेषता है। अतएव, व्यक्ति की शारीरिक बनावट, अवस्था एव स्वास्थ्य के अनुसार धारण-क्रिया मे परिवर्त्तन सभव है, किन्तु शिक्षण से स्मृति नही सुधारी जा सकती। स्पष्ट है कि शारीरिक बनावट, अवस्था एव स्वास्थ्य के कारण धारण-क्रिया मे कमी-बेशी हो सकती है। किन्तु शिक्षण का स्मृति के ऊपर कोई प्रभाव नही पडता। विलियम जेम्स ने इस सम्बन्ध मे अनेक प्रयोग किये है। अपने प्रयोगो के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि धारण-क्रिया के ऊपर शिक्षण का कोई प्रभाव नही पडता। स्मृति मे जो कुछ उन्नति दीख पडती है, वह स्मरण करने की अच्छी रीतियो के कारण, न कि स्मृति-शिक्षण के कारण। तात्पर्य यह है कि स्मरण करने की विधि अच्छी हो, तो स्मृति मे उन्नति जान पडेगी। जैसा कि विलियम जेम्स ने स्वय कहा है--"स्मृति के सभी प्रकार के सुधार तथ्यो के ग्रहण करने के व्यक्ति के अभ्यासजन्य रीतियो के सुधार मे ही निहित रहते है।"*

जब किसी विषय को सीखते समय उत्तम विधियो का प्रयोग किया जाता है, तब उस विषय की स्मृति अच्छी होती है। फलत स्मृति मे उन्नति

---

*"All improvement of memory consists, then, in the improvement of one's habitual methods of recording facts."
—William James

दीख पडती है। किन्तु हम जैसे ही उत्तम विधियो का प्रयोग करके सीखना छोड देते है, वैसे ही हमारी स्मृति भी पहले की तरह ही हो जाती है, उसमे आयी हुई उन्नति एकाएक मिट जाती है। इस सम्बन्ध मे कॉलेज के कुछ विद्यार्थियो के ऊपर एक प्रयोग किया गया। उन सभी विद्यार्थियो को दो समुदायो मे बाँट दिया गया। पहले समुदाय के विद्यार्थियो को कई प्रकार के विषय अच्छी तरह सिखलाये गये। फिर उन्ही विषयो के समान अन्य विषय सीखने को दिये गये। किन्तु उनकी स्मृति मे किसी प्रकार का सुधार नही पाया गया। दूसरे समुदाय के विद्यार्थियो ने सीखते समय सीखने की अच्छी रीतियो का उपयोग किया। फलत जब उन्हे फिर दूसरा विषय सीखने को दिया गया, तब उनकी स्मृति मे पर्याप्त उन्नति पायी गयी। इस प्रयोग से स्पष्ट है कि सीखने की अच्छी रीतियो के उपयोग से स्मृति उन्नत जान पड़ती है। सीखने की निम्नलिखित विधियो के उपयोग करने से स्मृति उन्नत जान पड सकती है--

(१) किसी विषय को निश्चित लक्ष्य से प्रेरित होकर पढ़ना तथा उसमे अभिरुचि का होना।

(२) मानसिक पर्यवेक्षण (Mental review) का सहारा लेना।

(३) पूर्ण रीति (Whole method) द्वारा किसी विषय को सीखना।

(४) विराम-रीति (Spaced method) द्वारा किसी विषय को सीखना।

(५) पाठ्य-विषय को बार-बार दुहराना।

(६) किसी विषय को सीखने के बाद विश्राम करना और इस प्रकार पृष्ठोन्मुख अवरोध (Retroactive inhibition) से बचना।

(७) पाठ्य-विषय को जीवन के लक्ष्य अथवा जीवन-परिस्थिति से सम्बद्ध करके सीखना।

(८) किसी विषय को सीखते समय प्रतिमाओ (Images) का उपयोग करना।

(९) नये सीखे हुए पाठ्य-विषय को पुराने सीखे हुए पाठ्य-विषय से संबद्ध करना, अर्थात् साहचर्य (Association) का उपयोग करना।

(१०) लय (Rhythm) का उपयोग कर किसी विषय को सीखना।

(११) मानसिक सतर्कता (Mental alertness) एवं आत्म-विश्वास (Self-confidence) के साथ किसी विषय को सीखना।

दसवाँ अध्याय

प्रतिमा और कल्पना

प्रत्यक्षीकरण के अध्याय मे बतलाया जा चुका है कि वस्तु अथवा परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के लिए बाह्य उत्तेजना (External stimulus), सवेदना (Sensation) तथा पूर्व अनुभूति (Past experience) आवश्यक है। बिना बाह्य उत्तेजना के सवेदना नही उत्पन्न हो सकती और बिना सवेदना के प्रत्यक्षीकरण की क्रिया नही सम्पन्न हो सकती। किन्तु बाह्य मौलिक उत्तेजना तथा सवेदना की अनुपस्थिति मे भी पूर्व प्रत्यक्षीकरण की स्मृति हो सकती है। पूर्व प्रत्यक्षीकरण की वह स्मृति पूर्ण भी हो सकती है तथा आशिक भी, अर्थात् कभी तो यह सभव है कि पूर्व प्रत्यक्षीकरण का पूर्ण रूप से प्रत्याह्वान (Recall) हो और सिर्फ उसके कुछ अशो का ही प्रत्याह्वान हो। वस्तुत जब किसी वस्तु अथवा परिस्थिति की अनुपस्थिति मे उसकी स्मृति होती है, तब उसकी बहुत सारा विशेषताएं हमारे सामने प्रतिमा के रूप मे आ जाती है। उदाहरण के लिए, जब हम पूर्वानुभूत खेल का स्मरण करते है, तब स्वभावत खेल के मैदान के दृश्य हमारे सामने आ जाते है। सभव है कि खेल के मैदान के सभी दृश्य स्मृति मे न भा आ सके, और सभवत कुछ ऐसे दृश्य भी स्मृति मे आ जाय, जो वस्तुत उस खेल के मैदान मे नही थे। अत यह कहा जा सकता है कि प्रतिमा पूर्व प्रत्यक्षीकरण का प्रत्याह्वान-मात्र नही है। उसमे कुछ पूर्व प्रत्यक्षीकरण की बाते तथा कुछ नयी बाते भी होती है। वास्तव मे प्रतिमा वह नवीन चेतन स्मृति है, जिसमे बाह्य मौलिक उत्तेजना (Etxernal original stimulus) के अनुपस्थित रहने पर भी पूर्व प्रत्यक्षीकरण का पूर्ण अथवा आशिक रूप मे प्रत्याह्वान होता है।

प्रतिमाओ का स्वरूप

(Nature of Images)

मनुष्य के मानसिक जीवन से प्रतिमा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिए तो साहित्य मे भी इसकी अत्यधिक चर्चा पायी जाती है। जर्मन कवि गेटे

प्रायः कहा करते थे कि जब कभी वे अपनी आँखें बन्द कर गुलाब के फूल के सम्बन्ध में सोचने लगते थे, तब उन्हें ऐसा जान पड़ता था, मानों वे गुलाब के फूल की प्रस्फुटित होनेवाली पंखुड़ियों को साक्षात् रूप से देख रहे हों। स्पष्ट है कि गुलाब का फूल गेटे के सामने दृष्टि-प्रतिमा (Visual image) के रूप में चला आता था। प्रसिद्ध संगीतज्ञ बीथोवेन (Beethoven) के सम्बन्ध में कहा जाता है कि बहरा होने के बाद उन्होंने अनेक मधुर गानों की रचना की। इस उक्ति की पुष्टि में यह कहा जा सकता है कि जब कभी बीथोवेन मधुर गानों के सम्बन्ध में सोचने लगते थे, तब उनके सामने मधुर गानों की प्रबल एवं स्पष्ट स्वर-प्रतिमाएँ (Auditory images) आ जाती थीं।

प्रतिमा वस्तु-ज्ञान से भिन्न होती है। किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर उसका वर्णन करना कुछ और है तथा उसका प्रतिमा के रूप में अनुभव करना कुछ और हो। बिना प्रतिमा के भी अतीत की घटनाओं का स्पष्ट रूप से वर्णन हो सकता है। वाटिका की प्रतिमा के बिना भी कोई व्यक्ति अपनी वाटिका की दूरी, उसके आकार, फूल, पेड़-पौधे आदि का वर्णन कर सकता है। ये दोनों एक-दूसरे से भिन्न क्रियाएँ जान पड़ती हैं।

प्रतिमा, पूर्व-प्रत्यक्षीकरण का प्रत्याह्वान कही जाती है। इससे यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि प्रतिमा पूर्व-अनुभूति का अनुकरण-मात्र है। वस्तुतः कोई भी प्रतिमा पूर्व-अनुभूति का अनुकरण मात्र नहीं होती, वरन् वह रचनात्मक स्वभाव (Creative nature) की होती है। इसे रचनात्मक इस लिए कहा जाता है कि पूर्वानुभूत घटनाओं की सभी बातें प्रतिमा में नहीं आती, प्रत्युत इसमें पूर्वानुभूत घटनाओं की भी कुछ बातें रहती हैं और कुछ नयी बातें भी जोड़ दी जाती हैं। प्रतिमा में नयी बातें जोड़ते समय व्यक्ति अपनी अभिरुचि एवं मानस-वृत्ति से प्रभावित होता है। इससे स्पष्ट है कि प्रतिमा दो बातों से प्रभावित होती है—एक तो व्यक्ति की अभिरुचि एवं मानस-वृत्ति से तथा दूसरी, अनुभूति से।

मनुष्य को प्रायः दृष्टि-प्रतिमा (Visual image) का ही अधिक अनुभव होता है। किन्तु इससे यह भ्रम नहीं उत्पन्न होना चाहिए कि प्रतिमा केवल दृष्टि-सम्बन्धी (Visual) ही होती है। वास्तविकता तो यह है कि जितनी प्रकार की संवेदनाएँ होती हैं, उतनी ही प्रकार की प्रतिमाओं का भी अनुभव हो सकता है। दृष्टि-प्रतिमा की तरह श्रवण-प्रतिमा, घ्राण-प्रतिमा, स्पर्श-प्रतिमा आदि का भी अनुभव होता है। सामान्यतः सभी व्यक्ति

सभी प्रतिमाओं का अनुभव कर सकते हैं। किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि मानव-जीवन में अन्य प्रतिमाओं की अपेक्षा दृष्टि-प्रतिमाओं की अधिकता एवं प्रधानता सबसे अधिक है। इसके सिवा, प्रत्येक व्यक्ति प्रतिमा के अनुभव में एक-दूसरे से भिन्न हुआ करता है। किसी को दृष्टि-प्रतिमा का अधिक अनुभव होता है, तो किसी का श्रवण-प्रतिमा का। वैसे ही किसी को घ्राण-प्रतिमा का अधिक अनुभव होता है, तो किसी को स्पर्श-प्रतिमा का।

प्रतिमाओं की विशेषताएँ

(Characteristics of Images)

प्रतिमाओं के सम्बन्ध में अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं। उनसे प्रतिमाओं की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रतिमाओं की चार प्रमुख विशेषताएँ हैं—

(१) **विस्तृत विवरण की कमी** (Lack of details):—प्रतिमा में पूर्व अनुभूति का पूर्ण विवरण नहीं मिलता। उसमें पूर्व अनुभूति की बहुत-सी बातें छूट जाती हैं और कुछ नयी बातें भी मिल जाती हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई पूर्वानुभूत चाय-पार्टी की प्रतिमा अपनी स्मृति में लाये, तो संभवतः उसकी सभी बातें प्रतिमा में नहीं आ सकेंगी और कुछ ऐसी बातें भी आ जायेंगी, जिनका वास्तव में उसने अनुभव नहीं किया था। कदाचित् उसकी प्रतिमा में यह बात आ सकती है कि चाय-पार्टी अमुक स्थान पर हुई थी और उसमें कुछ विशेष लोग आमन्त्रित थे। किन्तु उसका पूर्ण विवरण, जैसे कमरे के दरवाजे पर टँगे हुए पर्दे का रंग, कमरे की खिड़कियों की संख्या, प्लेट के आकार तथा रंग, दीवार में टँगे हुए अनेक चित्र आदि पूर्वानुभूत बातें संभवतः उसकी प्रतिमा में नहीं आ सकेंगी।

(२) **स्थिरता की कमी** (Lack of stability) :—प्रतिमा स्थिर नहीं होती। वह अत्यन्त ही चंचल होती है। वह बहुत जल्दी-जल्दी बदलती रहती है। मनुष्य के सामने कोई प्रतिमा आती है और देखते-देखते चली जाती है। कुछ ही समय के भीतर कई प्रतिमाओं का अनुभव हो जाता है। प्रतिमाओं का यह परिवर्त्तन, सादृश्य (Similarity), विरोध (Contrast) आदि साहचर्य-नियमों (Laws of Association) के अनुसार होता है।

(३) **स्पष्टता की कमी** (Lack of clearness):—प्रतिमा में

पूर्वानुभूत घटना अथवा परिस्थिति स्पष्ट रूप मे नही आती। उसकी हल्की झाँकी अथवा धुँधली छाया-मात्र का ही अनुभव होता है। कभी-कभी दृष्टि-प्रतिमा (Visual image) मे व्यक्ति को पूर्वानुभूत वस्तु स्पष्ट रूप मे नही दीख पडती, किन्तु उसका आभास मिलता है, उसके आकार तथा रूप-रग का अस्पष्ट अनुभव होता है।

(४) **तीव्रता की कमी** (Lack of Litensity) :—प्रतिमा में पूर्वानुभूत तीव्रता का अभाव पाया जाता है। उदाहरण के लिए, जब पूर्वानुभूत बादलो के गर्जन का प्रतिमा के रूप मे अनुभव होता है, तब उसमे पूर्व की भाँति तीव्रता नही पायी जाती। उसी प्रकार तीव्र प्रकाश की प्रतिमा भी उतनी तीव्र नही जान पड़ती।

प्रत्यक्ष तथा प्रतिमा
(**Percept and Image**)

प्रत्यक्ष तथा प्रतिमा में अन्तर—(१) प्रत्यक्ष तथा प्रतिमा मे भेद होता है। इन दोनो मे सर्वप्रथम अन्तर यह है कि प्रत्यक्ष (Percept) के लिए बाह्य उत्तेजना की उपस्थिति अनिवार्य है, किन्तु प्रतिमा के लिए बाह्य उत्तेजना की आवश्यकता नही होती। यदि कोई गुलाब के फूल का प्रत्यक्षीकरण करना चाहे, तो यह आवश्यक है कि उसके सामने गुलाब का फूल बाह्य उत्तेजना के रूप मे उपस्थित हो। किन्तु गुलाब के फूल की प्रतिमा तो एकान्त कमरे मे बैठे बैठे भी आ सकती है, उसको उपस्थिति की कोई आवश्यकता नही पडती। वस्तुत प्रतिमा का सम्बन्ध मनुष्य की मानस-वृत्ति (Mental set) मे होता है, न कि बाह्य उत्तेजना मे। किसी भी क्षण मनुष्य को उसकी मानस-वृत्ति के अनुकूल पूर्वानुभूत घटनाओ अथवा परिस्थितियो का प्रतिमाओ का अनुभव होता रहता है।

(२) तीव्रता (Intensity) के आधार पर भी प्रत्यक्ष तथा प्रतिमा मे भेद किया जाता है। इन दोनो मे अन्तर बतलाते हुए कहा जाता है कि प्रत्यक्ष प्रतिमा की अपेक्षा अधिक तीव्र अथवा प्रबल होता है। उदाहरण-स्वरूप हम सुगन्धित तेल अथवा इत्र के प्रत्यक्ष (Percept) और उसकी प्रतिमा को ले सकते है। संभवत सुगन्धित तेल अथवा इत्र का प्रत्यक्ष उसकी प्रतिमा की अपेक्षा अधिक तीव्र अथवा प्रबल जान पड़ेगा। किन्तु प्रत्यक्ष और प्रतिमा का यह भेद व्यापक नही है तथा सभी अवस्थाओं मे समान रूप से लागू नही होता। प्रत्यक्ष प्रतिमा (Eidetic image) या

प्रारम्भिक स्मृति-प्रतिमा (Primary memory-image) के अध्ययन से स्पष्ट है कि यह प्रतिमा प्रत्यक्ष की तरह ही तीव्र अथवा प्रबल होती है।

(३) प्रत्यक्ष बाह्य उत्तेजनाओं पर अवलम्बित रहता है। अतः प्रत्यक्ष के लिए ज्ञानेन्द्रियों का बाह्य उत्तेजनाओं के प्रति अभियोजन आवश्यक है। स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष में शारीरिक क्रियाएँ भी सन्निहित रहती हैं। जब किसी के सामने प्रकाश उपस्थित किया जाता है, तब उस प्रकाश के प्रत्यक्षीकरण के लिए व्यक्ति अपनी आँखों को उस ओर ले जाता है जिस ओर से वह प्रकाश आता रहता है। इस प्रकार शारीरिक गतियों (Bodily movements) के आधार पर वह अपनी आँखों को प्रकाश के साथ अभियोजित कर लेता है। किन्तु प्रतिमा की अनुभूति के लिए ज्ञानेन्द्रियों के अभियोजन तथा शारीरिक गतियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। कुर्सी पर बैठे-बैठे अथवा बिछावन पर लेटे-लेटे भी प्रकाश की प्रतिमा का अनुभव सहज ही हो जाता है। आँखों को किसी विशेष दिशा की ओर ले जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

(४) प्रत्यक्ष तथा प्रतिमा की प्रक्रियाएं (Processes) विभिन्न प्रकार से सम्पन्न होती हैं। प्रत्यक्ष की प्रक्रिया ज्ञानेन्द्रियों की उत्तेजना (Stimulation) से प्रारम्भ होती है और बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) के ज्ञानेन्द्रिय-सम्बन्धी विशेष स्नायु-केन्द्रों (Specific nerve-centres) में जाकर समाप्त हो जाती है। किन्तु, प्रतिमा का अनुभव तो बृहत् मस्तिष्क के स्नायु-केंद्रों के उत्तेजित होने से ही हो जाता है; ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजना (Stimulation) की कोई आवश्यकता नहीं होती। उदाहरण-स्वरूप, हम संगीत के प्रत्यक्ष तथा उसकी प्रतिमा को ले सकते हैं। संगीत के प्रत्यक्ष के लिए आवश्यक है कि कान उत्तेजित हो। परिणाम-स्वरूप, वहाँ उत्पन्न स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) बृहत् मस्तिष्क के श्रवण-केन्द्र (Auditory centre) में पहुँचे, किन्तु संगीत की प्रतिमा के लिए तो बृहत् मस्तिष्क के श्रवण-केन्द्र का उत्तेजित होना ही पर्याप्त है।

(५) प्रत्यक्ष तथा प्रतिमा में अन्तर करते हुए प्रायः यह भी कहा जाता है कि प्रतिमा में पूर्व प्रत्यक्षीकरण की कुछ ही बातें आ पाती हैं। अतः यह प्रत्यक्ष की अपेक्षा अस्पष्ट होती है। किन्तु, प्रयोगात्मक प्रमाणों के आधार पर यह भेद समुचित नहीं जान पड़ता। प्रयोगात्मक प्रमाण इस पक्ष में है कि यद्यपि प्रतिमा में पूर्व प्रत्यक्षीकरण के कुछ ही अंश आते हैं, फिर भी वह प्रतिमा अस्पष्ट होने के बदले स्पष्ट, निश्चित तथा सार्थक भी हो सकती है।

प्रतिमाओं के प्रकार
(Kinds of Images)

प्रतिमाएँ कई प्रकार की होती हैं। ज्ञानेन्द्रियों को दृष्टिकोण में रखते हुए प्रतिमाएँ पाँच प्रकार की मानी जा सकती हैं—(१) दृष्टि-प्रतिमा (Visual image), (२) श्रवण-प्रतिमा (Auditory image), (३) घ्राण-प्रतिमा (Olfactory image), (४) स्पर्श-प्रतिमा (Tactual image) और (५) स्वाद-प्रतिमा (Gustatory image)। इनके सिवा, मनुष्य अपने जीवन में प्राय. गति-प्रतिमा (Motor image) का भी अनुभव करता है।

उपर्युक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त, प्रत्यक्षीकरण से सादृश्य अथवा विभिन्नता के आधार पर प्रतिमाओं को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है—(१) अनुबिम्ब (After-image), (२) प्रत्यक्ष प्रतिमा (Eidetic image), (३) स्मृति-प्रतिमा (Memory image) तथा (४) काल्पनिक प्रतिमा (Imagination image)।

जहाँ तक ज्ञानेन्द्रिय-सम्बन्धी प्रतिमाओं का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि इनका अनुभव प्राय: सभी व्यक्तियों को अल्पाधिक मात्रा में होता है। सम्भवत: किसी को दृष्टि-प्रतिमा का अधिक अनुभव होता है, तो किसी को श्रवण-प्रतिमा का। प्रतिमाओं के अनुभव में व्यक्ति-विभिन्नता पायी जाती है। इसके आधार पर प्राचीन मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों को कई वर्गों में बाँटा था जैसे चाक्षुषी (Visile), श्रावक (Audile) इत्यादि। किन्तु, उनका यह वर्गीकरण आधुनिक मनोवैज्ञानिकों को मान्य नहीं है। यह ठीक है कि किसी में दृष्टि-प्रतिमा की प्रधानता होती है, तो किसी में श्रवण-प्रतिमा अथवा स्पर्श-प्रतिमा की। लेकिन, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सभी व्यक्तियों को प्राय. सभी प्रतिमाओं का अनुभव होता है। ऐसी अवस्था में प्रतिमाओं के अनुभव के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण ग्राह्य नहीं हो सकता।

ज्ञानेन्द्रिय-सम्बन्धी प्रतिमाओं की विशद व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। अतएव, संक्षेप में उनपर कुछ प्रकाश डालना ही उद्देश्य है। जब अपने मित्र की अनुपस्थिति में कोई ऐसा अनुभव करता है कि उसका मित्र उसके समक्ष खड़ा है, तब हम कह सकते हैं कि यह उसकी दृष्टि-प्रतिमा (Visual image) है। वैसे ही, यदि किसी को संगीत के

अभाव मे भी सगीत की मधुर ध्वनि का अनुभव हो, तो उसे श्रवण-प्रतिमा की सज्ञा दी जायगी। यदि कोई अपनी पत्नी से बहुत दूर रहकर भी उसके सुकोमल गात के स्पर्श का अनुभव करे, तो अवश्य ही यह उसकी स्पर्श-प्रतिमा (Tactual image) कही जायगी। यदि सुगन्धित पदार्थ के अभाव मे भी किसी को सुगन्धि का अनुभव हो, तो निश्चय ही यह उसकी घ्राण-प्रतिमा (Olfactory image) कही जायगी। यदि रसगुल्ले के अभाव मे भी किसी को रसगुल्ले से उत्पन्न स्वाद का अनुभव हो, तो निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि यह उसकी स्वाद-प्रतिमा (Gustatory image) है। कभी-कभी मनुष्य अपने कमरे मे शान्तिपूर्वक बैठे-बैठे ही खेल के मैदान मे दौडने का अनुभव कर लेता है। उसका यह अनुभव गति-प्रतिमा (Motor image) का बोधक है।

अनुबिम्ब (After-image) —प्रतिमा पूर्णता तथा यथार्थता (Accuracy) मे प्रत्यक्षीकरण से भिन्न होती है। इस भिन्नता के आधार पर किये गये प्रतिमाओ के वर्गीकरणो पर विचार करना अभीष्ट है।

सर्वप्रथम अनुबिम्बो (After-images) को ले। भौतिक उत्तेजना (Physical stimulus) के सामने से हट जाने के बाद भी कुछ देर तक उसका अनुभव होते रहना ही अनुबिम्ब कहलाता है। वस्तुत जब भौतिक उत्तेजना व्यक्ति के सामने से हटा ली जाती है, तोभी उसे कुछ सेकेड अथवा कुछ मिनटो तक उसका अनुभव होता रहता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई कुछ देर तक गाना सुनता रहे और फिर गाना बन्द कर दिया जाय, तो उसे ऐसा जान पडेगा मानो उस गाने की ध्वनि उसके कानो मे अभी भी गूँज रही है। वास्तव मे यह उस गाने का अनुबिम्ब है।

अनुबिम्बो की आलोचना करते हुए यह कहा जा सकता है कि वास्तव मे अनुबिम्बो को सच्ची प्रतिमाओ की सज्ञा नही दी जा सकती। उन्हे अनुसवेदनाएँ (After-sensations) कहना अधिक उपयुक्त होगा। उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि लगातार कुछ देर तक गाना सुनते रहने के कारण गाना बन्द हो जाने पर भी सुनने की वह क्रिया कुछ सेकेड अथवा कुछ मिनटो तक चलती रहती है। फलत गाना की अनुपस्थिति मे भी कुछ देर तक उसकी ध्वनि सुनाई पडती रहती है, अथवा यो कहे कि गाना की सवेदना होती रहती है। अतएव, उसे अनुबिम्ब के बदले अनुसवेदना कहना अधिक उपयुक्त जान पडता है।

प्रत्यक्ष प्रतिमा (Eidetic image) --प्रत्यक्ष प्रतिमा प्रत्यक्षीकरण के समान ही अत्यन्त स्पष्ट और प्रबल होती है। इसमे पूर्व प्रत्यक्षीकरण के अधिकाश अश स्पष्ट रूप से वर्त्तमान रहते है। अन्य प्रतिमाओ की अपेक्षा इसमे सजीवता अधिक पायी जाती है। इस प्रतिमा की विशेषता यह है कि अनुभव करनेवालो को ऐसा जान पडता है मानो वे पूर्वानुभूत घटनाओ अथवा परिस्थितियो का साक्षात् रूप से दर्शन कर रहे हो। इस प्रकार की प्रतिमाओ का अनुभव प्राय बच्चो को अधिक होता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनो के आधार पर पाया गया है कि कोई कोई बच्चा पूर्वानुभूत घटना का ऐसा सागोपाग वर्णन उपस्थित करता है, जिससे यह जान पडता है कि वह घटना अभी उसके सामने हो रही हो। प्रौढ व्यक्ति को इस प्रकार की प्रतिमा का अनुभव बहुत कम होता है।

यद्यपि प्रत्यक्ष प्रतिमा अत्यन्त ही स्पष्ट, प्रबल एव सजीव होती है, फिर भी अन्य प्रतिमाओ की तरह यह भी पूर्व प्रत्यक्षीकरण की हू-ब-हू नकल नही कही जा सकती। इसमे भी पूर्व प्रत्यक्षीकरण के सभी अश वर्त्तमान नही रहते और साथ ही कुछ नये अश भी मिले रहते है। अपनी रुचि के अनकूल बच्चे प्राय इसमे कुछ नये अश भी जोड देते है। प्रत्यक्ष प्रतिमा के उदाहरण-स्वरूप यह कहा जा सकता है कि जब कोई व्यक्ति शाम को पढने के बाद सोने के निमित्त बिछावन पर जाता है, तब उसके सामने पुस्तक की स्पष्ट प्रतिमा आ जाती है। वैसे ही, सगीत सुनने के बहुत देर बाद तक सगीत की ध्वनि स्पष्ट रूप से कानो मे गूँजती रहती है। वस्तुत यह प्रत्यक्ष प्रतिमा ही तो है।

स्मृति-प्रतिमा (Memory image) --स्मृति-प्रतिमा, प्रत्यक्ष प्रतिमा (Eidetic image) की अपेक्षा अस्पष्ट तथा क्षीण होती है। इसमे पूर्व प्रत्यक्षीकरण के बहुत कम अश वर्त्तमान रहते है। अत पूर्व प्रत्यक्षीकरण से इसकी समानता बहुत कम है।

स्मृति-प्रतिमा की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके स्थान और समय का निरूपण किया जा सकता है। स्मृति-प्रतिमा मे आई हुई घटनाओ के सम्बन्ध मे सभवत यह बतलाना आसान है कि उनका पूर्वानुभव कब और कहाँ हुआ था। उदाहरण के लिए जब कभी हमे ताजमहल की स्मृति-प्रतिमा का अनुभव होता है, तब आगरा और जिस वर्ष वहाँ जाने का अवसर मिला था, उसकी भी स्मृति हो आती है। किन्तु, कुछ स्मृति-प्रतिमाएँ ऐसी भी होती

हैं, जिनके स्थान और समय का निरूपण संभव नही है । ऐसी स्मृति-प्रतिमाओं में प्रायः परिचितत्व (Familiarity) की अस्पष्ट भावना-मात्र वर्त्तमान रहती है । इसके स्थान और समय की निश्चित रूप से स्मृति नहीं हो पाती है।

काल्पनिक प्रतिमा (Imagination image) :—काल्पनिक प्रतिमा का निर्माण विभिन्न स्मृति-प्रतिमाओं के तत्त्वो के संयोग से होता है। स्पष्ट है कि काल्पनिक प्रतिमा में केवल एक ही पूर्व प्रत्यक्षीकरण के अंश नहीं रहते, वरन् अनेक प्रत्यक्षीकरण के अंश वर्त्तमान रहते है । इस बात को लेकर काल्पनिक प्रतिमा स्मृति-प्रतिमा (Memory image) तथा प्रत्यक्ष प्रतिमा (Eidetic image) से भिन्न होती है; क्योंकि इन दोनो प्रतिमाओं में केवल एक ही पूर्व प्रत्यक्षीकरण के अश वर्त्तमान रहते है। अमूर्त्त विचारों (Abstract ideas) की प्रतिमाएँ प्रायः काल्पनिक प्रतिमाएँ हुआ करती है। उदाहरण-स्वरूप, हम स्वर्ग तथा नरक की प्रतिमाओ को ले सकते है । स्वर्ग तथा नरक की प्रतिमाओ में प्रायः जीवन के कुछ पूर्वानुभूत अंश तथा अनेक काल्पनिक अंश वर्त्तमान रहते है । इन प्रतिमाओ को किसी एक पूर्व प्रत्यक्षीकरण का आंशिक अथवा पूर्ण रूप में प्रत्याह्वान नही कहा जा सकता। वैसे ही, कुछ लोगों को काल्पनिक पशुओं की प्रतिमाओ का भी अनुभव होता है ।

कल्पना

कल्पना का स्वरूप

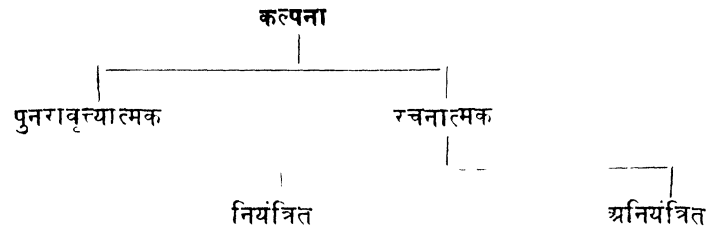
पूर्व अनुभूतियों तथा उनसे संबद्ध घटनाओ को बिबो (Images) के रूप में सँजोने की मानसिक क्रिया को कल्पना कहते है । बिबो अथवा प्रतिमाओं (Images) के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनका संबंध पूर्वानुभूतियों से रहता है। कल्पना भी प्रायः उन्हीं वस्तुओं या घटनाओं की होती है, जिनका अनुभव पहले हो चुका रहता है । कल्पना के स्वरूप को भलीभाँति जानने के लिए स्मरण क्रिया पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। स्मरण-क्रिया पूर्वानुभूतियों की पुनरावृत्ति (Reproduction) कही जा सकती है । किन्तु, कल्पना में पूर्वानुभूतियों की पुनरावृत्ति के बदले उनका नवीन संभावित रूप पाया जाता है । उदाहरणार्थ, यदि किसी व्यक्ति ने सोना तथा पर्वत, दोनों का अनुभव किया है, तो वह संभवतः सोने के पर्वत की कल्पना कर सकता है । यद्यपि सोना तथा पर्वत— ये दोनों वस्तुएँ पूर्वानुभूत

है; किन्तु, सोने का पर्वत एक कल्पना-मात्र है, पूर्वानुभूतियों का एक नवीन संभावित रूप है। स्पष्ट है कि यदि स्मरण-क्रिया में पूर्वानुभूतियों का वास्तविक रूप पाया जाता है, तो कल्पना में उनका नवीन संभावित रूप ही देखने को मिलता है। इसलिए कल्पना पुनरावृत्यात्मक होने के बदले प्रायः रचनात्मक स्वभाव (Creative nature) की होती है। कारण, इसमें पूर्वानुभूतियों के आधार पर एक नयी रचना की जाती है।

जिस प्रकार कल्पना स्मरण-क्रिया से भिन्न होती है, उसी प्रकार प्रत्यक्षीकरण (Perception) से भी भिन्न होती है। कल्पना तथा प्रत्यक्षीकरण में सर्वप्रधान भेद यह है कि प्रत्यक्षीकरण के लिए जहाँ बाह्य उत्तेजना की उपस्थिति अनिवार्य है, वहाँ कल्पना बाह्य उत्तेजना की अनुपस्थिति में होती है। उदाहरण के लिए, अपने कमरे में वर्त्तमान विभिन्न वस्तुओं में, जैसे कुर्सी, टेबुल इत्यादि का प्रत्यक्षीकरण होता है, किन्तु जब व्यक्ति उनकी अनुपस्थिति में उन्हें कमरे में विभिन्न प्रकार से सँजोने के मानस-बिंबों का अनुभव करता है, तब वह कल्पना कही जायगी। वास्तव में, कल्पना को अनुपस्थित उत्तेजना के प्रति प्रतिक्रिया माना जा सकता है।

कल्पना के प्रकार

कल्पना प्रधानतः दो प्रकार की मानी जा सकती है--(१) पुनरावृत्यात्मक कल्पना (Reproductive imagination) तथा (२) रचनात्मक कल्पना (Creative imagination)। पुनः रचनात्मक कल्पना के दो भेद किये जा सकते हैं--(१) नियंत्रित कल्पना (Controlled imagination) तथा (२) अनियंत्रित कल्पना (Uncontrolled imagination)।



पुनरावृत्यात्मक कल्पना--पुनरावृत्यात्मक कल्पना में कल्पना के द्वारा यथासंभव पूर्वानुभूतियों को उनके मूल रूप में चेतना में लाने की चेष्टा की

जाती है। वास्तव मे व्यक्ति पूर्वानुभूतियो के विस्तृत अशो को कल्पना के द्वारा ही पूर्ण करता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी ने कभी ताजमहल देखा हो, तो सभव है कि कुछ वर्षो के बाद उसे उसके सभी भागो का अनुस्मरण न हो। ऐसी अवस्था मे वह कल्पना के द्वारा उन विस्तृत अशो को पूर्ति कर सपूर्ण ताजमहल का अनुस्मरण करना चाहेगा। यह पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना कही जा सकती है, क्योकि इसमे कल्पना के द्वारा पूर्वानुभूति की पुनरावृत्ति-मात्र होती है, कोई नयी सृष्टि अथवा रचना नही। इसीलिए पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना तथा स्मरण-क्रिया मे कोई विशेष अन्तर नही जान पडता।

रचनात्मक कल्पना—रचनात्मक कल्पना मे जैसा कि इस शब्द मे ही स्पष्ट है, नयी वस्तु अथवा नये विचारो की कल्पना की जाती है। इस प्रकार की कल्पना मे पूर्वानुभूतियो के आधार पर एक नवीन रचना की जाती है। रचनात्मक कल्पना प्राय वैज्ञानिक अनुसन्धानो तथा महान् कलाकारो की कृतियो मे देखने को मिलती है। यह नियत्रित तथा अनियत्रित दोनो प्रकार की हो सकती है।

नियंत्रित कल्पना (Controlled imagination) :— नियत्रित कल्पना निश्चित लक्ष्य या अभिप्राय से निर्देशित तथा नियत्रित हुआ करती है। कल्पना करनेवाला व्यक्ति अपनी कल्पना को एक निश्चित दिशा की ओर मोडने के लिए निरन्तर क्रियाशील रहता है। इसमे व्यक्ति की इच्छा तथा चेष्टा का प्रमुख हाथ रहता है। इसीलिए इस प्रकार की कल्पना को सक्रिय कल्पना (Active imagination) भी कहा जाता है। इसमे कोई सन्देह नही कि इस तरह की कल्पना मे पूर्वानुभूत उपादानो की सहायता ली जाती है, किन्तु उन्हे इस प्रकार नवीन रूप मे सँजोकर प्रस्तुत किया जाता है कि उनके पूर्वरूप लुप्त हो जाते है तथा वे सर्वथा मौलिक और नवीन जान पडने लगते है।

नियत्रित कल्पना की सबसे बडी विशेषता यह होती है कि यह सामाजिक, तर्कसगत तथा अभिप्राय-युक्त होती है। उदाहरण-स्वरूप, वैज्ञानिको के नवीन आविष्कारो, अनुसन्धान-कर्त्ताओ के नूतन अनुसन्धानो तथा कलाकारो की मौलिक कलाकृतियो को प्रस्तुत किया जा सकता है। रेडियो, हवाई जहाज, इत्यादि नियत्रित रचनात्मक कल्पना के ही परिणाम है। वस्तुत बिना इस प्रकार की कल्पना के आविष्कार, अनुसधान तथा मौलिक एव नवीन रचनाएं सभव नही। इसीलिए, यह कल्पना कला, विज्ञान तथा जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी एव महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

अनियंत्रित कल्पना (Uncontrolled imagination) :— अनियंत्रित कल्पन व्यक्ति के चेतन नियंत्रण से स्वतन्त्र होती है। इसमें कोई निश्चित लक्ष्य या अभिप्राय नहीं होता। फलतः कल्पना करनेवाला व्यक्ति निश्चेष्ट रहता है। इसीलिए इसे निष्क्रिय कल्पना की भी संज्ञा दी जाती है। यद्यपि चेतन रूप से इसपर किसी तरह का नियंत्रण नहीं होता, किन्तु अचेतन रूप से यह निरन्तर कल्पना करनेवाले व्यक्ति की इच्छा, अभिरुचि इत्यादि आत्मनिष्ठ तत्त्वों (Subjective factors) से निर्देशित हुआ करती है। व्यक्ति अपने इन आत्मनिष्ठ तत्त्वों से इस प्रकार प्रभावित रहता है कि वह कल्पना में आनेवाले विचारों और अनुभूतियों (Experiences) को निर्देशित करने मे सक्रिय भाग नहीं ले पाता।

अनियंत्रित कल्पना पर व्यक्ति का चेतन नियंत्रण नही होता, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि इस प्रकार की कल्पना असामाजिक, तर्कहीन तथा अयथार्थ हो। उदाहरणार्थ, किसी मानसिक रोग-युक्त व्यक्ति की यह कल्पना कि वह राजा है तथा समस्त जगत् के लोग उसकी प्रजा, अनियंत्रित कल्पना कही जायगी। स्पष्टतः इस कल्पना में सामाजिकता, यथार्थता तथा तर्क का अभाव है। इसी प्रकार सामान्य व्यक्तियों (Normal individuals) के दिवा-स्वप्नों को अनियंत्रित कल्पना कहेंगे। अपने दिवा-स्वप्नों में व्यक्ति प्रायः अपनी इच्छाओं, अभिरुचियों तथा आवेशों से निर्देशित होकर स्वतन्त्रता पूर्वक विभिन्न प्रकार के बिंबों (Images) को अपनी चेतना में लाता है। दिवा-स्वप्नों के ये बिंब वास्तविकता से बहुत दूर होते हैं और सामाजिक तथा तर्कहीन भी होते है। दिवा-स्वप्नों के अतिरिक्त बच्चों के खेलों में भी अनियंत्रित कल्पना की काफी गुंजाइश होती है। बच्चे अपने खेलों में प्रायः कल्पना के द्वारा ही अपनी अतृप्त अचेतन इच्छाओं को परितुष्ट करते है। वास्तविकता की दृष्टि से अनियंत्रित कल्पना तथा प्रत्यक्षीकरण में भेद किया जा सकता है। किसी वस्तु अथवा घटना के प्रत्यक्षीकरण में व्यक्ति वास्तविकता तथा तर्क से अत्यधिक प्रभावित रहता है, किन्तु अनियंत्रित कल्पना पर इनका कोई प्रभाव लक्षित नहीं होता। वह तो स्वतन्त्र रूप से वास्तविकता तथा तर्क की उपेक्षा करते हुए व्यक्ति को इच्छा, अभिरुचि एव मनोवृत्ति से निर्देशित तथा नियंत्रित होती रहती है।

कल्पना की उपयोगिता

कल्पना कला, विज्ञान तथा व्यावहारिक जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी

है। प्रायः सभी बड़े आविष्कारों तथा अनुसंधानों में कल्पना का प्रयोग पाया जाता है। आविष्कार अथवा अनुसन्धान के प्रारम्भ में कल्पना के द्वारा कुछ अनुमान (Hypotheses) स्थिर कर लिये जाते हैं। तत्पश्चात् चिन्तन-क्रिया शरू होती है और अन्ततोगत्वा किसी नवीन वस्तु का आविष्कार अथवा अनुसन्धान हो जाता है। वस्तुतः सभी बड़े-बड़े आविष्कारों अथवा अनुसन्धानों के मूल में कल्पना निहित रहती है।

कला के क्षेत्र में भी कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्य, संगीत, चित्र आदि सभी कलाओं में इसका प्रयोग पाया जाता है। काव्य-कला में कवि कल्पना के द्वारा ऐसे काल्पनिक जगत् की सृष्टि करता है, जहाँ उसकी सारी आकांक्षाएँ तृप्त हुई जान पड़ती है। पाठक कल्पना के द्वारा ही कवि-जगत् के साथ अपना तादात्म्य (Identification) स्थापित कर अपनी अधिकांश अतृप्त वृत्तियों को परितुष्ट करता है। किसी भी कलाकृति की सफलता कल्पना-शक्ति पर निर्भर करती है। कल्पना के द्वारा ही कवि अपने अमूर्त्त विचारों (Abstract ideas) को साकार रूप देने में समर्थ होता है। यह महान् कलाकार कालिदास की कल्पना का ही परिणाम है कि 'मेघदूतम्' में वर्णित यक्ष का विरह (एक अमूर्त्त भाव) बिलकुल साकार तथा मूर्त्तिमान् हो उठा है। कल्पना का प्रयोग उपन्यास, नाटक, कहानी इत्यादि साहित्य के अन्य रूपों में भी पाया जाता है। चित्रकार कल्पना के द्वारा मानों अपने चित्र में प्राण फूँक देता है। फलतः वे चित्र सजीव तथा भावपूर्ण जान पड़ने लगते है।

व्यावहारिक तथा सामाजिक जीवन में भी कल्पना का महत्त्व कम नहीं है। कल्पना व्यक्ति को अभिनव परिस्थिति के साथ अभियोजन (Adjustment) स्थापित करने में सहायता प्रदान करती है। कल्पना के द्वारा आगे आनेवाली परिस्थितियों पर विचार कर उनके प्रति प्रतिक्रियाओं (Reactions) का निर्णय कर लिया जाता है। फलतः जब सचमुच वे परिस्थितियाँ व्यक्ति के समक्ष आती हैं तब वह सहज ही उनके साथ अपना अभियोजन स्थापित कर लेता है। व्यक्ति को अभियोजन के सिवा इससे एक बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि वह अपने वास्तविक जीवन की अतृप्त इच्छाओं को कल्पना के द्वारा दिवा-स्वप्नों (Day-dreams) तथा विभिन्न प्रकार के खेलों में अभिव्यक्त कर अपने को परितुष्ट करता है। फलस्वरूप उसका मानसिक जीवन संतुलित बना रहता है।

अन्त में, कल्पना के सामाजिक महत्त्व को दृष्टिकोण में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्राय सभी प्रकार की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक योजनाओ मे कल्पना का सहारा लेना पडता है । अतएव, यह निर्भ्रान्त है कि कल्पना मानव-जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।

ग्यारहवाँ अध्याय

चिन्तन

अन्य प्राणियो की अपेक्षा मनुष्य एक अधिक चिन्तनशील प्राणी है। जब उसके सामने कोई समस्या आती है, तब चिन्तन-क्रिया प्रारम्भ हो जाती है और समस्या का समाधान मिलते ही बन्द हो जाती है। जीवन की अधिकाश परिस्थितियाँ व्यक्ति के सामने कोई समस्या उपस्थित नही करती। कारण, उनके साथ वह अपने पूर्व अभ्यास की सहायता से सफल अभियोजन (Adjustment) स्थापित कर लेता है। उदाहरण के लिए, व्यक्ति प्रायः प्रतिदिन भोजन करता है तथा कपड़े पहनता है। इन कार्यो को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए उसे चिन्तन-क्रिया की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। वस्तुतः समस्या उस कठिन परिस्थिति को कहते है, जिसके साथ व्यक्ति अपने पूर्व अभ्यास की सहायता से सफल अभियोजन स्थापित करने में असमर्थ रहता है। फलतः उसमे उस परिस्थिति-सम्बन्धी चिन्तन-क्रिया प्रारम्भ हो जाती है और वह तबतक जारी रहती है जबतक परिस्थिति को भलीभाँति समझकर उसके साथ सफलतापूर्वक अपना अभियोजन स्थापित नही कर लेता। यहाँ यह व्यक्त कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि एक ही परिस्थिति सभी व्यक्तियों के लिए समस्या नहीं हो सकती; क्योकि प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञान और अनुभव में एक-दूसरे से भिन्न होता है। कोई भी परिस्थिति तभी समस्या जान पड़ती है जब व्यक्ति अपने पूर्व ज्ञान और अनुभव के आधार पर उसे अच्छी तरह नहीं समझ पाता। उदाहरणार्थ, हिन्दी-भाषा-भाषी व्यक्ति के लिए हिन्दी का समाचार-पत्र पढ़ना कोई समस्या नही है। किन्तु हिन्दी से अनभिज्ञ व्यक्ति के लिए वह एक समस्या है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चिन्तन एक ऐसी मानसिक क्रिया है, जिसके द्वारा हम किसी समस्या का समाधान निकालते है।

यदि चिन्तन-क्रिया का विश्लेपण किया जाय, तो उसमें निम्नलिखित बातें पायी जायेंगी—

(१) समस्या की उपस्थिति—चिन्तन-क्रिया प्रारम्भ हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति के सामने कोई-न-कोई समस्या उपस्थित हो।

(२) समस्या पर विविध प्रकार से विचार—समस्या उपस्थित होने पर उसके समाधान के लिए व्यक्ति कई प्रकार से विचार करता है। उसे समाधान के कितने ही मार्ग दृष्टिगत होने लगते है।

(३) विविध विचारो का एक ही लक्ष्य की ओर निर्देशित होना—किसी समस्या के उपस्थित होने पर उसके समाधान के लिए व्यक्ति मे जो विविध प्रकार के विकार आते है, वे निरर्थक नही होते, वरन् समस्या-समाधान की ओर निर्देशित हुआ करते है।

(४) 'प्रयत्न और भूल' विधि का प्रयोग—समस्या के समुचित समाधान के लिए व्यक्ति को 'प्रयत्न और भूल' विधि का सहारा लेना पडता है। समस्या के समुचित समाधान पर पहुँचने के पूर्व वह कई प्रकार के सम्भव विचारो अथवा समाधानो पर सोचता है।

(५) व्यक्ति की सक्रियता—व्यक्ति मे समस्या-समाधान-सम्बन्धी केवल विविध प्रकार के विचार ही नही आते, बल्कि वह विविध प्रकार के कार्यों द्वारा भी समस्या-समाधान की निरतर चेष्टा करता रहता है।

(६) आन्तरिक सभाषण (Internal Speech)— जब व्यक्ति कसी समस्या का समाधान करता रहता है, तब वह भीतर-ही-भीतर कुछ बोलता रहता है।

(७) समस्या-समाधान-सबधी विविध प्रकार के विचार तथा कार्य, समस्या-समाधान के अग के रूप मे—समस्या-समाधान-सबधी सभी विचार तथा कार्य एक ही चिन्तन-क्रिया के अग होते है और एक ही दिशा की ओर निर्देशित भी होते है।

प्राय कठिन समस्याओ के समाधान मे चिंतन-क्रिया के उपर्युक्त सभी अग वर्त्तमान रहते है। उदाहरणार्थ, जब कोई व्यक्ति गणित के किसी कठिन प्रश्न का हल निकालने लगता है, तब उसे चिन्तन-क्रिया के इन सभी अगो से गुजरना पडता है। किन्तु आसान समस्याओ के समाधान मे चिन्तन-क्रिया के ये सभी अग अनिवार्य रूप से नही पाये जाते।

कल्पना और चिन्तन
(Imagination and Thinking)

चिन्तन-क्रिया तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति के सामने कोई समस्या आ जाती है। चिन्तन-क्रिया मे प्रारम्भ से ही व्यक्ति की सारी प्रतिक्रियाएँ एक निश्चित दिशा की ओर निर्देशित और नियंत्रित हो जाती है। व्यक्ति की सभी

प्रतिक्रियाओं का एक ही लक्ष्य होता है और वह लक्ष्य समस्या-समाधान के अतिरिक्त और कुछ नही होता। किन्तु कल्पना मे कोई विशेष प्रकार का नियत्रण नही पाया जाता है। हम एक के बाद दूसरी और पुन. तीसरी वस्तु की भी कल्पना करने लगते है। कल्पना मे, जो एक के बाद दूसरे विचार आते रहते है, वे किसी निश्चित लक्ष्य की ओर निर्देशित नही होते है। इसके अतिरिक्त, चिन्तन यथार्थ (Real) होता है। यह किसी समस्या मे निहित सभी यथार्थ सम्बन्धो को ढूँढ़ निकालता है। कहना न होगा कि चिन्तन-क्रिया यथार्थता (Reality) के अति निकट होती है, किन्तु कल्पना अयथार्थ (Unreal) भी हो सकती है। उदाहरण के लिए हम सोने के पर्वत की कल्पना कर सकते है, किन्तु इसे वास्तविक जगत् मे नही पा सकते है। अत. स्वर्ण-पर्वत अयथार्थ नही तो क्या है ? कल्पना और चिन्तन मे अतिम भेद यह है कि यदि चिन्तन अत्यन्त ही तर्कसगत हुआ करता है तो कल्पना मे अपेक्षाकृत तर्क का अभाव पाया जाता है। यह आवश्यक नही है कि सभी चिन्तन अत्यन्त तर्क-सगत ही हो, किन्तु चिन्तन मे प्राय. तर्कसगति की ही आशा की जाती है। जहा तक कल्पना का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि उसमे तर्कसगति (Logical consistency) का अभाव रहता है।

चिन्तन-क्रिया
(**The Thought-process**)

समस्या की उपस्थिति और उसके समाधान के बीच की कई अवस्थाएं होती है। वे सभी अवस्थाएं चिन्तन-क्रिया के आवश्यक अग कही जा सकती है। उन अवस्थाओ का यहा सक्षेप मे उल्लेख किया जायगा।

चिन्तन में दिशा (Direction in thinking)—स्वतन्त्र साहचर्य-सम्बन्धी प्रयोगो (Free Association experiments) मे प्रयोज्य के सामने कोई शब्द उत्तेजना के रूप मे उपस्थित कर दिया जाता है और प्रयोगकर्त्ता उससे यह कहता है कि उत्तेजक शब्द (Stimulus word) को सुनते ही सर्वप्रथम उसे जो शब्द याद आ जाय, उसे वह प्रत्युत्तर (Response) के रूप मे प्रकट कर दे। यहाँ प्रयोज्य को प्रत्युत्तर प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। उस पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नही रहता है। फलतः उसके सभी प्रत्युत्तर अनिर्देशित होते है। इसके विपरीत, नियन्त्रित साहचर्य-सम्बन्धी प्रयोगो (Controlled Association experiments) में प्रारम्भ से ही प्रयोज्य को एक नियन्त्रित दिशा को दृष्टिकोण में

रखकर प्रत्युत्तर प्रकट करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी से पशुओं के नाम लेने को कहा जाय, तो प्रारम्भ से ही उसके प्रत्युत्तर नियन्त्रित और एक विशेष दिशा की ओर निर्देशित होंगे। उसकी एक विशेष मानस-वृत्ति (Mental set) हो जायगी, जिसके फलस्वरूप वह केवल पशुओं के सम्बन्ध में ही विचार करेगा तथा अन्य वस्तु-सम्बन्धी विचारों की उपेक्षा कर देगा। ठीक यही बात चिन्तन-क्रिया में भी पायी जाती है। जब व्यक्ति के सामने कोई समस्या आ जाती है, तब प्रारम्भ से ही उसके सभी विचार समस्या-समाधान की ओर निर्देशित हो जाते हैं। उस समय वह केवल समस्या के संभव समाधानों पर ही विचार करता है तथा अन्य सभी तरह के विचारों की उपेक्षा कर देता है। उदाहरण के लिए, जब किसी की कलम खो जाती है, तब वह कलम रखने के विभिन्न स्थानों पर ही विचार करता है तथा अपनी कलम-सम्बन्धी पूर्व अनुभूतियों का ही प्रत्याह्वान (Recall) करता है। स्पष्ट है कि चिन्तन में व्यक्ति के सभी विचार तथा उसकी सारी प्रतिक्रियाएँ एक विशेष दिशा (समस्या-समाधान) की ओर निर्देशित हो जाती हैं।

चिन्तन में प्रयत्न और भूल (Trial and error in thinking):—प्रयोगों के आधार पर पशु तथा मनुष्य, दोनों ही की चिन्तन-क्रिया में 'प्रयत्न और भूल' पाया गया है। पशु और बच्चे के सोचने में तो 'प्रयत्न और भूल' की अत्यधिक प्रधानता रहती ही है, प्रौढ़ व्यक्तियों की चिन्तन-क्रिया में भी इसका अभाव नहीं रहता। जब प्रौढ़ व्यक्ति यान्त्रिक उलझन (Mechanical puzzle) का समाधान सोचने लगते हैं, तब उन्हें 'प्रयत्न और भूल' का सहारा लेना पड़ता है। उनकी चिन्तन-क्रिया में मानसिक 'प्रयत्न और भूल' की ही प्रधानता रहती है, किन्तु गतिवाही 'प्रयत्न और भूल' (Motor trial and error) भी बिलकुल अनुपस्थित नहीं रहता।

विचार के प्रयत्न और भूल सिद्धांत (Trial and error theory of thinking) के अनुसार किसी समस्या के समाधान के लिए पशु कई प्रकार की क्रियाएँ प्रकट करते हैं। अन्ततोगत्वा उनमें से कोई एक क्रिया सफल हो जाती है। फलतः उन्हें समस्या का समाधान प्राप्त हो जाता है। इसी तरह मनुष्य भी जब किसी समस्या के समाधान के लिए कई प्रकार के संभव समाधानों पर विचार करते हैं, तब उन्हें समस्या का समुचित समाधान मिल पाता है। संभव समाधानों के मानसिक परीक्षणों (Mental tests)

से लाभ यह होता है कि व्यक्ति के समय और उसकी शक्ति का अधिक ह्रास नहीं होता है। इस विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि पशु तथा मनुष्य दोनों ही 'प्रयत्न और भूल' के द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान करते हैं। यहाँ यह व्यक्त कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि 'प्रयत्न और भूल' सिद्धांत चिन्तन-क्रिया का वर्णन-मात्र करता है, उसकी व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर पाता। वस्तुतः 'प्रयत्न और भूल' सम्पूर्ण चिन्तन-क्रिया का एक अंग-मात्र है।

भाषा और चिन्तन

(**Language & Thinking**)

अबतक प्रधान रूप से चिन्तन-क्रिया (Thought-process) के सम्बन्ध में विचार प्रस्तुत किया गया है। किन्तु यहाँ चिन्तन-सामग्रियों (Thought materials) पर प्रकाश डालना अभीष्ट है। चिन्तन में भाषा का प्रमुख हाथ है। इन दोनों में बहुत कुछ समानता भी पायी जाती है। जिस प्रकार चिन्तन नियंत्रित और निर्देशित होता है, उसी प्रकार भाषा भी नियंत्रित और निर्देशित होती है। भाषा का संबंध निरन्तर किसी-न-किसी प्रकार की सामाजिक परिस्थिति से होता है। भाषा का प्रयोग प्रायः परिस्थिति के प्रत्युत्तर के रूप में किया जाता है। अतः भाषा के प्रयोग में नियंत्रण स्पष्ट रूप से मिलता है। नियंत्रण की वह क्रिया उस भाषण से स्पष्ट हो जाती है, जिसे व्यक्ति किसी अवसर-विशेष के लिए तैयार करता है। निस्संदेह, वह अपने भाषण में अवसर के अनुकूल बातों को रखता है तथा असंगत बातों को उसमें कोई स्थान नहीं देता।

चिन्तन की तरह ही भाषा के प्रयोग में भी सामान्यतः 'प्रयत्न और भूल' का सहारा लेना पड़ता है। जब कोई निबंधकार किसी विषय पर निबंध लिखने बैठता है, तब प्रारंभ में वह कितने ही ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है, जिन्हें अन्ततोगत्वा उसे बदलना पड़ता है। इस प्रकार निबंध पूरा होने के पहले उसे कई प्रकार के भाषा-सम्बन्धी परिवर्त्तन करने पड़ते हैं। इससे स्पष्ट है कि भाषा के प्रयोग में भी 'प्रयत्न और भूल' विधि वर्त्तमान रहती है।

भाषा और चिन्तन के निकटतम संबंध के कारण कुछ मनोवैज्ञानिक चिन्तन को भाषा से भिन्न नहीं मानते। उनका कहना है कि चिन्तन आन्तरिक संभाषण (Internal speech) है। प्रौढ़ व्यक्ति संभवतः जोर-जोर से बोलकर नहीं सोचते, किन्तु चिन्तन के क्षणों में मन-ही-मन बोलने की क्रिया होती रहती है। बच्चों में जोर-जोर से बोलकर सोचना स्पष्ट रूप से

पाया जाता है। बच्चे जब गणित के किसी प्रश्न को हल करने लगते हैं, तब वे प्रायः बोलते हैं। किन्तु पशुओं पर किये गये कई प्रयोगों के आधार पर पाया गया है कि पशु बोलते नहीं, लेकिन फिर भी चिन्तन करते हैं। इसके अतिरिक्त, मनुष्य, जिसे भाषा का ज्ञान रहता है, वह भी कुछ हद तक बिना भाषा के चिन्तन कर सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि भाषा के बिना भी चिन्तन संभव है। कभी-कभी मनुष्य ऐसी वस्तुओं के बारे में सोच लेता है, जिनके कोई नाम नहीं होते।

भाषा और चिन्तन के विकास पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति में इन दोनों का विकास साथ-साथ होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि भाषा और चिन्तन वस्तुतः एक ही प्रकार के मानसिक विकास के दो विभिन्न पहलू हैं। भाषा के द्वारा सामान्यतः चिन्तन में स्पष्टता और चुस्ती आती है। भाषा-विकास, कला एवं विज्ञान के लिए अनिवार्य है। अतः चिन्तन में भाषा का महत्त्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रतिमा और चिन्तन
(**Imagery & Thinking**)

व्यक्ति प्रायः किसी विषय पर प्रतिमाओं के सहारे सोचता है। सोचते समय उसे कई प्रकार की प्रतिमाओं का अनुभव होता है, जैसे दृष्टि-प्रतिमा, श्रवण-प्रतिमा, स्पर्श-प्रतिमा, गति-प्रतिमा आदि। यदि किसी व्यक्ति को किसी विषय पर कुछ लिखने को कहा जाय, तो संभवतः उसके समक्ष उस विषय-सम्बन्धी अनेक बातें दृष्टि-प्रतिमा के रूप में आ जायेंगी। वस्तुतः चिन्तन-क्रिया में प्रतिमाओं का इतना हाथ रहता है कि व्यक्ति किसी समस्या के उपस्थित होने पर सर्वप्रथम उसे प्रतिमाओं के द्वारा ही हल करने की चेष्टा करता है; तत्पश्चात्, वह प्रतिमा-सम्बन्धी समाधान को कार्यान्वित करने का प्रयास करता है। यहाँ यह व्यक्त कर देना अभीष्ट जान पड़ता है कि चिन्तन करते समय प्रत्येक व्यक्ति प्रायः दूसरे से भिन्न प्रतिमाओं का प्रयोग करता है। प्रतिमाओं के अनुभव में व्यक्ति-विभिन्नताओं का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

अन्तर्निरीक्षणात्मक पद्धति (Introspective method) के आधार पर कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि बिना प्रतिमा के भी चिन्तन संभव है। इस विचार के समर्थकों में बुह्लर (Buhler) का नाम उल्लेखनीय है। बुह्लर ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि

प्रतिमा के बिना भी चिन्तन-क्रिया हो सकती है। किन्तु, इस विचार से अधिकांश मनोवैज्ञानिक सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि चिन्तन-क्रिया में प्रतिमाएँ वर्त्तमान रहती है और वे उसमें सहायता प्रदान करती हैं। वस्तुतः चिन्तन मे व्यक्ति को प्राय. प्रतिमाओं का अनुभव होता है, इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रतिमा के बिना प्रत्याह्वान (Recall) हो सकता है, किन्तु चिन्तन नहीं। इसे वुडवर्थ ने निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया है—"चिन्तन उतना प्रतिमाहीन नहीं होता, जितना कि प्रत्याह्वान।"*

कार्य और चिन्तन
(Action & Thinking)

जिस प्रकार किसी समस्या का समाधान करते समय विचारों (Ideas) का एक क्रम बन जाता है, उसी प्रकार कार्यों का भी ताँता लग जाता है। चिन्तन-क्रिया के क्रम में आये हुए ये कार्य अभिप्रायहीन नहीं होते, वरन् ये सभी एक निश्चित लक्ष्य की ओर निर्देशित होते है। उदाहरण के लिए, जब किसी व्यक्ति की कलम खो जाती है, तब उस खोयी हुई कलम को पाने के लिए वह कई प्रकार के कार्य करता है। कभी तो वह उसे टेबुल पर ढूँढ़ता है और कभी कुरते की जेब मे; कभी बिछावन पर दृष्टि दौड़ाता है, तो कभी पड़ोस के मित्र के पास जाकर खोयी हुई कलम के बारे में पूछता है। ये सभी कार्य एक लक्ष्य की ओर निर्देशित है। और वह लक्ष्य है खोयी हुई कलम को प्राप्त करना। कभी-कभी चिन्तन की क्रिया में कार्य स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ते, किन्तु ये किसी-न-किसी रूप में निर्देशित विचारों (Directive thoughts) में अवश्य ही वर्त्तमान रहते है। संभव है कि कोई गणितज्ञ किसी गणित-सम्बन्धी प्रश्न पर हफ्तों विचार करता रहे, किन्तु, उसके चिन्तन में कोई कार्य स्पष्ट रूप मे नहीं दीख पड़े। परन्तु यदि इसपर गंभीरता-पूर्वक विचार किया जाय, तो यह ज्ञात पड़ेगा कि वस्तुतः चिन्तन के अमूर्त्त क्षेत्र (Abstract sphere) में भी कोई-न-कोई कार्य अवश्य ही वर्त्तमान रहता है। कभी तो वह चिन्तन के अन्तिम क्षणों में दीख पड़ता है और कभी वह उस समय भी स्पष्ट रूप मे दिखलाई नहीं देता।

*"What is imageless is not thought so much as recall". —Woodworth, R. S. : Experimental Psychology, P. 787.

मस्तिष्क और चिन्तन
(Brain and Thinking)

चिन्तन-क्रिया में व्यक्ति का सारा शरीर निहित रहता है अथवा केवल मस्तिष्क, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस सम्बन्ध मे दो सिद्धांत है। पहले सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति की चिन्तन-क्रिया मे उसका सारा शरीर निहित रहता है और दूसरे के अनुसार केवल मस्तिष्क। पहले को चिन्तन का गति-वाही सिद्धांत (Motor theory of thinking) और दूसरे को चिन्तन का केन्द्रीय सिद्धांत (Central theory of thinking) कहते है। ये दोनों सिद्धांत आंशिक रूप मे ही सही कहे जा सकते है; क्योंकि व्यक्ति की चिन्तन-क्रिया में शरीर और मस्तिष्क, दोनों ही शामिल रहते हैं।

चिन्तन क्रिया में बृहन्मस्तिष्कीय वल्क (Cerebral cortex) का प्रधान हाथ रहता है। यह ज्ञानेन्द्रिय तथा मांसपेशी-सम्बन्धी कार्यों में सम्बन्ध स्थापित करता है। जहाँ तक चिन्तन-क्रिया और मांसपेशियों (Muscles) का सम्बन्ध है, यह कहना युक्तिसंगत जान पड़ता है कि चिन्तन मे जीभ तथा कंठ की मांसपेशियां क्रियाशील हो जाती है। प्रायः कहा जाता है कि 'हमलोग अपनी मांसपेशियों के द्वारा चिन्तन करते है।' चिन्तन का क्रिया प्रारम्भ होते ही मांसपेशियो मे तनाव (Tension) उत्पन्न हो जाता है। प्रयोगों के आधार पर पाया गया है कि चिन्तन मे मांसपेशियों का तनाव बढ़ जाता है तथा विश्राम में उनका तनाव कम हो जाता है। मांसपेशियों के तनाव की वृद्धि और उसका ह्रास समस्या को कठिनाई तथा सुगमता पर निर्भर करता है। कठिन समस्या-सम्बन्धी चिन्तन मे मांसपेशियों का तनाव बढ़ जाता है तथा सुलभ समस्या के चिन्तन में उनका तनाव कम हो जाता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चिन्तन-क्रिया म मांसपेशियों का प्रधान हाथ है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मांसपेशियों के क्रियाशील हुए बिना चिन्तन हो ही नही सकता। वास्तविकता तो यह है कि मांस-पेशियों के क्रियाशील हुए बिना भी केवल मस्तिष्क के द्वारा चिन्तन संभव है। चिन्तन के इस केन्द्रीय सिद्धात (Central theory) को न तो पूर्ण रूप से प्रमाणित ही किया जा सकता है और न पूर्णतः इसका खंडन ही संभव है।

चिन्तन में धारणा और अर्थ
(Concept & Meaning in Thinking)

धारणा (Concept) से विभिन्न वस्तुओं, परिस्थितियों अथवा घटनाओं

का बोध होता है। धारणा तर्क के द्वारा प्राप्त होती है। एक बार जब किसी वस्तु की धारणा बन जाती है, तब बाद के चिन्तन में उसका प्रधान हाथ पाया जाता है। किसी भी भाषा के अधिकांश शब्द धारणा के द्योतक हैं। उदाहरणार्थ, पशु, जल, सौन्दर्य आदि अनेक शब्दों से विभिन्न वस्तुओं की समान विशेषताओं का ज्ञान होता है। यों प्रत्येक पशु एक-दूसरे से भिन्न हुआ करता है, किन्तु उनमें कुछ समान विशेषताएँ भी होती हैं। उन समान विशेषताओं के आधार पर ही हम पशु के सम्बन्ध में कोई धारणा (Concept) बना पाते हैं। यही बात अधिकांश वस्तुओं के सम्बन्ध में कही जा सकती है।

धारणा का विकास--धारणा के विकास में सामान्यतः दो क्रियाएँ पायी जाती हैं--एक पृथक्करण (Abstraction) की क्रिया और दूसरी, साधारणीकरण (Generalization) की क्रिया। कभी-कभी इन्हें एक-दूसरे से अलग करना बड़ा कठिन जान पड़ता है; किन्तु इतना निश्चित है कि धारणा के निर्माण में दोनों ही क्रियाएँ वर्त्तमान रहती हैं। साधारणीकरण के लिए सामान्यतः पृथक्करण की क्रिया का सम्पन्न होना अनिवार्य समझा जाता है। पृथक्करण का तात्पर्य है विभिन्न वस्तुओं की किसी सामान्य विशेषता को पृथक् कर लेना। उदाहरण के लिए, जिस किसी ने प्रथम बार पक्षी की धारणा प्रस्तुत की होगी, उसने अवश्य ही अनेक विभिन्नताओं के रहते हुए भी उनमें एक सामान्य विशेषता का निरीक्षण किया होगा। स्पष्टतः वह सामान्य विशेषता उड़ने की रही होगी। पक्षियों में कई प्रकार की विभिन्नताएँ संभव हैं, किन्तु जहाँ तक उनके उड़ने का प्रश्न है, निर्विवाद रूप से वह उनकी सामान्य विशेषता कही जा सकती है।

इस सामान्य विशेषता के आधार पर पक्षियों के सम्बन्ध में यह धारणा बना लेना कि वे उड़नेवाले प्राणी हैं, अत्यन्त ही स्वाभाविक जान पड़ता है। इस प्रकार अपने अनुभव के आधार पर किसी वस्तु के सम्बन्ध में एक सामान्य धारणा बना लेना ही साधारणीकरण है। पृथक्करण और साधारणीकरण के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए यह कहा जा सकता है कि पृथक्करण के बिना समुचित साधारणीकरण अथवा धारणा का निर्माण संभव नहीं है। यह हो सकता है कि कभी-कभी पृथक्करण की क्रिया तो हो, किन्तु साधारणीकरण नहीं।

अमूर्त्त धारणाओं (Abstract concepts) को अभिव्यक्त करने

के प्रधान साधन हैं शब्द। अतः शब्दों के अर्थों का भी चिन्तन-क्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार धारणा की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों के अर्थों का ज्ञान आवश्यक है, उसी प्रकार किसी के द्वारा अभिव्यक्त की गयी धारणा को समझने के लिए भी उनका ज्ञान रहना अनिवार्य है। स्पष्ट है कि किसी वस्तु की धारणा रहने पर भी यदि हमें उसके द्योतक शब्दों का समुचित ज्ञान न हो, तो हम उसे स्वरूप प्रदान करने में कभी भी सफल नहीं हो सकते। फलतः उसकी अभिव्यक्ति संभव नहीं हो सकती।

रचनात्मक चिन्तन
(**Creative Thinking**)

रचनात्मक चिन्तन के विश्लेषण के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने उसको चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है। वे ये हैं—तथ्य-संग्रह अथवा तैयारी (Collection of facts or preparation), (२) गर्भीकरण (Incubation), (३) स्फुरण (Illumination) तथा (४) प्रमापन (Verification)।

तथ्य-संग्रह—रचनात्मक चिन्तन के लिए तथ्य-संग्रह अथवा तैयारी की आवश्यकता होती है। तथ्य-संग्रह की यह क्षमता अथवा तैयारी सामान्यतः शिक्षा के द्वारा आती है। शिक्षा के परिणाम-स्वरूप व्यक्ति में यह क्षमता आ जाती है कि वह किसी विषय पर रचनात्मक ढंग से चिन्तन कर सके। विशेष प्रकार की शिक्षा से व्यक्ति में विशेष प्रकार के विषय पर चिन्तन करने की क्षमता आती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई एक हद तक मनोविज्ञान की शिक्षा पा चुका रहता है, तो संभवतः उसमें मनोविज्ञान के विषयों पर रचनात्मक ढंग से चिन्तन करने की क्षमता आ जाती है।

तथ्य-संग्रह की इस अवस्था में व्यक्ति समस्या-सम्बन्धी सभी संभव सूचनाओं का संग्रह करता है। तत्पश्चात् वह 'प्रयत्न और भूल' विधि के सहारे सभी संभव सूचनाओं पर एक-एक कर विचार करता है। फलतः वह आवश्यक सूचनाओं को अपना लेता है तथा अनावश्यक सूचनाओं का परित्याग कर देता है। उदाहरण के लिए, जब कोई लेखक किसी विषय पर लेख लिखने बैठता है, तब सर्वप्रथम वह उस विषय से सम्बन्धित सभी संभव सूचनाओं के संग्रह करने का प्रयास करता है। लेख तैयार होने के पूर्व उसे कई बार अपने विचारों, शब्दों अथवा वाक्यों में परिवर्त्तन करना पड़ता है। इससे 'प्रयत्न और भूल' की क्रिया स्पष्टतः लक्षित होती है।

गर्भीकरण—गर्भीकरण की अवस्था में चिन्तन-सम्बन्धी कोई भी प्रत्यक्ष क्रिया नहीं दीख पड़ती है। कभी-कभी तो व्यक्ति सचमुच समस्या पर विचार करना भी छोड़ देता है और वह अपने को दूसरी क्रिया में लगा देता है अथवा विश्राम करने चला जाता है। इसके बाद चिन्तन की जो अवस्था आती है, उसके आधार पर कुछ मनोवैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यदि किसी कठिन समस्या पर विचार करते-करते विचारक अपना ध्यान अन्यत्र केन्द्रित कर देता है, तोभी समस्या-समाधान-सम्बन्धी वह क्रिया अचेतन रूप से चलती रहती है। फलतः उसे कभी-कभी दिवा-स्वप्नों (Day-dreams) में, सोयी हुई अवस्था में, अथवा टहलते समय एकाएक उस समस्या का समाधान सूझ जाता है।

किन्तु अचेतन के आधार पर की गई गर्भीकरण (Incubation) की यह व्याख्या अधिकांश मनोवैज्ञानिकों को मान्य नहीं है। वे यह नहीं मानते कि जिस समय चिन्तक किसी अन्य क्रिया या विचार में संलग्न हो, उस समय उसका अचेतन तार्किक तथा रचनात्मक चिन्तन कर रहा हो। इसके अतिरिक्त, इसकी दो अन्य व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की जाती हैं। पहली तो यह कि इसे सीखने के पठार (Plateau of learning) के अनुरूप माना जाता है। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जिस प्रकार किसी क्रिया को सीखते समय पठार (Plateau) की अवधि में आदत का पुनर्निर्माण या पुनस्संगठन होता है, उसी प्रकार गर्भीकरण की अवस्था में सूक्ष्म प्रतीकों (Symbols) के द्वारा विचार पुनः एक संगठित रूप ग्रहण करते हैं। गर्भीकरण की दूसरी व्याख्या विश्रांति (Relaxation) के सिद्धांत पर आधारित है। तैयारी की अवस्था (Stage of preparation) में समस्या पर लगातार चिन्तन करते रहने के कारण बहुत-सारे विघ्न (Interferences) तथा अवरोध (Inhibitions) उत्पन्न हो जाते हैं। किन्तु जब व्यक्ति अपना समय सोने या विश्राम करने में व्यतीत करता रहता है, तब वे विघ्न तथा अवरोधी खत्म हो जाते हैं और व्यक्ति नये ढंग से विचार करने की ओर प्रवृत्त हो जाता है। जब वह बातचीत तथा किसी दूसरे कार्य में संलग्न रहता है, तब एकाएक समस्या-समाधान स्फुरित हो उठता है। संभवतः किसी अनदेखी उत्तेजना के कारण व्यक्ति का ध्यान एकाएक मौलिक समस्या (Original problem) की ओर चला जाता है और पूर्व-विघ्नों एवं अवरोधों की अनुपस्थिति में समस्या-समाधान उपलब्ध हो जाता है।

स्फुरण --यह चिन्तन की तीसरी महत्त्वपूर्ण अवस्था है। जब व्यक्ति किसी समस्या पर विचार करते-करते अपना ध्यान कहीं और ले जाता है, तब अचानक उसमें समस्या का समाधान स्फुरित हो उठता है। इसे ही स्फुरण की अवस्था कहते हैं।

स्फुरण को तीन प्रधान विशेषताएँ होती हैं--

(१) यह आकस्मिक (Sudden) होता है।

(२) यह उल्लास (Elation) की संवेगात्मक अनुभूति से सबद्ध होता है।

(३) यह प्राय चिन्तक के बाहर किसी रहस्यमयी बाह्य शक्ति से प्रसूत जान पड़ता है। यह तीसरी विशेषता विशेष रूप से कवियों में ही पायी जाती है। कवि अपनी प्रेरणा या स्फुरण का आधार बाह्य शक्तियों का ही मानते है, जैसा कि महान् कवि गेटे (Goethe) की उक्ति से स्पष्ट है—

"We can do nothing but pile up the wood and let it dry, it will catch fire in due time, and we wonder over the occurrence".

स्फुरण के स्पष्टीकरण के लिए एक उदाहरण लें। जब कोई व्यक्ति किसी कठिन विषय पर भाषण तैयार करने लगता है, तब वह उस विषय पर बहुत देर तक विचार करता रहता है, किन्तु प्रगति का कोई भी स्पष्ट चिह्न नहीं दीख पड़ता। मालूम होता है कि भाषण तैयार करने की प्रगति रुक गयी। किन्तु, कुछ देर बाद एकाएक भाषण-सम्बन्धी आवश्यक बातें स्फुरित होने लगती हैं और भाषण तैयार करने की क्रिया में स्पष्ट प्रगति दीख पड़ने लगती है। इस अवस्था की तुलना सीखने में प्रयुक्त सूझ (Insight) से की जा सकती है। अन्तर्दृष्ट्यात्मक अथवा सूझ के सिद्धांत में सूझ के महत्त्व पर प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ उस ओर केवल संकेत-मात्र ही पर्याप्त है।

प्रमापन--कभी-कभी तो स्फुरण की अवस्था ही चिन्तन की अन्तिम अवस्था होती है। किन्तु अधिकांशतः इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि स्फुरित विचारों की सत्यता (Validity) और विश्वसनीयता (Reliability) को प्रमापित किया जाय। मनोवैज्ञानिक सामान्यत: स्फुरित विचारों का प्रमापन (Verification) नियन्त्रित निरीक्षण (Controlled observation) के आधार पर करते है। रचनात्मक

विचारक अपने रचनात्मक विचारों को प्रामाणिक रूप देने के लिए अचानक स्फुरित विचारों में कई प्रकार के संशोधन अथवा परिमार्जन करते हैं। वस्तुतः अचानक स्फुरित विचार चिन्तन के अन्तिम रूप नहीं हैं, बल्कि वे तो व्यक्ति को केवल इस योग्य बना देते है कि वह उनपर सम्यक् रूप से चिन्तन कर सके । संभव है कि किसी कवि के मस्तिष्क में कोई विचार अचानक स्फुरित हो जाय, किन्तु वह अचानक स्फुरित विचार कविता की संज्ञा नहीं पा सकता । वह कविता का रूप तभी ले सकता है, जब कवि उसे पल्लवित और पुष्पित कर एक निश्चित रूप प्रदान कर दे । स्पष्ट है कि अचानक स्फुरित विचार अधिक चिन्तन और प्रमापन (Verification) के बाद ही प्रामाणिक रूप ग्रहण करते है ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विज्ञान और कला-सम्बन्धी रचनात्मक कृतियों के मानदंड एक-दूसरे से भिन्न होते हैं । मानदंड की यह भिन्नता ही दोनों में अन्तर ला देती है। एक वैज्ञानिक अपनी प्रेरणा अथवा स्फुरण को निरीक्षण द्वारा प्रमापित करता है। किन्तु कलाकार, चाहे वह चित्रकार हो, संगीतज्ञ हो, लेखक हो या कवि हो, अपनी कृतियों को व्यक्तिगत मानदंडो के आधार पर प्रमापित करता है। वह अपनी प्रेरणा वा स्फुरण को सिद्ध करने के बदले अवैयक्तिक रूप (Impersonal form) देता अथवा उसका वस्तुकरण (Objectification) करता है। कलकार का सत्य उसकी व्यक्तिगत अनुभूतियों का वस्तुकरण है, वैज्ञानिक का सत्य उसके अवैयक्तिक निरीक्षणों का प्रमापन (Verification) है।

—::()::—

बारहवाँ अध्याय

अचेतन तथा स्वप्न

मनोविश्लेषण (Psycho-analysis) के महान् प्रणेता सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) ने घोषित किया कि मानव-जीवन म चेतन (Conscious) से अधिक अचेतन (Unconscious) का महत्त्व है। उन्होंने अपने प्रारंभिक सिद्धांतों में अचेतन मानसिक प्रक्रियाओं (Unconscious mental processes) पर अधिक जोर दिया। उन्होंने बतलाया कि संपूर्ण मानसिक जीवन प्रधानत. अचेतन ही होता है। उन्होंने चेतन को भी अस्वीकार नहीं किया। किन्तु, उनके अनुसार मानव की मानसिक प्रक्रियाएँ (Mental processes) अधिकांशत: अचेतन स्तर (Unconscious level) की ही होती है, कुछ थोड़ी-सी मानसिक प्रक्रियाएँ चेतन स्तर (Conscious level) की भी होती है। बाद को फ्रायड ने अचेतन की नयी एवं मौलिक व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि अचेतन का निर्माण अनिवार्य रूप से प्रेरक वृत्तियों (Motives) से ही होता है। अचेतन में प्रधानत: मनुष्य की अतृप्त प्रेरक वृत्तियाँ (Unfulfilled motives) ही रहती हैं। उन्होंने इसके कई प्रमाण प्रस्तुत किये और अचेतन के अस्तित्व को सिद्ध कर दिया। अचेतन के अतिरिक्त, उन्होंने उपचेतन (Pre-conscious) की भी व्याख्या की। मनोविज्ञान की परिभाषा के क्रम में इन दोनों की संक्षिप्त व्याख्या की जा चुकी है। अत: यहाँ चेतन के अस्तित्व (Existence of unconscious), उसके विषयों (Contents) और उसके स्वरूप (Nature) पर ही मुख्यत: प्रकाश डाला जायगा।

अचेतन के अस्तित्व के प्रमाण

(**Proofs for the Existence of Unconscious**)

अचेतन के अस्तित्व के निम्नांकित प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं:-

(१) **सम्मोहनोत्तर संकेत** (Post-hypnotic suggestion):- बर्नहम (Bernheim) ने अपने एक प्रयोग में एक व्यक्ति को

सम्मोहनावस्था (Hypnotic state) में लाकर उसे आदेश दिया कि जगने के बाद उसे अमुक समय पर, जैसे आधे घंटे के बाद, अमुक कार्य करना है। जब वह व्यक्ति सम्मोहनावस्था (Hypnotic Impulse) से मुक्त हुआ और जगा, तब उसने शीघ्र ही सम्मोहनावस्था में दिये गये आदेश का पालन किया। उसने यह बिना समझे ही, कि ऐसा क्यों कर रहा है, वैसा करने के आवेश (Impulse) से विवश होकर आदेश का पालन किया। उसके इस व्यवहार की व्याख्या करते हुए यह कहा जा सकता है कि सम्मोहनावस्था में जो संकेत (Suggestions) दिये जाते हैं, वे अचेतन में सक्रिय रूप से वर्त्तमान रहते हैं और व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। फलस्वरूप, सम्मोहनोत्तरकाल (Post-hypnotic period) में व्यक्ति उन संकेतों (Suggestions) के अनुसार कार्य करने की ओर प्रबल रूप से प्रवृत्त हो जाता है।

(२) **हिस्टिरिया के लक्षण** (Symptoms of hysteria):—हिस्टिरिया के रोगियों के इलाज के क्रम में पाया गया है कि वे गतिशील अचेतन विचारों (Dynamic unconscious ideas) से अभिभूत होते हैं। उनके वे गतिशील अचेतन विचार हिस्टिरिया के लक्षणों में अभिव्यक्त होते हैं। एक उदाहरण से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जायगी। एक युवती ने अपने बीमार पिता की सेवा की कर्त्तव्य-भावना के चलते अपनी प्रेमासक्ति (Love-affair) का परित्याग कर दिया। उसे भूल जाने की पूरी कोशिश की। उसकी वह इच्छा चेतन से तो हट गयी, किन्तु अचेतन में सक्रिय रूप से बनी रही और उसके व्यवहारों को प्रभावित करती रही। अन्ततोगत्वा उसमें हिस्टिरिक गतिशून्यता (Hysteric paralysis) आ गयी। उसके लक्षण (Symptom) की व्याख्या करते हुए कहा जा सकता है कि यह पिता की सेवा से मुक्त होने की उसकी अस्वीकृत इच्छा की ही अभिव्यक्ति है। अन्य स्नायु-विकारों (Neuroses) के विश्लेषण के आधार पर भी ज्ञात होता है कि विभिन्न लक्षणों (Symptoms) के द्वारा रोगीअपनी अचेतन इच्छाओं (Unconscious wishes) को ही अभिव्यक्त करते हैं।

(३) **दैनिक जीवन की मनोविकृतियाँ** (Psycho-pathologies of everyday life):—फ्रायड ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'साइको-पैथोलोजी ऑफ एवरीडे लाइफ' में अनेक उदाहरणों के

सहारे यह सिद्ध कर दिया है कि प्रतिदिन के जीवन में होनेवाली मनुष्य की त्रुटियाँ (Lapses) या गलतियाँ (Errors) उसकी अचेतन इच्छाओं की ही अभिव्यक्ति हैं। मनुष्य कभी-कभी बोलना कुछ चाहता है, बोल कुछ और जाता है, लिखना कुछ चाहता है, लिख कुछ और जाता है। मनुष्य का ऐसा व्यवहार अतृप्त अचेतन इच्छाओं (Unfulfilled unconscious wishes) के प्रभाव का द्योतक है। चेतन रूप से (Consciously) हम जिस वस्तु को खोना नहीं चाहते, उसे भी खो देते हैं। यदि इसको व्याख्या की जाय, तो ज्ञात होगा कि अचेतन रूप से (Unconsciously) हम जिसे खोना चाहते हैं, उसे ही खोते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई नवविवाहिता युवती विवाह के उपहार-स्वरूप पायी हुई अपनी अंगूठी खो देती है, तो इसे वैवाहिक संबंध से मुक्त होने अथवा वर्तमान पति से मुक्त होने की उसकी प्रबल अचेतन इच्छा (Unconscious wish) का ही लक्षण (Sign) माना जायगा।

(४) **स्वप्न-विश्लेषण** (Dream-analysis) —स्वप्न-विश्लेषण से ज्ञात होता है कि प्रायः व्यक्ति की अतृप्त अचेतन इच्छाएँ स्वप्नों में अभिव्यक्ति पाती हैं। फ्रायड ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि व्यक्ति की अतृप्त अचेतन इच्छाएँ स्वप्नों में प्रतीकात्मक रूप (Symbolic form) में अभिव्यक्त होकर तृप्त होती हैं। उन अतृप्त अचेतन इच्छाओं को फ्रायड ने स्वप्न का अव्यक्त विषय (Latent content) माना है। इसका विस्तृत विवेचन स्वप्न के विवेचन-क्रम में किया जायगा।

(५) **स्वतन्त्र साहचर्य** (Free association) — स्वतन्त्र साहचर्य की पद्धति (Technique) का प्रयोग कर व्यक्ति की अचेतन इच्छाओं और प्रेरक वृत्तियों का विश्लेषण किया जाता है। स्वतन्त्र साहचर्य के आधार पर असामाजिक व्यवहारों (Anti-social or criminal behaviour) के कारणों का पता सुलभता से लग जाता है। निस्सन्देह, अधिकांश असामाजिक व्यवहार दमित अचेतन इच्छाओं (Repressed unconscious wishes) के ही परिणाम होते हैं।

अचेतन के विषय

(Contents of the Unconscious)

फ्रायड के अनुसार अचेतन में सारी अतृप्त शैशविक कामेच्छाएं (Repressed unfulfilled infantile sexual desires) रहती हैं।

ये दमित इच्छाएँ अथवा प्रेरक वृत्तियाँ अचेतन मे शिथिल नही रहतीं, बल्कि चेतन व्यवहार (Conscious behaviour) मे अभिव्यक्ति पाने की सतत चेष्टा करती रहती है। चूँकि ये अप्रिय होती है और व्यक्ति मे चिन्ता, लज्जा एव अपराध की भावना की सृष्टि करनेवाली होती है, इसलिए चेतन अह (Conscious self) इन्हे चेतन मे नही आने देता। जब कभी निद्रा की स्थिति मे चेतन अह (Conscious self) की जागरूकता कम हो जाती है, तब ये अचेतन प्रेरक वृत्तियाँ (Unconscious motives) छद्मवेष मे स्वप्नो मे अभिव्यक्त हो जाती है। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि ये अचेतन प्रेरक वृत्तियाँ पहले किस प्रकार अचेतन रूप धारण कर लेती है ? इसके लिए यह मानना होगा कि कोई शक्ति (Force) इसे चेतन से दूर रखने की चेष्टा अवश्य करती है, तभी यह चेतन से हट जाती है। इस तर्क के आधार पर ही फ्रायड अपने दमन के सिद्धात (Theory of repression) पर पहुँचे।

जीवन की प्रेरक वृत्तियाँ मूलत चेतन होती है। किन्तु, वातावरण की वस्तुओ अथवा व्यक्तियों से सबद्ध होकर चेतन रूप ग्रहण कर लेती है। वे प्राय. किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति प्रेम वा घृणा के रूप मे व्यक्त होती है या कभी-कभी एक ही व्यक्ति के प्रति प्रेम और घृणा, दोनों ही रूपो मे प्रकट होती है। ऐसी प्रेरक वृत्तियाँ या इच्छाएँ सामाजिक दृष्टिकोण से अवाछनीय (Undesirable) होती है। अत. इन्हे स्वीकार नही किया जा सकता। फलत व्यक्ति इन्हे दबा देता है। इस दमन (Repression) के फलस्वरूप ये चेतन से हटकर अचेतन मे चली जाती है और निरन्तर व्यक्ति के समस्त जीवन और उसके व्यवहारो को प्रभावित करती है। यह दमन की प्रक्रिया (Process of repression) चेतन नही होती, बल्कि अचेतन हुआ करती है। अचेतन में संचित ये दमित इच्छाएँ (Repressed wishes) गत्यात्मक स्वभाव (Dynamic nature) की होती है, क्योकि ये प्राय व्यक्ति के संवेगात्मक अनुभवो (Emotional experiences) से सबद्ध होती है। दमन की प्रक्रिया (Process of repression) प्राय प्रबल सवेगात्मक सघर्षो (Strong emotional conflicts) के समय ही घटित होती है।

फ्रायड ने दमन की जानेवाली इच्छाओ के बारे मे स्पष्ट रूप से कहा है कि प्राय व्यक्ति की शैशविक कामेच्छाएँ (Infantile sexual

desires) ही दमित होती है। उन्होंने बतलाया है कि मनुष्यों के सभी कार्यों के मूल में उनकी कामेच्छाएँ (Sexual desires) वर्त्तमान रहती है। कामेच्छाओं को उन्होंने 'लिबिडो' (Libido) शब्द से द्योतित किया है। उनके अनुसार 'लिबिडो' एक काम-शक्ति (Sexual energy) है, जो मानव-जीवन की अनुप्रेरणात्मक शक्ति (Motivating force) कही जा सकती है।

फ्रायड के 'लिबिडो' के सिद्धात (Theory of libido) से अल्फ्रेड ऐडलर (Alfred Adler) और युग (Jung) सहमत नहीं है। ऐडलर मानव-जीवन को अनुप्रेरणात्मक शक्ति (Motivating force) के रूप मे 'शक्ति को कामना' (Will for power) को मानते है। उनका मत है कि जीवन की प्रथम समस्या कामेच्छा (Sexual desire) नही, वरन् 'शक्ति की कामना' (Will for power) है। जीवन के प्रारम्भिक दिनों के अनुभवों के आधार पर व्यक्ति की जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति बन जाती है, एक जीवन-शैली (Style of life) निर्धारित हो जाती है। कामेच्छा (Sexual desire) को उस सपूर्ण जीवन शैली मे अपना स्थान बनाना पड़ता है। स्पष्ट है कि ऐडलर ने कामेच्छा को अस्वीकार नही किया है, किन्तु फ्रायड की तरह उसे सर्व-प्रधान नहीं माना है और 'शक्ति की कामना' (Will for power) में ही उसे समाहित कर दिया है। शैशविक कामेच्छा (Infantile Sexual desire) के रूप मे छोटे बच्चे के व्यवहार की व्याख्या ऐडलर को उचित नहीं जान पड़ी। उन्हे आधिपत्य (Domination) का बच्चे द्वारा प्रतिरोध (Resistance) और बच्चे की आधिपत्य स्थापित करने की उत्सुकता सर्वप्रथम बुनियादी प्रवृत्ति जान पड़ी। बच्चा जिन लोगों के बीच रहता है, उनसे अपने को कई बातों में हीन (Inferior) समझता है और वह निरन्तर अपना आधिपत्य कायम करने का प्रयास करता है। वास्तव मे, जब व्यक्ति जीवन के किसी पक्ष में हीनता का अनुभव करता है, तब वह अपनी हीनता की भावना (Feeling of inferiority) को दूर कर उच्चता के लक्ष्य (Goal of superiority) की ओर बढ़ने का प्रयास करता है। अन्ततोगत्वा वह अपनी हीनता की भावना की क्षतिपूर्ति (Compensation) उच्चता (Superiority) प्राप्त कर करता है। उदाहरणार्थ, डेमौसथेन्स (Demosthenes) ने तुतलाने

(Stuttering) के कारण उत्पन्न हीनता की भावना (Feeling of inferiority) की क्षतिपूर्त्ति (Compensation) ग्रीस का सबसे बड़ा वक्ता होकर की। वैसे ही, यदि कोई जीवन के किसी एक पक्ष में हीनता की भावना का अनुभव करता है, तो वह जीवन के किसी दूसरे पक्ष की अपनी उपलब्धियों के द्वारा उसकी क्षतिपूर्त्ति करता है।

युंग (Jung) की 'लिबिडो' की व्याख्या फ्रायड और ऐडलर दोनों ही से भिन्न है। उन्होंने 'लिबिडो' की व्याख्या करते हुए कहा कि यह 'जीने की इच्छा' (Will to live) है, जैसा कि शोपेनहावर (Schopenhauer) ने भी माना है। इस 'जीने की इच्छा' में ही फ्रायड की कामेच्छा (Sexual desire) और ऐडलर की 'शक्ति की कामना' (Will to power) निहित है। उन्होंने इसे व्यक्ति की संपूर्ण शक्ति (Total energy) माना और बतलाया कि यही जीवन की समस्त क्रियाओं में अभिव्यक्त होती है। 'जीने की इच्छा' से अनुप्रेरित होकर ही व्यक्ति कोई कार्य करता है।

युंग ने अचेतन (Unconscious) को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है। उन्होंने व्यक्तिगत अचेतन (Personal unconscious) से अधिक सामूहिक अचेतन (Collective unconscious) पर जोर दिया है। व्यक्तिगत अचेतन में वे दमित इच्छाएँ (Repressed desires) रहती हैं, जिन्हें व्यक्ति अपने जीवन-काल में दबा देता है। किन्तु, सामूहिक अचेतन (Collective unconscious) का इससे अधिक महत्त्व है; क्योंकि वह प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तिगत चेतन और अचेतन जीवन का मूल स्रोत है। सामूहिक अचेतन वंश-परम्परा (Heredity) की देन है। इसमें सारी प्रकृत प्रवृत्तियाँ (फ्रायड का 'इड' और संस्कार (Archetypes) निहित रहते हैं। स्पष्ट है कि सामूहिक अचेतन में जहाँ फ्रायड की प्रकृत प्रवृत्तियाँ (Freud's Id) हैं, वहाँ युंग के संस्कार (Archetypes) भी हैं। युंग ने इन दोनों की व्याख्या करते हुए कहा है कि यदि मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts), जिनमें फ्रायड का 'इड' (Id) समाहित है, कार्य करने के आदिम ढंग (Primitive way) की द्योतक हैं, तो संस्कार (Archetypes) विचार करने के आदिम ढंग को द्योतित करते हैं। ये दोनों एक-दूसरे से बिलकुल अलग नहीं कहे जा सकते; क्योंकि विचार और क्रिया साथ ही चलनेवाली हैं और विशेष रूप से आदिम स्तर (Primitive

level) पर । युंग के अनुसार सामूहिक अचेतन में संचित ये संस्कार (Archetypes) प्रायः स्वप्नों में, परियों की कहानियों में एवं पुराणों में अभिव्यक्ति पाते है ।

अचेतन का स्वरूप

(Nature of the unconscious)

अचेतन के विषयों (Contents) के विवेचन में इसके स्वरूप का भी यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। फिर भी, यहाँ संक्षेप में इसपर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है । अचेतन के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यह 'आनन्द के सिद्धांत' (Pleasure principle) से निर्देशित होता है । यह जगत् की वास्तविकताओं से विमुख रहता है। फ्रायड ने बतलाया है कि प्रायः व्यक्ति की प्रकृत प्रवृत्तियाँ (Id) आनन्दोन्मुख होने के कारण तृप्त नहीं हो पातीं। व्यक्ति जगत् की वास्तविकताओं को दृष्टिकोण में रखकर उन अवांछनीय प्रवृत्तियों का दमन कर देता है। फलतः वे दमित प्रकृत प्रवृत्तियाँ (Id) अचेतन में चली जाती है। वे वहाँ निरन्तर आनन्द-प्राप्ति की चेष्टा करती रहती है । निष्कर्ष यह कि अचेतन आनन्दोन्मुख होता है ।

फ्रायड के अनुसार अचेतन प्रधानतः काम-प्रकृति (Sexual nature) का होता है । फ्रायड ने 'सेक्स' (Sex) का प्रयोग बड़े विस्तृत अर्थ में किया है। उस विस्तृत अर्थ को दृष्टि में रखकर हम इसे रागात्मक वृत्ति कह सकते है । इस रागात्मक वृत्ति से मनुष्य का समस्त जीवन प्रभावित होता रहता है । बच्चे का माँ की ओर आकर्षित होना, युवक का किसी युवती की ओर आकर्षित होना इत्यादि इस रागात्मक वृत्ति (Sex) के ही द्योतक हैं ।

अचेतन सक्रिय (Active) और गतिशील (Dynamic) स्वभाव का होता है । अचेतन में संचित सारी दमित इच्छाएँ (Repressed desires) अभिव्यक्त होने के लिए निरन्तर क्रियाशील रहती है । वे चेतन व्यवहार (Conscious behaviour) में प्रकट होने की सतत चेष्टा करती रहती हैं, किन्तु चेतन अहं (Conscious self) उन्हें चेतन में आने से रोकता है। ऐसी स्थिति में अचेतन अपनी अभिव्यक्ति के दूसरे मार्ग ढूँढ़ निकालता है । उसकी गतिशीलता का ही

परिणाम है कि वह स्वप्नो मे, दैनिक मनोविकृतियों में तथा अन्य मार्गों में अभिव्यक्त होता रहता है ।

स्वप्न

आदिकाल से ही मनुष्य स्वप्न को गतिविधि को जानने के लिए जिज्ञासु रहा है। फलत हजारो वर्षों से स्वप्न की समुचित व्याख्या का प्रयास चलता रहा है। किन्तु इस अनवरत चेष्टा के बाद भी स्वप्न की सम्यक् व्याख्या सर्वप्रथम फ्रायड ने ही प्रस्तुत की। फ्रायड के द्वारा उपस्थित की गयी स्वप्न-व्याख्या के पूर्व प्राचीन विद्वानो की स्वप्न-व्याख्याओ का सक्षेप में उल्लेख अपेक्षित जान पडता है ।

प्राचीन काल के लोग स्वप्न को अलौकिक अथवा दैवी मानते थे। उनका विश्वास था कि स्वप्न अलौकिक अथवा दैवी जगत् से सम्बन्धित है। फलतः वे स्वप्न को देवताओं तथा दानवो से अनुप्रेरित मानते थे। स्वप्न के संबंध में उनका यह भी विश्वास था कि स्वप्न भावी घटनाओं के सूचक होते है। अरिस्टोट्ल (Aristotle) ने सर्वप्रथम स्वप्न को एक मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप मे देखा। उन्होने स्पष्ट शब्दों मे घोषित किया कि स्वप्न कोई दैवी शक्ति नही, बल्कि इसका संबंध मानवीय शक्तियों से है। स्वप्न व्यक्ति की मानसिक क्रिया है। सोयी हुई अवस्था में यदि कोई अति क्षीण संवेदना भी होती है तो स्वप्न में अति तीव्र जान पड़ती है। उदाहरणार्थ यदि सुषुप्तावस्था में किसी कारणवश शरीर के अंग थोड़ा गर्म हो जाते हं, तो व्यक्ति को स्वप्न मे ऐसा अनुभव होता है कि वह आग में चल रहा है तथा अति तीव्र उष्णता का अनुभव कर रहा है ।

स्वप्नों का दैहिक सिद्धान्त

(Physiological theory of dreams)

स्वप्नों के दैहिक सिद्धांत के सम्बन्ध में बिज (Binze), मौरी (Mauri), रॉबर्ट (Robert), डेलेज (Delege) इत्यादि विद्वानों के विचार उल्लेखनीय है। किन्तु इनके विचारों के विस्तार मे न जाकर यहाँ दैहिक सिद्धांत का संक्षिप्त विवेचन ही अभीष्ट है। इस सिद्धांत के अनुसार स्वप्न होने के कारण बाह्य एवं आन्तरिक शारीरिक उत्तेजनाएँ है। यदि व्यक्ति अपने को सभी प्रकार की उत्तेजनाओं से बचाकर सो सके, तो उसके स्वप्न देखने को संभावना नहीं रह जायगी। लेकिन वास्तविकता तो

यह है कि हम अपनी नींद को उत्तेजनाओं के प्रभाव से बचा नहीं सकते। निद्रावस्था में बाह्य एवं आन्तरिक शारीरिक उत्तेजनाएँ व्यक्ति की निद्रा को निरन्तर भंग करती रहती हैं। फलतः वह स्वप्न देखता है। वास्तव में स्वप्न शारीरिक उत्तेजनाओं के कारण उत्पन्न निद्रा की बाधा के प्रति प्रतिक्रिया-मात्र कहे जा सकते हैं। स्वप्न की उपयोगिता के संबंध में दैहिक सिद्धान्त के अधिकांश समर्थकों का कहना था कि स्वप्न निरर्थक होता है तथा स्वप्न देखनेवाले के लिए इसका कोई उपयोग नहीं है। यह दैहिक सिद्धांत के एक बड़े समर्थक बिज (Binze) के विचारों से स्पष्ट है।*

एक शारीरिक क्रिया के रूप में स्वप्न का समर्थन रॉबर्ट (Robert) के विचारों में भी मिलता है। सन् १८८६ ई० में रॉबर्ट ने एक विचार प्रस्तुत किया, जिसमें स्वप्न के कार्य अथवा उसके उपयोगी फल की चर्चा मिलती है। रॉबर्ट का कहना था कि जाग्रत जीवन के वे विचार, जिनका सफल समाधान हो जाता है, स्वप्न के कारण नहीं हो सकते। स्वप्न तो जाग्रत जीवन के उन विचारों अथवा ऐन्द्रिय प्रभावों (Sensory impressions) के कारण होते हैं, जो अपूर्ण रह जाते हैं अथवा महत्त्वहीन समझकर व्यक्ति जिनपर अपना ध्यान नहीं देता। अतएव, स्पष्ट है कि जाग्रत जीवन के अपूर्ण या उपेक्षित ऐन्द्रिय प्रभाव (Sensory impressions) ही स्वप्न के कारण होते हैं। स्वप्नों के कारणों के अतिरिक्त उनकी उपयोगिता पर भी रॉबर्ट ने अपना विचार उपस्थित किया है। उनका कहना है कि अपूर्ण विचारों तथा ऐन्द्रिय प्रभावों से आक्रान्त होकर मस्तिष्क बोझिल हो जाता है। मस्तिष्क का यह बोझ अथवा भार तब हल्का होता है, जब ये विचार तथा ऐन्द्रिय प्रभाव स्वप्नों में अभिव्यक्ति पा जाते हैं। अतः स्वप्नों को जाग्रत जीवन के ऐन्द्रिय प्रभावों के संचित हो जाने के कारण अति बोझिल मस्तिष्क के रक्षक के रूप में देखा जा सकता है।

डेलेज (Delege) ने भी अपनी स्वप्न-व्याख्या को स्वप्न की उल्लिखित विशेषताओं पर ही, आधारित किया है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि रात के सपने दिन के अवरोधों (Suppressions) के द्वारा मस्तिष्क में संचित ऐन्द्रिय प्रभावों के कारण उत्पन्न होते हैं। स्पष्ट है कि

*"All the facts as we see them, urge us to characterize the dream as a physical process, in all cases useless and in many cases definitely morbid." —Binze

उनके अनुसार कुंठित ऐन्द्रिय प्रभाव (Suppressed sensory impressions) स्वप्नों में अभिव्यक्त होते हैं।

अन्त में, दैहिक सिद्धांत की समीक्षा करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह सिद्धांत इस बात को तो व्याख्या कर देता है कि स्वप्न क्यों होते हैं, किन्तु यह नहीं बतला पाता कि क्यों एक ही प्रकार की उत्तेजनाएँ विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वप्न उत्पन्न करती हैं।

फ्रायड का स्वप्न-सिद्धान्त

फ्रायड ने अपनी 'स्वप्नों की व्याख्या' ('The interpretation of dreams') में सर्वप्रथम स्वप्नों की अति विशद व्याख्या प्रस्तुत की तथा मानव-स्वभाव अथवा मनुष्य की वृत्तियों (Tendencies) के साथ इसका सम्बन्ध बतलाया। उनके अनुसार स्वप्न निरर्थक तथा अनुपयोगी नहीं, वरन् सार्थक तथा उपयोगी होते हैं। उन्होंने स्वप्न को इच्छा-पूर्त्ति (Wish-fulfilment) माना है। इसलिए, उनके स्वप्न-सिद्धान्त को इच्छा-पूर्त्ति का सिद्धान्त कहा जाता है। इच्छा के सम्बन्ध में उन्होंने बतलाया है कि मनुष्य में काम (Sex) की इच्छा सबसे प्रबल होती है। मनुष्य में वर्त्तमान यह प्रबल काम (Sex) की इच्छा निरंतर अपनी तृप्ति के लिए सक्रिय रहती है। किन्तु व्यावहारिक जीवन में इस इच्छा की पूर्त्ति सहज ढंग से नहीं हो पाती। सामाजिक बन्धनों तथा नैतिक नियमों के कारण व्यक्ति प्रायः काम-वृत्ति (Sexual tendency) की तृप्ति में अपने को असमर्थ पाता है। एक ओर वह अपनी कामवृत्ति की परिपुष्टि चाहता है, तो दूसरी ओर सामाजिक तथा नैतिक नियमों की रक्षा। फलतः उसे मानसिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है। अन्ततः वह प्रायः अपनी काम-वृत्ति के दमन (Repression) के द्वारा मानसिक संघर्ष से त्राण पाता है। यह दमित (Repressed) काम-वृत्ति चेतन (Conscious) से हटकर अचेतन (Unconscious) में चली जाती है। अचेतन में संचित यह काम-वृत्ति स्वप्नों में अभिव्यक्त होती है। जाग्रतावस्था में चेतन जागरूक रहता है। फलतः काम-वृत्ति को, जो सामाजिक दृष्टिकोण से अवांछनीय प्रवृत्ति है, वह तृप्त नहीं होने देता। किन्तु निद्रावस्था में व्यक्ति का चेतन कमजोर पड़ जाता है, उसका प्रतिरोध (Resistance) बहुत कम हो जाता है। परिणामतः अचेतन को अपनी अभिव्यक्ति का सुअवसर मिल जाता है। लेकिन फिर भी स्वप्न-प्रतिबन्धक

(Dream-Censor)* के कारण कुछ-न-कुछ प्रतिरोध बना ही रह जाता है। अतएव, निद्रावस्था में भी दमन (Repression) के कारण अचेतन में संचित इच्छाएँ नग्न रूप में अपनी अभिव्यक्ति नहीं पा सकतीं। फलतः वे स्वप्न-क्रिया (Dream-work) द्वारा अपने रूप परिवर्त्तित कर प्रतीकों के सहारे अभिव्यक्त होती हैं और इस प्रकार अपनेको परिपुष्ट करती हैं।

ऊपर वर्णित फ्रायड के स्वप्न-सिद्धान्त का सबसे विवादग्रस्त अंश यह है कि सभी स्वप्नों से स्वप्न-द्रष्टा की इच्छाओं की पूर्त्ति होती है। इस सम्बन्ध मे अक्सर यह प्रश्न किया जाता है कि यदि स्वप्नों से इच्छाओं की पूर्त्ति होती है, तो दुःखद स्वप्न, जैसे, चिन्ता-स्वप्न (Anxiety-dreams) तथा दंड-स्वप्न (Punishment-dreams) क्यों होते हैं? उन्हें किस प्रकार की इच्छाओं की पूर्त्ति माना जाय। दंड-स्वप्नों के बारे में फ्रायड का कहना है कि इन स्वप्नों से भी इच्छाओं की पूर्त्ति होती है। ये स्वप्न मूल प्रवृत्त्यात्मक इच्छाओ (Instinctual wishes) को परिपुष्ट नहीं करते, वरन् इनसे श्रेष्ठ अहंभाव (Super-ego) की इच्छाएँ तृप्त होती हैं। मनोविश्लेषण (Psycho-analysis) के अध्ययन से स्पष्ट है कि श्रेष्ठ अहंभाव (Super-ego) के प्रधान कार्य है---आलोचना करना, दोषारोपण करना तथा दंड देना। अतएव, दंड-स्वप्नों को फ्रायड ने श्रेष्ठ अहंभाव की इच्छाओं की पूर्त्ति माना है।

फ्रायड के स्वप्न-सिद्धान्त के विरुद्ध दो प्रकार की आपत्तियाँ की जाती हैं। पहली यह कि वे लोग, जिन्हे तीव्र संक्षोभों (Shocks) अथवा

*स्वप्न-प्रतिबन्धक (Dream-censor)—फ्रायड ने स्वप्न-निर्माण (Dream-formation) के प्रधान कारणों के रूप में मनुष्य में दो प्रकार की मानसिक शक्तियों अथवा प्रवृत्तियों (Psychic forces or tendencies) के अस्तित्व को माना है। पहली प्रवृत्ति स्वप्नों के द्वारा अभिव्यक्त इच्छाओं का बोध कराती है तथा दूसरी इस स्वप्न-इच्छा (Dream-wish) की मौलिक अभिव्यक्ति के प्रति प्रतिरोध (Resistance) उपस्थित कर इसे विकृत रूप (Distorted form) में अभिव्यक्त होने के लिए बाध्य करती है। अतएव, जिस मानसिक शक्ति अथवा प्रवृत्ति के द्वारा प्रतिरोध उपस्थित होने के कारण स्वप्न का अव्यक्त विषय (Letent content) विकृत रूप ले लेता है, उसे ही स्वप्न-प्रतिबंधक (Dream-censor) कहते हैं।

मानसिक आघातो (Psychic traumas) का अनुभव एक बार हो जाता है, वे प्रायः अपने स्वप्नो मे भी आघात पहुँचानेवाली परिस्थितियों का अनुभव करते है। यहाँ यह प्रश्न बिलकुल समुचित जान पड़ता है कि यदि स्वप्न इच्छा-पूर्त्ति (Wish-fufilment) है, तो इन दु खपूर्ण सक्षोभ अथवा आघात-सम्बन्धी स्वप्नो की व्याख्या इच्छा-पूर्त्ति के रूप में किस प्रकार की जा सकती है? दूसरी आपत्ति यह की जाती है कि बाल्यकाल के काम-वृत्ति-सबधी अनुभव दु खपूर्ण प्रभावों (Painful impressions), जैसे चिन्ता (Anxiety), निषेध (Prohibition), निराशा दंड आदि से सश्लिष्ट होते है, फिर भी वे स्वप्नों मे क्यो आते है? इनसे स्वप्न-द्रष्टा की किन इच्छाओ की पूर्त्ति होती है? क्या दुःखपूर्ण अनुभव (Painful experience) और इच्छा-पूर्त्ति (Wish-fulfilment)—ये दोनों दो विरोधी बाते नहीं है?

इन आपत्तियों पर विचार करते हुए फ्रायड ने स्वप्न के अव्यक्त विषय (Latent content) की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। उनके अनुसार स्वप्न में आये हुए अधिकांश दुःखपूर्ण अनुभव अव्यक्त विषय (Latent content) के विकृत हुए (Distorted forms) होते हैं तथा इनसे व्यक्ति की अतृप्त अचेतन इच्छाओ की पूर्त्ति होती है। किन्तु आघातिक मनोदौर्बल्य (Traumatic neurosis) की अवस्था में स्वप्नों का अन्त प्राय चिन्ता मे होता है तथा स्वप्न-द्रष्टा की निद्रा भंग हो जाती है। यहाँ स्वप्न इच्छा-पूर्त्ति तथा नींद के अभिभावक (Guardian) के रूप मे असफल जान पड़ते है। इसे दृष्टि मे रखते हुए फ्रायड ने अपने मौलिक स्वप्न-सिद्धांत में परिमार्जन किया है। फलतः उन्होंने स्वप्नों को इच्छा-पूर्त्ति के बदले सचेष्ट इच्छा-पूर्त्ति (Attempted wishfulfilment) माना तथा स्वप्नों को तीन वर्गों में बाँट दिया—(१) इच्छा-स्वप्न (Wish-dreams), (२) चिन्ता-स्वप्न (Anxiety-dreams) तथा (३) दड-स्वप्न (Punishment-dreams)। स्पष्ट है कि फ्रायड के परिमार्जित स्वप्न-सिद्धान्त के अनुसार स्वप्नों में इच्छा-पूर्त्ति की चेष्टा पायी जाती है।

स्वप्न-विषय
(Dream-contents)

फ्रायड स्वप्न के व्यक्त (Manifest) तथा अव्यक्त (Latent)

दो प्रकार के विषयो (Contents) को मानते है। स्वप्न-द्रष्टा स्वप्न मे जिन वस्तुओ अथवा घटनाओ के बिबो (Images) का अनुभव करता है तथा जगने पर जिनका वर्णन करता है, उन्हे फ्रायड ने स्वप्न का व्यक्त विषय (Manifest content) माना है। जिन अतृप्त इच्छाओ के कारण स्वप्न होते है, उन्हे फ्रायड ने स्वप्न का अव्यक्त विषय (Latent content) कहा है। वस्तुत स्वप्न का अव्यक्त विषय (Latent content) स्वप्न के वास्तविक तत्त्वो का द्योतक है। इसका ज्ञान स्वप्न-विश्लेषण (Dream-analysis) द्वारा होता है। स्वप्न के व्यक्त तथा अव्यक्त विषयो के सबध पर प्रकाश डालते हुए यह कहा जा सकता है कि स्वप्न का व्यक्त विषय अव्यक्त विषय का ही परिवर्तित अथवा विकृत रूप है तथा अव्यक्त विषय व्यक्त विषय का वास्तविक रूप है। ऊपर से देखने पर ऐसा जान पडता है कि स्वप्न के इन दोनो विषयो मे कोई सबध नही है। इसका कारण यह है कि स्वप्न के वास्तविक तत्त्व स्वप्न-क्रिया (Dream-work) द्वारा परिवर्तित अथवा विकृत होकर स्वप्न मे अभिव्यक्त होते है। यह स्वप्न-क्रिया (Dream-work) बडे महत्त्व का कार्य करती है, क्योकि यह अचेतन की वाछनीय इच्छाओ को वह रूप दे देती है, जो चेतन को स्वीकृत हो सके। इसी विकृति (Distortion) के कारण स्वप्न विचित्र तथा निरर्थक जान पडते है। अत यहाँ सक्षेप मे स्वप्न-क्रिया का उल्लेख अभीष्ट है।

स्वप्न-क्रिया
(**Dream-work**)

फ्रायड की स्वप्न-क्रिया के अन्तर्गत प्रधानत पाँच कार्य-पद्धतियो (Mechanisms) का उल्लेख किया जा सकता है। वे ये है--

(१) सक्षेपण (Condensation),
(२) विस्थापन (Displacement),
(३) नाट्यीकरण (Dramatization),
(४) प्रतीकीकरण (Symbolization),
(५) परवर्त्ती विस्तार (Secondary elaboration)।

संक्षेपण (Condensation) --जब हम स्वप्न के व्यक्त विषय (Manifest content) की तुलना अव्यक्त विषय (Latent content) से करते है, तब स्पष्टत यह जान पडता है कि सक्षेपण को

क्रिया संपन्न हो चुकी है। स्वप्न का व्यक्त विषय (Manifest content) अव्यक्त विषय (Latent content) की अपेक्षा क्षीण, अपूर्ण तथा संक्षिप्त होता है। यह संक्षेपण की क्रिया इस प्रकार संपन्न होती है--

(१) अव्यक्त विषय की अधिकांश बातें व्यक्त विषय में आने के पहले लुप्त हो जाती हैं। फलतः अव्यक्त विषय के थोड़े-से अंश ही व्यक्त विषय में आ पाते हैं।

(२) अनेक घटनाओं के मिलते-जुलते अंश एक ही बिंब में सिमट जाते हैं। परिणाम-स्वरूप, स्वप्न में आया हुआ एक ही बिंब कई घटनाओं का प्रतीक (Symbol) होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वप्न का व्यक्त विषय (Manifest content) अव्यक्त विषय (Latent content) का अति विकृत (Distorted) तथा अपूर्ण रूप है। वस्तुतः अनेक विचारों अथवा घटनाओं का थोड़े-से बिंबों (Images) में सिमट जाना ही संक्षेपण (Condensation) कहलाता है।

विस्थापन (Displacement):-- विस्थापन-क्रिया द्वारा स्वप्न अव्यक्त विषय (Latent content) से हटकर अन्यत्र केन्द्रीभूत हो जाता है। फलतः स्वप्न में अव्यक्त विषय (Latent content) के प्रधान अंश गौण जान पड़ते हैं। इस क्रिया द्वारा स्वप्न अव्यक्त विषय (Latent content) की किसी भी घटना अथवा वस्तु का मूल्य (Value) दूसरी घटना अथवा वस्तु की ओर विस्थापित (Displaced) हो जाता है। यह विस्थापन (Displacement) प्रायः स्वप्न-द्रष्टा के भावों (Feelings) तथा संवेगों (Emotions) का ही होता है। वास्तव में व्यक्ति को जिस वस्तु या व्यक्ति में संवेगात्मक अनुभूति (Emotional experience) होती है, स्वप्न में वह उस व्यक्ति या वस्तु से भिन्न किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु में ही अपनी संवेगात्मक अनुभूति (Emotional experience) पाता है। फलतः स्वप्न में अव्यक्त विषय (Latent content) का अति विकृत रूप ही प्रकट हो पाता है। इसलिए, स्वप्न के व्यक्त विषय (Manifest content) के आधार पर स्वप्न-द्रष्टा की वास्तविक इच्छाओं का ज्ञान बड़ा कठिन होता है। स्वप्न-द्रष्टा की वास्तविक इच्छाओं के परिज्ञान के लिए स्वप्न-विश्लेषण (Dream-analysis) का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। यह विस्थापन-क्रिया का ही फल है कि स्वप्न-द्रष्टा को वस्तुतः जिस विषय में अभिरुचि है, उसका अनुभव न

कर वह स्वप्न में किसी और विषय का ही अनुभव करता है।

नाट्यीकरण (Dramatization) :—नाट्यीकरण (Dramatization) के द्वारा व्यक्ति की इच्छाएँ स्वप्न में अमूर्त्त रूप (Abstract form) में प्रकट न होकर मर्त्त रूप (Concrete form) में प्रकट होती हैं। वे ऐसे आकर्षक चित्रों के रूप में प्रकट होती हैं कि स्वप्न-द्रष्टा अनुभव करता है कि सचमुच उसके सामने घटनाएँ घट रही हों। स्वप्न में आये हुए ये चित्र प्रायः दृश्य, श्रव्य तथा स्पर्श-सम्बन्धी हुआ करते हैं। स्वप्न की अन्य कार्य-पद्धतियों (Mechanisms) के सदृश नाट्यीकरण द्वारा भी स्वप्न में स्वप्न-द्रष्टा की इच्छाएँ इस प्रकार विकृत (Distorted) रूप में अभिव्यक्त होती हैं कि स्वप्न के व्यक्त विषय (manifest content) को देखकर उनका ज्ञान प्राप्त करना सचमुच बड़ा ही कठिन है।

प्रतीकीकरण (Symbolization) :—प्रतीकीकरण स्वप्न-क्रिया (Dream-work) का प्रधान अंग है। इसके द्वारा स्वप्न का अव्यक्त विषय (Latent content) स्वप्नों में विकृत रूप में अभिव्यक्त होता है। अचेतन इच्छाएं प्रतीकों के माध्यम से स्वप्नों में अभिव्यक्त होती हैं। अवांछनीय अचेतन इच्छाएँ अभिव्यक्त नहीं हो पातीं; क्योंकि स्वप्न-प्रतिबंधक (Dream-censor) प्रतिरोध (Resistance) उपस्थित करता है। किन्तु जब ये प्रतीकों (Symbols) का रूप ले लेती हैं, तब स्वप्न-प्रतिबंधक का प्रतिरोध कम हो जाता है। फलतः ये स्वप्नों में अभिव्यक्ति पा जाती हैं। स्पष्ट है कि अवांछनीय अचेतन इच्छाएँ प्रतीकात्मक रूपों (Symbolic form) में ही स्वप्नों में अभिव्यक्त होती हैं। स्वप्न-व्याख्या के सिलसिले में स्वप्न-प्रतीकों (Dream-symbols) पर और अधिक प्रकाश डाला जायगा।

परवर्त्ती विस्तार (Secondary elaboration) :—स्वप्न समाप्त होने के बाद जब व्यक्ति जगता है, तब वह स्वप्न का वर्णन करते समय उसे सार्थक, तर्कयुक्त तथा संगत बना देता है। जगी हुई अवस्था में व्यक्ति का चेतन जागरूक रहता है तथा उसका अहंभाव (Ego) किसी भी वस्तु को तर्कसंगत देखना चाहता है। फलतः व्यक्ति स्वप्न के विभिन्न असंबद्ध तत्त्वों में एक निश्चित संबंध स्थापित कर स्वप्न का वर्णन करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परवर्त्ती विस्तार की क्रिया द्वारा स्वप्न अपनी

निरर्थकता तथा असगति (Inconsistency) खोकर तर्कयुक्त, सगत (consistent) तथा सुबोध हो जाता है। स्वप्न के सभी असबधित भागो मे एक निश्चित सबध स्थापित हो जाता है। स्वप्न-विश्लेषण से यह जान पडता है कि परवर्त्ती विस्तार (Secondary elaboration) की क्रिया स्वप्न के विभिन्न तत्त्वो को इस प्रकार मोड देती है कि उनके वास्तविक सबध मिट जाते है। परवर्त्ती विस्तार की क्रिया सभवत अन्य जाग्रत विचारो (Waking thoughts) के ही समान होती है। जिस प्रकार हमारे जाग्रत विचार किसी भी वस्तु को तर्कपूर्ण तथा सार्थक रूप मे देखते है, उसी प्रकार परवर्त्ती विस्तार की क्रिया भी स्वप्न को सार्थक तथा तर्क-पूर्ण बना देती है।

स्वप्न-व्याख्या
(Dream-Interpretation)

स्वप्न की व्याख्या मे फ्रायड ने प्रतीको (Symbols) का सहारा लिया। उन्होने स्वप्न को समझने के लिए प्रतीको के अतिरिक्त स्वतन्त्र साहचर्य (Free association) की पद्धति का भी प्रयोग किया। फ्रायड का विचार है कि व्यक्ति का अचेतन (Unconscious) प्राय प्रतीको (Symbols) के माध्यम से ही अभि-यक्त होता है। व्यक्ति की अतृप्त अचेतन इच्छाएँ स्वप्नो मे प्रतीकात्मक रूप (Symbolic form) मे प्रकट होती है। अतएव, स्वप्न की सम्यक् व्याख्या के लिए प्रतीक का समुचित ज्ञान आवश्यक है। यहा फ्रायड के द्वारा निर्णीत कुछ प्रतीको (Symbols) को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जाता है। फ्रायड के अनुसार यात्रा मृत्यु का प्रतीक है, पानी जन्म का प्रतीक है, राजा-रानी माँ-बाप के प्रतीक है, पहाड की चोटी अथवा सीढी पर चढना मैथुन का प्रतीक है तथा कपडा नग्नावस्था का प्रतीक है। यहाँ यह व्यक्त कर देना असगत न होगा कि फ्रायड ने स्वप्न-प्रतीक (Dream-Symbols) को पुराण, लोकाचार, लोकगीत इत्यादि से ग्रहण किया है। इस प्रकार फ्रायड ने प्रतीको की सूची के आधार पर स्वप्नो की व्याख्या प्रस्तुत की है। सचमुच ये प्रतीक स्वप्न-विश्लेषक (Dream-analyst) को स्वप्न के वास्तविक तत्त्वो अथवा स्वप्न मे अभिव्यक्त व्यक्ति की वास्तविक इच्छाओ के जानने मे बहुत सहायता प्रदान करते है।

प्रतीको के सिवा फ्रायड ने स्वप्न की व्याख्या मे स्वतन्त्र साहचर्य (Free

association) का प्रयोग भी आवश्यक समझा। इस विधि के द्वारा स्वप्न विश्लेषक स्वप्न-द्रष्टा के वर्त्तमान तथा अतीत साहचर्यों (Associations) का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् स्वप्न-प्रतीकों का उसके व्यक्तिगत वर्त्तमान तथा अतीत साहचर्यों के साथ संबंध स्थापित कर स्वप्न को समझने की चेष्टा करता है। इस विधि द्वारा स्वप्न के समझने में सरलता होती है। यहाँ यह बतला देना समीचीन प्रतीत होता है कि इस विधि के द्वारा स्वप्न का ज्ञान बहुत कुछ स्वप्न-विश्लेषक की विश्लेषणात्मक योग्यता पर निर्भर करता है।

फ्रायड तथा ऐडलर के स्वप्न-संबंधी विचारों में भेद

स्वप्नों के लिए जहाँ तक मानसिक संघर्ष (Mental conflict) तथा दमन (Repression) का प्रश्न है, सभी मनोविश्लेषक (Psycho-analysts) एकमत हैं। किन्तु, किस वृत्ति (Tendency) अथवा इच्छा (wish) का दमन किया जाता है, यह विवादास्पद है। फ्रायड के अनुसार काम-वृत्ति का दमन ही स्वप्न का कारण है। पर ऐडलर तथा युंग इसे नहीं मानते। ऐडलर का कहना है कि मनुष्य में आत्म-स्थापन (Self-assertion) की वृत्ति सबसे प्रबल होती है। इस वृत्ति का अतृप्त रह जाना ही स्वप्न का कारण है। ऐडलर का यह निश्चित विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशिष्ट जीवन-शैली (Style of life) होती है, जिसका निर्माण बाल्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में हो जाता है। ऐडलर के अनुसार स्वप्नों में व्यक्ति की जीवन-शैली (Style of life) ही अभिव्यक्त होती है।

फ्रायड तथा ऐडलर के विचारों में केवल दमन की जानेवाली प्रवृत्ति (Tendency) को लेकर ही भेद नहीं है, बल्कि फ्रायड ने जहाँ स्वप्नों को अतीत की इच्छाओं की पूर्त्ति माना है, वहाँ ऐडलर ने स्वप्न का संबंध अतीत से न मानकर भविष्य से माना है। ऐडलर के अनुसार व्यक्ति को अपने वास्तविक जीवन में जो कार्य करना होता है, स्वप्न उसी का अभ्यास मात्र (Rehearsal) है। ऐडलर के लिए स्वप्न का महत्त्व इस बात में है कि वह विशेष प्रकार के कार्यों के प्रति व्यक्ति की जीवन-शैली का द्योतक होता है। उनके ये विचार निम्नलिखित स्वप्न में स्पष्टतः लक्षित होते हैं:—

एक व्यक्ति ने ब्याह से कुछ समय पहले यह स्वप्न देखा था कि वह

दो देशों की सीमाओं के बीच में, बन्दी बना लिये जाने की धमकी के साथ, रोक रखा गया है।

ऐडलर के अनुसार इस स्वप्न का सम्बन्ध उस व्यक्ति के जाग्रत जीवन की उन समस्याओं से है, जिनका वह समाधान नहीं पा सका है। साथ-ही-साथ यह स्वप्न उन समस्याओं के प्रति उस व्यक्ति की मनोवृत्ति का भी द्योतक है।

फ्रायड तथा युंग के स्वप्न-संबंधी विचारों में भेद

फ्रायड ने काम-वृत्ति को तथा ऐडलर ने आत्म-स्थापन (Self-assertion) की वृत्ति को स्वप्नों का कारण माना ह। युंग (Jung) की दृष्टि में ये दोनों ही मनोविश्लेषक अपने विचारों में एकांगी है। उनका कहना है कि मनुष्य की मूल प्रबलतम वृत्ति के सबन्ध में फ्रायड तथा ऐडलर के विचार ग्राह्य नहीं है। मनुष्य की मूल प्रबलतम वृत्ति के सम्बन्ध में युंग का मत है कि मनुष्य में एक सामान्य जीवन-शक्ति (General life-energy) होती है तथा वही सामान्य जीवन-शक्ति विभिन्न वृत्तियों (Te dencies) में अभिव्यक्त होती है। वह कभी काम-वृत्ति, कभी आत्म-स्थापन-वृत्ति तथा कभी धार्मिक और नैतिक वृत्तियों में रूपान्तरित होती रहती है, किन्तु उसका मूल स्वरूप निरन्तर अक्षुण्ण रहता है। भौतिक विज्ञान में भी शक्ति (Energy) के सम्बन्ध में ऐसी ही धारणा है। भौतिक विज्ञान यह मानता है कि एक ही शक्ति (Energy) ताप, बिजली, भौतिक पदार्थों की गति आदि में रूपान्तरित होती है। यद्यपि उस शक्ति के विभिन्न रूप देखने को मिलते है, किन्तु मूलतः वही एक शक्ति सर्वत्र विद्यमान रहती है। युंग ने अपनी स्वप्न-सम्बन्धी व्याख्या में स्पष्ट रूप से बतलाया है कि स्वप्नों में मनुष्य की विभिन्न वृत्तियाँ अभिव्यक्ति पाती हैं, न कि केवल काम-वृत्ति अथवा आत्म-स्थापन-वृत्ति ही अभिव्यक्त होती है।

फ्रायड के समान युग ने भी स्वप्नों पर अचेतन (Unconscious) के प्रभाव को स्वीकार किया है। किन्तु अचेतन के सम्बन्ध में इनके विचार फ्रायड से भिन्न है। फ्रायड ने जहाँ व्यक्तिगत अचेतन (Personal unconscious) पर जोर दिया है, वहाँ युंग ने सामूहिक अथवा जातीय (Collective or Racial unconscious) को प्रधान माना है। वस्तुतः युंग ने दो प्रकार के अचेतन का उल्लेख किया है—व्यक्तिगत अचेतन (Personal unconscious) तथा सामूहिक अथवा जातीय अचेतन

(Collective or Racial unconscious)। सामूहिक अचेतन की व्याख्या करते हुए उन्होंने बतलाया है कि इसमें भी सभी प्रकार की मूल प्रवृत्तियाँ तथा जातीय विशेषताओं (Racial characteristics) के संस्कार (Archetypes) निहित रहते हैं। सामूहिक अचेतन में संचित ये संस्कार ही प्रायः स्वप्नों में अभिव्यक्त होते हैं। इस प्रकार स्वप्नों में अभिव्यक्त होनेवाले अचेतन के स्वरूप को लेकर फ्रायड तथा युंग में भिन्नता पायी जाती है।

फ्रायड ने स्वप्न के लिए दमन अथवा कुंठा (Repression) को आवश्यक माना है। उनका कहना है कि काम-वृत्ति के दमन (Repression) के बिना स्वप्न नहीं हो सकते। किन्तु युंग ने स्वप्न के लिए दमन को आवश्यक नहीं माना है। उनका कहना है कि अन्य मानसिक क्रियाओं की तरह स्वप्न भी एक सामान्य मानसिक क्रिया है। व्यक्ति के सामूहिक अचेतन (Collective unconscious) में संचित जातीय विशेषताओं (Racial characteristics) के संस्कार (Archetypes) अपनी सहज गति से स्वप्नों में अभिव्यक्त होते रहते हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यद्यपि युंग ने स्वप्नों के लिए दमन (Repression) को आवश्यक नहीं माना है, तथापि वे यह अस्वीकार नहीं करते कि दमन के कारण भी स्वप्न होते हैं।

फ्रायड के अनुसार स्वप्न का सम्बन्ध अतीत के अनुभवों से, विशेषतः बाल्यकाल के काम-सम्बन्धी अनुभवों से रहता है, किन्तु युंग के अनुसार स्वप्न का सम्बन्ध वर्त्तमान से रहता है। युंग का कहना है कि स्वप्नों से वर्त्तमान समस्याओं की ओर स्वप्न-द्रष्टा की अचेतन मनोवृत्ति (Unconscious attitude) का पता चलता है। युंग ने एक स्वप्न के द्वारा अपनी स्वप्न-व्याख्या (Dream-interpretation) को फ्रायड की स्वप्न-व्याख्या से भिन्न बतलाया है। वह स्वप्न एक ऐसे युवक का है, जिसे विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद कोई काम नहीं मिल सका और परिणामतः वह मनोदौर्बल्य (Psycho-neurosis) का शिकार हो गया। उसका स्वप्न यह था—

"मैं अपनी माँ और बहन के साथ सीढ़ी पर चढ़ रहा था। जैसे ही हमलोग शिखर पर पहुँचे कि मुझसे कहा गया कि मेरी बहन को बच्चा होनेवाला है।"

*Jung Collected Papers, P —219

फ्रायड के अनुसार इस स्वप्न की व्याख्या सुगम है। 'सीढ़ी पर चढ़ना' मैथुन का प्रतीक है तथा 'माँ' और 'बहन' बाल्यकाल की काम-वृत्ति के प्रतीक हैं। परन्तु इस व्याख्या से असन्तुष्ट होकर युंग ने इस स्वप्न को समझने के लिए स्वतन्त्र साहचर्य (Free association) की विधि का प्रयोग किया। फलतः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'माँ' कर्त्तव्यहीनता का द्योतक है, 'बहन' सच्चे प्रेम को द्योतित करती है, 'सीढ़ी पर चढ़ना' जीवन को सफल बनाने के प्रयास का प्रतीक है तथा 'भावी बच्चे' से पुनर्जन्म का बोध होता है। सारे स्वप्न से उस नवयुवक की वर्त्तमान परिस्थिति के साथ सफल अभियोजन (Adjustment) के निमित्त अचेतन शक्तियों (Unconscious energies) के सतत प्रयास का बोध होता है। स्वप्न की ये विभिन्न व्याख्याएं स्वप्न के सच्चे स्वरूप को प्रकट करने में कहाँ तक सफल है, कहना बड़ा कठिन है। इस कठिनाई का अनुभव करते हुए ही वुडवर्थ (Woodworth) ने स्वप्न-व्याख्याओं के सम्बन्ध में यह आशंका प्रकट की है कि संभवतः कोई भी स्वप्न-व्याख्या स्वप्न के सच्चे स्वरूप को प्रस्तुत नहीं करती।*

सभी स्वप्न-व्याख्याओं में आंशिक सत्यता अवश्य है, किन्तु पूर्ण रूप से कोई भी एक व्याख्या सत्य नहीं कही जा सकती। वास्तविकता यह है कि सभी स्वप्न-व्याख्याओं से स्वप्न के किसी-न-किसी पहलू पर अवश्य प्रकाश पड़ता है, किन्तु ऐसी कोई भी एक स्वप्न-व्याख्या नहीं है, जो स्वप्न के सभी पहलुओं पर समान रूप से प्रकाश डाल पाती हो।

---

* "No interpretation really conveys the dream. Speaking for myself, I have grave doubts of the validity of any dream-interpretation. What underlies a given dream is certainly much more than finds a place in any interpretation."—R. S. Woodworth : Contemporary Schools of Psychology, Sixth edition; P. 184.

तेरहवाँ अध्याय

अनुप्रेरणा

व्यक्ति कोई कार्य क्यों करता है—यह मनोविज्ञान की एक प्रधान समस्या है। इस पर विचार करने से स्पष्ट हो जायगा कि मानव-व्यवहार के मूल में प्रेरक वृत्ति (Motive) वर्त्तमान रहती है और व्यक्ति उससे अनुप्रेरित होकर ही कोई कार्य करता है। प्रेरक वृत्ति से उस आन्तरिक स्थिति का बोध होता है, जो प्राणी में क्रिया उत्पन्न करती तथा उसे तबतक जारी रखती है जबतक उसके लक्ष्य की पूर्त्ति न हो जाय। स्पष्ट है कि प्रेरक वृत्ति के तीन काय होते है—क्रिया उत्पन्न करना, उसे जारी रखना और लक्ष्य-प्राप्ति तक उसे निरन्तर निश्चित दिशा की ओर निर्देशित करते रहना। उदाहरण-स्वरूप भूख को ले। भूख एक ऐसी आन्तरिक शारीरिक स्थिति है, जो व्यक्ति को क्रियाशील बना देती है। भूख की अवस्था में पेट की दीवारे थोडी-थोडी देर पर सिकुडती रहती है। फलत प्राणी अपने भीतर एक तनाव (Tension) का अनुभव करता है। इस तनाव को दूर करने के लिए वह शीघ्र ही भोजन की सामग्री की खोज मे लग जाता है। उसकी यह क्रिया तबतक जारी रहती है जबतक वह भोजन की सामग्री को प्राप्त कर अपनी भूख नही मिटा लेता। प्रेरक वृत्ति की कुछ ऐसी ही परिभाषा शोयन (Schoen) ने भी की है। उन्ही के शब्दो मे प्रेरक वृत्ति क्रिया की एक ऐसी प्रवृत्ति है जो प्रणोदन (Drive) से उत्पन्न होती तथा अभियोजन (Adjustment) द्वारा समाप्त हो जाती है।"* यह परिभाषा भी उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। खाने की प्रेरक वृत्ति भूख-प्रणोदन (Hunger-drive) से उत्पन्न होती है। किन्तु जब पेट मे भोजन की सामग्री चली जाती है और परिणाम-स्वरूप भूख-प्रणोदन मिट जाता है, तब खाने की प्रेरक वृत्ति का भी अन्त हो जाता है। इस प्रकार

---

*"A motive may now be defined as a tendency to activity, initiated by a drive and concluded by an adjustment."

—Shaffer. Gilmer and Schoen : Psychology, P 173.

स्पष्ट है कि अभियाजनात्मक प्रतिक्रिया (Adjustive response) प्रणोदन (Drive) को परितुष्टि द्वारा प्रेरक वृत्ति का अन्त कर देती है। भूख की तरह ही प्यास, नींद, काम (Sex) आदि को उदाहरण के रूप में उपस्थित किया जा सकता है।

यदि प्राणी के कार्यों के मूल कारणों पर विचार किया जाय, तो कहा जा सकता है कि प्राणी में समस्त कार्य किसी-न-किसी प्रकार की प्रेरक वृत्ति के ही परिणाम है। प्रेरक वृत्ति उद्दीपन (Incentive) से भिन्न होती है। उद्दीपन स्वत प्राणी में क्रिया नहीं उत्पन्न कर सकता। प्राणी में क्रिया उत्पन्न हो, इसके लिए प्रेरक वृत्ति का उपस्थित अनिवार्य है। उदाहरण के लिए, एक क्षुधातृप्त व्यक्ति को भोजन की सामग्री उत्तेजित नहीं कर पाती, किन्तु एक भूखे व्यक्ति में भोजन की सामग्री क्रिया उत्पन्न कर देती है। वस्तुत क्रियाशीलता का मुख्य कारण है भूख, न कि भोजन की सामग्री। भूख एक प्रेरक वृत्ति है और भोजन की सामग्री उद्दीपन। उसी प्रकार प्यास एक प्रेरक वृत्ति है, तो पानी उद्दीपन (Incentive)।

आवश्यकता, प्रणोदन तथा उद्दीपन
(Need, Drive and Incentive)

अनुप्रेरणा (Motivation) का वर्णन करते हुए प्राय आवश्यकता, प्रणोदन, उद्दीपन, लक्ष्य, आवेश इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ये सभी शब्द उन शक्तियों की ओर संकेत करते हैं, जो प्राणी में व्यवहार उत्पन्न करती तथा उसे एक निश्चित दिशा प्रदान करती है। यहाँ आवश्यकता, प्रणोदन तथा उद्दीपन की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत की जायगी।

प्राणी की कुछ बुनियादी शारीरिक आवश्यकताएँ (Needs) होती है, जिनकी परितृप्ति पर ही उसका जीवन निर्भर करता है, जैसे भोजन, जल, काम (Sex), हवा, मल-मूत्र-त्याग इत्यादि। यदि ये शारीरिक आवश्यकताएँ परितुष्ट नहीं होती, तो प्राणी का शारीरिक संतुलन (Physiological balance) भंग हो जाता है। फलत उसमें क्रियाशीलता आ जाती है उसकी यह क्रियाशीलता तबतक जारी रहती है, जबतक शारीरिक आवश्यकताएँ (Physiological Needs) परितुष्ट नहीं हो जाती। उदाहरणार्थ, यदि किसी चूहे को लगातार कई घंटे तक भोजन से वंचित रखा जाय तो वह क्रियाशील हो जायगा और भूलभुलैया (Maze) में तबतक दौडता रहेगा जबतक सही मार्ग पाकर भोजन के समीप न पहुँच जाय और उसे खा न ले।

सीखने की क्रिया के सम्बन्ध में चूहे पर किये गये प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है। इसके विपरीत, क्षुधातृप्त चूहे में उक्त क्रियाशीलता का अभाव रहता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भोजन, जल इत्यादि कुछ ऐसे पदार्थ हैं, जो असंतुलित शारीरिक अवस्था को पुनः संतुलित अवस्था मे ला देते है।

प्रणोदन (Drives)—शारीरिक आवश्यकताओं (Physiological needs) से प्रणोदनों (Drives) की उत्पत्ति होती है। उदाहरण के लिए, भोजन की आवश्यकता से भूख, जल की आवश्यकता से प्यास तथा काम (Sex) की आवश्यकता से काम-प्रणोदन (Sex-drive) उत्पन्न होते हैं। भोजन की कमी की अवस्था को आवश्यकता तथा भूख को प्रणोदन की अवस्था कहेंगे। जन्मजात प्रणोदन (Innate drives), जो बुनियादी शारीरिक आवश्यकताओं से उत्पन्न होते है, शारीरिक प्रणोदन (Physiological drives) कहलाते हैं। ये अपेक्षाकृत उन अल्प बुनियादी प्रणोदनों से भिन्न होते है, जिन्हे प्राणी अपने जीवन-काल मे अर्जित करता है।

शारीरिक प्रणोदनों (Physiological drives) की व्याख्या करते हुए यह कहा जा सकता है कि ये उस शारीरिक अवस्था के द्योतक हैं, जो प्राणी को क्रिया की ओर प्रवृत्त करती है। यह अवस्था अतृप्त आवश्यकता का परिणाम है। अतः आवश्यकता और प्रणोदन का भेद सुस्पष्ट है। प्रणोदनों की कुछ ऐसी ही व्याख्या हिलगार्ड, बोरिंग, लैंगफिल्ड और वेल्ड तथा शोयन ने भी की है।*

प्रणोदन (Drive) की इस परिभाषा के स्पष्टीकरण के लिए एक उदाहरण ले। शरीर मे खाद्य-सामग्रियों की कमी से भूख उत्पन्न होती है। शरीर मे खाद्य-सामग्रियों की कमी को आवश्यकता कहेंगे तथा उससे उत्पन्न

---

* "The Psychological consequence of a need we call a drive."—Hilgard, E. R. : Introduction to Psychology (1953), P. 100.

"A drive is "an intra-organic activity or condition of tissue supplying stimulation for a particular type of behaviour."—Boring, Langfeld and Weld : Foundations of Psychology (1948), P. 114.

"A drive is a strong, president stimulus that demands an adjustive response."—Shaffer, Gilmer & Schoen : Psychology, P. 172.

भूख को प्रणोदन। जब खून मे चीनी की कमी हो जाती है, तब पेट मे सकोचन (Contraction) की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। पेट की दीवारो की चिकनी मासपेशियाँ (Smooth muscles) सिकुडने लगती है और फलत प्राणी भूख का अनुभव करता है। पेट के सकोचन का सामान्य शारीरिक क्रिया से भी सम्बन्ध होता है। पेट की चिकनी मासपेशियो के सिकुडने के कारण स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) उत्पन्न हो जाते हैं। फलस्वरूप, शारीरिक क्रिया मे सामान्य रूप से वृद्धि हो जाती है। प्राणी एक तनाव (Tension) का अनुभव करता है और बिलकुल अशान्त हो जाता है। यहाँ भूखे व्यक्ति की व्यग्रता तथा अशान्ति को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है।

उद्दीपन (Incentive) —वातावरण की वह वस्तु, जिससे प्रणोदन-की सतुष्टि होती है, उद्दीपन कहलाती है। उदाहरण के लिए, भूख-प्रणोदन (Hunger-drive) के लिए उद्दीपन (Incentive) है भोजन, क्योकि भोजन से भूख-प्रणोदन की सतुष्टि होती है। इसी तरह प्यास के लिए उद्दीपन है जल, क्योकि जल से प्यास बुझायी जाती है। काम (Sex) के लिए उद्दीपन है विपरीत लिङ्गीय प्राणी, क्योकि विपरीत लिङ्गीय प्राणी के सयोग से काम की परितुष्टि होती है। आवश्यकता और प्रणोदन से प्राणी को आन्तरिक अवस्थाओ का बोध होता है, पर उद्दीपन बाह्य वातावरण मे उपस्थित रहनेवाला है।

अनुप्रेरित व्यवहार (Motivated behaviour) के विश्लेषण के आधार पर उसके दो भाग माने जा सकते है—(१) वह क्रिया, जो प्रणोदन के द्वारा क्रियाशील प्राणी को उद्दीपन की ओर अग्रसर करती है तथा (२) वह क्रिया, जो उद्दीपन की उपस्थिति मे घटित होती है। पहली को लक्ष्य-निर्देशित व्यवहार (Goal-directed behaviour) तथा दूसरी को लक्ष्य-प्राप्ति-व्यवहार की सज्ञा दी जाती है। उदाहरण के रूप में भोजनान्वेषण-सम्बन्धी व्यवहार तथा भोजन करने के व्यवहार को उपस्थित किया जा सकता है। भोजनान्वेषण-सम्बन्धी व्यवहार प्राणी और भोजन को पास-पास लाता है तथा भोजन करने का व्यवहार भूख मिटाता है। इस उदाहरण मे पहला व्यवहार (भोजनान्वेषण-सम्बन्धी व्यवहार) लक्ष्य-निर्देशित व्यवहार है तथा दूसरा (भोजन करना) लक्ष्य-प्राप्ति-व्यवहार। स्पष्ट है कि उद्दीपन (Incentive) की उपस्थिति लक्ष्य-प्राप्ति-व्यवहार

को सभव बनाती है। हिलगार्ड (Hilgard) ने आवश्यकता, प्रणोदन तथा उद्दीपन को अनुप्रेरणा का शारीरिक आधार माना है। उन्होंने अनुप्रेरणा की शारीरिक पृष्ठभूमि के रूप मे आवश्यकता-प्रणोदन-उद्दीपन सूत्र (Need-drive-incentive formula) का विवेचन प्रस्तुत किया है। इस सूत्र को व्याख्या करते हुए उन्होंने इन तीनो के परस्पर-सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है।*

प्रेरक वृत्तियो के प्रकार
(Kinds of Motives)

प्रेरक वृत्तियो को सामान्यत निम्नलिखित वर्गो मे बाटा जाता है—(१) जन्मजात प्रेरक वृत्तियाँ (Innate motives) और अर्जित प्रेरक वृत्तियाँ (Acquired motives), (२) व्यक्तिगत प्रेरक वृत्तियाँ (Personal motives) और (३) सामाजिक प्रेरक वृत्तियाँ (Social motives)।

जो प्रेरक वृत्तियाँ जन्म से ही प्राणी मे विद्यमान रहती है और उसे क्रियाशील बनाती रहती है, जन्मजात प्रेरक वृत्तियाँ कहलाती है। इस प्रकार की प्रेरक वृत्तियो को सीखना नहीं पडता। उदाहरण के लिए, भूख, प्यास, नीद, काम (Sex), प्रेम, घृणा, क्रोध आदि को जन्मजात प्रेरक वृत्तियाँ कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ अर्जित प्रेरक वृत्तियाँ भी होती है, जो शिक्षा तथा बाह्य परिस्थिति के सपर्क मे उपलब्ध होती है। उदाहरण के रूप मे मान-प्रतिष्ठा तथा सुरक्षा इत्यादि को उपस्थित किया जा सकता है। इन्हे व्यक्ति शिक्षा और अनुभव से प्राप्त करता है। ये भी जन्मजात प्रेरक वृत्तियो के समान बडी प्रबल हुआ करती है। मान-प्रतिष्ठा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए अल्फ्रेड एडलर (Alfred Adler) ने कहा है कि व्यक्ति के समस्त कार्यो का मूल कारण उसके भीतर वर्त्तमान मान-प्रतिष्ठा ही है। सचमुच व्यक्ति प्रतिष्ठा, प्रभुता शक्ति, नेतृत्व आदि प्राप्त करने के लिए निरन्तर क्रियाशील रहता है। प्रतिष्ठा के अतिरिक्त, व्यक्ति को

* "Need gives rise to drive, drive is a state of heightened tension leading to restless activity and preparatory behaviour, the incentive is something in the external environment that satisfies the need and thus reduces the drive through consummatory activity"—Hilgard, E R Introduction to Psychology (1953), P. 101.

सुरक्षा (Security) की भी बड़ी आवश्यकता होती है। वह निरन्तर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील बना रहता है।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन-अनुभव प्राय दूसरे व्यक्तियो से भिन्न हुआ करते है। फलस्वरूप, उसमे दूसरो की इच्छाओ, लक्ष्यो तथा अभिप्रायो से भिन्न कुछ इच्छाओ, लक्ष्यो तथा अभिप्रायो का विकसित होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार की वृत्तियो को ही व्यक्तिगत प्रेरक वृत्ति कहते है। इसके विपरीत, प्रत्येक व्यक्ति के प्राय. कुछ एसे भी जीवन-अनुभव होते है, जो सभी मे समान रूप म पाय जाते है। अनुभवो की इस समानता के कारण उसमे कुछ ऐसी प्रेरक वृत्तियो का विकास होता है, जो प्राय सभी मे पायी जाती है। इस प्रकार की प्रेरक वृत्तियो को ही सामाजिक प्रेरक वृत्तियो की सज्ञा दी जाती है। व्यक्तिगत तथा सामाजिक प्रेरक वृत्तियो का विशद विवेचन आगे प्रस्तुत किया जायगा। अभी यह बतलाया जायगा कि किस प्रकार जन्मजात प्रेरक वृत्तियो मे परिमाजन अथवा परिवर्त्तन होता है।

जन्मजात प्रेरक वृत्तियो म परिमाजन अथवा परिवर्त्तन---प्रेरक वृत्तियों के वर्गीकरण से यह भ्रम हो सकता है कि जहाँ कुछ सीखी हुई प्रेरक वृत्तियाँ है, वहाँ कुछ बिना सीखी हुई भी है। इसलिए, यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि बिना सीखी हुई अथवा जन्मजात प्रेरक वृत्तियो मे भी सीखने के फलस्वरूप निरन्तर परिवर्त्तन या परिमार्जन होता रहता है। ऐसी स्थिति मे कोई भी प्रेरक वृत्ति आंशिक रूप से सीखी हुई और आंशिक रूप से बिना सीखी हुई कही जा सकती है। यह बात भूख, प्यास, नीद, काम (Sex) आदि सभी जन्मजात प्रेरक वृत्तियो पर लागू होती है। सीखने के फलस्वरूप प्रेरक वृत्तियो मे निम्नलिखित परिवर्त्तन होते है--

(१) प्रेरक वृत्तियो मे विशिष्टता आ जाती है।

(२) उनमे कई प्रकार की इच्छाएँ शामिल हो जाती है। फलतः वे प्रेरक वृत्तियाँ जटिल हो जाती है।

(३) निश्चित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए साधनों मे भी अभिरुचि उत्पन्न हो जाती है। साधन अपने-आप मे लक्ष्य बन जाते है।

(४) मुख्य प्रेरक वृत्ति के साथ कई नई उत्तेजनाओ का संयोग हो जाता है। ये नई उत्तेजनाएं मुख्य प्रेरक वृत्ति को क्रियाशील बनाने में समर्थ होती है।

शिक्षा और अनुभव के कारण प्रेरक वृत्ति मे आये हुए इन चारों प्रकार

के परिवर्त्तनों को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। काम-प्रेरक वृत्ति एक जन्मजात अथवा बिना सीखी हुई प्रेरक वृत्ति है। किन्तु जैसे-जैसे व्यक्ति शिक्षा और अनुभव प्राप्त करता जाता है, वैसे-वैसे काम-प्रेरक वृत्ति में भी परिवर्त्तन होता जाता है। शिक्षा और अनुभव के परिणाम-स्वरूप व्यक्ति की रुचि सभी स्त्रियों में समान न होकर किसी एक स्त्री में सीमित हो सकती है। यह काम-प्रेरक वृत्ति की विशिष्टता का ही फल कहा जायगा। पुनः इसमें कई प्रेरक वृत्तियाँ अथवा इच्छाएं शामिल हो सकती हैं; क्योंकि उस स्त्री विशेष में काम-आकर्षण के अतिरिक्त और भी कई आकर्षक गुण दिखाई पड़ सकते हैं। इस प्रकार मुख्य काम-प्रेरक वृत्ति अधिक जटिल रूप धारण कर लेगी। जब व्यक्ति अपने प्रेम-पात्र को प्राप्त करने का प्रयास करता है, तब संभवतः इसे प्राप्त करने के साधनों में ही उसको अभिरुचि हो जाती है। कुछ समय के लिए ये साधन ही उसके तात्कालिक लक्ष्य बन जाते हैं। फलतः वह प्रेम प्रदर्शित करने की विभिन्न रीतियों को अपनाता है। अन्ततागत्वा काम-प्रेरक वृत्ति में इतना परिवर्त्तन हो जाता है कि वह केवल उस स्त्री-विशेष के प्रति ही क्रियाशील नहीं होती, वरन् प्रेम के विभिन्न प्रतीकों, जैसे, प्रेम-पत्र, प्रेम-सन्देश, प्रेमोपहार आदि के प्रति भी क्रियाशील हो जाती है। इस प्रकार के परिवर्त्तन अन्य प्रेरक वृत्तियों में भी पाये जाते हैं।

व्यक्तिगत प्रेरक वृत्तियाँ
(Personal Motives)

जीवन-लक्ष्य (Life-goal)—सभी व्यक्तियों के अपने जीवन-लक्ष्य होते हैं। कोई डाक्टर होना चाहता है तो कोई प्रोफेसर, कोई इंजीनियर होना चाहता है तो कोई मंत्री। संभव है कि विभिन्न व्यक्तियों का जीवन-लक्ष्य एक ही हो, किन्तु उसकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से हुई हो। उदाहरण के लिए, किसी को प्रोफेसर होने की अभिलाषा इसलिए हो सकती है कि उसे स्वभावतः अध्ययन-अध्यापन प्रिय है, दूसरे को इसलिए कि वह समाज में आदर का पात्र बनना चाहता है, तीसरे को इसलिए कि वह इसे जीवन-यापन का एक अच्छा साधन समझता है तथा चौथे को इसलिए कि वह अपने अर्जित ज्ञान से अधिक लोगों को लाभ पहुँचाना चाहता है और इस प्रकार समाज की सेवा करना चाहता है। स्पष्ट है कि कई बातों से

अनुप्रेरित होकर व्यक्ति प्रोफेसर होने की कामना कर सकता है। किसी-किसी में इन सभी बातों का संयोग भी देखा जा सकता है।, उदाहरणार्थ, व्यक्ति किसी एक बात से अनुप्रेरित होकर प्रोफेसर होने की कामना नहीं करता, बल्कि इन सभी का संयोग उसे इस ओर प्रवृत्त करता है।

यदि हम व्यक्ति के जीवन-इतिहास का अध्ययन करें, तो जान पड़ेगा कि व्यक्ति की विभिन्न क्रियाएँ प्रायः एक ही वृत्ति से अनुप्रेरित होती हैं। यद्यपि विभिन्न व्यक्तियों के जीवन-इतिहासों में भिन्नता होती है, तथापि उनसे इतना अवश्य ज्ञात हो जाता है कि बलवती प्रेरक वृत्ति (Strong motive) प्रायः बाल्यकाल में ही स्थापित हो जाती है। बाल्यकाल की निराशाओं के कारण व्यक्ति में प्रतिष्ठा की प्रबल भावना उत्पन्न होती है। प्रसिद्ध मनोविश्लेषक अल्फ्रेड ऐडलर का कहना है कि बाल्यकाल की निराशाओं के कारण ही अधिकांश व्यक्तियों में 'शक्ति की इच्छा' (Will to power) उत्पन्न होती है। इस 'शक्ति की इच्छा' (Will to power) से अनुप्रेरित होकर ही व्यक्ति अपने जीवन के सभी कार्य संपादित करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति की अधिकांश क्रियाएँ एक ही प्रेरक वृत्ति से अनुप्रेरित होकर संपन्न होती हैं।

आकांक्षा का स्तर (Level of aspiration)—आकांक्षा के स्तर का जीवन-लक्ष्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। आकांक्षा के स्तर से तात्पर्य यह है कि कोई व्यक्ति किस सीमा तक अपनी उपलब्धि (Achievement) की आशा करता है। उदाहरण के लिए, एक महीने में कोई एक सौ रुपये कमाने की आकांक्षा करता है तो कोई एक हजार रुपये। स्पष्टतः दोनों के समक्ष दो प्रकार के उपलब्धि-स्तर (Levels of achievement) हैं।

सामान्य निरीक्षण तथा प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आकांक्षा के स्तर में समय-समय पर परिमार्जन होता रहता है, यह सदा एक-सा नहीं रहता। इसका परिमार्जन दो बातों पर निर्भर करता है—व्यक्ति की सफलता तथा असफलता। उदाहरणार्थ, वकालत शुरू करते समय एक वकील की यह आकांक्षा हो सकती है कि प्रत्येक महीने में उसे कम-से-कम एक हजार रुपये की आमदनी हो, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसकी आकांक्षा का वह स्तर सदा एक-सा बना रहे। संभव है कि दस वर्षों तक लगातार वकालत करने के बाद यदि वह चार सौ रुपये से अधिक नहीं अर्जित कर पाता, तो स्वभावतः उसकी आकांक्षा का स्तर कुछ नीचे आ

जायगा और वह यह सोचकर सतोष प्राप्त कर सकता है कि प्रत्येक महीने की उसकी आमदनी ६ सौ रुपये की हो जाय तो पर्याप्त होगा। इसके विपरीत, कोई वकील जो प्रत्येक महीने मे कम-से-कम एक हजार रुपये की आमदनी की आकाक्षा से ही वकालत शुरू करता है, सफलता के कारण उसकी आकाक्षा के स्तर मे परिवर्त्तन हो सकता है। यदि असाधारण योग्यता के कारण प्रत्येक महीने मे उसकी आमदनी लगभग तीन हजार रुपये की हो जाती है तो स्वभावत. उसकी आकाक्षा का स्तर कुछ और ऊँचा उठ जायगा। सभवत वह यह सोचने लगेगा कि यदि प्रत्येक महीने की उसकी आमदनी लगभग पाँच हजार रुपये की होती, तो अच्छा होता।

प्रयोगात्मक अनुसधानों से जान पडता है कि आकांक्षा का स्तर सामान्यत वास्तविक क्रिया के अनुरूप होता है, पर कभी-कभी आकाक्षा का स्तर वास्तविक क्रिया से कुछ ऊँचा भी होता है। यह भी पाया जाता है कि सफलता के कारण आकाक्षा का स्तर कुछ ऊँचा उठ जाता है तथा असफलता के कारण कुछ नीचे आ जाता है।

अभ्यास की विवशता (Force of habit)— अभ्यास की विवशता के अन्तर्गत दो बातो पर विचार किया जायगा—मद-व्यसन (Drug addiction) तथा व्यवहार के अभ्यास (Habits of behaviour)।

मद-व्यसन (Drug addiction)—मद-व्यसन की आदत एक बलवती प्रेरक वृत्ति समझी जाती है। कभी-कभी व्यक्ति मद-विशेष की उपलब्धि के लिए डकैती और हत्या तक कर डालता है। दु ख एव निराशा से छुटकारा पाने के लिए व्यक्ति मद का सेवन करता है। कालक्रम मे मद-सेवन की उसे आदत पड जाती है। मद-सेवन की इस आदत की उत्पत्ति चाहे जिस कारण से हो, पर इतना सत्य है कि मद का अनवरत सेवन प्राणी मे शारीरिक परिवर्त्तन ला देता है, जिसके फलस्वरूप वह मद की आवश्यकता (Need) का अनुभव करने लगता है। अब यह उसके लिए उसी प्रकार आवश्यक बन जाता है, जिस प्रकार भोजन और जल। कई प्रयोगों के आधार पर यह पाया गया है कि जब वनमानुषो को किसी मद का व्यसन होता है, तब वह मद उसके लिए आवश्यकता बन जाता है। कुछ वनमानुषो को प्रतिदिन दो बार अफीम के सत्त्व को सूई दी जाती थी। कुछ दिनों बाद यह पाया गया कि इसके अभाव मे वनमानुषों ने अशान्ति

तथा खिन्नता प्रकट की। इससे जान पड़ता है कि किसी मद का आदी हो जाने पर उस मद की आवश्यकता शारीरिक हो जाती है। वह केवल वास्तविकता से पलायन (Escape) की मनोवैज्ञानिक इच्छा-मात्र नहीं रह जाती।

सुरासार (Alcohol) का व्यवहार प्रायः वास्तविकता से पलायन के लिए ही किया जाता है। सुरासार का आदी व्यक्ति वास्तविक जीवन के दुःख-दैन्य तथा विफलता-निराशा को भूलकर आनन्द का अनुभव करता है। संभव है कि व्यक्ति में सुरासार की शारीरिक आवश्यकता स्थापित न हो, पर इतना अवश्य है कि उसे सुरासार के सेवन करने की आदत पड़ जाती है। यह आदत उसके जीवन की एक प्रबल प्रेरक वृत्ति बन जाती है।

व्यवहार का अभ्यास (Habits of behaviour) :—व्यक्ति जैसे-जैसे प्रौढ़ होता जाता है, वैसे-वैसे विशेष प्रकार के व्यवहार या प्रतिक्रिया द्वारा अपनी प्रेरक-वृत्तियों को परितुष्ट करने का आदी होता जाता है। जब विशेष प्रकार के व्यवहार द्वारा किसी प्रेरक वृत्ति को परितृप्त करने की उसमें आदत पड़ जाती है, तब वह आदत ही स्वतः एक प्रबल प्रेरक वृत्ति बन जाती है। उदाहरणार्थ, यदि किसी को दिन में भोजन करने के बाद शीघ्र ही समाचार-पत्र पढ़ने की आदत बन गयी हो तो स्वभावतः भोजन के बाद वह समाचारपत्र की खोज प्रारम्भ कर देगा। संभवतः वह अपनी पत्नी से पूछेगा कि समाचार पत्र कहाँ है? यदि वह उत्तर देती है कि उसे पता नहीं, तो बेचैन होकर वह समाचार-पत्र की खोज करता रहेगा और विभिन्न स्थानों में उसे तबतक ढूँढ़ता रहेगा, जब तक वह प्राप्त न हो जाय तथा उसे पढ़कर अपने अभ्यास को संतुष्ट न कर ले।

अभिरुचियाँ तथा मनोवृत्तियाँ (Interests and attitudes) :—अभिरुचियों तथा मनोवृत्तियों को व्यक्ति अपने जीवन-काल में अर्जित करता है। ये ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं, जिनके फलस्वरूप व्यक्ति वातावरण के कुछ पहलुओं के प्रति विशिष्ट प्रतिक्रियाएँ (Specific reactions) प्रकट करता है। उदाहरणार्थ, प्यासा व्यक्ति जल के प्रति शीघ्र ही आकर्षित हो जाता है। उस क्षण वातावरण के अन्य पहलुओं के प्रति वह कोई प्रतिक्रिया प्रकट नहीं करता।

अभिरुचियाँ (Interests)—व्यक्ति की अभिरुचि किसी खास दिशा की ओर निश्चित रूप से निर्देशित हुआ करती है। उदाहरणार्थ, मनुष्य

की निश्चित रूप से किसी व्यक्ति, स्थान तथा वस्तु में अभिरुचि होती है। उसकी जिन वस्तुओं में अभिरुचि होती है, उन्हें वह बहुत पसन्द करता है। इसके अतिरिक्त, अभिरुचि साधारणतः निष्क्रिय होने के बदले सक्रिय होती है। जिस वस्तु अथवा विषय में व्यक्ति की अभिरुचि होती है, उसके संबंध में वह क्रियाशील रहता है। यदि किसी को साहित्य में अभिरुचि है, तो स्वभावतः वह साहित्य के अध्ययन में अत्यधिक समय देगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। इस संबंध में स्ट्रौंग (Strong) ने कहा है--

"अभिरुचि में सुख का भाव तथा वस्तु को प्राप्त करने एवं उसके संबंध में कुछ करने की गत्यात्मक प्रवृत्ति सन्निहित रहती है.... चलचित्र में अभिरुचि का अर्थ है कि उसे देखकर व्यक्ति आनन्दित होता है तथा वह ऐसा करता भी है...।"*

अभिरुचियों को व्यक्ति बाल्यकाल में भी अर्जित करता है तथा प्रौढ़ावस्था में भी। कुछ अभिरुचियों में अवस्था के साथ पर्याप्त परिवर्त्तन होते हैं तथा कुछ अभिरुचियाँ आजीवन एक-सी रह जाती हैं।

मनोवृत्तियाँ (Attitudes)--अभिरुचियों तथा मनोवृत्तियों में समानताओं के साथ-साथ कुछ अन्तर भी है। अभिरुचि जहाँ किसी के प्रति निश्चित रूप से निर्देशित होती है, वहाँ मनोवृत्ति निश्चित रूप में भी निर्देशित हो सकती है तथा नकारात्मक रूप में भी। किसी भी देश, जाति तथा व्यक्ति के प्रति हमारी मनोवृत्ति दो प्रकार की हो सकती है---अनुकूल (Favourable) या प्रतिकूल (Unfavourable)। किसी व्यक्ति या जाति-विशेष के प्रति या तो हमारा आकर्षण होता है या विकर्षण। इससे स्पष्ट है कि अभिरुचि में जहाँ केवल आकर्षण की ही उपस्थिति अपेक्षित है वहाँ मनोवृत्ति में आकर्षण के अतिरिक्त विकर्षण की भी उपस्थिति संभावित है। इन दोनों में दूसरा अन्तर यह है कि मनोवृत्ति अभिरुचि की अपेक्षा निष्क्रिय होती है। संभव है कि किसी वस्तु के प्रति मनोवृत्ति होते हुए भी

---

*"An interest is accompanied by pleasant feeling and by dynamic tendency to seek the object or do something with it....interest in the movies means that one enjoys attending them and does so...."—Strong, E. K. : Change of Interests with age, Stanford University, Stanford University Press, 1931; P. 9.

हम उसकी प्राप्ति के लिए क्रियाशील न हों। ऐसी संभावना अपेक्षाकृत अभिरुचि में कम पायी जाती है। हमारी जिस वस्तु में अभिरुचि होती है, उसे हम प्राप्त करने की चेष्टा भी करते हैं।

विभिन्न देशों, जातियों, संस्थाओं तथा विचारों के प्रति मनोवृत्तियों को कभी-कभी पूर्वधारणाओं (Prejudices) की भी संज्ञा दी जाती है। कुछ वस्तुओं अथवा व्यक्तियों के प्रति हमारी अनुकूल मनोवृत्ति हो जाती है तथा कुछ के प्रति प्रतिकूल। यह अनुकूल मनोवृत्ति या पूर्वधारणा (Prejudice) का ही परिणाम है कि हम प्रायः यह मान लेते हैं कि हमारा ही धर्म सर्वश्रेष्ठ है, हमारी ही संस्कृति सबसे उन्नत है तथा हमारी ही सभ्यता सबसे अच्छी है। प्रतिकूल मनोवृत्ति के परिणाम-स्वरूप हमें दूसरे के धर्म, दूसरे की सभ्यता तथा दूसरे की संस्कृति में केवल त्रुटियाँ ही दीख पड़ती हैं।

मनोवृत्तियों का विकास
(Development of Attitudes)

मनोवृत्तियों (Attitudes) का विकास व्यक्ति तथा वातावरण की परस्पर-क्रियाओं (Interactions) का ही प्रतिफल है। इन परस्पर-क्रियाओं में जीवशास्त्रीय तत्त्वों (Biological factors) तथा सामाजिक तत्त्वों (Social factors) की प्रधानता रहती है। निस्सन्देह, समाज के साथ संपर्क में आने के कारण व्यक्ति में अनेक प्रकार की मनोवृत्तियों का विकास होता है। इसीलिए, कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्तियों के सांस्कृतिक निर्धारकों (Cultural determiners) पर अधिक जोर दिया है। उन मनोवृत्तियों को, जो मुख्यतः सांस्कृतिक तत्त्वों (Cultural factors) से निर्धारित होती हैं और समाज की अवस्थाओं तथा समाज के लोगों के प्रति निर्देशित होती हैं, सामाजिक मनोवृत्तियां (Social attitudes) की संज्ञा दी जाती है। ये तथा अन्य मनोवृत्तियाँ वास्तव में व्यक्ति की आन्तरिक अनुप्रेरणाओं (Internal motivations) तथा उन्हें संतुष्ट करने के क्रम में प्राप्त उसके अनुभवों के कारण विकसित होती हैं। अपने अनुभवों के फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति कुछ विशेष प्रकार की मनोवृत्तियों को अर्जित कर लेता है। मनोवृत्तियों के विकास में निम्नांकित बातें विचारणीय हैं—

(१) विशेष प्रकार के अनुभवों के बहुत दिनों तक संचित और

समन्वित होने के फलस्वरूप व्यक्ति में एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति का विकास होता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई वर्षों कई परीक्षाओं में गणित में असफल हो जाता है, तो स्वभावतः गणित के प्रति उसमें प्रतिकूल मनोवृत्ति का निर्माण हो जाता है।

(२) एक ही अति तीव्र अनुभव के फलस्वरूप मनोवृत्ति का निर्माण हो सकता है। जातीय विद्वेषों (Racial rivalries) में इसी प्रकार की मनोवृत्ति परिलक्षित होती है। यदि किसी जाति-विशेष के एक व्यक्ति के साथ अति अप्रिय अथवा दुःखद अनुभव हो जाता है, तो प्रायः उस जाति-विशेष के सभी लोगों के प्रति प्रतिकूल मनोवृत्ति (Unfavourable attitude) हो जाती है। जिस प्रकार एक ही अति तीव्र अनुभव के कारण प्रतिकूल मनोवृत्ति का निर्माण हो सकता है, उसी प्रकार अनुकूल मनोवृत्ति (Favourable attitude) का भी निर्माण हो सकता है। यदि किसी जाति-विशेष के एक व्यक्ति के साथ अति सुखद अथवा प्रिय अनुभव हो, तो स्वभावतः उस जाति-विशेष के सभी लोगों के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति (Favourable attitude) हो जायगी।

(३) कुछ मनोवृत्तियों को व्यक्ति समाज के लोगों से, विशेषतः माता-पिता, शिक्षकों तथा साथियों से, ग्रहण करता है। ऐसी मनोवृत्ति को व्यक्ति प्रायः बाल्यकाल में ही अर्जित कर लेता है। वह अपने माता-पिता, शिक्षकों तथा मित्रों से जैसी बातें सुनता है, उनके आधार पर उसकी मनोवृत्ति किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल हो जाती है।

(४) यद्यपि मूलभूत मनोवृत्तियों (Basic attitudes) का निर्माण बाल्यकाल में हो हो जाता है, तथापि सामाजिक प्रभावों के फलस्वरूप उसमें परिमार्जन भी संभव है। अध्ययनों के आधार पर पाया गया है कि कोई एक सिनेमा-फिल्म भी मनोवृत्ति के परिमार्जन (Modification) में सहायक सिद्ध हो सकती है। मननशील शिक्षा-शास्त्रियों का ध्यान पाठशालाओं में सिखलायी गयी मनोवृत्तियों की ओर अधिक गया है। कारण, पाठशालाओं में प्राप्त ज्ञान या निपुणता की अपेक्षा मनोवृत्तियों का निर्माण अधिक महत्त्वपूर्ण है। वर्त्तमान समाज में युद्ध, राजनीतिक बुराइयों, विभिन्न जातियों एवं समुदायों के प्रति हमारी

मनोवृत्तियों में परिवर्त्तन अथवा परिमार्जन आवश्यक है। कुछ हद तक यह परिवर्त्तन या परिमार्जन तभी संभव है, जब पाठशाला में, घरो में, क्लबों में तथा खेल या मनोविनोद-संबंधी अन्य स्थानों मे पूर्वायोजित रीतियों को काम मे लाया जाय।

अचेतन अनुप्रेरणा (Unconscious motivation):— व्यक्ति की अपनी अनेक क्रियाओं के मूल में वर्त्तमान प्रेरक वत्तियो की चेतना नहीं रहती। उन्हे अचेतन प्रेरक वृत्तियों की संज्ञा दी जाती है। इन अचेतन प्रेरक वृत्तियों से अनुप्रेरित होकर व्यक्ति कई प्रकार की क्रियाएँ या व्यवहार प्रकट करता है। उदाहरण के रूप में किन्हीं विशेष वस्तुओ अथवा परिस्थितियों के प्रति असामान्य भय (Abnormal fear) का उल्लेख किया जा सकता है। बैग्बी (Bagby) ने एक ऐसी घटना को प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है—

एक लड़की को बहते हुए पानी मे भय हो गया था। उसका यह भय इतना प्रबल था कि पानी की आवाज तथा पानी के दर्शन-मात्र मे वह भय-भीत हो जाती थी। यहाँ तक कि वह चलती हुई गाड़ी में खिडकी बन्द कर लेती थी ताकि पानी के उन स्रोतो को न देख सके, जिनके ऊपर से होकर गाडी चलती थी। पाठशाला जाते हुए रास्ते मे झरने की आवाज सुनकर वह डर जाती थी। बीस वर्ष की अवस्था तक भी वह नहीं समझ पायी कि ऐसा व्यवहार क्यों करती है। जब वह बीस वर्ष की थी, तब उसकी चाची, जिसने तेरह वर्षों से उसे नही देखा था, एक बार उसे देखने आयी। उससे मिलते ही उसकी चाची ने कहा—"मैंने कभी नहीं कहा है।" इसे सुनते ही उस लड़की को बाल्यकाल की एक घटना याद आ गयी, जिसका अनुभव उसने सात वर्ष की अवस्था मे किया था, जब वह अपनी चाची के साथ एक उपवन मे घूम रही थी। चाची के साथ जाते समय उसने अपनी माँ से प्रतिज्ञा की थी कि वह सदा अपनी चाची की आज्ञा का पालन करेगी। किन्तु चाची की आज्ञा के बिना ही वह वहाँ से भाग गयी और जब उसका पता लगा, तब वह एक छोटे स्रोत मे चट्टानों के बीच दबी हुई पायी गयी। उसके सिर पर एक छोटे झरने की धारा गिर रही थी और वह भय से चीख रही थी। उसकी चाची ने उसे स्रोत से निकालकर उसके गीले कपड़ों को सुखाया और प्रतिज्ञा की कि वह उसकी माँ से आज्ञा-उल्लंघन की इस घटना की चर्चा नहीं करेगी।

असामान्य भय (Abnormal fear) के अतिरिक्त, सम्मोहनोत्तर संकेत (Post-hyponotic suggestions) तथा दैनिक मनोविकृति (Psycho-pathology of everyday life) इत्यादि को भी अचेतन अनुप्रेरणा के सुन्दर उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

सामान्य सामाजिक प्रेरक वृत्तियाँ
(Common Social Motives)

सामान्य सामाजिक प्रेरक वृत्तियों की संख्या के संबंध में सभी मनोवैज्ञानिक एकमत नहीं है । कुछ मनोवैज्ञानिक इस प्रकार की चार ही प्रेरक वृत्तियों की चर्चा करते हैं, पर दूसरे बारह और इससे भी अधिक का उल्लेख करते है। यहाँ इस विवाद के विस्तार मे जाना अपेक्षित नहीं, केवल कुछ सामाजिक प्रेरक वृत्तियों को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत कर देना ही लक्ष्य हैं । इन्हे उपस्थित करते हुए इनकी उत्पत्ति तथा विकास पर ध्यान देना भी अभीष्ट जान पडता है। यहाँ निम्नांकित का उल्लेख किया जायगा—

(१) सामुदायिकता (Gregariousness),
(२) अर्जनात्मकता (Acquisitiveness),
(३) आत्म-स्थापन (Self-assertion),
(४) युयुत्सा (Pugnacity) ।

सामुदायिकता—समुदाय में रहने की प्रेरक वृत्ति प्रायः सभी प्राणियों में पायी जाती है। मनुष्य मे यह प्रवृत्ति अत्यधिक स्पष्ट रूप मे दीख पडती है। इसकी उत्पत्ति बाल्यकाल की आश्रितता (Dependence) से होती है। प्रारम्भिक काल में शिशु अपनी आवश्यकताओ की पूर्त्ति के लिए माँ पर निर्भर करता है। माँ उसे खिलाती-पिलाती तथा दुलारती-पुचकारती है। फलतः पहले तो शिशु माँ को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन-मात्र ही मानता है, पर कालक्रम में संबंध-प्रत्यावर्त्तन के फलस्वरूप माँ की उपस्थिति-मात्र उसे सतोष प्रदान करने लगती है । समुदाय में रहने की प्रेरक वृत्ति का विकास यहीं से प्रारम्भ होता है । जो भी व्यक्ति प्रारंभिक अवस्था में बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्त्ति मे सहायक सिद्ध होता है, बाद को बच्चा स्वभावतः उसकी ओर अधिक आकर्षित हो जाता है । मनुष्य की अधिकांश आवश्यकता सामान्यतः अन्य व्यक्तियों के संपर्क में आने पर ही पूरी होती है । व्यक्ति जैसे-जैसे प्रौढ़ावस्था प्राप्त करता जाता है, वैसे-वैसे समुदाय से उसका संपर्क भी बढ़ता जाता है । फलतः व्यक्ति एक

ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है, जब उसे कोई खेल, दृश्य अथवा घटना अकेले उतनी अच्छी नहीं लगती, जितनी अन्य लोगों के साथ ।

सामुदायिकता जन्मजात प्रवृत्ति नहीं, बल्कि यह एक अर्जित प्रेरक वृत्ति है। जन्म से ही व्यक्ति दूसरे पर आश्रित रहता है तथा अन्य लोगों की उपस्थिति में ही प्रायः आनन्द का अनुभव करता है। अतः यह सर्वथा स्वाभाविक ही है कि समुदाय में रहने की प्रेरक वृत्ति को वह अर्जित कर ले।

अर्जनात्मकता (Acquisitiveness):—अर्जनात्मकता, मैकडूगल (McDougall) के अनुसार, "उपयोगी अथवा आकर्षक वस्तुओं को प्राप्त करने, उन्हें रखने तथा उनकी रक्षा करने की प्रवृत्ति" कही जा सकती है। सामुदायिकता की तरह यह भी एक सामान्य सामाजिक प्रेरक वृत्ति है, जो प्रायः सभी में पायी जाती है। अन्य सामान्य सामाजिक प्रेरक वृत्तियों की भाँति इसका भी मूल बाल्यकाल के व्यवहार मे ही पाया जाता है। बच्चे में आकर्षक वस्तुओं को प्राप्त करने तथा उन्हे मुँह मे रखने की प्रवृत्ति प्रारम्भिक अवस्था से ही पायी जाती है। वह जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसके इस व्यवहार में क्रमशः पूर्णता आती जाती है। अर्जनात्मक प्रेरक वृत्ति पर पुरस्कार तथा दंड का भी प्रभाव पड़ता है। बच्चा संतोष प्रदान करनेवाली वस्तुओं को असंतोषजनक वस्तुओं से भिन्न करना सीख लेता है। इस प्रकार बाल्यकाल मे ही कुछ वस्तुओं को अर्जित करने की प्रवृत्ति बच्चे में आ जाती है।

अधिकांश मानव-समाज में बच्चे शीघ्र ही यह सीख लेते हैं कि दूसरों की अपेक्षा अधिक खिलौने, अधिक पुस्तकें तथा अधिक सम्पत्ति प्राप्त करना लाभदायी है। वे जैसे-जैसे प्रौढ़ावस्था प्राप्त करते जाते हैं, वैसे-वैसे यह सीखते जाते हैं कि कुछ वस्तुओं का समाज में अधिक मूल्य होता है तथा समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उन मूल्यवान् वस्तुओं का संचय आवश्यक है। किन्तु कुछ मानव-समाज अर्जनात्मकता के अपवाद भी हैं। मध्य अस्ट्रेलिया के कुछ आदिवासियों में अर्जनात्मक प्रेरक वृत्ति नहीं पायी जाती। भोजन और जल पर उन सभी लोगों का समान अधिकार होता है। वहाँ भोजन और जल अल्प मात्रा में पाये जाते हैं। फलतः वे सभी मिल-कर भोजन और जल की खोज करते हैं तथा उन्हें एकत्र कर आपस में बराबर-बराबर बाँट लेते हैं। उनके लिए भोजन और जल से अधिक कोई

भी मूल्यवान् वस्तु नही, जिसका वे सचय करे। परिणाम-स्वरूप, उनमे सचय की प्रवृत्ति अथवा अर्जनात्मकता का अभाव पाया जाता है। ऐसे समाजो मे भी, जहाँ शारीरिक आवश्यकता-सम्बन्धी वस्तुओ की अधिकता होती है, अर्जनात्मकता का अभाव-सा ही रहता है। यदि उन समाजो मे अर्जनात्मकता पायी भी जाती है तो वह आभूषणो तथा सामाजिक गौरव प्रदान करने-वाली वस्तुओ तक ही सीमित रहती है।

अर्जनात्मक प्रेरक वृत्ति जन्मजात नही होती, बल्कि व्यक्ति अपने जीवन-काल मे इसे प्राप्त करता है। कई चूहो पर किये गये प्रयोगो से भी यही निष्कर्ष निकला है कि चूहो मे अर्जन-मात्र के लिए अर्जन करने की जन्मजात प्रेरक वृत्ति नही पायी जाती। उनमे यह प्रेरक वृत्ति तभी पायी जाती है, जब उन्हे प्रारभिक जीवन मे भोजन से वचित किया गया रहता है। वस्तुत जिस समाज मे अर्जनात्मकता की प्रधानता रहती है, वहाँ इसे सीखने के अनेक सुअवसर मिलते है। अर्जनात्मकता का मूल व्यक्तिगत सम्पत्ति मे होता है। जिस समाज मे व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्रधानता होती है, वहाँ अर्जनात्मकता अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है।

आत्म-स्थापन (Self-assertion) —आत्म-स्थापन भी साम-दायिकता तथा अर्जनात्मकता की तरह एक प्रबल तथा सामान्य मानव-प्रेरक वृत्ति है। इसकी अभिव्यक्ति प्राय नेतृत्व, आत्म-प्रदर्शन, प्रतिष्ठा की भावना, सफलता तथा कठिनाइयो एव बाधाओ पर विजय प्राप्त करने की इच्छा इत्यादि मे होती है। कुछ लेखको का कहना है कि व्यक्ति सामाजिक मानदडो के अनुसार चाहे जितना भी छोटा हो, पर उसमे दूसरे के ऊपर आधिपत्य स्थापित करने की इच्छा विद्यमान रहती है। इस सबध मे अल्फ्रेड ऐडलर के विचार उल्लेखनीय है। उनके अनुसार प्राय सभी सामान्य व्यक्तियो (Normal individuals) मे 'शक्ति की इच्छा' (Will to power) रहती है तथा वह काम (Sex) मे भी अधिक बलवती होती है। श्रेष्ठता-ग्रन्थि (Superiority Complex) तथा हीनता-ग्रन्थि (Inferiority Complex) 'शक्ति की इच्छा' के ही परिणाम है। यदि व्यक्ति 'शक्ति की इच्छा' की पूर्ति मे सफल हो जाता है, तो श्रेष्ठता-ग्रन्थि का उदय होता है और जब वह विफल होता है, तब हीनता-ग्रन्थि उत्पन्न होती है।

यद्यपि आत्म-स्थापन की प्रेरक वृत्ति विश्वजनीन होती है, तथापि यह जन्मजात नही, बल्कि एक अर्जित प्रेरक वृत्ति है। इसकी उत्पत्ति बाल्यकाल

के क्रोधात्मक व्यवहारों से होती है। प्रारम्भिक अवस्था मे जब बच्चे की स्वतन्त्र गति मे अवरोध (Restraint) उपस्थित किया जाता है, तब वह अपनी सपूर्ण शक्ति के साथ उसे दूर करने की चेष्टा करता है। परिणाम-स्वरूप उसमे विभिन्न प्रकार के आन्तरिक शारीरिक परिवर्त्तन होते है, जो उसके क्रोध को द्योतित करते है। बच्चा जैसे-जैसे बढता जाता है, वैसे-वैसे उसमे क्राध उत्पन्न करनेवाली उत्तेजनाओ की सख्या मे भी वृद्धि होती जाती है। अवराध के अतिरिक्त, अन्य कई उत्तेजनाएँ भी उसमे क्रोध उत्पन्न करने लगती है। उदाहरणार्थ, कालक्रम मे अन्य व्यक्तियो की बाते तथा उनके काय इत्यादि 'अवराध के प्रतीक बन जाते है। इसी प्रकार बच्चे की प्रारम्भिक क्रोधात्मक प्रतिक्रिया मे भी कालक्रम मे परिमार्जन होता जाता है। बच्चा प्रारम्भिक काल मे रोकर, चिल्लाकर तथा लात मारकर अपनी बाधाओ को दूर करता तथा क्राध प्रकट करता है। किन्तु वह जैसे-जैसे बढता जाता है, वैसे-वैसे अपनी बाधाओ पर विजय प्राप्त करने तथा अपने क्रोध को प्रकट करने के लिए अभियाजनात्मक समस्या-समाधानो की खोज करता जाता है तथा उन्हे अपनाता जाता है। उदाहरण के लिए, किसी वैज्ञानिक का समस्या-समाधान की खाज मे अथक परिश्रम करना तथा बच्चे की झुँझलाहट या क्रोध-प्रदर्शन—इन दोनो के मूल मे एक ही अनुप्रेरणा काम करती है और वह है आत्म-स्थापन की अनुप्रेरणा (Motivation of self assertion)। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्म-स्थापन की प्रेरक वृत्ति का विकास दो बातो पर निर्भर है—(१) उत्तेजना का सीखा जाना तथा (२) प्रतिक्रिया का परिमार्जन।

युयुत्सा (Pugnacity)—प्राय कहा जाता है कि सभी प्राणियो (पशु तथा मनुष्य) मे युयुत्सा या कलह की जन्मजात प्रवृत्ति पायी जाती है। यह जन्मजात युयुत्सा या कलह-प्रवृत्ति ही युद्ध का कारण है। किन्तु प्रयोगात्मक अध्ययनो के आधार पर यह बात सिद्ध नही हो पायी है। कई निरीक्षणो से जान पडता है कि यह जन्मजात प्रेरक वृत्ति नही, बल्कि एक अर्जित प्रेरक वृत्ति है। युयुत्सा या कलहप्रियता दो कारणो से उत्पन्न हो सकती है—(१) शारीरिक आवश्यकताओ (Physiological needs) की परितुष्टि मे बाधा उपस्थित होने से तथा (२) ऐसी शिक्षा से, जो व्यक्ति को युयुत्सा की ओर प्रवृत्त करती है। कदाचित् हम सभी ऐसे व्यक्तियो तथा ऐसी परिस्थितियो के प्रति अपनी युयुत्सा प्रकट करते हैं,

जिनमे जीवन में खतरा उपस्थित होता है तथा बुनियादी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति में बाधा होती है। कभी-कभी व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्त्ति में बाधा के कारण उत्पन्न निराशा का अनुभव, बिना वैसी परिस्थिति की उपस्थिति के भी होता है। इसके फलस्वरूप उसमें युयुत्सा उत्पन्न होती है। इस प्रकार युयुत्सा या तो शारीरिक आवश्यकताओं की अतृप्ति के कारण उत्पन्न निराशा का परिणाम कही जा सकती है अथवा वैसी निराशा की कल्पना-मात्र से भी युयुत्सा उत्पन्न हो सकती है। अतः युयुत्सा यद्यपि विश्वजनीन होती है, तथापि जन्मजात नहीं। कुछ विद्वानों ने युयुत्सा के बदले शान्ति को मनुष्य का स्वाभाविक गण माना है। इस विचार मे भी अतिशयोक्ति है।

कुछ आदिम समाजों में युयुत्सा की प्रधानता पायी जाती है, तो कुछ में शान्तिपूर्ण व्यवहार की। इस तरह के समाज के लोगों के अध्ययन से युयुत्सा की उत्पत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। न्यू गिनी (New Guinea) की मनुष्यभक्षी आदिम जाति (Cannibal tribe) मुंडुगुमर (Mundugumor) को लें। इस जाति-विशेष मे युयुत्सा की प्रधानता पायी जाती है। यह युयुत्सा उस जाति मे जन्मजात नहीं होती, वरन् बाल्यकाल की शिक्षा का परिणाम होती है। इस सबंध में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं—

(१) मुंडुगुमर बच्चों को उनके पिता नहीं चाहते। फलतः उन बच्चों का जन्म ऐसी परिस्थिति में होता है, जहाँ विरोध या वैर-भाव विद्यमान रहता है। अतः युयुत्सा की ओर उनका प्रवृत्त होना स्वाभाविक ही है।

(२) पति-पत्नी में सदा संघर्ष बना रहता है, जिससे बच्चे अत्यन्त, प्रभावित होते है तथा कलह की ओर प्रवृत्त होते है।

(३) उन बच्चों का पालन-पोषण ऐसी संस्कृति में होता है, जहाँ पुरुष एवं स्त्री, दोनों ही से साहस और शौर्य की आशा की जाती है। उन्हे ऐसे वातावरण मे रहना पड़ता है, जो ईर्ष्या-द्वेष, कलह आत्म-प्रदर्शन, प्रतिशोध की भावना इत्यादि से व्याप्त रहता है। ऐसी स्थिति में उनमें युयुत्सा की प्रवृत्ति का उत्पन्न होन स्वाभाविक ही है।

*

(४) उन बच्चो का जिस ढंग से लालन-पालन किया जाता है, वह स्वभावतः उन्हें युयुत्सा की ओर ले जानेवाला होता है। माँ बच्चों को यह शिक्षा देती है कि सभी लोग, यहाँ तक कि तुम्हारे पिता भी, तुम्हारे प्रतिद्वन्द्वी है।

(५) उन बच्चों की शिक्षा कुछ इसी प्रकार की होती है कि वे ईर्ष्या-द्वेष-मय वातावरण मे ही सफलतापूर्वक जीवन धारण कर सकते है।

उपर्युक्त बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य स्वभावत न तो कलहप्रिय होता है और न शान्तिप्रिय। उसकी कुछ शारीरिक आवश्यकताएँ होती है, जिनकी परितुष्टि अनिवार्य है। यदि व्यक्ति को इन्हे परितुष्ट करने मे किसी प्रकार की बाधा का सामना नही करना पड़ता, तो उसका व्यवहार शान्तिपूर्ण होता है। इसके विपरीत, जिन व्यक्तियो अथवा परिस्थितियो के द्वारा शारीरिक आवश्यकताओं की परितुष्टि मे बाधा पहुँचती है, उनके प्रति स्वभावतः व्यक्ति की मनोवृत्ति तथा उसका व्यवहार कलहात्मक हो जाता है। इसके अतिरिक्त, प्राय प्रत्येक व्यक्ति का जन्म ऐसी परिस्थिति में होता है, जहाँ की सस्कृति मे कुछ के प्रति परपरागत घृणा, अश्रद्धा, अनिच्छा इत्यादि विद्यमान रहती है। इनके कारण व्यक्ति स्वभावतः कलहप्रियता अथवा युयुत्सा से दूर नही रह सकता। अतः युयुत्सा जहाँ शारीरिक आवश्यकताओं की परितुष्टि मे बाधा के कारण उत्पन्न निराशा का परिणाम कही जा सकती है, वहाँ यह सस्कृति-विशेष मे विद्यमान परपरागत घृणा, अश्रद्धा, अनिच्छा इत्यादि का फल भी मानी जा सकती है।

चौदहवाँ अध्याय

क्रिया एवं प्रेरक वृत्तियों का संघर्ष

क्रियाओं का अध्ययन मनोविज्ञान का प्रमुख विषय है। प्राणी की क्रियाएँ सामान्यतः दो प्रकार की होती हैं—अनैच्छिक क्रियाएँ (Involuntary actions) तथा ऐच्छिक क्रियाएँ (Voluntary actions)। अनैच्छिक क्रियाओं के अन्तर्गत वे सारी क्रियाएँ आ जाती हैं, जो प्राणी की इच्छा और चेष्टा के बिना ही अपने-आप सम्पन्न होती हैं। ऐच्छिक क्रियाओं में उन क्रियाओं का समावेश रहता है, जो प्राणी की इच्छा और चेष्टा के परिणाम-स्वरूप उत्पन्न होती हैं। इन दोनों प्रकार की क्रियाओं पर संक्षेप में प्रकाश डालना ही यहाँ अभीष्ट है। अनैच्छिक क्रियाओं में प्रतिक्षेप-क्रिया (Reflex actions) तथा मूल प्रवृत्ति (Instinct) का प्रमुख स्थान है। ऐच्छिक क्रियाओं मे विशेष रूप से तर्क-वितर्क (Deliberation), चुनाव अथवा निर्णय (Choice or decision) तथा संकल्प (Resolution) की प्रधानता मानी जाती है।

प्रतिक्षेप-क्रिया
(Reflex Action)

प्रतिक्षेप-क्रिया प्राणी की सरलतम तथा जन्मजात क्रिया है। यह स्वतः सम्पादित होती है। प्राणी की इच्छा अथवा चेष्टा की इसे कोई आवश्यकता नहीं होती। इसकी परिभाषा करते हुए कहा जा सकता है कि यह एक सरल एवं स्वतः संचालित मांसपेशीय (Muscular) अथवा पिंड-सम्बन्धी (Glandular) प्रतिक्रिया (Reaction) है, जो उपयुक्त उत्तेजनाओं द्वारा ज्ञानेन्द्रियों (Sense organs) के उत्तेजित होते ही अति शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। उदाहरणार्थ, आँखों पर तीव्र प्रकाश पड़ते ही पुतलियाँ सिकुड़ जाती ह, जीभ पर खाने की सामग्री रखते ही लार टपकने लगती है तथा नाक में नस पड़ते ही छींक आ जाती है। ज्ञानेन्द्रियों के उत्तेजित होते ही ये क्रियाएँ इतनी शीघ्रता से सम्पन्न हो जाती है कि इनके होने के पूर्व प्राणी को इनकी कोई चेतना नहीं होती। इसीलिए, ये

अधिकांशतः अचेतन (Unconscious) मानी गयी है। किन्तु कुछ प्रतिक्षेप-क्रियाएँ चेतन (Conscious) भी कही जाती है, क्योंकि उन क्रियाओ के सम्पन्न होने की चेतना प्राणी को रहती है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि प्रतिक्षेप-क्रियाओ की उत्पत्ति मे प्राणी की चेतना का कोई हाथ नही रहता। चूँकि इन क्रियाओ के होने का ज्ञान प्राणी को रहता है, इसलिए ये क्रियाएँ कुछ हद तक नियत्रित की जा सकती है। उदाहरण-स्वरूप, खाँसने की प्रतिक्षेप-क्रिया को ले। यह एक चेतन प्रतिक्षेप-क्रिया है। अत. कुछ हद तक इसपर नियत्रण सभव है। खाँसने की क्रिया का कुछ समय के लिए रोका जा सकता है। यहाँ स्पष्टत: प्राणी की प्रतिक्रिया अनैच्छिक न रहकर ऐच्छिक हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि यदि प्रतिक्षेप-क्रियाएँ अधिकाशत अचेतन होती है, तो कुछ चेतन भी और यदि वे सामान्यत अनियत्रित होती है, तो कुछ हद तक उनपर नियत्रण भी किया जा सकता है। स्नायु-मडल (Nervous system) के आधार पर इनकी व्याख्या करते हुए यह कहा जा सकता है कि जब प्राणी के सामने कोई विशेष प्रकार की उत्तेजना उपस्थित होती है, तब विशेष प्रकार की ज्ञानेन्द्रिय उसे ग्रहण करती है। फलत उसमे स्नायु-प्रवाह (Nerve-impulses) उत्पन्न हो जाते है। ज्ञानेन्द्रिय-विशेष मे उत्पन्न स्नायु-प्रवाहो को अन्तर्वाहक स्नायुएँ (Afferent nerves) सुषुम्ना (Spinal cord) मे ले जाती है। फिर वहाँ से वे स्नायु-प्रवाह बहिर्वाहक स्नायुओं (Efferent nerves) द्वारा मासपेशियो (Muscles) और पिडो (Glands) मे जाते है। फलत. मांसपेशियो तथा पिड-सम्बन्धी प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती है, जिन्हे हम प्रतिक्षेप-क्रिया (Reflex action) की सज्ञा देते है।

प्रतिक्षेप-क्रिया के उपर्युक्त विवेचन से उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट है.—

(१) यह एक अति सरल तथा जन्मजात मासपेशीय अथवा पिड-सम्बन्धी प्रतिक्रिया है।

(२) यह तत्कालिक, अर्थात्, अति शीघ्र सम्पन्न होनेवाली प्रतिक्रिया है।

(३) यद्यपि प्रतिक्षेप-क्रिया से किसी-न-किसी प्रकार के अभिप्राय की सिद्धि होती है, तथापि अभिप्राय की चेतना प्राणी को नही

रहती। वह जान-बूझकर प्रतिक्रिया प्रकट नहीं करता, बल्कि वह प्रतिक्रिया अपने-आप प्रकट हो जाती है।

(४) यह चेतन तथा अचेतन, नियत्रणात्मक तथा अनियत्रणात्मक, दोनों ही प्रकार की होती है।

(५) इसका सम्बन्ध शरीर के किसी विशेष अंग से रहता है, न कि सारे शरीर से। इसलिए इसका स्थान-निरूपण (Localization) संभव है। उदाहरण के लिए, आँसू आने की क्रिया आँखों से, लार टपकने की क्रिया जीभ से तथा छींकने की क्रिया नाक से होती है।

(६) इसमे एकरूपता पायी जाती है। एक विशेष प्रकार की उत्तेजना से सदा एक विशेष प्रकार की ही प्रतिक्षेप-क्रिया उत्पन्न होती है। इसीलिए यह एक यान्त्रिक क्रिया (Mechanical action) कही गयी है। उदाहरणार्थ, नाक मे नस पड़ जाने से सदा छींकने की ही क्रिया होगी, अन्य कोई क्रिया नही हो सकता।

प्रतिक्षेप-क्रिया के प्रकार (Kinds of reflex action) :— व्यावहारिकता की दृष्टि से मोटे तौर पर प्रतिक्षेप-क्रिया के दो विभाग किये जा सकते है—एक तो शरीर-सम्बन्धी प्रतिक्षप-क्रियाए (Physiological reflexes), जो अचेतन होती है और दूसरी वे, जो चेतन (Conscious) होती है। इन दोनो प्रकार की प्रतिक्षेप-क्रियाओ का विवेचन ऊपर प्रस्तुत किया जा चुका है। प्रतिक्षेप-क्रिया के दूसरे वर्गीकरण के अनुसार इसे दो भागो मे बाँटा जा सकता है—प्राथमिक (Primary) अथवा स्वाभाविक (Unconditioned) प्रतिक्षेप-क्रिया तथा अस्वाभाविक या सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित (Conditioned) प्रतिक्षेप-क्रिया। प्रत्येक प्रतिक्षेप-क्रिया की अपनी उपयुक्त उत्तेजना होती है। जब वह अपनी उपयुक्त उत्तेजना से उत्पन्न होती है, तब उसे प्राथमिक अथवा स्वाभाविक प्रतिक्षप-क्रिया कहते है। उदाहरण के लिए, लार टपकने की प्रतिक्षेप-क्रिया के लिए उपयुक्त उत्तेजना है भोजन। यदि भोजन द्वारा लार टपकने की क्रिया उत्पन्न हो, तो यह प्राथमिक अथवा स्वाभाविक प्रतिक्षेप-क्रिया कही जायगी। किन्तु यदि भोजन के अतिरिक्त अन्य किसी उत्तेजना से लार टपकने की क्रिया उत्पन्न हो, तो निश्चय ही यह अस्वाभाविक अथवा सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित

(Conditioned) प्रतिक्षेप-क्रिया कही जायगी। इस तरह की अस्वाभाविक या सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्षेप-क्रिया का उदाहरण पावलव (Pavlov) के प्रयोग में मिलता है। अपने प्रयोग मे पावलव (Pavlov) ने यह दिखलाया है कि भोजन की अनुपस्थिति में भी केवल घंटी की आवाज सुनकर कुत्ते के मुँह मे लार टपकने लगती है। वास्तव में, यह सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्षेप-क्रिया (Conditioned reflex action) ही तो है। इसी तरह के अन्य कई उदाहरणों द्वारा अस्वाभाविक प्रतिक्षेप-क्रिया का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। किन्तु, यहाँ यह स्पष्ट कर देना समीचीन जान पड़ता है कि सभी प्रतिक्षेप-क्रियाएँ अस्वाभाविक उत्तेजनाओं (Conditioned stimuli) से उत्पन्न नहीं हो सकती हैं।

मूल प्रवृत्ति

(Instinct)

अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैकडूगल ने मानव-क्रियाओं की व्याख्या अनुप्रेरणा (Motivation) के आधार पर करने की चेष्टा की है। उन्होंने प्राथमिक प्रेरक वृत्तियों (Primary motives) के रूप में मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों (Instincts) को स्वीकार किया है। उन्होंने मूल प्रवृत्तियों को प्रतिक्षेप-क्रियाओं का तारतम्य-मात्र (Mere chain of reflex actions) नहीं माना है, जैसा कि हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने प्रतिपादित किया था। मैकडूगल के अनुसार मूल प्रवृत्ति केवल यान्त्रिक (Mechanical) क्रिया-मात्र ही नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी जन्मजात मनोदैहिक (Psycho-physical) प्रवृत्ति है, जिससे प्रभावित होकर व्यक्ति किसी उत्तेजना-विशेष की ओर ही अपना ध्यान देता है, किसी विशेष प्रकार के संवेग अथवा आवेश (Impulse) का ही अनुभव करता है तथा उस उत्तेजना-विशेष के प्रति किसी विशिष्ट (Specific) ढंग की ही प्रतिक्रिया प्रकट करता है।* स्पष्ट है कि मैकडूगल के अनुसार मूल प्रवृत्तियों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(१) यह एक जन्मजात मनोदैहिक प्रवृत्ति है। इसे व्यक्ति अपने जीवन-काल में नहीं सीखता।

---

* "Instinct is an inherited or innate Psycho-physical disposition which determines its possessors to perceive and to pay attention to objects of certain class, to experience an

(२) इससे प्रभावित होकर व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण विशिष्ट ढंग का हो जाता है, अथवा वह विशिष्ट वस्तु अथवा वस्तुओं के समूह पर ही अपना ध्यान देता है।

(३) व्यक्ति एक विशेष प्रकार के संवेग का अनुभव करता है।

(४) व्यक्ति एक विशेष ढंग की क्रिया प्रकट करता है अथवा कम-से-कम उस विशिष्ट क्रिया के आवेश (Impulse) का अनुभव करता है।

एक उदाहरण द्वारा मूल प्रवृत्ति की इन सभी विशेषताओं को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। खतरे से छुटकारा पाने की मूल प्रवृत्ति प्रायः सभी व्यक्तियों में पायी जाती है। जब कोई खतरनाक परिस्थिति किसी के सम्मुख उपस्थित हो जाती है, तब वह खतरा उत्पन्न करनेवाली वस्तु को विशेष रूप से देखता है। फलतः उसमें भय का संवेग उत्पन्न हो जाता है। तत्पश्चात् वह व्यक्ति वहाँ से भाग जाता है; क्योंकि खतरे से बचने की मूल प्रवृत्ति उसे वैसा करने के लिए बाध्य कर देती है।

मैकडूगल (McDougall) ने मूल प्रवृत्ति को मनुष्य की समस्त क्रियाओं का मूल कारण माना है। मनुष्य की विभिन्न क्रियाओं की व्याख्या के लिए उन्होंने चौदह मूल प्रवृत्तियों की एक सूची प्रस्तुत की है और यह बतलाया है कि प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के साथ किसी-न-किसी प्रकार का संवेग आबद्ध रहता है। आगे चलकर उन्होंने अपनी चौदह मूल प्रवृत्तियों की सूची में और कई मूल प्रवृत्तियों को जोड़ दिया। मूल प्रवृत्तियों की उनकी सूची के विस्तार में जाना यहाँ अपेक्षित नहीं है। मैकडूगल ने मूल प्रवृत्तियों का जो एक सिद्धांत प्रस्तुत किया है, उसके सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना है कि अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने कई कारणों से इस सिद्धांत का खंडन किया है तथा इसे दोषपूर्ण बतलाया है। जिन मनोवैज्ञानिकों की मूल प्रवृत्ति की ओर कुछ आसक्ति बनी रही, उन्होंने भी मैकडूगल की अनेक मूल प्रवृत्तियों के स्थान पर फ्रायड की दो मूल प्रवृत्तियों (जीवन-धारण की मूल प्रवृत्ति तथा मृत्यु अथवा विनाश की मूल प्रवृत्ति) तथा यूँग (Jung) की

---

emotional excitement of a particular quality upon perceiving such an object, and to act in regard to it in a particular manner, or at least, to experience an impulse to such action."

—William McDougall.

एक ही मूल प्रवृत्ति (Libido—a general energy) को स्वीकार करना अधिक उचित समझा है।

प्रतिक्षेप-क्रिया तथा मूल प्रवृत्ति
(Reflex Action and Instinct)

प्रतिक्षेप-क्रिया की तरह ही मूल प्रवृत्ति वंश-परंपरागत अथवा जन्मजात प्रवृत्ति है। इन दोनों को जीवन-काल में सीखकर नहीं प्राप्त किया जाता, वरन् ये दोनों ही प्राणी मे जन्म से ही वर्त्तमान रहती है। ये अनैच्छिक क्रियाएँ (Involuntary actions) है। इनसे जीवन का कोई-न-कोई अभिप्राय सिद्ध होता है—चाहे प्राणी को इसकी चेतना हो, अथवा न हो। इन समानताओ के साथ-साथ दोनों मे निम्नांकित अन्तर भी है—

(१) प्रतिक्षेप-क्रिया एक अति सरल क्रिया है, जो उपयुक्त उत्तेजना के उपस्थित होत ही उत्पन्न हो जाती ह, जैसे नाक में नस पड़ते ही छींक का आ जाना। इसकी अपेक्षा मूल प्रवृत्ति एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमे कई प्रतिक्षेप-क्रियाएँ शामिल रहती है, जैसे पक्षियों का घोंसला बनाना।

(२) प्रतिक्षेप-क्रिया अधिकांशतः अचेतन होती है, किन्तु मूल प्रवृत्ति चेतन होती है; क्योंकि इसमे व्यक्ति को परिस्थिति अथवा वस्तु का ज्ञान रहता है और वह उनसे प्रेरित होकर एक विशिष्ट ढंग का व्यवहार प्रकट करता है। उदाहरण के रूप मे खतरनाक परिस्थिति से छुटकारा पाने की मूल प्रवृत्ति को प्रस्तुत किया जा सकता है। कहना न होगा कि खतरनाक परिस्थिति की पूर्ण चेतना व्यक्ति को रहती है। प्रतिक्षेप-क्रिया से जिस अभिप्राय की सिद्धि होती है, उसका व्यक्ति को पहले से कोई ज्ञान नहीं रहता। किन्तु मूल प्रवृत्ति से जिस अभिप्राय की सिद्धि होती है, उसका ज्ञान व्यक्ति को शुरू से ही रहता है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिक्षेप-क्रिया अधिकांशतः अचेतन तथा मूल प्रवृत्ति चेतन होती है।

(३) प्रतिक्षेप-क्रिया का स्थान-निरूपण (Localization) संभव है; क्योंकि इसका संबंध शरीर के किसी अंग-विशेष से रहता है। उदाहरण के लिए, लार टपकने की प्रतिक्षेप-क्रिया को सहज ही

जीभ में स्थापित किया जा सकता है। किन्तु मूल प्रवृत्ति का स्थान निरूपण संभव नहीं है; क्योंकि इसका संबंध अंग-विशेष से न होकर सारे शरीर से होता है। उदाहरण के रूप मे युद्ध की मूल प्रवृत्ति को प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसमे व्यक्ति का सारा शरीर सक्रिय रहता है।

(४) प्रतिक्षेप-क्रिया एक तात्कालिक क्रिया है। यह अतिशीघ्र सपन्न हो जाती है, किन्तु मूल प्रवृत्ति एक ऐसी क्रिया ह, जो अपेक्षाकृत विलम्ब से सम्पन्न होती है। उदाहरण के लिए, आँखों में धूल पड़ते ही आँसू आने की प्रतिक्षेप-क्रिया सम्पन्न हो जाती है, किन्तु काम (Sex) की मूल प्रवृत्ति इतनी जल्दी सम्पन्न नही हो पाती। काम (Sex) की मूल प्रवृत्यात्मक क्रिया (Instinctive action) अपेक्षाकृत देर से सम्पन्न होती है।

(५) प्रतिक्षेप-क्रिया को उत्पन्न करने के लिए किसी बाह्य उत्तेजना की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, आँखों की पुतलियाँ सिकुड़ जायँ इसके लिए यह आवश्यक है कि आँखों पर तीव्र प्रकाश पड़े। तीव्र प्रकाश पडते ही आँखों की पुतलियाँ सिकुड जायेंगी। किन्तु मूल प्रवृत्तियों की उत्पत्ति व्यक्ति की आन्तरिक आवश्यकताओं के कारण होती है और एक बार उत्पन्न हो जाने पर मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाएँ तबतक जारी रहती है, जबतक कि उन आवश्यकताओ की पूर्त्ति नहीं हो जाती।

ऐच्छिक क्रियाएँ
(Voluntary Actions)

जब प्रेरक वृत्तियों (Motives) मे संघर्ष होता है, तब उस संघर्ष को दूर करने के लिए ऐच्छिक क्रियाओं की आवश्यकता हो जाती है। अतः ऐच्छिक क्रियाओं पर विचार प्रस्तुत करने के पूर्व प्रेरक वृत्तियोंके सघर्ष (Conflict of motives) के सम्बन्ध मे विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

संघर्ष
(Conflict)

संघर्ष जीवन का एक आवश्यक अंग है। जब प्रेरक वृत्तियों की तृप्ति

में बाधा पहुँचती है, अथवा देर हो जाती है, तब स्वभावतः संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। संघर्ष उत्पन्न हो जाने पर व्यक्ति के समक्ष कई विकल्प (Alternatives) आ जाते है। उसे उनमें से किसी एक विकल्प को चुनना तथा अन्य विकल्पों का बहिष्कार करना पड़ता है। जब व्यक्ति किसी एक विकल्प को चुन लेता है, तब संघर्ष मिट जाता है तथा उसका जीवन संतुलित हो जाता है। जीवन में न जाने कितने संघर्ष तथा चुनाव के महत्त्वपूर्ण क्षण आते रहते हैं। यहाँ संघर्ष की उत्पत्ति अथवा उसके मूल कारण, उसके स्वरूप तथा उसे मिटाने के साधन पर विचार प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

संघर्ष के मूल कारण—संघर्ष के तीन प्रधान मूल कारण बतलाये जा सकते हैं—(१) प्रेरक वृत्तियों की तृप्ति में वातावरण-सम्बन्धी बाधाएँ, (२) व्यक्तिगत त्रुटियाँ, जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरक वृत्तियों की तृप्ति में बाधा पहुँचाती हैं तथा (३) कई संघर्षात्मक प्रेरक वृत्तियों (Conflicting motives) का एक ही साथ उपस्थित होना।

वातावरण-संबंधी बाधाओं के अन्तर्गत मुख्यतः निम्नलिखित बातों पर विचार प्रस्तुत किया जायगा—

(१) परिवार संघर्ष के उद्गम के रूप में (The family as a source of conflict),

(२) काम-संघर्ष (Sex-conflicts),

(३) विवाह-संघर्ष (Conflicts in marriage)।

वातावरण-सम्बन्धी बाधाएँ

परिवार संघर्ष उद्गम के रूप में:—व्यक्ति अपने प्रारम्भिक जीवन में माता-पिता पर आश्रित रहता है। किन्तु जब वह कुछ सयाना हो जाता है, तब वातावरण में उपस्थित उत्तेजनाओं (Stimuli) के साथ उसे अभियोजन (Adjustment) स्थापित करने की नितान्त आवश्यकता होती है। पूर्व असहायता के बदले अब उसे एक स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में कार्य करने की आवश्यकता का अनुभव होता है। उसकी अपनी सभी इच्छाओं की तृप्ति स्वतन्त्रता के बिना संभव भी नहीं। किन्तु, यह पाया जाता है कि कुछ माता-पिता बच्चे में स्वतन्त्रता के विकास मे बाधक सिद्ध होते है। वे यह चाहते है कि बच्चे पर उनका बराबर आधिपत्य बना रहे। फलतः अधिकांश बच्चे उनके अनुकूल अपना जीवन बना

लेते है, क्योकि उन पर आश्रित रहने से उनका जीवन सुलभता से बीतता है। लेकिन ऐसे बच्चो का जब बडा होने पर समाज के अन्य लोगो के साथ अथवा किसी व्यवसाय (Vocation) के साथ अभियोजन स्थापित करने की आवश्यकता होती है, तब वे कठिनाइया का अनुभव करते है और उन्हे मानसिक सघर्षो (Mental conflicts) का सामना करना पडता है। माता-पिता की बच्चो के प्रति मनोवृत्ति पर ही उनमे नैतिकता (Morality) का विकास निर्भर करता है। उचित नैतिक शिक्षण (Moral training) के अभाव मे मानसिक सघर्ष का होना स्वाभाविक है। यदि माता-पिता अथवा शिक्षक बच्चे को प्रति कठोर नैतिक शिक्षण देते ह तो बच्चा प्राय भयभीत तथा लज्जालु प्रकृति का हो जाता है। फलत वह आन्तरिक सघर्षो (Internal conflicts) से आक्रात रहता है। इसके विपरीत, यदि कोई बच्चा अपने जीवन के प्रारभिक दिनो मे माता-पिता का समुचित प्यार नही पाता, तो वह नैतिक विकास (Moral development) के सर्वोत्तम आधार म ही वचित रह जाता है। फलत उसमे अनेक अवाछनीय व्यवहारो के आने की सभावना बिलकुल स्वाभाविक हो जाती है। ऐसे बच्चे को किसी के प्यार खोने का भय नही रहता और वह निरन्तर निराशा मे डूबता-उतराता रहता है। ऐसी स्थिति मे उसमे कई प्रकार के असामाजिक व्यवहार आ जाते है। फलत वह समाज के लोगो के साथ अपने का अभियोजित नही कर पाता और सघर्ष का अनुभव करता है। निष्कर्ष यह कि नैतिकता की कमी के कारण सामाजिक सघर्ष की गजाइश बहुत अधिक हो जाती है।

काम-सघर्ष (Sex-conflicts)—वातावरण-सम्बन्धी बाधाए प्राय सामाजिक हुआ करती है। सामाजिक बन्धनो के कारण व्यक्ति प्राय अपनी प्रेरक वृत्तियो को स्वतन्त्रतापूर्वक तृप्त नही कर पाता। सामाजिक बन्धन प्रेरक वृत्तियो की तृप्ति मे बाधक सिद्ध होते है। उदाहरण-स्वरूप, काम-प्रेरक वृत्ति (Sex-motive) को लिया जा सकता है। काम-प्रेरक वृत्ति की स्वतन्त्र तृप्ति मे प्राय अनेक प्रकार की सामाजिक बाधाएँ उपस्थित होती है। फलस्वरूप, काम-प्रेरक वृत्ति अतृप्त रह जाती है और व्यक्ति को सघर्ष का सामना करना पडता है। एक ओर तो वह अपनी काम-प्रेरक वृत्ति की तृप्ति चाहता है और दूसरी ओर सामाजिक बन्धनो तथा नियमो का पालन।

विवाह-संघर्ष (Conflicts in marriage):— जिन प्रेरक वृत्तियों स प्रेरित स्त्री-पुरुष वैवाहिक जीवन में प्रवेश करत हैं, वे बड़ी ही जटिल (Complex) होती हैं । यह सोचना भूल है कि प्रेम-मात्र से प्रेरित होकर ही स्त्री-पुरुष वैवाहिक जीवन स्वीकार करते हैं। वैवाहिक जीवन के मूल में प्रेम तो रहता ही है, लेकिन साथ-ही-साथ आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सुरक्षा (Security) की भावनाएँ भी वर्त्तमान रह सकती हैं । संभव है कि कोई सामाजिक नियम के पालन-मात्र के लिए ही वैवाहिक जीवन स्वीकार करे; क्योंकि प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति से ऐसी आशा की जाती है। हो सकता है कि कोई इसलिए वैवाहिक संबंध स्वीकार करे कि उसे एक ऐसा साथी मिले, जिससे वह बिलकुल मुक्त होकर सभी तरह की बातें कर सके, अपने को पूर्णतया अभिव्यक्त कर सके । विवाह से संबद्ध ये सारी आशाएँ सामान्यतः पूरी नहीं हो पाता । फलतः व्यक्ति के जीवन में निराशा छा जाती है। प्रायः प्रत्येक युवक या युवती में पहले से ही एक आदर्श प्रेम-जीवन की भावना बनी रहती है । यदि वे अपने कल्पित प्रेम-जीवन के अनुकूल वैवाहिक जीवन को नहीं पाते, तो उन्हें निराशा होती है । आर्थिक कठिनाइयों के कारण भी परस्पर प्रेम-भाव में कमी आ सकती है । उपर्युक्त स्थितियों में स्वभावतः व्यक्ति को मानसिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है ।

व्यक्तिगत त्रुटियाँ

व्यक्तिगत त्रुटियों के कारण भी प्रेरक वृत्तियों की तृप्ति में बाधा पहुँचती है। व्यक्तिगत त्रुटियों के अंतर्गत शारीरिक दोष, अल्पबुद्धि, अपने वर्त्तमान कार्य में अल्प रुचि इत्यादि बातें आती हैं। इन व्यक्तिगत त्रुटियों के कारण व्यक्ति प्रायः अपने जीवन के आदर्शों को प्राप्त नहीं कर पाता । ये व्यक्तिगत त्रुटियाँ उसके कार्य-सम्पादन में बाधक सिद्ध होती हैं । परिणाम-स्वरूप उसे निराशा होती है तथा वह प्रबल मानसिक संघर्ष का अनुभव करता है ।

हीनता की भावना (Feeling of inferiority):—अल्फ्रेड ऐडलर (Alfred Adler) का कहना है कि शारीरिक त्रुटियों के कारण व्यक्ति में हीनता की भावना (Feeling of inferiority) आती है। इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि शारीरिक त्रुटि-मात्र ही हीनता

की भावना का कारण नहीं है। वस्तुतः जब किसी कारणवश व्यक्ति अपने को दूसरों के बराबर नहीं पाता है, तब उसके अन्दर हीनता की भावना आ जाती है। कई सौ छात्रों के संबंध में एक अध्ययन किया गया। वे छात्र अपनी हीनता की भावना को स्वीकार करने के लिए तैयार थे। छात्र-स्वास्थ्य-दफ्तर (Student health office) से उनकी शारीरिक अवस्थाओं के बारे में रेकर्ड ले लिया गया। इस रेकर्ड के आधार पर यह तुलना की गयी कि हीनता की भावना (Feeling of inferiority) से आक्रान्त छात्र किस हद तक शारीरिक त्रुटियों के शिकार थे। इस अध्ययन में हीनता की भावना और शारीरिक त्रुटि—इन दोनों के बीच कोई स्पष्ट सह-संबंध (Correlation) नहीं पाया गया। इससे ज्ञात होता है कि शारीरिक त्रुटियों के अतिरिक्त अन्य कारणों, जैसे बौद्धिक कमी, आर्थिक और सामाजिक जीवन में सुरक्षा की कमी, नैतिकता की कमी आदि से भी व्यक्ति में हीनता की भावना आ सकती है, चाहे वे त्रुटियाँ वास्तविक हों या काल्पनिक।

व्यक्तिगत असफलता—समाज में किसी भी व्यक्ति के सामने सफलता-असफलता के क्षण आते रहते हैं। असफलता को सापेक्ष (Relative) माना जा सकता है। कारण, जो उपलब्धि (Achievement) एक के लिए सफलता है, वही दूसरे के लिए असफलता हो सकती है। कोई भी उपलब्धि व्यक्ति के द्वारा सफलता के रूप में ग्रहण की जायगी अथवा असफलता के रूप में, यह उसकी आकांक्षा के स्तर (Level of aspiration) पर निर्भर है। यदि उपलब्धि के स्तर (Level of achievement) और आकांक्षा के स्तर (Level of aspiration) में अन्तर न हो, तो व्यक्ति का जीवन सुचारु रूप से चलता है, उसमें संघर्ष की संभावना नहीं रहती। किन्तु यदि उपलब्धि के स्तर और आकांक्षा के स्तर में काफी अन्तर हो, तो व्यक्ति को निराशा हाथ लगती है। फलस्वरूप, वह मानसिक संघर्ष का अनुभव करता है।

कई संघर्षात्मक प्रेरक वृत्तियों का एक ही साथ उपस्थित होना

व्यक्ति को सबसे अधिक मानसिक संघर्ष का अनुभव तब होता है, जब उसके समक्ष कई संघर्षात्मक प्रेरक वृत्तियाँ एक ही साथ उपस्थित हो जाती

हैं। ऐसी परिस्थिति में उसके सामने एक नहीं, बल्कि अनेक प्रबल विकल्प (Alternatives) वर्त्तमान रहते हैं। फलतः उसे यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि कौन विकल्प वांछनीय है तथा कौन त्याज्य। इस प्रकार के संघर्ष से प्रायः कोई व्यक्ति वंचित नहीं रह पाता है। उदाहरण के रूप में कुछ ऐसे विकल्पों को नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है, जो प्रायः संघर्ष उत्पन्न करनेवाले होते हैं। इस प्रकार के विकल्पों के उपस्थित होने पर व्यक्ति को प्रायः संघर्ष का सामना करना पड़ता है—

(१) पढ़ें अथवा सिनेमा जायें ?

(२) इस कॉलेज में नाम लिखायें अथवा उस कॉलेज में ?

(३) युद्ध-क्षेत्र में साहस एवं शौर्य का परिचय दें अथवा वहाँ से भागकर प्राण-रक्षा करें ?

(४) आगत निराशा का साहसपूर्वक सामना करें अथवा मद्यपान कर उसे क्षण-भर के लिए भुला दें ? इत्यादि।

तर्क-वितर्क (Deliberation):—जब दो प्रबल प्रेरक वृत्तियों में संघर्ष होता है, तब व्यक्ति मानसिक उलझन का अनुभव करता है; क्योंकि उसके सामने दो प्रबल तथा आकर्षक विकल्प (Alternatives) उपस्थित रहते हैं। फलतः उसके सामने यह समस्या आ जाती है कि वह किस विकल्प को अपना ले तथा किसका परित्याग कर दे। ऐसी अवस्था में वह दोनों विकल्पों के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क प्रारम्भ कर देता है और यह निश्चय करने की चेष्टा करता है कि दोनों में कौन अधिक श्रेयस्कर है। दोनों विकल्पों के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क का यह क्रम कुछ देर तक चलता रहता है, दोनों की छानबीन करने की भरपूर चेष्टा की जाती है। दो प्रेरक वृत्तियों के एक ही साथ उपस्थित होने के कारण उत्पन्न संघर्ष की इसी अवस्था को तर्क-वितर्क की अवस्था (Stage of deliberation) कहते हैं। स्पष्ट है कि इस अवस्था में व्यक्ति का विचार दो प्रेरक वृत्तियों के बीच घूमता रहता है।

चुनाव अथवा निर्णय (Choice or Decision) :—तर्क-वितर्क की अवस्था में दोनों ही विकल्प के पक्ष में निर्णय की संभावना बनी रहती है। किन्तु किसी भी विकल्प के पक्ष में कोई निश्चित क्रिया नहीं होती। फलतः कुछ देर तक एक अकर्मण्यता की अवस्था (Stage of inactivity) बनी रहती है। किन्तु जब संघर्ष अति प्रबल हो जाता है, तब व्यक्ति की शक्ति का अत्यधिक ह्रास होने लगता है। परिणाम-स्वरूप, वह संघर्ष को

मिटाने के लिए व्यग्र हो उठता है। उसकी यह व्यग्रता और अधिक बढ़ जाती है, जब वातावरण तात्कालिक निर्णय के लिए उसे बाध्य कर देता है। ऐसी अवस्था में वह किसी एक विकल्प को चुन लेता है तथा दूसरे का परित्याग कर देता है। कई विकल्पों में किसी एक के पक्ष में निर्णय कर लने को ही चुनाव अथवा निर्णय की संज्ञा दी जाती है।

एक उदाहरण—

जब किसी नवयुवक के सामने पत्नी-प्रेम तथा देश-रक्षा—ये दो विकल्प उपस्थित होते है, तब वह एक मानसिक संघर्ष का अनुभव करता है। एक ओर तो पत्नी-प्रेम स्वत: एक प्रबल एवं आकर्षक प्रेरक वृत्ति है, जो उसे अपनी ओर बरबस खींचती है तथा दूसरी ओर देश-रक्षा, आत्म-सम्मान एवं सामाजिक गौरव आदि स्थायीभावों (Sentiments) के संयोग से अत्यधिक प्रबल होकर उसे अपनी ओर आकर्षित करती है। कभी तो वह यह सोचता है कि "यदि देश-रक्षा के लिए मै शत्रु से युद्ध करूँ और मारा जाऊँ तो सदा के लिए पत्नी-प्रेम से वंचित हो जाऊँगा। अतएव, ऐसा करना श्रेयस्कर नहीं है।" कभी वह यह सोचता है कि "यदि मै युद्ध में भाग लेकर देश-रक्षा के लिए अपने प्राण भी गँवा दूँ तो भी युद्ध करना ही श्रेयस्कर है; क्योंकि उससे मुझे जो सम्मान, यश तथा गौरव प्राप्त होगा, वह अन्य व्यक्तियों के लिए दुर्लभ होगा।" इस कारण दोनों विकल्पों के सम्बन्ध मे तर्क-वितर्क चलते रहते हैं। यदि युवक के सामने एक ओर प्रेम का आकर्षण है, तो दूसरी ओर सम्मान, यश तथा सामाजिक गौरव का लोभ। दोनों ही उसे अपनी ओर प्रबल रूप से आकर्षित करते है। किन्तु जब वह दोनों विकल्पों के सम्बन्ध में इस प्रकार के तर्क-वितर्क से ऊब उठता है, तो किसी एक विकल्प के पक्ष में निर्णय करने की ओर प्रवृत्त होता है अथवा जब अचानक शत्रु उसके देश पर आक्रमण कर बैठते है, तब परिस्थिति मे बाध्य होकर उसे शीघ्र ही कोई निर्णय कर लेना पड़ता है। फलत: वह दोनों विकल्पों में से किसी एक को चुन लेता है तथा दूसरे का परित्याग कर देता है। फिर वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ चुने हुए विकल्प को कार्यान्वित करने की चेष्टा करता है।

संकल्प (Resolution):—निर्णय कर लेने के बाद सामान्यत: क्रिया शीघ्र सम्पन्न हो जाती है। किन्तु कभी-कभी निर्णय के बाद क्रिया शीघ्र ही सम्पन्न नहीं हो पाती है। ऐसी अवस्था में संकल्प की आवश्यकता

पड़ती है। व्यक्ति अपने निर्णय को कार्यरूप मे परिणत कर अपनी वांछित प्रेरक वृत्ति को तृप्त करने का संकल्प करता है। फलस्वरूप, कार्य करते समय अब और अधिक संघर्षों के उत्पन्न होने की संभावना नहीं रह जाती। अतएव, वह सफलतापूर्वक अपने निर्णय के अनुसार कार्य सम्पन्न कर लेता है।

ऐच्छिक क्रिया (Voluntary action):—स्पष्ट है कि तर्क-वितर्क, निर्णय तथा संकल्प के बाद व्यक्ति की ऐच्छिक क्रिया सम्पन्न हो जाती है।

चुनाव अथवा निर्णय की संक्षिप्त व्याख्या

मैकडूगल (McDougall) ने निर्णय अथवा चुनाव की व्याख्या में स्थायीभाव (Sentiment) को महत्त्व प्रदान किया है और उसीके आधार पर इसकी व्याख्या करने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि आत्म-सम्मान के स्थायीभाव (Self-regarding sentiment) से संयुक्त होकर दुर्बल प्रेरक वृत्तियाँ अधिक आकर्षक तथा शक्तिशाली हो जाती हैं। फलस्वरूप, वे प्रबल प्रेरक वृत्तियों पर विजय प्राप्त कर लेती हैं। यही कारण है कि दो विकल्पों के उपस्थित होने पर व्यक्ति दुर्बल प्रेरक वृत्ति को चुन लेता है तथा प्रबल प्रेरक वृत्ति का परित्याग कर देता है। सिनेमा देखना तथा पढ़ना—इन दो विकल्पों मे निस्सन्देह सिनेमा देखना एक प्रबल प्रेरक वृत्ति है; क्योंकि इससे व्यक्ति की बहुत-सारी प्रकृत प्रवृत्तियाँ परितुष्ट होती हैं। इसकी अपेक्षा पढ़ना एक दुर्बल प्रेरक वृत्ति है। जब इन दो विकल्पों में संघर्ष होता है, तब व्यक्ति दोनों के संबंध में तर्क-वितर्क करता है। अन्ततोगत्वा वह पढ़ने के पक्ष मे निर्णय करता है तथा सिनेमा देखने का विचार छोड़ देता है। उसके सामने यह प्रमुख बात आ जाती है कि "यदि मैं श्रमपूर्वक पढ़ूँगा तो परीक्षा में अच्छी तरह उत्तीर्ण होऊँगा। फलतः लोगों की दृष्टि में मेरा सम्मान बढ़ जायगा।" स्पष्ट है कि जब पढ़ने के साथ आत्म-सम्मान के स्थायीभाव का संयोग हो जाता है, तब पढ़ना एक प्रबल प्रेरक वृत्ति का रूप ग्रहण कर लेता है। फलतः पढ़ना सिनेमा देखने की प्रवृत्ति पर विजय प्राप्त कर लेता है।

संकल्प की व्याख्या के सम्बन्ध में यह निष्कर्ष समुचित जान पड़ता कि व्यक्ति निरन्तर आवेशों (Impulses) तथा मूल प्रवृत्तियों (Instincts) से प्रेरित होकर ही कार्य नहीं करता, बल्कि अपने जीवन के आदर्शों से अनुप्रेरित होकर भी अधिकांश कार्य करता है। यदि

वह अपनी मूल प्रवृत्तियों को तृप्त करना चाहता है, तो अपने अहं-भाव (Ego-ideal) की रक्षा करना भी। वस्तुतः व्यक्ति अधिकांशतः अहं-भाव के अनुकूल कार्यों को ही अपनाता है तथा आवेशमय कार्यों (Impulsive actions) का परित्याग कर देता है।

प्रेरक वृत्तियों के संघर्ष को मिटाने की जिन चेतन स्तर की रीतियों का वर्णन किया गया ह, वे सदा सफल नहीं सिद्ध होतीं। वास्तव में, व्यक्ति के जीवन में अधिकांश ऐसे संघर्ष आते हैं, जिन्हें वह तर्क-वितर्क, निर्णय एवं संकल्प के आधार पर दूर करने में समर्थ नहीं होता। ऐसी स्थिति में वह अचेतन स्तर की कुछ रीतियों को अपनाकर प्रेरक वृत्तियों के संघर्ष को मिटाने की चेष्टा करता है। उनमें से कुछ प्रधान रीतियाँ ये हैं—

(१) **दमन** (Repression) :—असफलता और निराशा उत्पन्न करनेवाली प्रेरक वृत्तियाँ व्यक्ति के लिए बड़ा दुःखद और अप्रिय होती हैं। फलत वह उन्हें भुला देने की भरपूर चेष्टा करता है। उसकी इस चेष्टा के फलस्वरूप वे उसकी चेतना (Consciousness) से हट जाती हैं। किन्तु उनका अन्त नहीं होता। वे उसके अचेतन में चली जाती हैं। इसे ही दमन (Repression) की संज्ञा दी जाती है। अचेतन में संचित वे दमित प्रेरक वृत्तियाँ (Repressed motives) निरन्तर सक्रिय (Active) रहती है। अपनी सक्रियता के फलस्वरूप ही वे प्रायः दैनिक मनोविकृतियों (Psycho-pathologics of everyday life), स्वप्नों (Dreams) आदि में अभिव्यक्त होती हैं। इस अभिव्यक्ति के फलस्वरूप संघर्ष के कारण उत्पन्न तनाव (Tension) बहुत कुछ कम हो जाता है।

(२) **उन्नयन (Sublimation)**:—यदि कोई युवक किसी युवती को प्यार करता है, किन्तु किसी कारणवश उस युवती का प्रेम प्राप्त नहीं कर पाता, तो वह निराशा और तनाव (Tension) का अनुभव करता है। सामाजिक बन्धनों के कारण अपना प्रेम अभिव्यक्त कर अपनी निराशा और तनाव को कम करने में भी असमर्थता का अनुभव करता है। फलतः वह युवती के प्रति अपने प्रेम का उन्नयन कर उसे उन्नमित रूप (Sublimated form) में ही अभिव्यक्त करता है। ऐसी स्थिति में वह प्रायः कविताओं या कहानियों में किसी अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन कर अपने को तृप्त करता है। पार्थिव जगत् में अपने

प्रेम-जीवन में अफल कवि प्राय अपनी कविताओं में अपार्थिव प्रेम और मिलन की कल्पना कर आत्मतुष्टि प्राप्त करता है। इसे काम-वृत्ति (Sex-tendency) का उन्नयन (Sublimation) कहेंगे। सामाजिक दृष्टिकोण से उन्नयन मानसिक संघर्ष और उससे उत्पन्न निराशा और तनाव को दूर करने का एक वांछनीय मार्ग है।

(३) **तादात्म्य** (Identification) :—मानसिक संघर्ष से आक्रांत व्यक्ति प्राय. किसी उपन्यास, कहानी या सिनेमा-फिल्म के नायक या नायिका क साथ अपना तादात्म्य (Identification) स्थापित कर अपनी प्रेरक वृत्तियों को तृप्त करता है। जिसके साथ व्यक्ति अपना तादात्म्य स्थापित करता है, उसकी सफलताओं और उपलब्धियों (Achievements) से उसे आत्म-तोष प्राप्त होता है। इस प्रकार मानसिक संघर्ष के कारण उत्पन्न तनाव कम हो जाता है। इसी प्रकार, बच्चा अपने पिता के साथ तादात्म्य स्थापित कर अपनी शक्ति की प्रेरक वृत्ति (Motive of strength) को संतुष्ट करता है, जो स्वतः उसके लिए संभव नहीं है। वैसे ही, प्रौढ़ व्यक्तियों की कितनी ही प्रेरक वृत्तियां यों अतृप्त रह जाती है। किन्तु जब वे किसी नेता अथवा संस्था क साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते है, तब उनकी अधिकांश प्रेरक वृत्तियों को तृप्ति का अवसर मिल जाता है। कारण, उस नेता अथवा संस्था की उपलब्धियों से उन्हें आत्मतृप्ति का अनुभव होता है।

(४) **दिवा-स्वप्न** (Day-dreaming):—दिवा-स्वप्न को एक ऐसी सीमा के भीतर सभी सामान्य व्यक्तियों (Normal individuals) के व्यवहारों की विशेषता माना जा सकता है। इसका सहारा लेकर व्यक्ति अपनी अतृप्त प्रेरक वृत्तियों को तृप्त करता है तथा निराशाओं से बच पाता है। यदि किसी की कोई प्रेरक वृत्ति अननुकूल (Unfavourable) सामाजिक परिस्थितियों के कारण तृप्त नहीं हो पाती, तो वह अपने दिवा-स्वप्न मे सफलता की कल्पना कर आत्मतृप्ति प्राप्त करता है। वास्तविक सफलता के स्थान पर सर्वदा इसी का सहारा लेकर आत्म-तृप्ति का अनुभव करना इसका अतिशय रूप (Extreme form) है और वह वांछनीय नहीं है।

(५) **क्षतिपूर्त्ति** (Compensation) :—क्षतिपूर्त्ति एक ऐसी चेष्टा है, जिसमें व्यक्ति अपनी त्रुटियों को, चाहे वे वास्तविक हों या

काल्पनिक, अपने चरित्र, व्यक्तित्व या योग्यता के किसी खास पक्ष पर अधिक जोर देकर उन्हें छिपाना या उनपर आवरण देना चाहता है। इसके द्वारा व्यक्ति अपनी त्रुटियों के कारण उत्पन्न सांवेगिक तनाव (Emotional tension) से बहुत कुछ मुक्त हो जाता है। जीवन के अन्य क्षेत्रों की अपनी उपलब्धियों से वह आत्मतृप्ति का अनुभव करता है। फलतः उसका ध्यान अपनी त्रुटियों की ओर जाता ही नहीं। उदाहरणार्थ, जो छात्र तीव्रबुद्धि नहीं होते और इस कारण हीनता की भावना का अनुभव करते हैं, वे प्रायः अच्छे खिलाड़ी बनकर अपनी हीनता की भावना की क्षतिपूर्त्ति कर लेते हैं।

(६) **युक्त्याभास** (Rationalization) :—युक्त्याभास से हमारा तात्पर्य गलत युक्तियों से है। जब व्यक्ति अपनी प्रेरक वृत्तियों से प्रेरित होकर कोई ऐसा कार्य कर देता है, जो सामाजिक दृष्टि से वांछनीय नहीं है, तब वह अपने उस कार्य की पुष्टि में ऐसे तर्क उपस्थित करता है, जो सामाजिक दृष्टिकोण से स्वीकार्य हों। इससे उसकी अहं (Ego) की रक्षा होती है तथा आत्मतृप्ति मिलती है। यदि कोई किसी काम में अफसल हो जाता है, तो वह अक्सर यह कहते हुए सुना जाता है कि वह काम ही बड़ा कठिन था, या परिस्थिति ही अनुकूल नहीं थी, या वह काम उसकी मनोवृत्ति के अनुकूल नहीं था इत्यादि। लोमड़ी की वह कहानी युक्त्याभास (Rationalization) का सुन्दर उदाहरण है, जिसमें लोमड़ी ने अंगूरों तक न पहुँचने पर कहा था—'अंगूर खट्टे हैं"। इसी भाँति किसी काम में असफल हो जाने पर व्यक्ति प्रायः उस काम को ही बुरा बतलाता है या परिस्थिति को ही दोष देता है। यह युक्त्याभास का ही उदाहरण है।

(७) **प्रक्षेपण** (Projection):— जब व्यक्ति अपने में किसी कमी का अनुभव करता है, तब दूसरों में वैसी ही कमी निकालकर अपने अहं (Ego) की रक्षा करता है तथा आत्मसंतोष प्राप्त करता है। यदि कोई घूस लेते हुए पकड़ा जाता है और लोग उसकी भर्त्सना करते हैं, तो वह यह कहकर आत्मसंतोष प्राप्त करता है कि समाज में कोई अकेला वही घूस लेनेवाला नहीं है, बल्कि समाज के अधिकांश लोग किसी-न-किसी रूप में घूस लेते ही हैं। अपनी इन उक्तियों के द्वारा वह अपने अहं की रक्षा करता है तथा आत्मतुष्टि का अनुभव करता है।

(८) **अवसर्पण** (Regression):—संघर्षों के कारण निराशाओं में डूबता-उतराता व्यक्ति प्रायः बचपन की सुखद स्मृतियों में आत्मतृप्ति का अनुभव करता है। इसे ही अवसर्पण की संज्ञा दी जाती है। कवि प्रायः अपनी कविताओं में वर्तमान समाज की विषमताओं, संघर्षों और निराशाओं का विषादमय चित्र उपस्थित करते हुए बचपन की निर्द्वन्द्व सुखद स्मृतियों की ओर मुड़कर सुखानुभव का आग्रह अभिव्यक्त करता है। ऐसी पंक्तियों से साहित्य भरा पड़ा है।

अन्त में, यह उल्लेख्य है कि कुछ लोग तीव्र मानसिक संघर्ष के कारण स्नायु-विकार (Neuroses) अथवा मानसिक विकार (Psychoses) के शिकार हो जाते है। इनकी चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं है।

———

पन्द्रहवाँ अध्याय

भाव

सामान्यतः भाव का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। साहित्य में भी इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में हुआ है। प्रसन्नता, उल्लास, उत्साह, असन्तोष, चिन्ता, व्यामोह, आशा, आश्चर्य, विस्मय, भय, करुणा आदि शब्दों द्वारा साहित्य में भावों का अभिव्यंजन होता है। किन्तु मनोविज्ञान में भाव का अनेक अर्थों में प्रयोग मान्य नहीं है। भाव का मनोवैज्ञानिक अर्थ है—सुख तथा दुःख की चेतन अनुभूति। मानव-जीवन में सुख तथा दुःख के भावों की निरन्तर अनुभूति होती रहती है। कभी मनुष्य सुख में विभोर रहता है, तो कभी दुःख से आकुल-व्याकुल। अब प्रश्न यह है कि सुख तथा दुःख के भावों का मनोवैज्ञानिक आधार क्या है? सुख तथा दुःख के भावों के मनोवैज्ञानिक आधारों पर विचार करते समय हमें निम्नांकित बातों पर ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है—

(१) रुचिकर इन्द्रिय-संवेदना से सुख का भाव उत्पन्न होता है तथा अरुचिकर इन्द्रिय-संवेदना से दुःख के भाव की अनुभूति होती है; यथा रस-गुल्ला खाने से जो स्वाद-संवेदना (Taste-sensation) होती है, वह अत्यन्त ही रुचिकर होती है। फलतः व्यक्ति को सुख का अनुभव होता है। किन्तु कुनैन अथवा कोई अन्य कड़वी चीज खा लेने से जो स्वाद-संवेदना उत्पन्न होती है, वह अत्यन्त ही अरुचिकर होती है। फलस्वरूप, व्यक्ति को दुःख के भाव की अनुभूति होती है। वैसे ही मधुर संगीत से रुचिकर कर्ण-संवेदना होती है तथा व्यक्ति सुख का अनुभव करता है, किन्तु कर्णकटु एवं तीखी आवाज़ से अरुचिकर कर्ण-संवेदना होती है तथा व्यक्ति दुःख के भाव का अनुभव करता है।

(२) अपनी अभिरुचियों एवं मूल प्रवृत्तियों (Interests and instincts) की परितुष्टि से व्यक्ति को सन्तोष प्राप्त होता है। फलतः वह सुख का अनुभव करता है। किन्तु जब उसकी अभिरुचियों एवं मूल

प्रवृत्तियो की परितुष्टि मे बाधा पहुँचती है तथा वे कुठित (Repressed) होकर अतृप्त रह जाती है, तब उसे दु ख का अनुभव होता है । स्पष्ट है कि अभिरुचियो एव मूल प्रवृत्तियो की तृप्ति अथवा अतृप्ति पर ही सुख तथा दु ख की अनुभूति निर्भर करती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई प्यासा हो और उसे पानी मिल जाय, तो उसकी प्यास बुझ जायगी फलत उसे सतोष प्राप्त होगा और वह सुख का अनुभव करेगा। किन्तु यदि उस प्यासे व्यक्ति को पानी न मिल सके तो वह प्यासा ही रह जायगा तथा उसकी प्यास नही मिट सकेगी। फलत उसे असन्तोष होगा तथा वह दु ख का अनुभव करता रहेगा। इसे सक्षेप मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

अभिरुचियाँ एव मूल प्रवृत्तियाँ—परितुष्टि—सतोष—सुख का भाव।
अभिरुचियाँ एव मूल प्रवृत्तियाँ—अतृप्ति—असन्तोष—दु ख का भाव।

(३) सौन्दर्य की अनुभूति से सुख का भाव उत्पन्न होता है तथा कुरूपता की अनुभूति से दु ख का भाव पैदा होता है । सुन्दर फूल, सुन्दर वस्त्र, सुन्दर आभूषण तथा सुन्दर स्त्री को देखकर सौन्दर्य (Beauty) की अनुभूति होती है तथा सुख का भाव उत्पन्न होता है । किन्तु असुन्दर फूल, असुन्दर वस्त्र, असुन्दर आभूषण तथा कुरूपा स्त्री को देखकर कुरूपता (Ugliness) की अनुभूति होती है तथा दु ख का भाव उत्पन्न होता है । अतएव, स्पष्ट है कि सुख-दु ख के भाव सौन्दर्य एव कुरूपता की अनुभूतियो से उत्पन्न होते है ।

भाव का स्वरूप
(Nature of Feeling)

भाव एक सरल (Simple) एव प्राथमिक (Elementary) मानसिक क्रिया है । इसे कई तत्वो (Elements) मे नहीं बाँटा जा सकता । अन्य मानसिक क्रियाओ की तरह जटिल (Complex) न होकर यह एक सहज (Simple) मानसिक क्रिया है । इसे स्पष्ट रूप से समझने के लिए आप प्रत्यक्षीकरण (Perception) पर ध्यान दे। प्रत्यक्षीकरण एक ऐसी जटिल मानसिक क्रिया है, जिसमे दो तत्वो का स्पष्टत सयोग पाया जाता है—इन्द्रिय-सवेदना तथा अर्थ। किन्तु भाव एक ऐसी सहज, स्वतन्त्र मानसिक क्रिया है, जिसका विश्लेषण नही किया जा सकता ।

भाव आत्मगत (Subjective) होता है। जब मनुष्य को सुख अथवा दुःख के भाव का अनुभव होता है, तब उसे अपनी मानसिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है, न कि बाह्य उत्तेजना का। यदि किसी में सुख का भाव दीख पड़े, तो उससे जान पड़ता है कि उसकी कोई मूल प्रवृत्ति परितुष्ट हुई है और यदि दुःख का भाव दीख पड़े, तो उससे जान पड़ता है कि उसकी कोई मूल प्रवृत्ति अतृप्त रह गयी है। अतएव, स्पष्ट है कि सुख-दुःख के भाव मनुष्य की मानसिक स्थिति के द्योतक हैं, न कि बाह्य उत्तेजना अथवा बाह्य परिस्थिति के। इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भाव को आत्मगत (Subjective) कहा है। किन्तु यह विचार मनोविज्ञान में सर्वमान्य नहीं है। कुछ मनोवैज्ञानिक भाव को आत्मगत तथा वस्तुगत (Objective) दोनों ही प्रकार का मानते हैं। वस्तुगत भाव में सुख अथवा दुःख बाह्य जगत् की वस्तुओं में निहित समझा जाता है। उदाहरण के लिए, सुन्दर वस्तु में सुख-भाव निहित रहता है तथा असुन्दर वस्तु में दुःख का भाव विद्यमान रहता है। इसके विपरीत, आत्मगत भाव का सम्बन्ध मनुष्य की मानसिक स्थिति से रहता है। इस सम्बन्ध में फेलन (Phelan) का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। फेलन के अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सुख तथा दुःख के भाव स्वतः न तो आत्मगत होते हैं और न वस्तुगत ही। वे सर्वदा या तो किसी वस्तु से सम्बन्धित रहते हैं, अथवा किसी व्यक्ति से। एक अवस्था में, संभव है वस्तु ही सुखकारक हो तथा दूसरी अवस्था में संभवतः व्यक्ति ही सुख की स्थिति में हो। एवंप्रकारेण आत्मगत तथा वस्तुगत, दोनों ही प्रकार के भाव सार्थक समझे जा सकते हैं। किन्तु यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि अधिकांश मनोवैज्ञानिक भाव को आत्मगत (Subjective) ही मानते हैं।

सुख-दुःख के भाव अत्यन्त ही चंचल एवं क्षणिक होते हैं। भाव हमारे अन्दर आते हैं, कुछ समय तक ठहरते हैं, किन्तु शीघ्र ही उनका अन्त हो जाता है। साथ-ही-साथ हमारे भाव क्षण-क्षण बदलते रहते हैं। कभी हम सुख का अनुभव करते रहते हैं और फिर शीघ्र ही हमें दुःख का अनुभव होने लगता है। मान लीजिए, हमें परीक्षा में उत्तीर्ण होने की खबर मिलती है। फलस्वरूप, हम सुख के भाव से भर जाते हैं। किन्तु थोड़ी ही देर बाद एकाएक अपने किसी प्रिय जन की मृत्यु का संवाद मिलता है। फलतः शीघ्र ही वह सुख का भाव विलीन हो जाता है और हम दुःख के भाव का अनुभव

करने लगते है। इसीलिए भाव को अत्यन्त ही चचल एवं क्षणिक कहा गया है।

सभी भाव समान रूप से सबल या निर्बल नही होते। उनमे मात्रा का भेद किया जा सकता है। कोई भाव अत्यन्त सुखकर प्रतीत होता है, तो कोई अत्यन्त दु खकर। अत्यन्त सुखद भाव से लेकर न्यूनतम सुखद भाव तक हो सकते है। इस प्रकार सुख-दु ख के भावो मे अत्यधिक मात्राओ से लेकर न्यूनतम मात्राएँ तक पायी जाती है।

भाव की उत्पत्ति किसी विशेष अग मे नही बतलायी जा सकती है, प्रत्युत उसका प्रभाव तो सारे शरीर पर समान रूप से पडता है। सुख तथा दु ख के भाव का अनुभव शरीर का कोई विशेष अग नही करता, वरन् सपूर्ण शरीर ही उसका अनुभव करता है। जब हम सुख का अनुभव करते रहते है, तब शरीर के सभी अगो का ही भाव अभिव्यक्त होता हुआ जान पडता है। वैसे हो, दु ख अथवा विषाद का अनुभव करते समय सारे शरीर से ही दु ख का भाव अभिव्यक्त होता हुआ मालूम पडता है।

किसी एक क्षण मे एक हो तरह के भाव का अनुभव सभव है। दो विरोधी भावो का अनुभव एक साथ कदापि नही हो सकता। सुख एव दु ख, हर्ष एव विषाद आदि भावो का अनुभव एक साथ नही हो सकता। सक्षेप मे, मिश्रित भावो (Mixed feelings) की उपस्थिति सभव नही है। मिश्रित भावो पर विचार करते समय इस विषय पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया जायगा।

भाव तथा सवेदना मे भेद

भाव तथा सवेदना मे भेद करना कुछ आसान नही है। भावो मे अन्तरिन्द्रिय-परिवर्त्तन (Internal organic changes) सन्निहित रहते है। फलत कुछ मनोवैज्ञानिको ने भाव को प्राथमिक (Rudimentary) एव अविकसित (Undeveloped) आन्तरिक इन्द्रिय-सवेदना कहा है। किन्तु उनको यह धारणा निराधार है। वस्तुत भाव तथा सवेदना मे बहुत अन्तर है। इन दोनो मे अन्तरो के आधार पर निर्भ्रान्त रूप से यह कहा जा सकता है कि भाव सवेदना से अलग एक स्वतन्त्र मानसिक क्रिया है। अब इनके अन्तरो पर एक-एक कर विचार प्रस्तुत किया जायगा।

(१) भाव आत्मगत (Subjective) होता है तथा सवेदना वस्तुगत (Objective) होती है। भाव मनुष्य की मानसिक स्थिति का बोध कराता है, किन्तु सवेदना से बाह्य वातावरण मे उपस्थित वस्तुओ अथवा

परिस्थितियों का ज्ञान होता है। उदाहरण के लिए, जब हम जूही के फूल को देखते है और मधुर गीत सुनते हैं, तब क्रमशः दृष्टि-संवेदना तथा श्रवण-संवेदना का अनुभव होता है। यह दृष्टि-संवेदना हमें जूही के फूल का ज्ञान प्राप्त कराती है तथा इस श्रवण-संवेदना से हम मधुर गीत का ज्ञान प्राप्त करते है। किन्तु जब हम सुख अथवा दुःख के भाव का अनुभव करते है, तब उससे हमे अपनी परिस्थिति का ही बोध होता है, किसी बाह्य वस्तु का नहीं। इसलिए भाव आत्मगत कहा जाता है तथा संवेदना वस्तुगत कही जाती है।

(२) भाव किसी इन्द्रिय-विशेष मे नहीं होता, बल्कि वह तो सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त रहता है, किन्तु संवेदना का सम्बन्ध किसी-न-किसी इन्द्रिय से रहता है। जब हमे सुख अथवा दुःख का भाव होता है, तब वह सारे शरीर में इस प्रकार फैल जाता है कि हम यह नहीं कह सकते कि वह भाव शरीर के किसी विशेष अंग मे है; जैसे, पैर, सिर, पेट, अथवा हाथ मे। किन्तु संवेदना का निश्चित रूप से किसी-न-किसी इन्द्रिय से सम्बन्ध बतलाया जा सकता है। दूसरे शब्दों मे, संवेदना का उत्पत्ति-स्थान किसी-न-किसी इन्द्रिय में बतलाया जा सकता है; यथा, देखने की संवेदना आँखों में, सुनने की संवेदना कानों में, सूँघने की संवेदना नाक में, स्वाद की संवेदना जीभ में तथा स्पर्श एवं पीडा की संवेदना त्वचा में ही होती है।

(३) ज्ञानेन्द्रियों को दृष्टिकोण मे रखकर संवेदना को कई वर्गों मे बाटा जा सकता है; जैसे, दृष्टि-संवेदना, श्रवण-संवेदना, स्वाद-संवेदना आदि। किन्तु भाव केवल दो ही प्रकार के होते हैं; यथा सुख एवं दुःख।

(४) भावों में विरोध पाया जाता है, किन्तु संवेदना में विभिन्नता पायी जाती है। फलतः हम दो विरोधी भावो का अनुभव एक साथ नहीं कर सकते, किन्तु दो या अनेक संवेदनाओं का अनुभव एक ही साथ संभव है। उदाहरणार्थ, सुख एवं दुःख के भाव एक-दूसरे के विरोधी है। अतः सुख एवं दुःख दोनों का अनुभव एक साथ नहीं हो सकता। इसके विपरीत, संवेदनाओं में केवल विभिन्नता पायी जाती है, विरोध नहीं। अतः हम कई संवेदनाओं का अनुभव एक साथ कर सकते है; जैसे, किसी कमरे में बैठे हम काफी भी पीते रहते हैं, संगीत भी सुनते रहते है, तथा सामने की दीवार पर टँगी हुई तस्वीर को भी देखते रहते है ? इस प्रकार स्पष्ट है कि हमें एक ही साथ स्वाद, श्रवण तथा दृष्टि-संवेदनाओं का अनुभव हो जाता है।

(५) भाव को प्रतिमा (Image) के रूप मे अनुस्मृत (Reproduce) नहीं किया जा सकता, किन्तु संवेदना का प्रतिमा के रूप में अनुस्मरण (Reproduction) संभव है। सुख अथवा दुःख के भाव का अनुभव प्रतिमा के रूप मे नहीं किया जा सकता, किन्तु नीले, हरे तथा पीले रंग की संवेदनाओं की दृष्टि-प्रतिमाओं (Visual images) का अनुभव होता है। इसी प्रकार, सुनने की संवेदना का भी अनुस्मरण (Reproduction) श्रवण-प्रतिमा (Auditory image) के रूप में होता है। यह विषय कुछ विवादग्रस्त है। कुछ लोग ऐसा मानते है कि भावो का भी अनुस्मरण प्रतिमा के रूप मे सभव है। इस सबंध मे यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जब कभी हम पूर्वानुभूत भावों का अनुस्मरण करते है, तब वे भाव वस्तुत अनुस्मृत (Reproduced) न होकर बिलकुल नवीन भाव होते है।

(६) ध्यान (Attention) का दृष्टि मे रखते हुए हम भाव तथा सवेदना मे भेद कर सकते है। जब हम सुख अथवा दुःख के भावो पर ध्यान देते है तब वे भाव ही लुप्त हो जाते है। ठीक इसके विपरीत, जब हम सवेदना पर ध्यान देते है तब वह और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। प्रतिदिन का अनुभव बतलाता है कि जब हम दर्द की सवेदना पर ध्यान देते है तब वह अधिक स्पष्ट हो जाती है। फलतः दर्द की संवेदना तीव्र-से-तीव्र जान पड़ने लगती है। अतएव, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि ध्यान देने से सवेदना स्पष्ट होती है तथा भाव लुप्त हो जाते है।

भाव—संवेदना के एक गुण अथवा उसकी विशेषता के रूप में

प्रत्येक सवेदना के साथ सुख अथवा दुःख के भाव जुटे रहते है, यथा अपने प्रिय मित्र को देखकर सुख का अनुभव होता है तथा अपने शत्रु को देखकर दुःख मालूम पड़ता है। वैसे ही, प्रिय गन्ध से सुख का भाव उत्पन्न होता है तथा दुर्गन्धि से असुख अथवा अप्रसन्नता होती है। इसीलिए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भाव को संवेदना की एक विशेषता या उसका गुण माना है। वे भाव को संवेदना से अलग कोई स्वतन्त्र मानसिक क्रिया नहीं मानते है। किन्तु, उनकी यह धारणा दोषपूर्ण है। वस्तुत. भाव सवेदना का गुण अथवा उसकी विशेषता नहीं है। इस विचार की पुष्टि मे कुछ तर्क नीचे प्रस्तुत किये जा रहे है—

(१) अपने गुण अथवा अपनी विशेषता के कारण ही किसी वस्तु का

सत्ता कायम रहती है। उदाहरण-स्वरूप हम आग को लें। आग का गुण है जलाना। जबतक आग में जलाने का गुण उपस्थित रहता है, तबतक हम उसे निस्सन्देह आग कहते है। लेकिन जब यह गुण आग से अनुपस्थित हो जाता है, तब हम उसे आग की संज्ञा नहीं देते, उसे राख आदि कहने लगते है। ठीक वैसे ही, यदि भाव संवेदना का गुण या उसकी विशेषता होता, तो बिना भाव के संवेदना की सत्ता ही असंभव होती। दूसरे शब्दों में, बिना भाव के संवेदना का कभी अनुभव नहीं होता। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि बिना किसी भाव के भी हमे संवेदनाओं का अनुभव होता है। उदाहरण के लिए, यदि हम सड़क से कहीं जा रहे हों और बगल मे गेंद का खेल खेला जा रहा हो, तो संभवतः हमारी दृष्टि गेंद के खिलाड़ियों की ओर चली जायगी। फलतः दृष्टि-संवेदना तो होगी, किन्तु हमे सुख अथवा दुःख के भाव का अनुभव संभवतः नही होगा; क्योंकि उस क्षण हम उस खेल से बिलकुल तटस्थ तथा अन्यमनस्क रहेंगे और गन्तव्य स्थान की ओर जाना ही हमारा लक्ष्य रहेगा। अतः स्पष्ट है कि बिना भाव के भी संवेदना होती है। इसी आधार पर कुल्पे (Kulpe) आदि मनोवैज्ञानिकों ने जोर देकर कहा है कि भाव संवेदना का गुण अथवा उसकी विशेषता नहीं हो सकता।

(२) इसमें सन्देह नहीं कि भाव संवेदना के ऊपर आश्रित रहता है, अर्थात्, संवेदना के न होने पर किसी प्रकार का भाव नहीं उत्पन्न हो सकता है। लेकिन यहाँ यह उल्लेखनीय जान पड़ता है कि एक ही संवेदना के रहने पर भी भाव आत्मगत (Subjective) होने के कारण बदलते रहते है। उदाहरणार्थ, यदि किसी क्षुधा-पीड़ित व्यक्ति के सामने रसगुल्ले प्रस्तुत किये जायँ, तो वह बड़े हर्ष के साथ उन्हें खाना प्रारम्भ कर देगा। रसगुल्ले में से उत्पन्न स्वाद-संवेदना उसे प्रारम्भ में तो सुख प्रदान करेगी, किन्तु अन्ततोगत्वा एक ऐसी स्थिति पहुँच जायगी, जब उसे रसगुल्ले का खाना सुखमय न मालूम होकर दुःखमय जान पड़ने लगेगा। कारण, मनुष्य के भाव तो उसकी मानस-वृत्ति (Mental set) के अनुकूल परिवर्त्तित होते रहते है। प्रारंभ में रसगुल्ले को खाने में उस व्यक्ति को इसलिए सुख का अनुभव होगा कि वह भूखा रहेगा; किन्तु जब उसकी भूख मिट जायगी, तब उसकी मानस-वृत्ति भी बदल जायगी। फलतः रसगुल्ले को खाने से उसे सुख के बदले असुख का अनुभव होने लगेगा। अतएव, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भाव संवेदना का गुण नहीं हो सकता; क्योंकि एक ही संवेदना के रहने पर भी भाव निरन्तर बदलते रहते है।

(३) गुण किसी स्वतन्त्र मानसिक क्रिया के ही होते हैं। जिस प्रकार संवेदना में प्रकार, मात्रा, सत्ताकाल आदि अनेक गुण या विशेषताएँ पायी जाती हैं, उसी प्रकार भाव में भी प्रकार, मात्रा, सत्ताकाल आदि गुण वर्त्तमान रहते हैं। हमें अधिक सुख या कम सुख के भाव का अनुभव होता है। हमारे सुख तथा दुःख के भाव कभी तो बिलकुल क्षणिक होते हैं और कभी वे अपेक्षाकृत कुछ अधिक देर तक ठहरते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि भावों के अपने गुण (Attributes) होते हैं। इसलिए, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भाव एक स्वतन्त्र मानसिक क्रिया है तथा यह संवेदना का लक्षण या गुण नहीं हो सकता। हमलोग यह जानते हैं कि किसी गुण का कोई दूसरा गुण नहीं हो सकता। अतएव, हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाव संवेदना का गण नहीं, वरन् यह एक स्वतन्त्र मानसिक क्रिया है।

प्राथमिक भावों की संख्या

प्राथमिक भावों की संख्या के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के बीच काफी मतभेद रहा है। किन्तु परंपरागत दो ही प्राथमिक (Elementary) भाव माने जाते है—सुख (Pleasantness) तथा असुख (Unpleasantness)। भावों की परंपरागत इस संख्या का सर्वप्रथम वुन्ट ने खंडन किया। उन्होंने केवल इन दो भावों (सुख तथा असुख) को स्वीकार नहीं कर भावों की संख्या पर प्रकाश डालते हुए भावों के एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जिसे भाव का त्रिदिशात्मक सिद्धांत (Tri-dimensional theory of feeling) कहते हैं। अपने इस सिद्धांत में वुन्ट ने भाव की तीन दिशाओं का उल्लेख किया है। वे तीन दिशाएँ ये हैं—(१) सुख-असुख (Pleasantness-unpleasantness); (२) उत्तेजना-शान्ति (Excitement-quiet) तथा (३) विक्षोभ-विराम (Tension-relief)। भाव के सम्बन्ध में उनका कहना है कि यद्यपि भाव एक इकाई की अवस्था (Unitary State) है, लेकिन फिर भी हम किसी क्षण के अपने सम्पूर्ण भाव (Total feeling) को इन तीनों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में कहीं-न-कहीं निरूपित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ हमारा भाव संभवतः, अत्यल्प सुखद, अति उत्तेजित तथा विरामयुक्त हो सकता है। इस प्रकार किसी भी क्षण हम अपने भाव को इन तीनों में से प्रत्येक दिशा में कहीं-न-कहीं निरूपित कर सकते हैं।

भाव के त्रिदिशात्मक सिद्धान्त की आलोचना

वुन्ट द्वारा प्रतिपादित भाव के त्रिदिशात्मक सिद्धांत की काफी आलोचना हुई है। उनके शिष्य टिचेनर (Titchener) ने इस सिद्धांत की आलोचना करते हुए दो प्रधान प्रश्न किये—(१) क्या भावों की ये तीन दिशाएँ स्वतन्त्र मानी जा सकती हैं? (२) क्या उत्तेजना-शान्ति, विक्षोभ-विराम आदि संवेदना के ही स्वरूप नहीं हैं? इन दोनों प्रश्नों को हल करने के लिए उन्होंने कई प्रयोग किये। प्रयोग का विस्तृत वर्णन यहाँ अभीष्ट नहीं है। यहाँ केवल टिचेनर के प्रयोगों के फलों का उल्लेख ही वांछनीय है।

टिचेनर ने अपने प्रयोगों के आधार पर भावों के त्रिदिशात्मक सिद्धांत के विरुद्ध दो बातें पायीं—(१) वुन्ट द्वारा प्रतिपादित भावों की तीनों दिशाएँ स्वतन्त्र नहीं हैं। वस्तुतः सुख-असुख ही सच्चे स्वतन्त्र भाव हैं, अन्य भावों की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वुन्ट द्वारा प्रतिपादित उत्तेजना-शान्ति तथा विक्षोभ-विराम आदि भावों की दिशाओं की अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। (२) सुख-असुख के सिवा, भाव की अन्य दिशाएँ (उत्तेजना-शान्ति तथा विक्षोभ-विराम) मनुष्य की जटिल मानसिक अवस्थाओं (Complex mental states) के वर्णन के लिए भले ही अच्छी हों, पर उन्हें भाव के सच्चे तत्त्वों (Elements) के रूप में नहीं ग्रहण किया जा सकता है। वस्तुतः वे गति एवं अन्तरिन्द्रिय संवेदनाओं के स्वरूप हैं।

टिचेनर के बाद भी अनेक मनोवैज्ञानिकों ने भावों की संख्या पर विचार किया है। अधिकांश मनोवैज्ञानिक इस बात में टिचेनर से सहमत थे कि भाव की तीन दिशाएँ, जिनका उल्लेख वुन्ट ने किया है, यथार्थ नहीं है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों को दृष्टिकोण में रखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भाव वस्तुतः दो ही होते है—सुख तथा असुख (Pleasantness and unpleasantness)। अन्य भाव, जिनका उल्लेख वुन्ट ने किया है, संवेदनाओं के ही स्वरूप अथवा तत्त्व हैं।

मिश्रित भाव
(Mixed Feeling)

मिश्रित भावों (Mixed feelings) के सम्बन्ध मे प्रायः यह प्रश्न किया जाता है कि क्या एक ही समय सुख तथा असुख के भावों का अनुभव

करना सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर कुछ विवादग्रस्त जान पड़ता है। कुछ मनोवैज्ञानिक ऐसा मानते है कि एक ही समय सुख तथा असुख के भावों का अनुभव करना संभव है, अर्थात् मिश्रित भाव संभव है। किन्त अधिकांश मनोवैज्ञानिक इस विचार से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि एक ही समय दो विरोधी भावों (सुख तथा असुख) का अनुभव नहीं हो सकता, अर्थात् मिश्रित भाव संभव नहीं हैं। वस्तुतः एक ही समय में हमें सुख तथा असुख का अनुभव नहीं हो सकता, यद्यपि सुखद तथा दुःखद वस्तुएँ एक ही साथ हमारे सामने उपस्थित हो सकती हैं। दूसरी प्रधान बात यह है कि सुख तथा असुख के भाव बहुत जल्दी-जल्दी बदल सकते है। किन्तु दोनों का अनुभव एक ही समय कदापि नहीं हो सकता। उपर्युक्त दोनों बातों का स्पष्टीकरण एक उदाहरण के द्वारा किया जा सकता है। संभव है कि हमारे सामने कोई सुगन्धित पदार्थ तथा कोई सुगन्धित वस्तु, दोनो ही एक साथ उपस्थित हों, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हममे सुगन्धित पदार्थ से सुख-भाव तथा दुर्गन्धित वस्तु से दुःख-भाव, दोनों ही का अनुभव एक साथ होगा। हाँ, यह संभव है कि एक क्षण तो हमे सुगन्धित पदार्थ से सुख-भाव का अनुभव हो और दूसरे ही क्षण दुर्गन्धित वस्तु से दुःख-भाव का अनुभव हो तथा इसी प्रकार सुख-दुःख के भाव क्षण-क्षण बदलते रहे।

एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग में एक ही साथ दो वस्तुएँ उपस्थित की गयी—मुँह में कुनैन रखा गया तथा नाक के नजदीक गुलाब के तेल की बोतल रख दी गयी। प्रयोज्य (Subject) से अन्तर्निरीक्षणात्मक विवरण (Introspective report) लिया गया। अन्तर्निरीक्षणात्मक विवरण से यह ज्ञात हुआ कि प्रयोज्य को कभी तो कड़वे कुनैन के कारण असुख या दुःख के भाव का अनुभव हुआ तथा कभी गुलाब के तेल की बोतल पर ध्यान जाते ही सुख के भाव का अनुभव हुआ। इस प्रकार उसे कभी सुख तथा कभी असुख का अनुभव होता रहा। ये दोनों भाव जल्दी-जल्दी बदलते रहे, किन्तु दोनों भावों का अनुभव उसे एक ही साथ कभी भी नही हुआ।*

* "Pleasantness and unpleasantness alternate in this way till the end of the trial, always coming in succession and never simultaneously. When the pleasant feeling is dominate in O's consciousness, the unpleasant feeling is wholly absent and vice-versa."—The Introspective report of a subject quoted by Woodworth; Experimental Psychology, P. 240.

केलौग (Kellogg), फेलन (Phelan) और यंग (Young) आदि मनोवैज्ञानिकों ने भी इस विषय पर प्रयोग किया। प्रयोगों के आधार पर उन लोगों ने भी यही बतलाया कि मिश्रित भाव-संभव नहीं है, अर्थात्, एक ही समय में सुख तथा असुख--दोनों का अनुभव नहीं हो सकता। अन्त में इस विषय पर बीब-सेण्टर (Beebe-Center) के विचारों को उद्धृत कर इसे समाप्त करना समुचित जान पड़ता है। बीब-सेण्टर ने कहा है—"मिश्रित भाव, सुख या असुख के तत्त्वों के सहभाव, अथवा सुख या असुख की विशेषता से युक्त तत्त्वों के समूहों के अर्थ में नहीं पाये जाते।"❖

❖ "There are no mixed feelings in the sense of co-existence of pleasant or unpleasant elements or groups of elements with hedonic tone as an attribute."—Beebe-Center

सोलहवाँ अध्याय

संवेग

संवेग की परिभाषा—संवेग की परिभाषा के सम्बन्ध मे कोई एक मत नही है। कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना है कि संवेग एक चेतन अनुभूति (Conscious experience) है, जिसमे कई प्रकार की शारीरिक क्रियाएँ शामिल रहती है। यहाँ प्रधानता चेतन अनुभूति को दी गयी है, न कि शारीरिक क्रियाओ को। कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिक शारीरिक क्रिया की चेतन अनुभूति-मात्र (Only conscious awareness of the bodily activities) को ही संवेग की सज्ञा देते है। इस मत के प्रधान समर्थक जेम्स और लाँजे (James and Lange) है। संवेग के सम्बन्ध मे तीसरा प्रधान मत वुडवर्थ तथा कैनन का है। वुडवर्थ के अनुसार संवेग 'प्राणी की उत्तेजित अवस्था' है। इसकी व्याख्या करते हुए उन्होने बतलाया है कि संवेग के समय की प्राणी की यह उत्तेजित अवस्था (Stirred up state) उसे कार्य करने के लिए तैयार करती है। प्राणी की कार्यशीलता के फलस्वरूप उसमे विभिन्न प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तन होते है। स्पष्टत. यह परिभाषा प्राणी की मानसिक अवस्था या चेतन अनुभूति तथा संवेग मे होनेवाले बाह्य एव आन्तरिक शारीरिक परिवर्त्तन (External and internal bodily changes)—इन दोनो के महत्त्व को स्वीकार करती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संवेग की कोई भी सर्वमान्य परिभाषा नही है। फिर भी संवेग के लिए कुछ मान्यताएँ (Criteria) प्रस्तुत की जा सकती है, जिनके आधार पर संवेग को समझना कुछ आसान हो जायगा। सर्वप्रथम संवेग की उत्पत्ति के लिए एक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति का होना अनिवार्य है। मनोवैज्ञानिक परिस्थिति से हमारा तात्पर्य व्यक्ति तथा वातावरण के बीच अचानक उपस्थित उत्तेजना की क्रिया-प्रतिक्रिया से है। उदाहरणार्थ, जब अचानक कोई पागल कुत्ता किसी व्यक्ति पर आक्रमण करता है, तब वह व्यक्ति संभवत. किकर्त्तव्यविमूढ़ हो

जाता है तथा भय का अनुभव करने लगता है। साथ-ही-साथ उस व्यक्ति में बाह्य एवं आन्तरिक शारीरिक परिवर्त्तन शुरू हो जाते हैं; जैसे, उसका सारा शरीर काँपने लगता है, हृदय की गति बढ़ जाती है तथा गला सूखने लगता है। ऐसी अवस्था मे शीघ्र ही वह वहाँ से भाग जाता है, जो निस्सन्देह उसके सवेगात्मक व्यवहार का द्योतक है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि सवेग मे निम्नाकित बाते सन्निहित रहती है—

(१) मनोवैज्ञानिक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण ;
(२) व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था;
(३) उत्तेजित अवस्था की चेतन अनुभूति;
(४) बाह्य एव आन्तरिक शारीरिक परिवर्त्तन;
(५) सवेगात्मक व्यवहार ।

संवेग एवं मूल प्रवृत्ति का सम्बन्ध

(The relation between emotion and instinct)

सवेग एव मूल प्रवृत्ति (Instinct) के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए मैकडूगल (McDougall) ने बतलाया है कि प्रत्येक मूल प्रवृत्ति में सवेग निहित रहता है। उदाहरणार्थ, भागने की मूल प्रवृत्ति में भय का सवग तथा आक्रमण करने की मूल प्रवृत्ति मे क्रोध का सवेग निरन्तर विद्यमान रहता है। वस्तुतः जब हमारे सामने एकाएक कोई खतरनाक परिस्थिति आ जाती है, तब हमारे भीतर खतरे से बचने की मूल प्रवृत्ति (Instinct to escape) जाग्रत हो जाती है तथा भय के संवेग का संचार होने लगता है। वैसे ही, अपने सामने एकाएक शत्रु को देखकर आक्रमण करने की मूल प्रवृत्ति जाग्रत उठती है तथा हम क्रोध के सवेग का अनुभव करने लगते है । अतएव, स्पष्ट है कि प्रत्येक मूल प्रवृत्ति मे कोई-न-कोई संवेग अवश्य निहित रहता है। मैकडूगल ने अपनी पुस्तक 'मनोविज्ञान की रूपरेखा' (Outline of Psychology, 1923) मे संवेगो से आबद्ध चौदह मूल प्रवृत्तियों की एक सूची प्रस्तुत की है। उदाहरण के रूप मे कुछ प्रवृत्तियो को उपस्थित किया जा रहा है—

मूल प्रवृत्तियाँ		मूल प्रवृत्तियों से सम्बद्ध संवेग
पलायन-वृत्ति	(Instinct to escape)	भय
आक्रमण-वृत्ति	(Instinct to combat)	क्रोध
काम-वृत्त	(Sex-instinct)	काम-संवेग

मूल प्रवृत्तियाँ	मूल प्रवृत्तियों से सम्बद्ध संवेग
हास्य-वृत्ति (Instinct of laughter)	मनोविनोद
भोजनान्वेषण (Instinct of food seeking)	भूख

मैकडूगल ने बाद को संवेग-सम्बद्ध अट्ठारह मूल प्रवृत्तियों की एक सूची उपस्थित की । यहाँ यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मूल प्रवृत्तियों को सत्ता एवं संख्या के सम्बन्ध में काफी आलोचनाएँ हुई है। उन आलोचनाओं के विस्तार में न जाकर यहाँ मैकडूगल द्वारा प्रतिपादित संवेग एवं मूल प्रवृत्ति के सम्बन्ध की समीक्षा प्रस्तुत करना ही अभीष्ट है।

मैकडूगल के अनुसार व्यक्ति अपनी मूल प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर कोई निश्चित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए ही कार्य करता है। संभवतः उसका लक्ष्य कोई बाह्य वस्तु अथवा व्यक्ति होता है। उदाहरण के लिए, भूख से व्याकुल व्यक्ति का लक्ष्य भोजन तथा आक्रमणकारी प्रवृत्ति से प्रेरित व्यक्ति का लक्ष्य कोई शत्रु होता है। जबतक हम भोजन प्राप्त करने के लिए सफलतापूर्वक अपने कार्य में आगे बढ़ते जाते है, तबतक हमें किसी प्रकार के संवेग का अनुभव नहीं होता । किन्तु जब इस कार्य में रुकावट आती है, तब हमें क्रोध के संवेग का अनुभव होता है। वैसे ही, जब हम सफलतापूर्वक शत्रु के ऊपर आक्रमण करते रहते है, तब क्रोध के संवेग का अनुभव नहीं होता । किन्तु जब शत्रु के बलवान् होने के कारण आक्रमण करने की मूल प्रवृत्ति के सफलतापूर्वक कार्यान्वित होने में बाधा पहुँचती है, तब हमें क्रोध का अनुभव होता है। अतएव, यह स्पष्ट है कि जबतक कोई मूल प्रवृत्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संचालित रहती है, तबतक कोई भी संवेग नहीं होता है । ऐसी अवस्था में मैकडूगल का यह कहना कि प्रत्येक मूल प्रवृत्ति में एक विशेष प्रकार का संवेग निहित रहता है, समुचित नहीं जान पडता । अतः मैकडूगल का विचार मान्य नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि जब मूल प्रवृत्ति के कार्यों में बाधा पहुँचती है, तभी एक विशेष प्रकार का संवेग उत्पन्न होता है, जो व्यक्ति को लक्ष्य-प्राप्ति के लिए कार्यशील बनाता है।

मूल प्रवृत्ति एवं संवेग में घनिष्ठ सम्बन्ध रहते हुए भी इन दोनों में कुछ अन्तर है । इन दोनों में सबसे पहला अन्तर तो यह है कि संवेग का अनुभव करते समय हमारी मनोवृत्ति (Attitude) मुख्यतः भावात्मक (Affective) होती है। संवेग में सुख अथवा दुःख का तीव्र भाव विद्यमान रहता है। क्रोध, भय आदि संवेगों में दुःख का भाव तथा प्रेम, हर्ष आदि संवेगों में

सुख का भाव पाया जाता है । किन्तु मूल प्रवृत्ति में हमारी मनोवृत्ति क्रियात्मक रहती है । उदाहरणार्थ, भूख से प्रेरित होते ही हम भोजन पाने का प्रयास करने लगते हैं तथा प्यास लगते ही पानी ढूंढ़ने लगते हैं ।

संवेग का सम्बन्ध प्रस्तुत परिस्थिति अथवा वस्तु-विशेष से रहता है । उदाहरणार्थ, जब एकाएक हमारे सामने कोई खतरनाक परिस्थिति आ जाती है, तब हमारे अन्दर भय का संचार होने लगता है और हम विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया प्रकट करने लगते हैं । अतएव, स्पष्ट है कि संवेगात्मक क्रियाएँ प्रस्तुत परिस्थिति अथवा वस्तु-विशेष से सम्बन्धित रहती हैं । मूल प्रवृत्त्यात्मक (Instinctive) प्रक्रियाओं का सम्बन्ध किसी लक्ष्य अथवा अभिप्राय से रहता है । लक्ष्य से प्रेरित होकर ही मूल प्रवृत्त्यात्मक प्रतिक्रियाएँ प्रकट होती हैं । इसलिए, उन्हें लक्ष्य-निर्देशित अथवा ध्येयात्मक (Goal-directed) कहा जाता है ।

संवेग एवं स्थायीभाव

(Emotion & Sentiment)

स्थायीभाव के निर्माण में संवेग का प्रधान हाथ रहता है । जब हम किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति एक ही संवेग का अनुभव बार-बार करते हैं, तब वह संवेग स्थायीभाव (Sentiment) का रूप धारण कर लेता है; यथा, किसी के प्रति बार-बार प्रेम प्रकट करने से प्रेम के स्थायीभाव का निर्माण हो जाता है । यह तो स्थायीभाव का सरल रूप हुआ । प्रायः स्थायीभाव जटिल (Complex) हुआ करता है । जटिल स्थायीभाव के निर्माण में अनेक मूल प्रवृत्तियों अथवा संवेगों का समन्वय पाया जाता है । वस्तुतः जब अनेक संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ (Emotional tendencies) समन्वित होकर एक ही वस्तु, व्यक्ति अथवा विचार में केन्द्रीभूत हो जाती हैं, तब हम इन्हें स्थायीभाव की संज्ञा देते हैं । दूसरे शब्दों में, किसी भी वस्तु, व्यक्ति अथवा विचार के प्रति अनेक संवेगात्मक प्रवृत्तियों का समन्वय ही स्थायीभाव कहलाता है । उदाहरण-स्वरूप, हम प्रेम, घृणा, आत्म-सम्मान इत्यादि को प्रस्तुत कर सकते हैं । मान लीजिए, किसी को अपनी प्रेमिका के प्रति प्रेम का स्थायीभाव हो गया है । यदि उसके प्रेम के स्थायीभाव का विश्लेषण करेंगे तो उसमें अनेक संवेगात्मक प्रवृत्तियों का समन्वय मिलेगा; जैसे भय, चिन्ता, क्रोध, शोक आदि संवेगों का समन्वय । वस्तुतः जबतक

उसकी प्रेमिका उसके पास रहती है तबतक वह प्यार का अनुभव करता है, उसे खतरे में पड़ा हुआ देखकर चिन्तित तथा भयभीत हो जाता है, जब उसकी रक्षा में बाधा पहुँचती है, तब उसे क्रोध होता है और जब वह खो जाती है तब वह शोकाकुल हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रेम के स्थायीभाव में प्यार, चिन्ता, भय शोक आदि संवेगों का समन्वय पाया जाता है।

(१) स्थायीभाव जन्मजात (Inborn) नहीं होते, वरन् अर्जित (Acquired) हुआ करते है। मानव-जीवन के विकास-क्रम में स्थायी भाव का निर्माण होता है तथा मनुष्य उन्हें अपनाता जाता है। विशेष प्रकार की परिस्थिति विशेष प्रकार के स्थायीभाव के निर्माण में योग प्रदान करती है। उदाहरणार्थ, जब युद्ध-काल में कोई देश पड़ जाता है, तब उस देश के निवासियों में स्वभावतः देशभक्ति का स्थायीभाव जाग्रत हो उठता है।

(२) स्थायीभाव जीवन को उन्नत बनाने की प्रेरणा देते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य के कार्यों का आधार मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts) ही हैं। किन्तु वे कार्य स्थायीभावों से प्रेरित तथा संचालित हुआ करते हैं। अतएव स्थायीभाव को प्रेरणात्मक (Motivating) कह सकते हैं।

(३) स्थायीभाव जीवन को गतिशील एवं क्रमबद्ध बनाने में सहायता प्रदान करते हैं। जीवन में प्रायः मूल प्रवृत्तियों एवं संवेगों का प्रभाव मूल रूप में देखने को नहीं मिलता। हमारे आचरणों में प्रायः स्थायीभाव ही अभिव्यक्त होते हैं। उन स्थायीभावों में संवेग अवश्य निहित रहते हैं, किन्तु वे अपने मूल रूप मे उपस्थित न रहकर परिमार्जित रूप में वर्त्तमान रहते हैं। संक्षेप में, स्थायीभाव मे परिमार्जित संवेगों का समन्वय पाया जाता है। फलतः स्थायीभावो से प्रेरित होकर हमारा जीवन गतिशील एवं क्रमबद्ध हो जाता है। यदि हमारे जीवन में स्थायीभावों के बदले संवेग एवं मूल प्रवृत्तियों की प्रधानता होती तथा इन्हीं से हमारे सभी कार्य प्रेरित होते, तो संभवतः हमारे जीवन मे अराजकता आ जाती तथा उसका कोई भी निश्चित क्रम नहीं होता।

(४) संवेग-जनित होने के कारण स्थायीभाव अनेक प्रकार के संवेगों की उत्पत्ति का कारण बन जाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी को अपने नौकर पर क्रोध है, तो इस क्रोध के कारण इससे सम्बद्ध दो अन्य संवेग भी उत्पन्न हो जाते हैं; यथा, भय एवं घृणा। जब क्रोध की सफल अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है, तब भय एवं घृणा की सृष्टि होती है।

(५) स्थायीभाव व्यापक स्वभाव का होता है। इसका निर्माण किसी एक वस्तु अथवा विचार को लेकर ही होता है। किन्तु यह उस एक ही वस्तु अथवा विचार तक सीमित नहीं रह पाता। वास्तविकता तो यह है कि स्थायीभाव उस वस्तु अथवा विचार के सदृश सभी वस्तुओं या विचारों म फैल जाता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को अपने नौकर के प्रति घृणा का स्थायीभाव बन गया है, तो यह वहीं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसके भीतर सम्पूर्ण नौकर-वर्ग (Servant class) के लिए घृणा का स्थायीभाव काम करने लगता है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि घृणा का स्थायीभाव पहले एक व्यक्ति के प्रति होता है; किन्तु बाद मे यह स्थायीभाव उस वर्ग के सभी व्यक्तियों के प्रति हो जाता है। इसलिए स्थायीभाव को व्यापक कहा गया है।

(६) स्थायीभाव का सम्बन्ध केवल मूर्त्त पदार्थों (Concrete objects) से ही नही रहता, बल्कि वह अमूर्त्त विचारों (Abstract ideas) से भी सम्बन्धित रहता है। किसी व्यक्ति अथवा देश के प्रति बना हुआ स्थायीभाव मूर्त्त (Concrete) कहा जायगा तथा सत्य, न्याय, सौन्दर्य आदि के प्रति बने हुए स्थायीभाव को अमूर्त्त स्थायीभाव (Abstract sentiment) की संज्ञा दी जायगी।

संवेग तथा स्थायीभाव में अन्तर

संवेग तथा स्थायीभाव का निकट सम्बन्ध होते हुए भी दोनों में कुछ अन्तर है। सबसे पहला अन्तर तो यह ह कि संवेग जन्मजात (Inborn) होता है, किन्तु स्थायीभाव अर्जित (Acquired) हुआ करता है। दूसरा भेद यह है कि संवेग अत्यन्त चंचल एवं अस्थायी स्वभाव (Temporary nature) का होता है, किन्तु स्थायीभाव, जैसा कि इस शब्द से ही स्पष्ट है, एक ऐसा भाव या ऐसी प्रवृत्ति जो है, किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा विचार से स्थायी रूप से सम्बन्धित रहती है। उदाहरण के रूप मे हम वात्सल्य (माँ-बाप का बच्चे के प्रति प्रेम), देश-भक्ति आदि को ले सकते है। वात्सल्य का स्थायीभाव माता-पिता मे स्थायी रूप से विद्यमान रहता है। देशवासियों में एक बार देश-भक्ति का स्थायीभाव उत्पन्न हो जाने पर बहुत दिनों तक बना रह जाता है। तीसरा भेद यह है कि सवेग परिस्थिति-मूलक होता है। परिस्थिति-मूलक होने से तात्पर्य यह है कि संवेग की अनुभूति के लिए एक विशेष प्रकार की परिस्थिति का उपस्थित रहना अनिवार्य है। अचानक

परिस्थिति (Emergent situation) के अभाव में संवेग का अनुभव कदापि नहीं हो सकता, किन्तु स्थायीभाव परिस्थिति के अभाव में भी वर्त्तमान रहता है। उदाहरण के लिए, एकाएक भयावह परिस्थिति के उपस्थित होने से भय के संवेग का अनुभव होता है, किन्तु उस परिस्थिति के टल जाने पर भय का संवेग भी लुप्त हो जाता है। इसके विपरीत, यदि हम अपने माता-पिता से अत्यन्त दूर रहते हैं, तो भी उनके प्रति श्रद्धा का स्थायीभाव बना ही रहता है। वैसे ही, जब एक भारतवासी कुछ दिनों के लिए इंगलैंड जाता है, तब भारतवर्ष से अत्यन्त दूर रहते हुए भी उसमें भारत-प्रेम का स्थायीभाव बना रहता है। संवेग एवं स्थायीभाव में अन्तिम भेद यह है कि स्थायीभाव संवेग की अपेक्षा अव्यक्त होता है। संवेग की अवस्था में स्पष्ट रूप से संवेग की अनुभूति रहती है तथा उसकी अभिव्यक्ति विभिन्न शारीरिक परिवर्त्तनों में दीख पड़ती है। परन्तु स्थायीभाव अव्यक्त रूप से हमारे कार्यों को प्रभावित एवं संचालित करता रहता है। स्थायीभाव की चेतन अनुभूति हमें निरन्तर नहीं होती है। किन्तु, यह हमारे अन्दर बराबर बना रहता है। उदाहरण-स्वरूप पति के प्रति पत्नी की भक्ति के स्थायीभाव, माँ का बच्चे के प्रति स्नेह के स्थायीभाव, पुत्र का पिता के प्रति श्रद्धा के स्थायीभाव आदि प्रस्तुत किये जा सकते हैं। संभवतः पत्नी को निरन्तर पति-भक्ति का स्थायीभाव स्मरण नहीं होता, किन्तु उसमें पति-भक्ति का स्थायीभाव निरन्तर वर्त्तमान रहता है तथा पति-सम्बन्धी उसके सारे विचारों का संचालन करता है। ठीक यही बात माँ के बच्चे के प्रति स्नेह के स्थायीभाव तथा पुत्र के पिता के प्रति श्रद्धा के स्थायीभाव के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

संवेग की अभिव्यक्ति

(Expression of Emotion)

हम प्रायः लोगों की मुखाकृति, उनके स्वर तथा सामान्य शारीरिक मुद्रा (Bodily posture) आदि के द्वारा उनके संवेगों को समझने की चेष्टा करते हैं। किसी भी व्यक्ति की मुखमुद्रा में आश्चर्य, भय, उल्लास आदि संवेग अभिव्यक्त होते हुए जान पड़ते हैं। वैसे ही, किसी भी व्यक्ति का स्वर उसकी संवेगात्मक अनुभूति का द्योतक होता है। सामान्यतः किसी भी व्यक्ति के सारे शरीर का एक ओर झुका रहना अथवा बिलकुल तना रहना भी उस व्यक्ति की संवेगात्मक अनुभूति का ही परिचायक होता है। इस सामान्य विचार का मनोवैज्ञानिक आधार चार्ल्स बेल (Charles Bell), चार्ल्स डार्विन

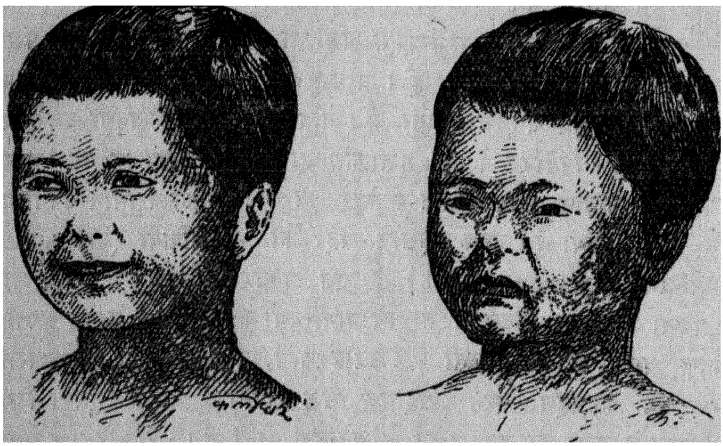
(Charles Darwin) तथा पिडेरिट (Piderit) आदि विद्वानों की खोजों में मिलता है। सर्वप्रथम चार्ल्स बेल (Charles Bell) ने यह बतलाया है कि किस प्रकार संवेग मुखाकृतियों के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। तत्पश्चात् चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin) ने पशु एवं मनुष्य के संवेगाभिव्यंजन (Emotional expression) पर अत्यधिक प्रकाश डाला। डार्विन का कहना था कि संवेगों का चेहरे के भाव आदि के द्वारा अभिव्यक्त होना, व्यक्ति अथवा जाति (Race) के जीवन के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है।* आदिम युग का मनुष्य संभवतः युद्ध में दाँत पीसता था, ताकि उसके शत्रु उससे डर जायें, किन्तु आधुनिक युग में इस प्रकार के संवेगात्मक अभिव्यंजन (Emotional expression) का मानव-जीवन के लिए कोई विशेष उपयोग नहा जान पड़ता। वस्तुतः य संवेगात्मक अभिव्यंजन आदिम युग को उपयागी संवेगात्मक चेष्टाओं के अवशेष-मात्र हैं। इस प्रकार का संवेगात्मक अभिव्यंजन अभी भी कुत्ते, वनमानुष आदि पशुओं के लिए उपयोगी प्रतीत हाता है। ये पशु दाँत को तभी निकालते हैं, जब इनके सामने कोई शत्रु आ जाता है। दाँत को देखकर बहुधा इनके शत्रु डर जाते हैं। पिडेरिट ने भी मुखाकृति द्वारा संवेगाभिव्यजन पर प्रकाश डाला है। उन्होंने अपने सिद्धांत मे चेहरे की चेष्टाओं को वर्त्तमान उपयोगिता का उल्लेख किया है। उनके अनुसार चेहरे को मासपेशियाँ (Muscles) ज्ञानेन्द्रियों (Sense-organs) से इस प्रकार सम्बन्धित हैं कि वे बाह्य उत्तेजना को ग्रहण करने मे या तो ज्ञानन्द्रियों को सहायता प्रदान करती है अथवा बाधा उपस्थित करती है। उदाहरणार्थ, नाक की एक विशेष स्थिति मधुर गंध को ग्रहण करने में सहायक सिद्ध होती है तथा दूसरी स्थिति दुर्गन्धि से नाक को दूर रखने में सहायक होती है। पिडेरिट के सिद्धात के विस्तार में न जाकर यहाँ इतना ही प्रस्तुत करना अभीष्ट है कि किस प्रकार प्रयोगात्मक मनोवैज्ञानिकों ने चार्ल्स डार्विन तथा पिडेरिट की खोजो से प्रेरणा ग्रहण कर इसपर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है।

संवेगों का मुखाकृतिक अभिव्यंजन
(Facial expression of Emotion)

मनुष्य की संवेगात्मक अनुभूति उसके चेहरे द्वारा अभिव्यक्त होती है।

*Charles Darwin: "The Expression of Emotions in Man and Animals", 1872.

चेहरे के विभिन्न भागों में, जैसे ललाट, आँख, नाक, मुँह आदि में अपेक्षाकृत अधिक मांसपेशियाँ (Muscles) पायी जाती हैं। फलतः इन मांसपेशियों की सहायता से विभिन्न प्रकार के संवेग चेहरे द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। चेहरे की अपनी एक परंपरागत भाषा बन गयी है, जिसे समझकर हम दूसरे की संवेगात्मक अनुभूति को जानने में समर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ, जब हम यह पाते हैं कि किसी व्यक्ति की भौंहें ऊपर चढ़ गयी हैं तथा उसके ललाट में बल पड़े गये हैं, तब हम समझ लेते हैं कि वह आश्चर्य एवं विस्मय का अनुभव कर रहा होगा। क्रोध में आँखें खुली रह जातीं तथा लाल हो जाती हैं। अन्यमनस्कता (Indifference), दुःख एवं निराशा में आँखें कुछ-कुछ बन्द हो जाती हैं। आँखों का खुला रहना



चित्र-सं० २५—प्रसन्नता तथा अप्रसन्नता की मुखाकृतिक अभिव्यक्तियाँ

ध्यानावस्था (State of attention) का भी परिचायक है। मुँह द्वारा भी अनेक संवेग अभिव्यक्त होते हैं। लियोनार्डो-दा-विंसी (Leonardo-Da-Vinci) ने प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता-सूचक मुँह की आकृतियों का उल्लेख किया है। बच्चों का अपने निचले होठ को ऊपरी होठ से सटा लेना, उसकी अप्रसन्नता का द्योतक है। जब उनके दोनों होठ खुले रहते हैं तथा कुछ दाँत भी बाहर की ओर निकले रहते हैं, तब उनकी मुखमुद्रा से प्रसन्नता प्रकट होती है। दुःख एवं निराशा में प्रायः मुँह खुला रहता है तथा नीचे

की ओर झुका रहता है। क्रोध मे मुँह कडा हो जाता है तथा निचले होठ के ऊपर दाँत चढ जाते है।

उपर्युक्त वर्णन मे स्पष्ट है कि विभिन्न प्रकार के सवेगो का अभिव्यजन चेहरे के भावो द्वारा होता है। किन्तु, इस सम्बन्ध मे किये गये मनोवैज्ञानिक प्रयोगो से पता चलता है कि मुखाकृतियो के आधार पर विशेष प्रकार के सवेगो को समझना बहुत-कुछ परपरागत सस्कृति पर निर्भर करता है। यदि किसी के सामने सवेग प्रकट करनेवाले चेहरे के चित्र उपस्थित कर दिये जायँ, किन्तु उसे यह न बताया जाय कि ये किस परिस्थिति के चित्र है, तो सभवत वह व्यक्ति निश्चयपूर्वक यह नही कह सकता कि चेहरे से कौन-सा सवेग प्रकट हो रहा है। इस प्रकार का एक प्रयोग डार्विन ने किया है। विभिन्न सवेगो को प्रकट करनेवाले कुछ चेहरे के चित्र ले लिये गये। तत्पश्चात् बीस निर्णायको (Judges) के सामने वे चित्र प्रस्तुत किये गये और उनसे यह निर्णय करने को कहा गया कि किस चित्र मे कौन-सा सवेग प्रकट हो रहा है। कुछ चित्रो को देखकर सभी निर्णायको ने एक ही तरह का निर्णय दिया। किन्तु अन्य चित्रो के सबध मे उनके विचार एक-से नही थे। जिनके सबध मे निर्णायको के विचार एक-से नही थे, उनके बारे मे डार्विन ने यह निष्कर्ष निकाला कि वस्तुत ये चित्र किसी विशेष प्रकार के सवेग के द्योतक नही है। इस सबध मे डार्विन का कहना है कि सवेगात्मक परिस्थिति से पूर्ण सकेत (Suggestion) के बिना ही केवल मुखाकृति-सम्बन्धी चित्रो को देखकर उनमे अभिव्यक्त सवेगो को समझना बडा ही कठिन है। फर्नबर्जर (Fernberger) के प्रयोग से भी यही बात सिद्ध होती है। फर्नबर्जर (Fernberger) ने स्पष्ट शब्दो मे बताया है कि चेहरे को देखकर सवेग-निर्णय करने मे पूर्व-सकेत का प्रभाव पाया जाता है। सकेत उस परिस्थिति का होना चाहिए, जिस परिस्थिति मे किसी व्यक्ति के चेहरे का चित्र लिया गया हो। बिना उस संपूर्ण परिस्थिति के सकेत के केवल चित्र को देखकर यह कहना कि उसमे अमुक सवेग प्रकट हो रहा है, बडा ही कठिन है। वुडवर्थ ने भी इस बात पर जोर दिया है।*

---

* "Little can be determined of an emotional state in another individual from the perception of an abstracted facial expression completely divorced from a general, total stimulus situation. If a stimulus situation is indicated, the emotional

स्वराभिव्यंजन
(Vocal Expression)

स्वर अथवा वाणी द्वारा भी संवेग अभिव्यक्त होते हैं। बोलते समय मनुष्य की वाणी से भिन्न-भिन्न संवेगों का आभास मिलता है। सामान्य अनुभव के आधार पर तो यह बात सत्य मानी जाती है, किन्तु प्रयोगात्मक प्रमाण इसके विरुद्ध भी मिलते हैं। शर्मन (Sherman) ने अपने प्रयोग में यह पाया कि सिर्फ बच्चे की आवाज को सुनकर यह बतलाना कि वह बच्चा भूख के कारण या किसी बाधा के कारण रो रहा है, बड़ा ही कठिन है। फिर भी, हम रोने या हँसने की आवाज में तो आसानी से भेद कर सकते हैं। प्यार, मजाक और निश्चय के स्वरों को भी प्रायः पहचान लिया जाता है।

स्वर की गंभीरता, ऊँचाई, गति आदि के द्वारा संवेगों की अभिव्यक्ति होती है। ऊँचा स्वर मनुष्य की उत्तेजित अवस्था (Excited state) का द्योतक है। उत्तेजित अवस्था में स्वरों में कम्पन पाया जाता है। मनुष्य प्रायः क्रोध में जोर-जोर से बोलता है तथा उसकी बोली से कम्पन भी टपकता है। मधुर स्वर तथा कड़े स्वर से भी मनुष्य की संवेगात्मक स्थिति अभिव्यक्त होती है। किन्तु इस सम्बन्ध म वैज्ञानिक प्रमाण बहुत कम मिलते हैं। चीखने, चिल्लाने, सिसकन आदि के द्वारा भी संवेगों को अभिव्यक्त किया जाता है। इस सम्बन्ध में कई मनोवैज्ञानिक प्रमाण मिलते हैं।

भाषा द्वारा भी संवेगों को अभिव्यक्त किया जाता है। इसका प्रमाण किसी भी अच्छे वक्ता के भाषण से लिया जा सकता है। शेक्सपीयर (Shakespeare) की प्रसिद्ध पुस्तक 'जुलियस सीजर' (Julius Ceasar) में अण्टोनी (Antony) का भाषण उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। गवैये अपने गानों में भिन्न-भिन्न संवेगों को अभिव्यक्त करते हैं।

---

state is judged in accordance with that situation rather than in accordance with the facial expression."—Fernberger

† "Reading facial expression is mostly a myth, and that we depend in real life on the situation in which a person is placed and what he says and does rather than on his face to reveal his emotions."—Woodwoth, R. S. : 'Experimental Psychology', P. 249.

अभिनेता अभिनय करते समय स्वरों का उपयोग बड़ी चातुरी के साथ करते हैं। फलतः उनके स्वरों से विभिन्न प्रकार के संवेग प्रकट होते हैं। वस्तुतः स्वर सिनेमा, थियेटर आदि में विभिन्न संवेगों को अभिव्यक्त करने का एक सुन्दर माध्यम है।

शारीरिक मुद्रा

(Bodily Posture)

संवेग भिन्न-भिन्न शारीरिक स्थितियों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। किन्तु कोई भी एक संवेग सभी व्यक्तियों में एक ही तरह की स्थिति उत्पन्न नहीं कर पाता, प्रत्युत एक ही संवेग की अवस्था में भी एक व्यक्ति की शारीरिक स्थिति दूसरे की शारीरिक स्थिति से भिन्न हो सकती है। संभवतः भय की अवस्था में या तो कोई व्यक्ति भयोत्पादक परिस्थिति से भाग खड़ा होता है या वहीं जड़वत् खड़ा रह जाता है। क्रोध की अवस्था में प्रायः मनुष्य आक्रमण कर बैठता है। प्रेम की अवस्था में मनुष्य प्रेम-पात्र के समीप जाने की चेष्टा करता है। दुःख में मनुष्य का सारा शरीर कुछ झुक जाता है, किन्तु प्रसन्नता में सिर ऊँचा उठा रहता है और सीना तना रहता है। हाथों की गति से भी संवेग अभिव्यक्त होते हैं। मुट्ठी बाँधना, हाथ फैलाना, हाथ जोड़ना आदि क्रियाओं द्वारा भी संवेग अभिव्यक्त होते हैं। संक्षप में, विभिन्न शारीरिक मुद्राओं द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के संवेग अभिव्यक्त होते हैं।

विभिन्न प्रकार के संवेगों को अभिव्यक्त करनेवाली शारीरिक मुद्राओं के उल्लेख के पश्चात् यह कह देना समीचीन प्रतीत होता है कि कहाँ तक ये स्वाभाविक हैं और किस हद तक इनपर परंपरागत संस्कृति की छाप है। वस्तुतः यह अभी भी अनुसंधान का विषय है। जेम्स-लाँजे के संवेग-सिद्धांत में संवेगों को अभिव्यक्त करनेवाली शारीरिक मुद्राओं की अत्यधिक प्रधानता है। जेम्स-लाँजे के संवेग-सिद्धांत की व्याख्या आगे प्रस्तुत की जायगी।

संवेग में शारीरिक परिवर्त्तन

(Bodily changes in emotion)

भय, क्रोध, प्रेम आदि संवेगों में विभिन्न प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तन होते हैं। इन शारीरिक परिवर्त्तनों के सम्बन्ध में अनेक मनोवैज्ञानिक

अनुसन्धान हुए हैं। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से प्रधानतः साँस लेने की क्रिया रक्त-चाप (Blood-pressure), नाड़ी की गति (Pulse rate), पेट तथा अँतड़ियों की क्रिया, पाचन-क्रिया, पसीना निकलने की क्रिया तथा खून में रासायनिक परिवर्त्तन (Chemical changes in blood) आदि शारीरिक परिवर्त्तनों पर अत्यधिक प्रकाश पड़ा है। कैनन ने डर एवं क्रोध में होनेवाले शारीरिक परिवर्त्तनों का अध्ययन किया है। उन्होंने बतलाया है कि क्रोध में साँस तेजी से निकलने लगती है, रक्त-चाप (Blood-pressure) बढ जाता है, पाचन-क्रिया रुक जाती है तथा खून में रासायनिक परिवर्त्तन आ जाते है। भय मे भी इसी तरह के शारीरिक परिवर्त्तन होते है। अब हम संक्षेप में साँस लेने एवं साँस छोड़ने की क्रिया, हृदय की धड़कन, रक्त-चाप (Blood-pressure), ऐड्रीनिन (Adrenin) का शारीरिक क्रियाओं पर प्रभाव, पाचन-क्रिया, स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Autonomic nervous system) की क्रिया इत्यादि पर प्रकाश डालगे।

संवेग में साँस लेने और साँस छोड़ने की क्रिया :—संवेग के समय साँस लेने और साँसछोड़ने की क्रिया में परिवर्त्तन पाया जाता है। सामान्यतः साँस लेने और साँस छोड़ने की क्रियाओं के समय में १:४ का अनुपात (Ratio) होता है। किन्तु संवेगात्मक अवस्था में यह अनुपात बदल जाता है। संवेगात्मक अवस्था मे यह अनुपात प्रायः १:२ या कभी-कभी १:१ हो जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि संवेग में साँस लेने और साँस छोड़ने की क्रिया बहुत जल्दी-जल्दी होती है।

संवेग में हृदय की धड़कन एवं रक्त-चाप (Blood pressure) :— संवेगात्मक अवस्था में हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। इसकी जाँच प्रायः इलेक्ट्रो-कार्डियोग्राफ (Electro-cardiograph) नामक यंत्र द्वारा की जाती है। इलेक्ट्रो-कार्डियोग्राफ नामक यंत्र के प्रयोग से यह मालूम हो जाता है कि संवेगात्मक अवस्था में हृदय को गति में कौन-कौन-से परिवर्त्तन हो जाते है। रक्त-चाप (Blood-pressure) प्रधानतः दो बातों पर निर्भर करता है— एक तो हृदय से निकलनेवाले रक्त के परिमाण (Quantity) पर, दूसरे रक्त-संचार (Blood-circulation) के मार्ग में धमनियों (Arteries) द्वारा उपस्थित किये गये प्रतिरोध (Resistance) पर। संवेगात्मक अवस्था में रक्त-चाप (Blood-pressure) बढ़ जाता है। झूठ बोलने के सम्बन्ध में किये गये प्रयोगों के

के आधार पर यह पाया गया है कि प्राय ८० प्रतिशत झूठ बोलनेवाले व्यक्तियो का रक्त-चाप बढ जाता है। झूठ बोलते समय मनुष्य एक उत्तेजित अवस्था का अनुभव करता है। इसीलिए, उसका रक्त-चाप बढ़ जाता है।

ऐड्रीनिन का प्रभाव—ऐड्रीनल ग्लिडो (Adrenal glands) मे जो रासायनिक स्राव (Chemical Secretion) निकलता है, उसे ऐड्रीनिन कहते है। सवेगात्मक अवस्था मे ऐड्रीनिन अधिक निकलता है और उससे प्रभावित होकर यकृत (Liver) खून मे अधिक चीनी छोडता है। फलत सवेगात्मक अवस्था मे सामान्य अवस्था की अपेक्षा खून मे चीनी अधिक पायी जाती है। खून मे एड्रीनिन के मिलने के कारण और भी कितने प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तन होते है, जैसे हृदय की धडकन बढ जाती है, रक्त-चाप (Blood-pressure) बढ जाता है, चमडे मे खून की छोटी-छोटी नसे (Blood-vessels) सिकुड जाती है खून शीघ्रता से जम जाने लायक बन जाता है मासपेशियो (Muscles) की थकावट दूर हो जाती है तथा उन्हे अधिक शक्ति मिलती है।

कैनन ने ऐड्रीनिन द्वारा उत्पन्न अधिक शक्ति की उपयोगिता पर अत्यधिक प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि ऐड्रीनिन के अधिक मात्रा मे होने के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तन, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, होते है। फलत व्यक्ति अधिक शक्ति का अनुभव करता है। यह अधिक शक्ति अप्रत्याशित सवेगात्मक परिस्थिति (Unexpected emotional situation) से सामना करने के लिए उसे तैयार करती है। कभी तो कभी-कभी मनुष्य खतरे से अपने को बचाने के लिए ऐसा साहसपूर्ण कार्य कर बैठता है, जिसे देखकर दग रह जाना पडता है।

संवेग में पाचन-क्रिया—सवेग मे पाचन-क्रिया-सम्बन्धी कार्य बन्द हो जाते है। भय एव क्रोध की अवस्था मे यह शारीरिक परिवर्त्तन स्पष्टत लक्षित होता है। इस सम्बन्ध में बिल्ली पर एक प्रयोग किया गया है। बिल्ली को अच्छी तरह खिलाकर एक मेज पर बिठा दिया गया। 'एक्स-रे' (X-Ray) की सहायता से उसके पेट को क्रिया का अध्ययन किया गया। बिल्ली के पेट मे पचाने की क्रिया शुरू हो गयी थी, इसी बीच एकाएक उस कमरे मे एक कुत्ता लाया गया। बिल्ली को देखकर कुत्ता

भूँकने लगा। बिल्ली क्रोध के लक्षण दिखलाने लगी। जैसे ही बिल्ली ने क्रोध दिखलाया कि उसकी पाचन-क्रिया बन्द हो गयी। फिर उसकी पाचन-क्रिया तबतक शुरू नहीं हुई, जबतक कुत्ते को कमरे से बाहर गये कम-से-कम १५ मिनट नहीं बीत चुके। पेट की पाचन-क्रिया के साथ-ही-साथ संवेग में अँतड़ियों की मंथन-क्रिया (Churning function) भी रुक जाती है। मनुष्य के सम्बन्ध में भी यह ध्यान देने की बात है कि भोजन के तुरत बाद क्रोध, चिन्ता, भय आदि संवेगो का अनुभव हानिप्रद होता है।

संवेग में स्वतः संचालित स्नायु-मंडल की क्रियाएँ—स्वतः संचालित स्नायु-मंडल के दो भाग है—(१) सहानुभूतिक मंडल (Sympathetic system) तथा (२) उपसहानुभूतिक मंडल (Parasympathetic system)। संवेगात्मक अवस्था में होनेवाले शारीरिक परिवर्त्तनों का सम्बन्ध बहुधा सहानुभूतिक तथा उपसहानुभूतिक, दोनों मंडलो से रहता है। सहानुभूतिक एव उपसहानुभूतिक मंडलो की क्रियाएँ परस्पर-विरोधी जान पड़ती है। उदाहरणार्थ, जब सहानुभूतिक मंडल के कार्यो की प्रधानता रहती है, तब लार का टपकना रुक जाता है, हृदय की गति तीव्र हो जाती है, ऐड्रीनल पिंड (Adrenal glands) उत्तेजित हो जाते है तथा खून की छोटी-छोटी नसे सिकुड जाती है। इसके विपरीत, जब उपसहानुभूतिक मंडल के कार्यो की प्रधानता रहती है, तब लार का टपकना बढ़ जाता है, हृदय की गति मन्द पड़ जाती है, ऐड्रीनल पिंडों के कार्य रुक जाते है तथा खून की छोटी नसे फैल जाती है।

इसमें कोई सन्देह नही कि संवेग मे होनेवाले आन्तरिक शारीरिक परिवर्त्तन अधिकांशतः सहानुभूतिक मंडल के द्वारा ही संचालित एवं नियंत्रित होते हैं, किन्तु आधुनिक अनुसंधानों से पता चलता है कि संवेगात्मक अवस्था के कुछ शारीरिक परिवर्त्तनों को उपसहानुभूतिक मंडल भी संचालित एवं नियंत्रित करता है। अतएव, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संवेगात्मक अवस्था में केवल सहानुभूतिक स्नायु-मंडल ही क्रियाशील नहीं रहता, वरन् संपूर्ण स्वतः संचालित स्नायु-मंडल ही क्रियाशील हो उठता है।* स्वतः संचालित स्नायु-मंडल की क्रियाओं के सिवा, संवेग में हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) और बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) की क्रियाओं की भी प्रधानता स्वीकार की गयी है।

---

*"Emotion is characterized by autonomic function rather han by sympathetic function alone,"—Young, p. T.

संवेग में हाइपोथैलेमस की क्रियाएँ —आधुनिक शरीर-वैज्ञानिक (Physiologists) के अनुसन्धानों से पता चलता है कि संवेगात्मक व्यवहार हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) द्वारा नियन्त्रित होते हैं। यदि मस्तिष्क से हाइपोथैलेमस को हटा दिया जाय, तो कुत्ते में तथा बिल्लियों में किसी भी प्रकार की संवेगात्मक अभिव्यंजना (Emotional expression) नहीं हो सकती। मस्तिष्क के किसी दूसरे भाग को हटाने से ऐसा प्रभाव नहीं पड़ता। मसरमैन (Masserman) ने बिल्ली के ऊपर एक प्रयोग किया। उन्होंने बिल्ली के हाइपोथैलेमस को बिजली के तार से छोर से उत्तेजित किया। फलस्वरूप, बिल्ली ने संवेगात्मक व्यवहार प्रदर्शित किया। उसने अपने कानों को झट फेर लिया, कुछ झुक गयी, गुर्राने लगी तथा अपनी पूँछ ऊपर उठाकर हिलाने लगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) संवेगात्मक व्यवहारों को नियंत्रित करता है।

यह ठीक है कि हाइपोथैलेमस का संवेगात्मक व्यवहारों के नियन्त्रण में प्रधान हाथ है; किन्तु, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि हाइपोथैलेमस ही संवेगात्मक व्यवहार का एकमात्र नियंत्रण करनेवाला है। वास्तविकता तो यह है कि मस्तिष्क के दूसरे भाग भी, विशेषत: बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) का संवेगात्मक व्यवहार पर अत्यधिक प्रभाव पाया जाता है।

संवेग में बृहन्मस्तिष्कीय बल्क की क्रियाएँ The functions of the cerebral cortex in emotion)—संवेगात्मक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण बृहन्मस्तिष्कीय बल्क की सहायता से ही होता है। दूसरी प्रधान बात यह है कि बृहन्मस्तिष्कीय बल्क संवेगात्मक परिस्थिति के साथ सफल अभियोजन (Adjustment) में सहायक होता है। इसी कारण पशु अथवा मनुष्य खतरनाक परिस्थिति से छुटकारा पाने में तथा क्रोध प्रदर्शित करने में सफल होते हैं।

यदि किसी कुत्ते अथवा बिल्ली के मस्तिष्क से बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) को ऑपरेशन के द्वारा हटा लिया जाय, या उसमें किसी प्रकार से चोट आ जाय, तो संवेगात्मक परिस्थिति में सफलतापूर्वक

❖ "Masserman, J. H. : Behaviour and Neurosis, Chicago, University of Chicago Press, 1943, P. 35.

अभियोजन करने की क्षमता उसमें कम हो जायगी। फलतः वह कुत्ता खतरनाक परिस्थिति से अपने को नहीं बचा पायगा तथा वह अपना क्रोध भी नहीं दिखा सकेगा। ठीक यही अवस्था बिल्ली की भी होती है। बृहन्मस्तिष्कीय बल्क का तीसरा प्रधान कार्य यह है कि संवेगात्मक परिस्थिति के हट जाने पर भी संवेगात्मक व्यवहार कुछ समय तक बना रह जाता है, जैसे क्रोध की परिस्थिति के हट जाने के बाद भी कुछ समय तक क्रोध ज्यों-का-त्यों बना रह जाता है। यदि बृहन्मस्तिष्कीय बल्क मस्तिष्क से हटा लिया जाय, तो संवेगात्मक परिस्थिति के रहने पर ही संवेगात्मक व्यवहार होगा। संवेगात्मक परिस्थिति के हटते ही संवेगात्मक व्यवहार भी बन्द हो जायगा। बृहन्मस्तिष्कीय बल्क का अन्तिम, किन्तु प्रधान कार्य यह है कि यह संवेगात्मक व्यवहार को अति तीव्र (Intense) नहीं होने देता। मस्तिष्क से बृहन्मस्तिष्कीय बल्क के हटा लिये जाने पर संवेगात्मक व्यवहार अत्यन्त ही तीव्र हो उठते हैं।

यों तो संवेग के कई सिद्धांत हैं, किन्तु यहाँ संवेग के दो प्रमुख सिद्धांतों का उल्लेख करना ही अभीष्ट है। सर्वप्रथम हम जेम्स-लाँजे के संवेग-सिद्धांत पर प्रकाश डालेंगे। तत्पश्चात् कैनन (Cannon) एवं बार्ड (Bard) द्वारा प्रतिपादित हाइपोथैलेमिक सिद्धांत पर विचार प्रस्तुत किया जायगा।

संवेग-सिद्धांत
(Theories of Emotion)

अमेरिकन मनोवैज्ञानिक जेम्स तथा डेनमार्क-निवासी लाँजे ने स्वतन्त्र रूप से सन् १८८० ई० के लगभग संवेग के एक सिद्धांत को प्रतिपादित किया। उन दोनों के सिद्धांतों में इतनी समता है कि उनके सिद्धांतों को एक ही नाम से पुकारा जाता है और वह है जेम्स-लाँजे का संवेग-सिद्धांत (James-Lange theory of emotion)। इस सिद्धांत के अनुसार संवेग शारीरिक परिवर्त्तनों की मानसिक अनुभूति है। जब कोई संवेगात्मक परिस्थिति एकाएक उपस्थित होती है, तब व्यक्ति को उस परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण होता है। फिर विभिन्न प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तन होते हैं और तब संवेग की अनुभूति होती है। इसे निम्नलिखित क्रम में उपस्थित किया जा सकता है—

(१) संवेगात्मक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण;
(२) शारीरिक परिवर्त्तन;

(३) संवेगात्मक अनुभूति ।

किन्तु, संवेग-सम्बन्धी सामान्य विचार जेम्स-लाँजे-सिद्धांत के विरुद्ध है। सामान्यतः संवेगात्मक अनुभूति के लिए संवेगात्मक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण आवश्यक समझा जाता है। शारीरिक परिवर्त्तन तो संवेगात्मक अनुभूति के परिणाम हैं। इस विचार को निम्नलिखित क्रम में उपस्थित किया जा सकता है—

(१) संवेगात्मक परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण,
(२) संवेगात्मक अनुभूति;
(३) शारीरिक परिवर्त्तन ।

जेम्स ने अपने सिद्धांत में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि संवेगात्मक परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण के बाद विभिन्न प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तन होते हैं और इन शारीरिक परिवर्त्तनों की अनुभूति ही संवेग है।† इसे और भी स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि "हम रोते हैं, इसलिए दुःख का अनुभव होता है; आक्रमण करते हैं, इसलिए क्रोध का अनुभव होता है तथा हम काँपते हैं, इसलिए भय का अनुभव करते हैं; ऐसी बात नहीं है कि हम दुःख, क्रोध अथवा भय का अनुभव करते हैं, इसलिए रोते, आक्रमण करते या काँपते हैं।"* जेम्स के इस कथन से स्पष्ट है कि पहले शारीरिक परिवर्त्तन होते हैं और तब हमें संवेग का अनुभव होता है।

जेम्स ने अपने सिद्धांत की पुष्टि में यह तर्क प्रस्तुत किया है कि जबतक किसी भी व्यक्ति में शारीरिक परिवर्त्तन नहीं होंगे, तबतक वह किसी संवेग का अनुभव कदापि नहीं कर सकता। उनका कहना है कि क्या हृदय की धड़कन, साँस की गति आदि में परिवर्त्तन के बिना कोई किसी संवेग का अनुभव कर सकता है? अर्थात नहीं कर सकता। उन्होंने अभिनेताओं के

† "My theory....is that the bodily changes follow directly the perception of the exciting fact, and that our feeling of the same changes as they occur is the emotion."—James, W.: Psychology : Briefer course, New York : Holt, 1908, P. 373.

* "We feel sorry because we cry, angry because we strike, afraid because we tremble, and not that we cry, strike or tremble because we are sorry, angry or fearful as the case may be."—James, W. : Psychology : Briefer course, New York : Holt, 1908, P. 373

कथन के आधार पर यह बतलाया है कि जब अभिनेता विशेष प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तनों के द्वारा किसी संवेग का अभिनय करने लगते हैं, तब उन्हें वस्तुतः उस संवेग का अनुभव भी होता है।

जेम्स-लाँजे-सिद्धांत के कुछ विशेष पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए यह बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जब अचानक कोई संवेगात्मक परिस्थिति किसी व्यक्ति के सामने आ जाती है, तब उसमें आवेश (Impulse) उत्पन्न होता है। फिर वह आवेश (Impulse) बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) में जाता है और वहाँ से पेट एवं अँतड़ियों की मांसपेशियों में पहुँचता है। फलतः अँतडियों में विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इन प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप पुनः आवेश (Impulses) उत्पन्न होते हैं और ये बृन्हमस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) में चले जाते हैं। फलतः हमें संवेग की अनुभूति होती है। स्पष्ट है कि जेम्स-लाँजे-सिद्धांत संवेगात्मक अनुभूतियों के लिए बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) को आवश्यक मानता है। यह सिद्धांत संवेगात्मक अनुभूति में हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) की महत्ता का उल्लेख नहीं करता।

जेम्स-लाँजे-सिद्धान्त की आलोचना—जेम्स-लाँजे-सिद्धांत के अनुसार संवेगात्मक अनुभूति के लिए शारीरिक परिवर्त्तन आवश्यक है। निस्सन्देह, प्रायः संवेगात्मक अनुभूति में शारीरिक परिवर्त्तन निहित रहते हैं। किन्तु, बिना शारीरिक परिवर्त्तनों की अनुभूति के भी संवेगों का अनुभव होता है। कभी-कभी संवेगों का अनुभव इतनी शीघ्रता के साथ हो जाता है कि हम उन्हें शारीरिक परिवर्त्तनों के आश्रित नहीं कह सकते। वस्तुतः संवेगात्मक परिस्थिति के सामने आते ही संवेग का अनुभव हो जाता है और शारीरिक परिवर्त्तन बाद में शुरू होते हैं।

शारीरिक परिवर्त्तनों और विशेषतः अन्तरावयव परिवर्त्तनों (Visceral changes) के आधार पर एक संवेग को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। एक ही प्रकार के शारीरिक परिवर्त्तन विभिन्न प्रकार के संवेगों में होते हैं, जैसा कि क्रोध एवं भय में होनेवाले शारीरिक परिवर्त्तनों से स्पष्ट है। अतः शारीरिक परिवर्त्तनों के आधार पर संवेगों की सम्यक् व्याख्या प्रस्तुत नहीं की जा सकती है।

ऐड्रीनिन के खून में मिलने के कारण अनेक प्रकार के शारीरिक

परिवर्त्तन होते हैं, जैसे, हृदय की धड़कन, रक्त-चाप (Blood-pressure) आदि का बढ़ना। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि ऐसी अवस्था में संवेगात्मक अनुभूति भी हो। वास्तविकता तो यह है कि ऐड्रीनिन को इन्जेक्शन (Injection) के द्वारा खून में पहुंचाये जाने पर मनुष्य के भीतर शारीरिक परिवर्त्तन तो होते हैं, किन्तु वह किसी प्रकार के संवेग का अनुभव नहीं करता। अतः स्पष्ट है कि शारीरिक परिवर्त्तनों की अनुभूति ही संवेग नहीं है वरन संवेग शारीरिक परिवर्त्तनों से अलग कोई दूसरी अनुभूति है।

प्रसिद्ध शरीर-वैज्ञानिक शेरिंग्टन (Sherrington) ने जेम्स-लॉजे सिद्धान्त की परीक्षा के लिए अपनी प्रयोगशाला में एक कुत्ते पर प्रयोग किया। उन्होंने कुत्ते की कुछ स्नायुओं का ऑपरेशन के द्वारा काटकर उसे अन्तरावयव-सम्बन्धी लगभग सभी संवेदनाओं से वंचित कर दिया। परन्तु अन्तरावयव-सम्बन्धी संवेदनाओं की इस क्षति का कोई भी प्रभाव उसके संवेगात्मक व्यवहार पर स्पष्ट रूप में नहीं दीख पड़ा। वह पहले की भाँति ही अभी भी क्रोध, हर्ष, भय इत्यादि संवेगात्मक व्यवहारों को प्रकट करता रहा। इस प्रयोग के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संवेगात्मक व्यवहार अन्तरावयव-संवेदनाओं पर नहीं निर्भर करता।

शेरिंग्टन की तरह ही कैनन ने भी एक बिल्ली पर ऐसा ही प्रयोग किया। उन्होंने ऑपरेशन द्वारा बिल्ली की सहानुभूतिक स्नायुओं को काट-कर निकाल लिया और इस प्रकार क्रोध में होनेवाले अन्तरावयव-परिवर्त्तनों को असंभव कर दिया। किन्तु, फिर भी बिल्ली पहले की तरह ही क्रोध के बाह्य संवेगात्मक व्यवहार, जैसे, गुर्राना, दांत दिखाना, कानों को पीछे की ओर खींचना, अगले पंजे को उठाना इत्यादि व्यवहार प्रकट करती रही। इस प्रयोग से यह निष्कर्ष निकलता है कि संवेग के लिए अन्तरावयव-परिवर्त्तन आवश्यक नहीं है।

जेम्स-लॉजे-सिद्धांत के विरुद्ध मनुष्यों पर किये गये प्रयोगों से भी प्रमाण मिलते हैं। एक चालीस वर्ष की स्त्री घोड़े से गिर गयी और उसकी गर्दन टूट गयी। फलतः सहानुभूतिक स्नायुओं (Sympathetic nerves) का सम्बन्ध मस्तिष्क से नहीं रह गया तथा अन्तरावयव-संवेदनाएँ (Visceral sensations) समाप्त हो गयीं। ऐसी परिस्थिति में, जेम्स-लाजे-सिद्धांत के अनुसार, उस स्त्री को किसी भी संवेग की अनुभूति नहीं होनी चाहिए थी। किन्तु जिस साल यह दुर्घटना हुई थी, उसी साल उस स्त्री ने

शोक, स्नेह, हर्ष तथा दुःख के संवेगों को प्रकट किया। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि शारीरिक परिवर्त्तनों एवं अन्तरावयव-संवेदनाओं (Visceral sensations) के बिना भी संवेगात्मक व्यवहार संभव है।

उपर्युक्त तर्कों एवं प्रयोगात्मक प्रमाणों से जेम्स-लाँजे-सिद्धान्त की सत्यता संदिग्ध जान पड़ने लगती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रायः संवेगों में कुछ शारीरिक परिवर्त्तन होते हैं। किन्तु इस सिद्धान्त का यह मानना कि शारीरिक परिवर्त्तनों की अनुभूति संवेग है तथा शारीरिक परिवर्त्तनों से स्वतन्त्र संवेगात्मक अनुभूति संभव नहीं है, अनुचित प्रतीत होता है।

हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त
(Hypothalamic theory)

कैनन एवं बार्ड नामक दो प्रसिद्ध शरीर-वैज्ञानिकों ने हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के अनुसार संवेगात्मक अनुभूति (Emotional experience) एवं संवेगात्मक व्यवहार (Emotional behaviour) स्वतन्त्र होते हैं।

हाइपोथलेमस में उत्पन्न आवेश (Impulses) एक ही साथ बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) तथा आन्तरिक अवयवों की मांसपेशियों (Muscles of the Viscera) में जाते हैं। फलतः संवेगात्मक अनुभूति एवं संवेगात्मक व्यवहार करीब-करीब एक ही समय में होते हैं। स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त हाइपोथैलेमस को संवेगों का केन्द्र मानता है। जेम्स-लाँजे-सिद्धान्त की तरह हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त संवेगों को शारीरिक परिवर्त्तनों का परिणाम नहीं मानता, वरन् संवेगात्मक अनुभूति एवं शारीरिक परिवर्त्तन—इन दोनों को एक-दूसरे से स्वतन्त्र मानता है।

हाइपोथैलेमिक सिद्धान्त के द्वारा जेम्स-लाँजे-सिद्धान्त की अनेक त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं। सर्वप्रथम तो यह कि गर्दन में सुषुम्ना (Spinal cord) के टूट जाने से जेम्स-लाँजे-सिद्धान्त संवेगात्मक अनुभूति की संभावना नहीं मानता; क्योंकि ऐसी परिस्थिति में सभी अन्तरावयव-सम्बन्धी प्रतिक्रियाएँ रुक जाती हैं। किन्तु हाइपोथैलेमस की क्रियाएँ जारी रहती हैं। फलतः हाइपोथैलेमस में उत्पन्न आवेश (Impulse) बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) में चला जाता है और व्यक्ति को संवेगों की अनुभूति होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जिसकी व्याख्या जेम्स-लाँजे

सिद्धांत नहीं कर पाता, उसकी व्याख्या हाइपोथैलेमिक सिद्धांत के आधार पर हो जाती है।

जेम्स-लाँजे-सिद्धांत की एक दूसरी प्रधान त्रुटि भी हाइपोथैलेमिक सिद्धांत द्वारा दूर हो जाती है। ऐड्रीनिन को इन्जेक्शन के द्वारा खून में पहुँचाये जाने पर शारीरिक परिवर्त्तन तो होते हैं, किन्तु संवेगों की अनुभूति नहीं होती। इसकी व्याख्या जेम्स-लाँजे-सिद्धांत नहीं कर पाता। किन्तु हाइपोथैलेमिक सिद्धांत इसकी व्याख्या सम्यक् प्रकार से करता है। इस सिद्धांत के अनुसार संवेगों की अनुभूति हाइपोथैलेमस में उत्पन्न आवेश (Impulse) के कारण होती है, न कि अन्तरावयव-परिवर्त्तनों (Visceral changes) के कारण। अतएव, स्पष्ट है कि संवेगात्मक अनुभूति स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न होती है तथा वह अन्तरावयव-परिवर्त्तनों (Visceral changes) पर नहीं निर्भर करती। हाइपोथैलेमिक सिद्धांत की विशेषताओं के उल्लेख के उपरान्त उसकी कुछ त्रुटियों की ओर भी पाठक का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। हाइपोथैलेमस को उत्तेजित करने से जो संवेगात्मक व्यवहार उत्पन्न होते हैं, वे स्वभावतः उत्पन्न संवेगात्मक व्यवहार की अपेक्षा क्षणिक होते हैं तथा उनमें अभियोजन की क्षमता (Capacity of adjustment) भी बहुत कम मात्रा में पायी जाती है। इससे यह लक्षित होता है कि हाइपोथैलेमस के सिवा भी स्नायु-मंडल (Nervous ssystem) के कुछ ऐसे भाग हैं, जो संवेगात्मक व्यवहार से सम्बन्धित हैं। जहाँ तक संवेगात्मक परिस्थिति के प्रति अभियोजन (Adjustment) का प्रश्न है, बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) की प्रधानता स्पष्ट है। बृहन्मस्तिष्कीय बल्क (Cerebral cortex) की ही यह देन है कि व्यक्ति संवेगात्मक परिस्थिति में संवेगात्मक व्यवहारों द्वारा अपने को सफलतापूर्वक अभियोजित कर लेता है। हाइपोथैलेमिक सिद्धांत में और भी कितनी ही त्रुटियाँ हैं, जिनके कारण यह सिद्धांत सर्वमान्य नहीं हो सका है।

संवेग-सिद्धान्तों के सम्बन्ध में निष्कर्ष

ऊपर जेम्स-लाँजे-सिद्धांत तथा हाइपोथैलेमिक सिद्धांत का विवेचन प्रस्तुत किया जा चुका है। उस विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न तो जेम्स-लाँजे-सिद्धांत ही संवेगात्मक अनुभूति एवं संवेगात्मक व्यवहार के सम्बन्ध में पूर्ण रूप से प्रकाश डालता है और न

हाइपोथैलेमिक सिद्धांत ही । वस्तुतः दोनों सिद्धांतों के कथन में आंशिक सत्यता है, पूर्ण सत्यता किसी में नहीं। हम प्रायः संवेगात्मक अनुभूति के समय शारीरिक परिवर्त्तनों का भी अनुभव करते हैं । किन्तु ये शारीरिक परिवर्त्तन संवेगात्मक अनभूति के लिए आवश्यक हैं, यह नहीं माना जा सकता । इस प्रकार जेम्स-लाँजे-सिद्धांत, जो संवेगात्मक अनुभूति के लिए शारीरिक परिवर्त्तनों को आवश्यक बतलाता है, आंशिक रूप में ही सत्य माना जा सकता है । ठीक यही बात हाइपोथैलेमिक सिद्धांत के बारे में भी कही जा सकती है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि हाइपोथैलेमस का संवेगात्मक व्यवहार में प्रधान हाथ रहता है, किन्तु हाइपोथैलेमस को संवेगों का केन्द्र मानना विवादास्पद है । हाइपोथैलेमिक सिद्धांत के अनुसार हाइपोथैलेमस ही संवेगों का केन्द्र है। अतः इस सिद्धांत में भी आंशिक सत्यता ही प्रतीत होती है । अन्त में, यह कह देना भी समीचीन प्रतीत होता है कि वही सिद्धांत संवेगों की सम्यक् प्रकार से व्याख्या कर सकता है, जिसमें इन दोनों सिद्धांतों की कुल आवश्यक बातों का सुन्दर समन्वय हो और जो संवेग-सम्बन्धी अनुसंधानों पर आधारित हो ।

—:o:—

सत्रहवाँ अध्याय

बुद्धि का स्वरूप

बुद्धि की परिभाषा तथा स्वरूप के संबंध मे मत-मतान्तरों की एक दीर्घ परम्परा है। प्राय. इसकी परिभाषा निर्धारित करने के पहले ही मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि-परीक्षणों (Intelligence tests) का निर्माण कर मनुष्य की बौद्धिक क्षमता को मापने की चेष्टा की है। इस प्रकार बुद्धि की परिभाषा निश्चित होने के पहले ही मानसिक परीक्षण-आन्दोलन (Mental testing movement) प्रारम्भ हो गया। इस आन्दोलन की आलोचना करते हुए बोरिंग (Boring) ने कहा है—"परीक्षण जो परीक्षा करते हैं, वही बुद्धि है।"* इसी तरह का विचार एक दूसरे मनोवैज्ञानिक हिलगार्ड (Hilgard) ने भी व्यक्त किया है। बुद्धि-परीक्षण-आन्दोलन की ओर संकेत करते हुए उन्होने कहा—"बुद्धि-परीक्षण जो कुछ मानता है, वही बुद्धि है।"† अतः बुद्धि के सच्चे स्वरूप को समझने के लिए बुद्धि-परीक्षण (Intelligence tests) के इतिहास पर दृष्टिपात करना अनिवार्य है।

गाल्टन (Galton) और कैटेल (Cattell) का विश्वास था कि उनके परीक्षणों द्वारा मानसिक क्षमता (Mental capacity) के आधार-भूत तत्त्वों (Basic units) की माप हो जाती है। किन्तु बुद्धि की माप तबतक जनप्रिय न हो सकी, जबतक बीने (Binet) के परीक्षण लोगों के समक्ष न आ गये। बीने (Binet) के बुद्धि-परीक्षणों ने लोगो को अपनी ओर आकर्षित किया; क्यों कि अध्ययन-कार्य में वे बड़े उपयोगी सिद्ध हुए। बीने के बुद्धि-परीक्षणों के आधार पर विभिन्न अवस्थाओं के बच्चों में भेद करना तथा उन्हें वर्ग-स्तरों (Grade levels) में बाँटना आसान हो गया। फलतः स्कूल में विभिन्न अवस्थाओं के बच्चों की प्रगति का पूर्वकथन (Prediction) सम्भव हो गया। यद्यपि बुद्धि के

* "Intelligence is what the tests test."—Boring (1923).

† "Intelligence is what an intelligence test measures."
—Hilgard : Introduction to Psychology (1953), P 366.

सम्बन्ध में बीने का सैद्धान्तिक दृष्टिकोण कुछ अस्पष्ट था, पर उनके बुद्धि-परीक्षण को दृष्टि में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि बुद्धि के सम्बन्ध में उनका सैद्धान्तिक दृष्टिकोण सार्वभौम (Global) था। उनका कहना था कि बुद्धि एक सामान्य क्षमता (General capacity) है। बुद्धि का यह सार्वभौम विचार (Global concept) सफल जान पड़ा तथा बीने के बाद यह क्रमशः स्थापित होता गया।

परिभाषाएँ—बुद्धि की कई प्रकार की परिभाषाएँ की गयी है। फ्रीमैन (Freeman) ने उन सभी परिभाषाओं को चार वर्गों में बाँटा है। प्रथम वर्ग की परिभाषाएँ व्यक्ति के सम्पूर्ण वातावरण अथवा उसके कुछ पहलुओं के प्रति उसके अभियोजन पर जोर देती हैं।* दूसरे वर्ग की परिभाषाएँ सीखने की योग्यता को बुद्धि की प्रधान विशेषता के रूप में स्वीकार करती है। इस विचार से प्रभावित होकर मनोवैज्ञानिकों ने कई अनुसन्धान किये हैं। उन्होंने बुद्धि-परीक्षण-फलाक (Intelligence test scores) तथा सीखने की गति (Rate of learning) में सह-सबध (Correlation) पाया है। अतः यह कहा जा सकता है कि बुद्धि और सीखने की योग्यता में विध्यात्मक सबध (Positive relation) है। तीसरे वर्ग की परिभाषाए बुद्धि को अमूर्त्त चिन्तन (Abstract thinking) की योग्यता मानती है। इस सम्बन्ध में कई अध्ययन हुए है। समस्या-समाधान-सम्बन्धी पाठ (Problem solving tasks), जिनमें अमूर्त्त चिन्तन की आवश्यकता पड़ती है, की तुलना बुद्धि-परीक्षण-लब्धाक (Intelligence test-score) से की गई है। बुद्धि-परीक्षण-लब्धाक के साथ इनका निश्चित रूप से सह-सम्बन्ध (Corretion) पाया गया है। आधुनिक बुद्धि-परीक्षण बुद्धि में निहित अमूर्त्त चिन्तन पर ही अधिक जोर देते हैं। चौथे तथा अन्तिम वर्ग की परिभाषाओं का क्षेत्र अधिक विस्तृत

---

*"Intelligence is a general capacity of the individual consciously to adjust his thinking to new requirements."
—Stern (1914).

"Intelligence is the ability to adjust adequately to new and different situation."—Cruze : Psychology for college students, 1951, P. 291.

†"An individual is intelligent in proportion as he is able to carry on abstract thinking."—Terman (1921).

है; क्योंकि इनमें पहले के तीनों वर्गों की परिभाषाएँ अंतर्भुक्त है। उदाहरण के लिए, वेस्लर (Wechsler) की परिभाषा को लें। उनके अनुसार "अभिप्राय-युक्त कार्य करने, तर्कयुक्त चिन्तन करने तथा अपने वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से व्यवहार करने की व्यक्ति की संपूर्ण अथवा सार्वभौम क्षमता ही बुद्धि है।" ❖ स्टोड्डार्ड (Stoddard) ने भी बुद्धि की एक ऐसी ही परिभाषा दी है, जिसमें पूर्वोल्लिखित परिभाषाओं की प्रायः सभी बातें आ गयी है। †

उपर्युक्त परिभाषाओं पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो बुद्धि-परीक्षण (Intelligence tests) उपलब्ध हैं, वे बुद्धि के सभी पहलुओं की माप नहीं कर पाते। फलतः बुद्धि की परिभाषाओं और बुद्धि की वास्तविक मापों (Measurements) में पूर्ण सामंजस्य नहीं दीख पड़ता। बुद्धि की परिभाषाओं की समीक्षा करते हुए यह कहा जा सकता है कि बुद्धि की परिभाषाएं किसी-न-किसी रूप में यह स्वीकार करती हैं कि बुद्धि एक प्रकार की सामान्य विशेषता (General attribute) है, जो प्रत्येक व्यक्ति में पायी जाती है तथा यह निर्णय करती है कि वह किस प्रकार विभिन्न समस्या-परिस्थितियों (Problem situations) के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से व्यवहार करने में समर्थ हो सकेगा। बुद्धि-सम्बन्धी यही परिभाषा अधिक लोगों को मान्य है। अब बुद्धि के स्वरूप के संबंध में कुछ प्रमुख सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों पर विचार उपस्थित किये जायेंगे।

बुद्धि-सम्बन्धी प्रमुख सिद्धान्त

अट्ठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों में दार्शनिकों ने मानसिक न्यूनता (Mental deficiency) पर विचार करते हुए बुद्धि के स्वरूप पर प्रकाश डाला। अब उनके विचारों का ऐतिहासिक महत्त्व-मात्र रह गया

❖ "Intelligence is the aggregate or global capacity of the individual to act purposefully, to think rationally and to deal effectively with his environment."—Wechsler (1944).

† "Intelligence is the ability to undertake activities that are characterised by (1) difficulty, (2) complexity, (3) abstractness, (4) economy, (5) adaptiveness, (6) social value, (7) the emergence of originals, and to maintain such activities under conditions that demand a concentration of energy and resistance to emotional forces."—Stoddard (1943).

है। यहाँ बुद्धि के आधुनिक सिद्धात के रूप मे स्पीयरमैन (Spearman) के द्वितत्त्व-सिद्धात (The two-factor theory) का उल्लेख किया जायगा ।

स्पीयरमैन का द्वितत्त्व-सिद्धान्त (Spearman's two-factor theory)—स्पीयरमैन ने बुद्धि का अपना प्रथम विश्लेषण सन् १९०४ ई० मे प्रकाशित किया । बाद मे उन्होने इसे परिमार्जित रूप दिया । उनके विस्तृत एव परिमार्जित विचार 'मनुष्य की योग्यताएँ' (The Abilities of Man) नामक पुस्तक मे प्रकाशित हुए । उनके अनुसार बौद्धिक योग्यताओ का विश्लेषण करने पर उनमे दो प्रकार के तत्त्व (Factors) पाये जाते है—एक को उन्होंने सामान्य तत्त्व (General factor) तथा दूसरे को विशिष्ट तत्त्व (Specific factor) कहा है । सामान्य तत्त्व (General or 'G' factor) सभी प्रकार की मानसिक क्रियाओ मे निहित समझा जाता है, किन्तु विशिष्ट तत्त्व विशेष प्रकार की क्रिया मे ही पाया जाता है। विभिन्न क्रियाओ के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के विशिष्ट तत्त्व ('S' factors) होते है । उदाहरण के लिए सगीतात्मक योग्यता, गणितात्मक योग्यता तथा यान्त्रिक योग्यता (Mechanical ability)—ये सभी मुख्यत बुद्धि के विशिष्ट तत्त्वो पर निर्भर करती है। यदि सगीतात्मक योग्यता का विश्लेषण किया जाय, तो यह जान पडेगा कि वह दो बातो पर निर्भर है—(१) कुछ मात्रा मे बुद्धि के सामान्य तत्त्व की उपस्थिति तथा (२) अत्यधिक मात्रा मे बुद्धि के विशिष्ट तत्त्वो, जैसे कोटि, अर्थात् ध्वनि का चढाव-उतार (Pitch), तीव्रता (Intensity), नाद-गुण (Timbre), सगीतात्मक स्मृति (Musical memory), लय (Rhythm) इत्यादि का वर्त्तमान रहना। स्पीयरमैन के अनुसार महान सगीतज्ञ वही हो सकता है, जिसमे अधिक मात्रा मे सामान्य तत्त्व तथा वे विशिष्ट तत्त्व, जो सगीतात्मक क्रियाओ मे निहित रहते है, पाये जायँ। इससे यह स्पष्ट है कि सामान्य तत्त्व सभी प्रकार की मानसिक क्रियाओ को प्रभावित करते है, किन्तु विशिष्ट तत्त्वो से विशेष प्रकार की क्रियाएँ ही प्रभावित होती है ।

सामान्य तत्त्व ('G' factor) को स्पीयरमैन ने 'मानसिक शक्ति' (Mental energy) कहा है। बुद्धि को लेकर जो व्यक्ति-विभिन्नताएँ पायी जाती है, उनकी व्याख्या मे स्पीयरमैन ने सामान्य तत्त्व के अतिरिक्त विशिष्ट तत्त्वों का विचार भी आवश्यक माना है। कारण, यदि दो व्यक्तियो

का सामान्य बौद्धिक स्तर (General intellectual level) एक-सा हो तोभी दोनों में अन्तर पाया जा सकता है, जो विशिष्ट तत्त्वों ('S' factors) के कारण ही संभव है। यहाँ यह उल्लेख्य है कि यद्यपि स्पीयरमैन ने बुद्धि के दो तत्त्वों का उल्लेख किया है, किन्तु बुद्धि के सच्चे परिचायक के रूप में उन्होंने सामान्य तत्त्व ('G' factor) को ही स्वीकार किया है। उन्होंने सामान्य तत्त्व का बुद्धि के साथ तादात्म्य (Identification) स्थापित किया है। स्पीयरमैन के इस दृष्टिकोण का रेक्स नाईट (Rex Knight) ने भी समर्थन किया है। उन्होंने कहा है--

"यह सामान्य तत्त्व प्रमुख है; क्योंकि हमलोग इसका बुद्धि के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकते हैं। स्पीयरमैन स्वतः इसे 'जी' कहता है....तोभी वह प्रत्यक्षतः इसका बुद्धि के साथ एक से अधिक अध्यायों में तादात्म्य स्थापित करता ह, और जैसा हमलोग देखेंगे, यह तादात्म्य पूर्णतः उचित भी है।"

स्पीयरमैन का द्वितत्त्व-सिद्धांत सभी मनोवैज्ञानिकों को मान्य नहीं। थौर्नडाइक, टॉमसन तथा थर्स्टन इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने इसकी आलोचना की है तथा बुद्धि के स्वरूप पर अपने-अपने ढंग से प्रकाश डाला है।

थौर्नडाइक का बहुतत्त्व सिद्धान्त या संश्लेषणात्मक सिद्धान्त (Thorndike's Multifactor or Synthetic theory)

थौर्नडाइक ने स्पीयरमैन के सिद्धांत की आलोचना करते हुए बुद्धि के बहुतत्त्व या संश्लेषणात्मक सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उन्होंने बुद्धि के सामान्य तत्त्व ('G' factor) के बदले बौद्धिक योग्यता में निहित विशिष्ट क्रियाओं (Specific acts) को मान्यता दी। उन्होंने बतलाया कि उन विशिष्ट क्रियाओं में कुछ सामान्य बातें भी पायी जा सकती हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धि के विभिन्न परीक्षणों (Tests) में अन्तर-सहसंबंधों (Inter-correlations) का पाया जाना स्वाभाविक ही है। स्पष्ट है कि विभिन्न बुद्धि-परीक्षणों में पाये जानेवाले अन्तर-सहसंबंधों की थौर्नडाइक द्वारा की गई व्याख्या स्पीयरमैन की व्याख्या से भिन्न है।

थौर्नडाइक के अनुसार बुद्धि का निर्माण कई पृथक्-पृथक् तत्त्वों से होता है। वे बुद्धि को सामान्य नहीं मानते, वरन् बुद्धि में निहित विशिष्ट कार्यों का उल्लेख करते हैं। उन्होंने बुद्धि को तीन विस्तृत प्रकारों में बाँटने

की चेष्टा की है। वे ये हैं—(१) सामाजिक बुद्धि (Social intelligence), (२) मूर्त्त बुद्धि (Concrete intelligence) तथा (३) अमूर्त्त बुद्धि (Abstract intelligence)। स्पष्टतः यह वर्गीकरण मानसिक संगठन (Mental organization) का नहीं, प्रत्युत कार्यों के प्रकारों का है। कार्यों के प्रकारों के आधार पर ही तीन प्रकार की बुद्धि मान ली गयी है। थौर्नडाइक का कहना है कि मानसिक संगठन का निर्माण सरल बौद्धिक क्रियाओं के समूह से होता है।

स्पीयरमैन और थौर्नडाइक के सैद्धांतिक दृष्टिकोण में अन्तर है, पर जहाँ तक वास्तविक बुद्धि-माप का प्रश्न है, दोनों में कोई मौलिक अन्तर नहीं जान पड़ता। बुद्धि-माप के जैसे मानदंडों मे थौर्नडाइक की अभिरुचि थी, स्पीयरमैन ने भी मूलतः वैसे ही मानदंड अपनाये थे।

टॉमसन (Thompson, 1939) ने भी स्पीयरमैन के सिद्धांत की आलोचना की, पर उन्होंने भी सामान्य तत्त्व ('G' factor) के व्यावहारिक महत्त्व को स्वीकार किया। उन्होंने स्पीयरमैन की आलोचना करते हुए बतलाया है कि कई बुद्धि-परीक्षणों में जो अन्तर-सहसंबंध (Inter-correlations) पाये जाते हैं, उनका कारण सामान्य तत्त्व ('G' factor) नहीं, बल्कि कुछ स्वतन्त्र तत्त्वों का सामान्य रूप से उन सभी बुद्धि-परीक्षणों में पाया जाना है। जब ये सभी बुद्धि-परीक्षण कुछ एक ही प्रकार के स्वतन्त्र तत्त्वों को मापते हैं, तब ऐसा लगता है कि सभी एक ही सामान्य तत्त्व की माप कर रहे हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि वे किसी एक ही सामान्य तत्त्व की माप नहीं करते।

बुद्धि का तात्त्विक दृष्टिकोण (Factorial approach of intelligence) :—तात्त्विक दृष्टिकोण को अपनाकर बुद्धि के सम्बन्ध में अध्ययन करनेवाले मनोवैज्ञानिकों में थर्स्टन का नाम उल्लेख्य है। उनका अध्ययन बुद्धि के अनेक परीक्षणों के बीच पाये जानेवाले अन्तर-सहसम्बन्धों (Inter-correlations) पर आधारित था। उन्होंने अपने अध्ययन में स्पीयरमैन की अपेक्षा परिगणनात्मक विश्लेषण (Statistical analysis) की अधिक उन्नत पद्धतियों (Improved techniques) को अपनाया था। फलतः वे बुद्धि के स्वरूप के सम्बन्ध में स्पीयरमैन से भिन्न निष्कर्ष पर पहुँचे। उन्होंने एक बुद्धि-परीक्षण (Intelligence test) प्रकाशित किया, जो उनके तत्त्व-विश्लेषण (Factor-analysis) के

परिणामों पर आधारित था । तत्त्व-विश्लेषण-पद्धति (Factor analysis technique) का प्रयोग प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कैटेल (Cattle, 1946) ने व्यक्तित्व के अध्ययन मे किया । यहाँ तत्त्व-विश्लेषण-पद्धति का विशद विवेचन अपेक्षित नही, पर संक्षेप में यह बतला देना उचित जान पड़ रहा है कि यह पद्धति बौद्धिक क्रिया में होनेवाले परिवर्त्तनों (Variations) की व्याख्या में सहायता प्रदान करती है । वह कम-से-कम संख्या में ऐसे तत्त्वों (Factors) का निर्णय करती है, जिनके आधार पर बौद्धिक क्रिया में होनेवाले परिवर्त्तनों की व्याख्या की जा सकती है ।

थर्स्टन के अनुसार बौद्धिक क्रिया कई तत्त्वो (Factors) की अभिव्यक्ति है, न कि केवल एक सामान्य तत्त्व ('G' factor) की । उन्होने बुद्धि-परीक्षण-निर्माण के दो प्रधान लक्ष्यों का उल्लेख किया है—(१) बुद्धि के प्रारम्भिक तत्त्वों का पृथक्करण तथा (२) ऐसे बुद्धि-परीक्षणों का निर्माण, जो सभी तत्त्वों की अलग-अलग परीक्षा करने मे समर्थ हों । प्रारम्भ में (१९३५, १९३८) उन्होंने कई ऐसे तत्त्वों को घोषित किया । किन्तु, बाद में अपने विचारों में संशोधन कर इस प्रकार के ६ तत्त्वों का ही उल्लेख किया । वे ये है—(१) स्थानिक (Spatial); (२) सांख्यिक (Numerical); (३) वाचिक सम्बन्ध (Verbal relations), (४) स्मृति (Memory); (५) वाक्पटुता (Word-fluency) तथा (६) विचार-शक्ति (Reasoning) ।

तत्त्व-विश्लेषण-पद्धति को अपनाकर केली (Kelley) ने भी बुद्धि के स्वरूप का अध्ययन किया । उन्होंने बुद्धि-निर्माण के निम्नांकित तत्त्वों का उल्लेख किया है—

(१) वाचिक योग्यता (Verbal ability),
(२) सांख्यिक योग्यता (Numerical ability),
(३) स्थानिक सम्बन्धो के साथ सफल व्यवहार करने की क्षमता (Ability to deal with spatial relations),
(४) क्रियात्मक योग्यता (Motor ability)
(५) संगीतात्मक मेधा (Musical talent);
(६) यान्त्रिक योग्यता (Mechanical ability);
(७) सामाजिक बुद्धि (Social intelligence);
(८) अभिरुचियाँ (Interests);
(९) शारीरिक बल (Physical strength) ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बुद्धि के स्वरूप के सम्बन्ध मे मनोविज्ञानवेत्ता एकमत नहीं हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तो बुद्धि-निर्माण मे अबौद्धिक तत्त्वों (Non-intellective factors) तक की चर्चा की है। ऐसे मनोवैज्ञानिकों मे वेस्लर (Wechsler) तथा गुडएनफ (Good-enough) के नाम उल्लेखनीय है। वेस्लर ने बुद्धि को सम्पूर्ण व्यक्तित्व की एक क्रिया माना है। उन्होंने बुद्धि मे संवेगात्मकतथा इच्छात्मक पहलुओं को भी स्थान दिया है।* बुद्धि के स्वरूप के सम्बन्ध मे गुडएनफ की भी कुछ ऐसी ही धारणा है। उन्होंने बुद्धि की व्याख्या के लिए आत्म-नियंत्रण, आकांक्षा के स्तर, उपलब्धि मे अभिरुचि तथा उत्साह आदि तत्त्वों को आवश्यक माना है।†

बुद्धि-माप

(Measurement of Intelligence)

बुद्धि के प्रारम्भिक परीक्षण (Early tests of intelligence)—वैयक्तिक विभिन्नताओं (Individual differences) के स्वरूप तथा उनके कारणों को जानने की अभिरुचि जैसे-जैसे बलवती होती गयी, वैसे-वैसे मनुष्य की बौद्धिक योग्यताओं की माप के लिए भी समुचित एवं वैज्ञानिक पद्धतियों का निर्माण होता गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे सर फ्रैंसिस गाल्टन (Sir Francis Galton) ने कई प्रकार के ऐन्द्रिक परीक्षणों (Sensory tests) का निर्माण किया, जिनके द्वारा उन्होंने ऐन्द्रिक विभेदीकरण (Sensory discrimination), ऐन्द्रिक प्रत्यक्षीकरण (Sensory perception) तथा ऐन्द्रिक तीक्ष्णता (Sensory acuity) की माप की। ये परीक्षण प्रधान

---

*....General intelligence is the function of the personality as a whole and is determined by emotion and conative factors....."—Wechsler, 1950.

†"That such factors as self-control, level of aspiration, interest and zest in achievement, and a host of other matters by which potential abilities are either energized or constricted in their manifestations play an important part both in performance on mental tests and in larger problems of real life is generally admitted..."—Goodenough : The Mathematical Analysis of Non-intellectual Traits, 1949; P. 291.

रूप से ऐन्द्रिक कार्यों (Sensory performances) की ही माप करते थे, किन्तु व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं (Reactions) से भी इनका निश्चित सम्बन्ध था। इनका प्रयोग कुछ इस प्रकार के मानव-व्यवहारों की माप के लिए भी किया गया, जिनमें कुछ हद तक मानसिक योग्यता की आवश्यकता होती है। अतः इन्हें बुद्धि-परीक्षण का अग्रदूत कहते हैं।

अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक कैटल (Cattell, 1890) ने भी कुछ मानसिक परीक्षणों (Mental tests) का निर्माण किया। अपने परीक्षणों के आधार पर उन्होंने कोलम्बिया-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में वैयक्तिक विभिन्नताओं का अध्ययन किया। इन परीक्षणों द्वारा प्रतिक्रिया की गति (Speed of reaction), ऐन्द्रिक तीक्ष्णता (Sensory acuity), स्मृति (Memory) तथा सरल मानसिक क्रियाओं की माप की गयी। कैटेल की अभिरुचि इस बात की खोज में थी कि वैयक्तिक विभिन्नताएँ किस हद तक पायी जाती हैं और उनका क्या स्वरूप होता है। अतः मानसिक परीक्षणों के व्यावहारिक उपयोग पर उनका ध्यान नहीं गया।

बीने-साइमन-बुद्धि-परीक्षण (Binet-Simon intelligence test)—सन् १९०० ई० के कुछ पहले फ्रांस के प्रसिद्ध मनोवज्ञानिक अल्फ्रेड बीने (Alfred Binet) पाठशाला में पढ़नेवाले बच्चों की मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का अनुसन्धान कर रहे थे। अनसन्धान के सिलसिले में उन्होंने पाया कि अल्पबुद्धि बच्चों को विशेष प्रकार की कक्षाओं में रखकर उनकी योग्यता के अनुकूल दी गई शिक्षा ही उपयोगी हो सकती है। सन् १९०४ ई० में एक जाँच-सभा बनाई गई, जिसका उद्देश्य था पेरिस की पाठशाला में पढ़नेवाले उन अल्पबुद्धि बच्चों का अध्ययन, जो पाठशाला के अध्यापन से लाभ उठाने में असमर्थ थे। बीने उस जाँच-सभा में नियुक्त किये गये। जाँच-सभा के सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि वह पता लगाये कि कितने बच्चे बुद्धि की कमी के कारण पाठशाला में असफल होते हैं और कितने अनुप्रेरणा (Motivation) की कमी के कारण। अतः एक ऐसे मानदंड (Scale) की आवश्यकता जान पड़ी, जिसके द्वारा बुद्धि की जाँच की जा सके। बीने ने बतलाया कि ऐसे मानदंड (Scale) का निर्माण किया जा सकता है, जिसमें मनोवैज्ञानिक परीक्षणों (Psychological tests) का एक क्रम (Series) हो और सभी परीक्षण समान कठिनाई के न होकर विभिन्न कठिनाइयों के हों। ऐसे मानदंड द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के बौद्धिक स्तर की माप की जा सकती है। उन्होंने साइमन के सहयोग से एक ऐसा

मानदंड तैयार किया, जो बीने-साइमन-मानदंड (Binet-Simon scale) के नाम से प्रसिद्ध है। सन् १९०५ ई० में प्रथम बार बीने-साइमन-मानदंड प्रकाशित हुआ। उस मानदंड में तीस क्रियाओं (Tasks) का समावेश किया गया। सरलतम क्रियाओं से लेकर जटिलतम क्रियाओं को एक क्रम के अनुसार रखा गया। सबसे पहले सरलतम क्रिया, फिर अपेक्षाकृत कठिन क्रिया और अन्ततोगत्वा सबसे कठिन क्रिया को स्थान दिया गया। इस मानदंड का प्रयोग अल्पबुद्धि तथा पाठशाला में औसत प्रगति करनेवाले, दोनों ही प्रकार के बच्चों पर किया गया। इस अध्ययन के आधार पर ही बीने तथा साइमन ने विभिन्न अवस्था-स्तरों (Age-levels) के लिए प्रतिमान (Norms) स्थापित किये।

बीने और साइमन ने बुद्धि-परीक्षणों के आधार पर पाठशाला के बच्चों के मानसिक विकास का अध्ययन किया। यदि कोई पाँच वर्ष का बच्चा मानदंड (Scale) को केवल प्रथम नौ क्रियाओं (Tasks) का ही सफल संपादन कर पाता है, जो औसत तीन वर्ष के बच्चे भी कर लेते हैं, तो यह कहा जायगा कि वह अपने मानसिक विकास मे दो वर्ष पीछे है। इसी प्रकार यदि पाठशाला का कोई बच्चा ६ प्रथम क्रियाओं से अधिक का सफल संपादन नहीं कर पाता, जो जड़ (Idiot) के द्वारा भी कर लिये जाते हैं, तो निश्चय ही उसे जड़ समझना उपयुक्त होगा।

बीने और साइमन ने अपने मौलिक मानदंड की त्रुटियों को दूर करने की दृष्टि से उसमें कई प्रकार के संशोधन किये। संशोधित मानदंड सन् १९०८ ई० और फिर सन् १९११ ई० में प्रकाशित हुआ। उसमें निम्नलिखित संशोधन किये गये—

(१) मानदंड मे प्रयुक्त तीस क्रियाओं (Tasks) को बढ़ाकर चौवन कर दिया गया।

(२) वे क्रियाएँ, जो विशिष्ट निपुणता (Special skill) पर निर्भर करनेवाली थीं, यथासंभव हटा दी गयीं।

(३) विभिन्न अवस्था-स्तरों (Age-levels) को दृष्टिकोण में रखकर क्रियाओं (Tasks) का समावेश किया गया। तीन वर्ष से लेकर प्रौढ़ावस्था (Adulthood) तक के लिए निश्चित बुद्धि-परीक्षणों का निर्माण किया गया। यहाँ यह उल्लेख्य जान पड़ता है कि अवस्था-विशेष के लिए निर्धारित परीक्षण में उन्हीं विषयों (Items) का समावेश किया जाता है, जो उस अवस्था

से कम अवस्थावाले बच्चों के लिए काफी कठिन हों तथा उससे अधिक अवस्थावाले बच्चों के लिए अति सरल हों।

स्टैनफोर्ड-बीने-मानदंड (Stanford-Binet scale):—

टर्मन (Terman) ने बीन-साइमन-मानदंड (Binet-Simon-scale) का संशोधन कर उसे स्टैनफोर्ड-बीने-मानदंड के नाम से सन् १९१६ ई० में प्रकाशित किया। टर्मन (Terman) और मेरिल (Merril) ने पुनः उसमें संशोधन किया। वह संशोधित स्टैनफोर्ड-बीने-मानदंड (Revised Stanford-Binet scale) सन् १९३७ ई० में प्रकाशित हुआ। उसकी निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख अनिवार्य जान पड़ता है—

(१) उस मानदंड में परीक्षण-सम्बन्धी अधिक विषयों (Items) का समावेश किया गया।

(२) उसे दो वर्ष से लेकर चौदह वर्ष की आयु तक के लिए उपयुक्त बनाया गया।

(३) उस मानदंड में दो वर्ष से लेकर चार वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए दो प्रकार के परीक्षणों को स्थान दिया गया—वार्षिक तथा अर्द्धवार्षिक।

(४) प्रौढ़ावस्था के व्यक्तियों की परीक्षा के लिए उसमें कई नये विषयों (Items) को शामिल किया गया।

(५) प्रत्येक अवस्था-स्तर के लिए छः या आठ विषय (Items) रखे गये।

(६) उस मानदंड में समान कठिनाई के दो फॉर्म (Forms) का प्रयोग किया गया। इससे परीक्षा करनेवाले को लाभ यह होता है कि वह किसी भी व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षा थोड़े समय के ही भीतर दो बार कर सकता है।

मौलिक बीने-साइमन-बुद्धि-परीक्षण तथा उसके अनेक संशोधित रूपों को वाचिक वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षणों (Verbal individual intelligence tests) के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस प्रकार के परीक्षण (Test) की विशेषता यह है कि किसी एक समय में एक ही व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षा की जाती है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि व्यक्ति-विशेष के सम्बन्ध में विश्वसनीय सूचनाएँ (Reliable information) प्राप्त हों। इस विशेषता के साथ-ही-साथ इसमें कुछ त्रुटियाँ भी हैं—

(१) इस परीक्षण में अधिक समय व्यय होता है; क्योंकि किसी एक समय में केवल एक ही व्यक्ति की परीक्षा हो सकती है।

(२) इसका प्रयोग बहुत कुशल विशेषज्ञ ही कर सकता है, साधारण परीक्षक नहीं।

(३) प्रयोज्य (Subject) को निर्देश (Instructions) देना, उसके प्रत्युत्तरों (Responses) को लिख लेना तथा उनका मूल्यांकन करना सर्वसुलभ नहीं है——यह बहुत कुछ परीक्षक की विचार-शक्ति तथा उसके अभियोजनों (Adjustments) पर निर्भर है।

(४) प्रयोज्य की मनोवृत्ति तथा उसके प्रत्युत्तरों के निर्णय मे परीक्षक के व्यक्तित्व का प्रभाव संभावित है।

शैफर (Shaffer) और लेजारस (Lazarus) ने बीने-साइमन-बुद्धि-परीक्षण की आलोचना करते हुए निम्नांकित बातों का उल्लेख किया है——

(१) बीने-साइमन-बुद्धि-परीक्षण जन्मजात योग्यता की जाँच नही करता। इसमें वाचिक विषयों (Verbal items) का प्रयोग किया जाता है, जो शैक्षिक (Educational) तथा सांस्कृतिक अनुभवों से प्रभावित होते है।

(२) बुद्धि-फलांक (Intelligence score) की व्याख्या मे उन अबौद्धिक तत्त्वो (Non-intellective factors) पर, जो बौद्धिक क्रिया को प्रभावित करते है, विचार नहीं किया जाता। उदाहरणार्थ, बुद्धि-फलांक की व्याख्या में हठ, आत्मविश्वास, चंचलता इत्यादि व्यक्तित्व की विशेषताओं पर कोई विचार नहीं किया जाता।

(३) यह परीक्षण चौदह या पन्द्रह वर्ष की आयु से ऊपर के व्यक्तियों के लिए अनुपयुक्त है।

(४) यह मानसिक योग्यता की माप का एक ही सूचनांक (Index) उपस्थित करता है। इसमें विभिन्न प्रकार की बौद्धिक क्रियाओं के लिए विभिन्न मापों (Measures) की गुजाइश नहीं।

(५) इसके आधार पर शैक्षिक उपलब्धि (Academic achievement) का पूर्वकथन सदा एक-सा नहीं होता।

(६) इसके आधार पर प्राप्त बुद्धि-लब्धि (I. Q.) बुद्धि का एक दुर्बल मानदंड है।

वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण
(**Verbal group tests of intelligence**)

कम समय में अधिकाधिक व्यक्तियों की बुद्धि की जाँच की आवश्यकता ने

मनोवैज्ञानिकों का ध्यान सामूहिक बुद्धि-परीक्षणो (Group intelligence tests) की ओर आकृष्ट किया। स्टैनफोर्ड-बीने-परीक्षण (Stanford-Binet test) मे अति कुशल परीक्षक को भी प्रत्येक व्यक्ति की जाँच मे लगभग एक घंटा समय लग जाता है। सामहिक बुद्धि-परीक्षणो मे एक ही साथ अनेक व्यक्तियो की जाँच हो जाती है। सभी व्यक्तियो को एक ही तरह के रिक्त पत्र (Blanks) दिये जाते हैं, जिनमे कुछ रिक्त स्थान होते हैं। सभी को ठीक एक ही तरह के निर्देश (Instructions) दिये जाते हैं। सभी को निर्देशन-पुस्तिका (Manual of directions) से एक-एक शब्द सावधानीपूर्वक पढ़ना पडता है। सभी को रिक्त पत्र (Blanks) के रिक्त स्थानो की पूर्त्ति के लिए बराबर समय दिया जाता है। परीक्षण (Test) के अन्त मे परीक्षक एक हो टीका (Key) के सहारे सभी रिक्त पत्रो (Blanks) के लब्धाक (Score) निकालता है। लब्धाक प्राय विशेष प्रकार की मशीन द्वारा निकाला जाता है। फलत आत्मनिष्ठ निर्णय (Subjective judgment) की गुजाइश नही रह जाती और कई कुशल परीक्षको की भी आवश्यकता नही होती।

सन् १९१७-१८ ई० मे अमेरिका के सैनिको की जाच के लिए सामूहिक बुद्धि-परीक्षणो का आवश्यकता जान पडी। प्रथम विश्व-महायद्ध के शुरू होने के पहले ही अमेरिका के कुछ मनोवैज्ञानिक ऐसे बुद्धि-परीक्षणो का निर्माण कर रहे थे, जिनका प्रयोग व्यक्तियो के समह पर किया जा सके। अत विश्व-महायुद्ध शुरू होने पर जब उन्हे सनिको की जाँच के लिए सामूहिक बुद्धि-परीक्षणो का निर्माण करना पडा, तब उन्हे कुछ सुगमता का अनुभव हुआ। पहले की उपलब्ध सामग्रियो (Materials) के अतिरिक्त कुछ और नई सामग्रियाँ सगृहीत कर उन्होंने दो प्रकार के सामूहिक बुद्धि-परीक्षणो का निर्माण किया --(१) 'आर्मी-अल्फा' (Army Alpha) तथा (२) 'आर्मी-बीटा' (Army Beta)। 'आर्मी-अल्फा' का प्रयोग पढे-लिखे लोगो पर किया गया तथा 'आर्मी-बीटा' का निरक्षर लोगो पर। परीक्षणो के फलो (Results) स ये बाते ज्ञात हुई --

(१) ऐसे लोगो का पता चला, जो अपनी मन्दबुद्धिता के कारण सेना मे कोई भी स्थान पाने योग्य नही थे।

(२) कुछ ऐसे मन्दबुद्धि लोग भी पाये गये, जिनके लिए कर्त्तव्य-सबधी सरल क्रियाओ का प्रशिक्षण (Training) आवश्यक प्रतीत हुआ।

(३) कुछ ऐसे लोग भी थे, जिनमें अति कुशल विशेषज्ञ होने की क्षमता विद्यमान थी ।

(४) कुछ इस तरह के लोग भी पाये गये, जिनकी बुद्धि बड़े अफसर होने के लायक थी ।

प्रथम विश्व-महायुद्ध में इन सामूहिक बुद्धि-परीक्षणों की सफलता के फलस्वरूप द्वितीय विश्व-महायुद्ध के पहले और जब द्वितीय महायुद्ध चल रहा था, तब युद्ध और नौसेना-विभागों (War and Navy departments) ने सैनिकों के वर्गीकरण (Classification) के लिए कुछ सामूहिक बुद्धि-परीक्षणों के निर्माणार्थ मनोवैज्ञानिकों को नियुक्त किया । सर्वोन्नत तथा सुविकसित परीक्षणों में दो के नाम उल्लेख्य है--(१) नौसेना सामान्य वर्गीकरण-परीक्षण (Navy general classification test or NGCT) तथा (२) सैन्य सामान्य वर्गीकरण-परीक्षण (Army general classification test or AGGT) ।

आज भी सैन्य सामान्य वर्गीकरण-परीक्षण (AGCT) कई रूपों में विद्यमान है । क्रूज (Cruze) ने बतलाया है कि इसके द्वारा सन् १९—४१४६ ई० के बीच एक अरब से अधिक स्त्री-पुरुषों की जाँच की गई है । बाद में सैन्य सामान्य वर्गीकरण-परीक्षण (AGCT) में संशोधन हुआ और सेना में उस संशोधित परीक्षण का प्रयोग किया गया । मौलिक सामान्य वर्गीकरण-परीक्षण (Original AGCT) का प्रयोग सभ्य नागरिकों की बुद्धि-माप के लिए किया जाने लगा । जो फॉर्म (forms) अभी उपलब्ध हैं, उनका प्रयोग स्कूल और कॉलेज के प्रौढ़ विद्यार्थियों के समूहों पर किया जा सकता है । उनमें प्रधानतः तीन प्रकार के परीक्षण-विषय (Test items) हैं--(१) शब्दकोश-समस्याएँ (Vocabulary problems), जो वाचिक समझ (Verbal Comprehension) की माप करती हैं; (२) अंकगणित-शब्द-समस्याएँ (Arithmetic word-problems), जो संख्यात्मक चिन्तन (Quantitative thinking) को माप करती हैं तथा (३) ब्लॉक-परिगणन-समस्याएँ (Block counting problems), जिनके द्वारा स्थानिक चिन्तन (Spatial thinking) की माप की जाती है ।

वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण का प्रयोग :--वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण के सफल प्रयोग के लिए दो बातें अनिवार्य जान पड़ती हैं ।

पहली तो यह कि परीक्षक (Tester) को परीक्षण (Test) का सम्यक् ज्ञान हो और दूसरी, यह कि परीक्षण-सम्बन्धी निर्देशनों (Directions) से वह भलीभाँति परिचित हो। अतः यह अच्छा समझा जाता है कि परीक्षक पहले स्वयं अपनी परीक्षा कर ले और तब दूसरे लोगों पर परीक्षण को लागू करे। संभवतः ऐसा करने से वह परीक्षण के स्वरूप तथा परीक्षण-सम्बन्धी निर्देशनों (Directions) का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इन दोनो बातों के अतिरिक्त परीक्षण के पूर्व ही परीक्षण-परिस्थिति के कुछ यान्त्रिक पहलुओं (Mechanical aspects) पर विचार कर लेना आवश्यक होता है। परीक्षण-परिस्थिति के कुछ प्रधान यान्त्रिक पहलू (Mechanical aspects) निम्नांकित हैं--

(१) प्रयोज्य को बैठाने का समुचित प्रबन्ध,

(२) परीक्षण-रिक्तपत्रों (Test blanks) का वितरण,

(३) परीक्षण-सम्बन्धी विशेष प्रकार की पेंसिल इत्यादि का प्रबन्ध।

वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण के प्रयोग में पूर्वोल्लिखित सावधानियों के बाद भी कुछ ऐसे तत्त्व (Factors) रह जाते हैं, जो परीक्षण-फलों (Test results) की सत्यता (Validity) को संदिग्ध बना सकते हैं। वे ये हैं--

(१) परीक्षक इस बात के लिए सर्वथा निश्चित नहीं हो सकते कि प्रयोज्य (Subjects) अपनी योग्यता के अनुसार पर्याप्त सहयोग दे रहे हैं।

(२) यह भी निश्चय करना कठिन है कि जिस समय लोगों की परीक्षा की जा रही हो, उस समय वे शारीरिक और सांवेगिक (Emotional) संतुलन (balance) की स्थिति में हों।

(३) इस बात के लिए भी निश्चित होना कठिन है कि परीक्षण-परिस्थिति (Test-situation) में प्रयोज्य (Subjects) सहजता (Ease) का अनुभव कर रहे हैं।

(४) यह भी निश्चय नहीं किया जा सकता है कि प्रयोज्य (Subjects) अपने आस-पास वर्त्तमान लोगों के उत्तर की नकल नहीं कर रहे हैं।

इन संभावनाओं (Possibilities) का नियंत्रण वैयक्तिक परीक्षण-पद्धतियों (Individual testing techniques) द्वारा ही संभव है। इसीलिए वैयक्तिक परीक्षण-फल (Individual test-results) सामूहिक परीक्षण-फलों (Group test results) की अपेक्षा अधिक निश्चित (Accurate) समझे जाते हैं। पर इन सीमाओं के रहते हुए

भी ये सामूहिक बुद्धि-परीक्षण कुछ व्यावहारिक परिस्थितियों में प्रयोग के लिए अधिक उपयुक्त तथा उपयोगी समझ जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, यह पहले ही व्यक्त किया जा चुका है कि इनके प्रयोग द्वारा सैनिकों का वर्गीकरण बड़ी सफलता के साथ किया गया है। इसी प्रकार स्कूल तथा कॉलेज के विद्यार्थियों पर भी इनका प्रयोग सफलतापूर्वक हुआ है। स्कूल या कॉलेज में भरती करने के निमित्त विद्यार्थियों के चुनाव तथा पहले से वर्त्तमान विद्यार्थियों के पथ-प्रदर्शन--इन दोनों ही के लिए ये परीक्षण बड़े उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षण

(**Performance test of Intelligence**)

अबतक वैयक्तिक तथा सामूहिक वाचिक परीक्षणों (Individual and Group verbal tests) का ही उल्लेख किया गया है। यहाँ क्रियात्मक परीक्षणों का विवेचन प्रस्तुत किया जायगा। यों तो सभी बुद्धि-परीक्षण क्रिया (Performance) की ही माप करते हैं, किन्तु यहाँ 'क्रिया' शब्द का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ में किया जा रहा है। इससे उन परीक्षणों (Tests) का बोध होता है, जिनमें भाषा की समझ और उसके प्रयोग की बहुत ही कम आवश्यकता पड़ती है।* क्रियात्मक परीक्षणों में ऐसे विषयों (Items) का प्रयोग किया जाता है कि प्रयोज्य कार्यों द्वारा ही अपने प्रत्युत्तर (Responses) प्रकट करता है न कि भाषा द्वारा। इन क्रियात्मक परीक्षणों के आधार पर कुछ बुनियादी मनोवैज्ञानिक क्रियाओं, जैसे--तर्क-सम्बन्धों का प्रत्यक्षीकरण इत्यादि की प्रधान रूप से जाँच होती है। इन परीक्षणों को विशेष प्रकार के शैक्षिक (Educational) तथा सांस्कृतिक अवसरों की अपेक्षा नहीं। इनके द्वारा ऐसे व्यक्तियों की बुद्धि-माप सम्भव है, जो शिशु होने के कारण भाषा नहीं सीख सकते, जो निरक्षर हैं, जो मन्दबुद्धि (Feeble-minded) हैं और जो केवल विदेशी भाषा ही जानते हैं।

पिंटनर-पेटर्सन-क्रियात्मक मानदंड (Pintner-Paterson-Performance scale)—प्रथम क्रियात्मक मानदंड (Performance scale)

* The term performance is customarily applied to tests which call for minimal understanding and use of language."

—N. L. Munn : Psychology (1946), P. 426.

का प्रकाशन पिटनर और पेटर्सन ने सन् १९१७ ई० में किया उन्होंने अपने मानदंड (Scale) में पन्द्रह परीक्षणों (Tests) को सन्निहित किया। यह मानदंड चार वर्ष से लेकर पन्द्रह वर्ष की आयु के बच्चों के लिए उपयुक्त समझा गया। इस परीक्षण के अधिकांश विषय (Items) ऐसे थे, जिनका बाद के निर्मित क्रियात्मक परीक्षणों में भी प्रयोग किया गया। परीक्षण-विषयों में प्रधान ये थे---फार्म-बोर्ड (Form Board), चित्र-प्रहेलिकाएँ (Picture puzzles), चित्र-पूर्त्ति (Picture Completion), अनुकरण (Imitation) आदि।

पोर्टियस-भूलभुलैया-परीक्षण (Porteus Maze tests):— पोर्टियस (Porteus) ने क्रियात्मक परीक्षण के रूप में कागज-पेंसिल भूलभुलैया-परीक्षण (Paper-pencil Maze tests) का प्रयोग किया। उन्होंने अपने परीक्षण में तीन वर्ष से लेकर चौदह वर्ष की आयु के बच्चों के लिए उत्तरोत्तर कठिन भूलभुलैयों (Mazes) का प्रयोग किया। इस परीक्षण में प्रयोज्य (Subject) को प्रवेश-द्वार से शुरू कर निर्गमन-मार्ग तक पेंसिल से सही रास्ते को चिह्नित करना पड़ता है। जब उसकी पेंसिल भूलभुलैया के संकीर्ण मार्ग को पारकर जाती है, तब उसे भूलभुलैया की एक नई प्रति देकर पुनः सही मार्ग को चिह्नित करने के निर्देश दिये जाते हैं। यदि वह इस दूसरे प्रयत्न (Trial) में भी असफल हो जाता है, तो यह समझा जाता है कि वह उस विशेष अवस्था-स्तर (Age-level) के परीक्षण में असफल हो गया। १२ और १४ की आयु के बच्चों के परीक्षण में दो के बदले चार प्रयत्नों (Trials) के लिए अवसर दिये जाते हैं। स्टैनफोर्ड-बीने-परीक्षण (Stanford-Binet test) के सदृश इसके द्वारा भी मानसिक आयु (M. A.) तथा बुद्धि-लब्धि (I Q) का निर्णय किया जाता है।

अपने परीक्षण के पक्ष में पोर्टियस का कहना है कि बुद्धि के कुछ ऐसे पहलू (Aspects) भी हैं, जिनकी माप स्टैनफोर्ड-बीने-परीक्षण नहीं कर पाता। किन्तु उन पहलुओं की भी माप इस परीक्षण द्वारा हो जाती है। बुद्धि के वे पहलू हैं---स्थिर ध्यान, दूरदर्शिता और चातुरी की क्षमताएँ। पोर्टियस ने अपने परीक्षण को स्टनफोर्ड-बीने-परीक्षण के स्थानापन्न (Substitute) के रूप में नहीं ग्रहण किया, बल्कि उन्होंने इसे स्टैनफोर्ड-बीने-परीक्षण का पूरक माना। वास्तव में आदिम बुद्धि (Primitive intelli-

gence) की माप में जहाँ स्टैनफोर्ड-बीने-परीक्षण असफल हो जाता है, वहाँ पोटियस का परीक्षण उपयोगी सिद्ध होता है ।

फॉर्मबोर्ड-परीक्षण (Form-board test):—इस प्रकार के परीक्षण में प्रयोज्य को विभिन्न आकार के ब्लॉक दे दिये जाते हैं और उसे बोर्ड में निर्मित ब्लॉक के अनुरूप छेदों में उन्हें सुव्यवस्थित ढंग से रखना पड़ता है । इस परीक्षण का लब्धांक (Score) निकालते समय दो बातों पर ध्यान रखा जाता है । पहली तो यह कि ब्लॉक को उनके अनुरूप छेदों में रखने में प्रयोज्य को कितना समय लगता है, और दूसरी, यह कि प्रयोज्य कितनी गलतियाँ करता है । असमान आकार के छेदों में ब्लॉक रखने के प्रयासों की गणना गलतियों में की जाती है ।

फॉर्म-बोर्ड-परीक्षण बच्चों की जाँच के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है । फॉर्म-बोर्ड-परीक्षण में सेग्यून (Seguin) और गोडार्ड (Goddard) के फॉर्म-बोर्ड-परीक्षण बड़े प्रसिद्ध माने जाते हैं ।

वेस्लर-बेल्लव्यू-परीक्षण (Wechsler-Bellevue test):—सन् १९३७ ई० का संशोधित स्टैनफोर्ड-बीने-परीक्षण भी प्रौढ़ व्यक्तियों पर प्रयोग के लिए उपयुक्त नहीं सिद्ध हुआ । कारण, उसका प्रतिमान (Norm) बच्चों की परीक्षा पर आधारित था । इसके साथ ही, बुद्धि-लब्धि प्रौढ़ व्यक्तियों के परीक्षण के लिए एक अनुपयुक्त मानदंड (Inadequate measure) है । ऐसी स्थिति में, सन् १९३९ ई० के पहले तक प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए कोई भी उपयुक्त परीक्षण उपलब्ध नहीं हो सका । सन् १९३९ ई० में वेस्लर-बेल्लव्यू-परीक्षण का निर्माण हुआ और यह प्रौढ़ व्यक्तियों की बुद्धि-माप के लिए काफी जनप्रिय बन गया । इसका निर्माण इस प्रकार हुआ था कि इसके सहारे दस से लेकर साठ वर्ष तक के लोगों की बुद्धि-माप की जा सकती थी । फलस्वरूप, अभी तक प्रौढ़ व्यक्तियों की बुद्धि-माप के लिए वही एकमात्र उपयुक्त वैयक्तिक परीक्षण माना जाता है । शैफर और लेजारस (Shaffer and Lazarus) ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है ।

वेस्लर बेल्लव्यू-परीक्षण का प्रयोग मौखिक रूप से किया जाता है । इसमें दस सहायक परीक्षण (Sub-tests) होते हैं—पाँच वाचिक

❖ "In the modern clinic it ranks with the Binet as one of the most important tools of measurement."—Shaffer and Lazarus: Fundamental Concepts in Clinical Psychology (1952), P. 120.

(Verbal) और पाँच क्रियात्मक (Performance)। वाचिक मानदंड (Verbal scale) में निम्नलिखित सहायक परीक्षण (Sub-tests) सन्निहित रहते ह--(१) सूचना (Information), (२) समझ (Comprehension), (३) अंकगणित-सम्बन्धी तर्क या विचार-शक्ति (Arithmetical reasoning), (४) अंकों का स्मृति-विस्तार (Memory span for digits) और (४) सादृश्य (Similarities)। क्रियात्मक मानदड (Performance scale) में पूर्व-क्रियात्मक परीक्षणों (Performance tests) से बहुत कुछ मिलते-जुलते क्रियात्मक विषय (Performance items) सम्मिलित रहते है। वे ये है--(१) चित्र-विधान (Picture arrangement), (२) चित्र-पूर्त्ति (Picture Completion), (३) ब्लॉक-डिजाइन (Block design), (४) वस्तु-सग्रह (Object assembly) और अंक-प्रतीक (Digit Symbol)।

वेस्लर-बेल्लव्यू-परीक्षण एक विन्दु-मानदंड (Point scale) है। इस परीक्षण के लब्धांक (Score) की भी अभिव्यक्ति बुद्धि-लब्धि (I. Q.) में ही की जाती है। किन्तु वह बुद्धि-लब्धि (I. Q.) स्टैनफोर्ड-बीने-बुद्धि-लब्धि (Stanford-Binet I. Q.) से भिन्न अर्थ की होती है।

स्टैनफोर्ड-बीने-परीक्षण की तरह इसकी भी कुछ अपनी सीमाएँ (Limitations) है। लेकिन तो भी बुद्धि-परीक्षण के क्षेत्र में इसका अपना विशिष्ट स्थान है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता कदाचित् यह है कि इसके द्वारा स्टैनफोर्ड-बीने-परीक्षण के समान मानसिक योग्यता का केवल एक ही सूचनांक (Index) नही प्राप्त होता, बल्कि योग्यताओं के समुच्चय (Profile of abilities) की उपलब्धि हो जाती है। अन्त में यह कह देना समुचित जान पड़ता है कि यदि इसकी सीमाओ (Limitations) को दृष्टि में रखते हुए इसका प्रयोग किया जाय. तो यह बुद्धि-परीक्षण का एक मूल्यवान् उपकरण (Tool) सिद्ध हो सकता है।

सामूहिक क्रियात्मक परीक्षण
(**Group Performance Tests**)

आर्मी-बीटा (Army-Beta) प्रथम सामूहिक क्रियात्मक परीक्षण कहा जा सकता है। इसमें भाषा की बहुत थोड़ी-सी समझ ही पर्याप्त होती है। प्रयोज्यों (Subjects) को इतनी सुलभ भाषा मे निदश (Instruction)

दिये जाते है कि वे उन्हे भलीभाँति समझ सके अथवा भाषा की इस थोड़ी-सी समझ की अनिवार्यता को भी हटाने की दृष्टि मे परीक्षण की रीति को ही प्रयोज्यो (Subjects) के सामने प्रदर्शित कर दिया जाता है। प्रयोज्य कुछ रेखाएँ खीचकर, रिक्त पत्रों (Blanks) के कुछ रिक्त स्थानो को चिह्नित कर या कुछ इसी प्रकार की सरल प्रतिक्रियाओं (Simple reaction) के द्वारा अपनी योग्यताएँ प्रकट करते है।

क्रियात्मक परीक्षणों (वयक्तिक तथा सामूहिक) का मूल्यांकन--

क्रियात्मक परीक्षणो पर विभिन्न मनोवैज्ञानिको के विभिन्न मत है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि क्रियात्मक परीक्षणो (Performance tests) के लब्धाक (Score) बुद्धि के उपयुक्त मानदड नही है। उन्हे व्यावहारिक या क्रियात्मक योग्यता के मानदड के रूप मे ही ग्रहण करना उचित है। इसके विपरीत कुछ मनोवैज्ञानिको ने इन्हे वाचिक परीक्षणो (Verbal tests) मे उत्तम माना है। उनके अनुसार ये वाचिक परीक्षणो की अपेक्षा बुद्धि के अधिक उपयुक्त मानदड है।* सचमुच, निम्नांकित बातो को लेकर इनका महत्त्व स्वीकृत हो चुका है--

(१) इनके द्वारा छोटे बच्चो की बुद्धि-परीक्षा सभव है।

(२) इनके आधार पर विभिन्न भाषाओ तथा विभिन्न सस्कृतियो के व्यक्ति-समूहो की तुलना की जा सकती है।

(३) इनकी सहायता से ऐसे सैनिको की खोज हो जाती है, जिनमे पढ़ना-लिखना सीखने की क्षमता बिलकुल नही होती। ऐसी स्थिति मे सेना से उन्हे हटा देना सेना के लिए हितकर सिद्ध होता है।

(४) इन परीक्षणो के परिणामो (Results) को दृष्टि मे रखकर कुछ वर्गों के लोगो को उचित परामर्श दिया जा सकता है।

बुद्धि-परीक्षण-फलों की व्याख्या
(Interpretation of Intelligence Test Results)

मानसिक आयु Mental age or M. A.) बीने-बुद्धि-परीक्षणों से स्पष्ट हो चुका है कि विभिन्न अवस्था-स्तरो (Age levels) के लिए अलग-अलग परीक्षण निर्धारित किये गये है। यदि कोई बच्चा नौ वर्ष की आयु के लिए निर्धारित बुद्धि-परीक्षण मे सफल हो जाता है, तो उसकी

*"A perfect performance battery would be a better measure than a perfect verbal battery."—Alexander

मानसिक आयु (Mental age or M. A.) नौ वर्ष की समझी जायगी, उसकी वास्तविक आयु (Chronological age) चाहे जो भी हो। नौ वर्ष की मानसिक आयु का तात्पर्य यह है कि उस बच्चे की बुद्धि नौ वर्ष के औसत बच्चो की बुद्धि के समान है। यदि कोई बारह वर्ष का बच्चा नौ वर्ष की आयु के लिए निर्धारित बुद्धि-परीक्षण मे ही सफल हो पाता है, तो उसकी मानसिक आयु नौ वर्ष की ही कही जायगी, यद्यपि उसकी वास्तविक आयु (Chronological age) बारह वर्ष की है। इसी प्रकार यदि कोई छः वर्ष का बच्चा नौ वर्ष की आयु के लिए निर्धारित बुद्धि-परीक्षण मे सफल हो जाता है, तो उसकी मानसिक आयु नौ वर्ष की कही जायगी, यद्यपि उसकी वास्तविक आयु केवल छ वर्ष की ही है। जिस अवस्था के लिए जो बुद्धि-परीक्षण निर्धारित हो, यदि कोई उसी मे सफल हो पाता है, तो यह कहा जायगा कि उसकी मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु दोनों ही समान है।

बुद्धि-लब्धि (Intelligence Quotient or I. Q.):—

मानसिक आयु (M. A.) से व्यक्ति की योग्यता के स्तर (Level of ability) का ज्ञान होता है, उसकी सापेक्ष (Relative) तीव्र-बुद्धिता मन्दबुद्धिता तथा सामान्यबुद्धिता का ज्ञान नही होता। उदाहरणार्थ, यदि दो बच्चो की मानसिक आयु एक-सी हो, पर उनकी वास्तविक आयु भिन्न-भिन्न हो, तो यह नही कहा जा सकता कि दोनो एक-से बुद्धिमान है। इन दोनो मे जिसकी वास्तविक आयु कम होगी, वह दूसरे की अपेक्षा अधिक तीव्रबुद्धि समझा जायगा। इसी प्रकार इन दोनो मे जिसकी वास्तविक आयु अधिक होगी, वह अपेक्षाकृत मन्दबुद्धि समझा जायगा। अत स्पष्ट है कि मानसिक आयु से वास्तविक आयु तथा मानसिक आयु के परस्पर-सबंध का ज्ञान नहीं होता। फलत. मानसिक आयु का विकार सापेक्ष (Relative) तीव्रबुद्धिता, मन्दबुद्धिता तथा सामान्यबुद्धिता पर भी नही प्रकाश डाल पाता। यह कमी बुद्धि-लब्धि (I. .) के द्वारा पूर्ण होती है। बुद्धि-लब्धि (I. Q.) से यह ज्ञात होता है कि कोई व्यक्ति अपनी आयु के अन्य व्यक्तियो से अधिक बुद्धि का है या कम बुद्धि का।* बुद्धि-लब्धि की विधि का

* "I. Q. is merely a device used to indicate the relationship of an individual in intelligence to the general population of the country."—Cruze : Psychology for college students, P. 313.

सर्वप्रथम प्रयोग स्टर्न (Stern) ने सन् १९१२ ई० में किया। बुद्धि-लब्धि निम्नांकित विधि से निकाली जाती है--

$$\text{बुद्धि-लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times १००$$

यदि किसी की मानसिक आयु ५ वर्ष हो और वास्तविक आयु भी ५ ही वर्ष, तो इस विधि के अनुसार उसकी बुद्धि-लब्धि (I. Q.) १०० ($\frac{५}{५} \times १००$) होगी। इसी प्रकार किसी की मानसिक आयु ६ वर्ष हो और वास्तविक आयु ५ ही वर्ष तो उसकी बुद्धि-लब्धि १२० ($\frac{६}{५} \times १००$) होगी। ऐसे ही, यदि किसी की मानसिक आयु ४ ही वर्ष हो, यद्यपि उसकी वास्तविक आयु ५ वर्ष हो तो उसकी बुद्धि लब्धि ($\frac{४}{५} \times १००$) होगी।

यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक जान पड़ता ह कि सामान्य व्यक्तियों (Normal individuals) की मानसिक तथा वास्तविक आयु बराबर होने के कारण उनकी बुद्धि-लब्धि लगभग १०० होती है। १०० बुद्धि-लब्धि होने का तात्पर्य है औसत बुद्धि (Average intelligence)। जिनकी मानसिक आयु वास्तविक आयु से अधिक होती है, उनकी बुद्धि-लब्धि स्वभावतः १०० से अधिक होती है। १०० से अधिक बुद्धि-लब्धि से तीव्र-बुद्धिता का परिचय प्राप्त होता है। इसके विपरीत, जिनकी मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम होती है, उनकी बुद्धि-लब्धि १०० से कम होती है। १०० से कम बुद्धि-लब्धि मन्दबुद्धिता सूचित करती है।

बुद्धि-लब्धि के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने बच्चों को निम्नांकित वर्गों में बाँटने की चेष्टा की है--

विभिन्न वर्ग	बुद्धि-लब्धि (I. Q.)
जड़ (Idiot)	०---२५
मूढ़ (Imbecile)	२६---५०
मूर्ख (Moron)	५१---७०
मन्दबुद्धि (Dull)	७१---८०
निम्नसामान्य (Low normal)	८१---९०
सामान्य (Normal)	९१--११०
श्रेष्ठ या तीव्र (Superior or Bright)	१११--१२०
अति श्रेष्ठ या अति तीव्र (Very superior or very bright)	१२१---१४०

प्रतिभाशाली (Genius) ----------१४२ और इससे अधिक ।

बुद्धि-लब्धि-स्थैर्य (I. Q. Constancy):—इसपर विचार करने के पूर्व प्रतिदिन के जीवन में पायी जानेवाली तीव्रबुद्धिता तथा मन्द-बुद्धिता की संगति (Consistency) पर ध्यान देना वांछित जान पड़ता है । तीव्रबुद्धि व्यक्ति बराबर तीव्रबुद्धि ही रह जाते हैं तथा मन्द-बुद्धि व्यक्ति बराबर मन्दबुद्धि । इसके कई उदाहरण हैं—

जॉन स्टुअर्ट मिल (John Stuart Mill) ने तीन वर्ष की आयु में ग्रीक का अध्ययन शुरू कर दिया था । सात वर्ष की आयु में उन्होंने प्लेटो (Plato) की सारी रचनाओं को पढ़ लिया था। आठ वर्ष की आयु तक उन्होंने रेखागणित, बीजगणित इत्यादि का अध्ययन कर लिया था तथा बारह वर्ष की आयु में उन्होंने दर्शनशास्त्र का अध्ययन शुरू कर दिया था ।

चार्ल्स डिकेंस (Charles Dickens) का मानसिक विकास भी कुछ इसी प्रकार हुआ था । सात वर्ष की आयु के पहले ही उन्होंने एक दुखान्त नाटक (Tragedy) की रचना कर ली थी ।

तीव्रबुद्धिता के समान ही मन्दबुद्धिता की संगति (Consistency) के भी उदाहरण मिलते हैं । एक इस प्रकार के उदाहरण का उल्लेख मन (Munn) ने अपनी पुस्तक 'मनोविज्ञान' (Psychology) मे किया है । वह इस प्रकार है—

ग्रेस नाम की एक लड़की ने सात वर्ष की आयु में किंडरगार्टेन में प्रवेश किया। स्कूल के प्रारम्भिक वर्षों में वह किसी चीज को सीख सकती थी, किन्तु उसे याद रखने के लिए पर्याप्त रूप से अभ्यास की आवश्यकता पड़ती थी । किशोरावस्था के पूर्व ही वह दूसरे बच्चों से मिलने-जुलने में कठिनाई का अनुभव करने लगी। अन्ततः अन्य बच्चों से मिलना तथा उनके साथ रहना उसके लिए असंभव हो गया । स्कूल में भी उसकी प्रगति (Progress) रुक-सी गयी । पन्द्रह की आयु होते-होते शब्दों को पहचानने में कठिनाई का अनुभव करने लगी । सत्रह वर्ष की आयु में उसे पढ़ने, वर्ण-विवृत्ति (Spelling) तथा शब्दोच्चारण में कठिनाई होने लगी । ऐसी समस्याएँ जिनमें अंकगणित-संबंधी तर्क या विचार-शक्ति की आवश्यकता थी, उसकी समझ के परे की बात हो गयी । बीस वर्ष की आयु से वह काम-समस्या (Sex-problem) से आक्रांत रहने लगी । अन्ततोगत्वा उसने एक

होटल मे दासी का काम शुरू कर दिया। इस प्रकार एक प्रौढ व्यक्ति के रूप में उसका सामान्य मानसिक स्तर आठ या नौ वर्ष के लगभग ही रह गया ।

जब मानसिक बुद्धि मे स्थिरता सभव ह, तब बुद्धि-लब्धि (I. Q.) को भी एक हद तक स्थिर (Constant) माना जा सकता है । औसत तौर पर बुद्धि-लब्धि मे पाँच अको (+ या —) तक परिवर्त्तन सभावित है । बुद्धि-लब्धि का यह परिवर्त्तन (Variation) लगातार पाँच या ६ वर्षों तक चल सकता है । उदाहरण के लिए, जिनको बुद्धि-लब्धि ६ वर्ष की आयु मे १०० है, उनकी बुद्धि लब्धि मे सात, आठ, नौ, दस या ग्यारह की आयु तक सभवत पाँच अको का परिवर्त्तन हो सकता है, अर्थात्, उनकी बुद्धि-लब्धि ९५ या १०५ तक हो सकती है, ९५ से कम और १०५ से अधिक की गुजाइश नही। यहाँ 'सभवत ' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि इसके कुछ अपवाद भी पाये जाते है।

बुद्धि-लब्धि की स्थिरता (Constancy) के सबध मे यह कहा जासकता है कि कुछ सामान्य के भीतर यह सापेक्ष रूप से (Relatively) स्थिर होती है, इसमे विशेष परिवर्त्तन नही होते । किन्तु यह भी मानना उचित ही है कि इसमे कुछ परिवर्त्तन होते है। इस बात पर ध्यान नही देने मे इसके सबंध मे कई प्रकार की गलत धारणाएँ बन जाती है । बुद्धि-लब्धि के परिवर्त्तनो (Variations) के कारणो का उल्लेख करते हुए शैफर (Shaffer) और लेजारस (Lazarus) का कहना है कि "ये परिवर्त्तन उन माप-विधियो के स्वरूप की क्रिया-मात्र है, जिनका प्रयोग हमलोग योग्यता के मूल्याकन के लिए करते है ।" उदाहरणार्थ, स्टैनफोर्ड-बीने-परीक्षण मे जो क्रियाएँ सन्निहित है, यदि बच्चे के परीक्षण (Test) के पूर्व ही उस प्रकार की क्रियाओ को शिक्षा दे दी जाय, तो सभवत बच्चे की बुद्धि-लब्धि मे परिवर्त्तन हो जायगा । यदि कुछ बच्चो की बुद्धि-लब्धि सावेगिक कठिनाइयो (Emotional difficulties) के कारण कम हो और उनको सावेगिक कठिनाइयो को मनोवैज्ञानिक विधियो से दूर कर दिया जाय, तो उनको बुद्धि-लब्धि मे परिवर्त्तन सभव है। इन बातो के अतिरिक्त कुछ ऐसे तत्त्वो (Factors) की भी चर्चा की जा सकती

* "These variations are a function of the nature of the measuring devices which we use to estimate ability"—Shaffer and Lazarus : Fundamental Concepts in Clinical Psychology (1952), P. 108.

हैं, जो बुद्धि-लब्धि मे परिवर्त्तन (Variation) के उत्तरदायी कहे जा सकते है । उनमे से निम्नाकित प्रधान है--

(१) **अननुकूल शारीरिक अवस्था** (Adverse physical condition).--कुछ मनोवैज्ञानिको ने बतलाया है कि यदि शारीरिक अवस्था ठीक न हो तो बुद्धि-लब्धि मे कमी आ जाती है । उदाहरणार्थ, थाइरायड पिड (Thyroid gland) की क्रियाओ मे कमी होने से बुद्धि लब्धि मे परिवर्त्तन (Variation) हो जाता है ।

(२) **असामान्य वातावरण**--मनोवैज्ञानिको का कहना है कि सामान्य वातावरण नहीं मिलने से सभवत बच्चा की बुद्धि-लब्धि कुछ कम हो जाती है। यदि किसी बच्चे को स्कूल मे सामान्य ढग की शिक्षा न मिल सके, तो स्वभावत उसकी बुद्धि-लब्धि मे कुछ कमी आ जायगी । अत. शैक्षिक अवसरो (Educational opportunities) को बुद्धि-लब्धि के परिवर्त्तन (Variation) का कारण माना जा सकता है ।

उपर्युक्त बातो से स्पष्ट है कि बुद्धि-लब्धि का परिवर्त्तन वंश-परपरा (Heredity) तथा वातावरण--इन दोनो ही पर निर्भर करता है। वंश-परपरा तथा वातावरण के प्रभाव का विशद विवेचन यहाँ अपेक्षित नही ।

बुद्धि-लब्धि-निर्धारण के मूल्य (Values of I. Q. determination) --बुद्धि-लब्धि-निर्धारण का महत्त्व इस बात मे है कि यह जान लेने पर कि अमुक बच्चे निम्नबुद्धि के है, उन्हे उनके ही अनुकूल विशेष प्रकार के स्कूलो मे शिक्षा दी जाती है । इसी प्रकार जिन बच्चो की बुद्धि-लब्धि अधिक होती है, उनके लिए उनकी क्षमता के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था की जा सकती है । बुद्धि-लब्धि-निर्धारण से एक बहुत बडा लाभ यह भी होता है कि शिक्षक और अभिभावक इसे दृष्टिकोण मे रखकर व्यवसाय या पेशा (Vocation) चुनने मे बच्चो का मार्ग-निर्देशन कर सकते है ।

बुद्धि-परीक्षण की उपयोगिताएँ

व्यावहारिक जीवन मे बुद्धि-परीक्षण की उपयोगिताएँ प्रसिद्ध हो चुकी है। यहाँ कुछ प्रधान उपयोगिताओ पर ही सक्षेप मे प्रकाश डाला जायगा । बुद्धि-परीक्षण की निम्नाकित उपयोगिताएँ उल्लेख्य है--

(१) **मानसिक न्यूनता का निदान** (Diagnosis of mental deficiency):--बुद्धि-परीक्षणों का प्रयोग मानसिक न्यूनता के निदान मे

किया जाता है। बुद्धि मापने के अलावा बुद्धि-परीक्षण व्यक्ति के सम्बन्ध में और भी कितने ही प्रकार की सूचनाएँ प्रदान करते हैं। इनके आधार पर हम कवल किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण लब्धांक (Total score) का ही निर्णय नहीं करते, वरन् उसकी क्रिया (Performance) का भी निरीक्षण करते हैं। इतना ही नहीं, हमें यह भी ज्ञात हो जाता है कि उसके उत्तर निरर्थक हैं या अनिश्चित, अथवा वह अपने-आप होनेवाली पुनरावृत्तियों (Repetition) को अभिव्यक्त कर रहा है, जो मानसिक न्यूनता के लक्षण हैं।

(२) **छात्रों का वर्गीकरण** (Grading of pupils):—

बुद्धि-परीक्षण का प्रयोग कर स्कूल के छात्रों को कई वर्गों मे बाँटा जा सकता है। स्कूलों में प्रायः निम्नांकित वर्गों का प्रयोग किया जाता है—(१) तीव्रबुद्धि बच्चे, (२) सामान्यबुद्धि बच्चे तथा (३) मन्दबुद्धि बच्चे। इन तीनों वर्गों के बच्चों को तीन प्रकार के पाठ्यक्रम का अनुसरण कराया जाता है। तीव्रबुद्धि बच्चों का पाठ्यक्रम अधिक समृद्ध होता है, सामान्य-बुद्धि-बच्चों का पाठ्यक्रम सामान्य तथा मन्दबुद्धि बच्चों का पाठ्यक्रम अति सरल। सचमुच यह अच्छा होता है कि यथासंभव छात्रों को पहले उनकी बुद्धि के अनुसार कई वर्गों में बाँट लिया जाय। तत्पश्चात् उनका वर्गीकरण उनकी आयु को दृष्टिकोण में रखकर किया जाय।

परंपरागत रीति क अनुसार छात्रों का वर्गीकरण केवल उनको आयु को दृष्टिकोण में रखकर ही किया जाता है, उनकी बुद्धि पर ध्यान नहीं दिया जाता। फलतः वह शिक्षा न तो तीव्रबुद्धि बच्चों के लिए हो समुचित होती है और न मन्दबुद्धि बच्चों के लिए ही।

(३) **बाल-निर्देशन** (Child guidance):—बच्चों के निर्देशन अथवा मार्ग-प्रदर्शन में बुद्धि-परीक्षण का प्रमुख स्थान है। विदेशों में कई ऐसे उपचार-गृह (Clinics) स्थापित किये गये हैं, जो किसी भी मनोवैज्ञानिक कठिनाई (Psychological difficulty) से आक्रान्त बच्चों का मार्ग-प्रदर्शन करते हैं; जैसे लन्दन, मैनचेस्टर, एडिनबरा, ग्लासगो, एबरडीन इत्यादि में। ये उपचार-गृह प्रायः उन बच्चों का इलाज करते हैं, जो 'समस्या-शिशु' (Problem children) होते हैं। ऐसे बच्चे अपने असंतोषजनक मानसिक विकास या व्यवहार के कारण अपने को सफलता-पूर्वक अभियोजित नहीं कर पाते। इनके असंतोषजनक मानसिक विकास

या व्यवहार का कारण प्रायः इनकी शारीरिक अवस्था, इनके धातु-स्वभाव (Temperament) तथा इनके स्कूल के वातावरण में निहित रहता है। फलस्वरूप, इन सभी पक्षों का अध्ययन अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेख्य है कि प्रत्येक अवस्था में बुद्धि का अनुसन्धान भी अनिवार्य है। इस बात को बर्ट (Burt)* तथा रेक्सनाइट† (Rex Knight) ने बड़ा महत्त्व प्रदान किया है।

अनुसन्धानों के आधार पर पाया गया है कि बच्चों के पिछड़ने का कारण है बुद्धि की कमी। बच्चे प्रायः अपनी मन्दबुद्धिता को असामाजिक व्यवहारों (Delinquent behaviour) या स्कूल की अत्यल्प उपलब्धियों में अभिव्यक्त करते हैं। बर्ट (Burt) के अनुसार ८० प्रतिशत अपराधी बच्चे (Delinquent children) अपनी बुद्धि में सामान्य बच्चों से कम होते हैं। संभव है कि मन्दबुद्धिता किसी में अपराध (Delinquency) की सृष्टि न कर सके, किन्तु अन्य कई प्रकार के कुप्रभाव उत्पन्न कर सकती है। ये कुप्रभाव कभी-कभी स्वतः मन्दबुद्धिता की अपेक्षा उसकी चेतना-मात्र से भी उत्पन्न हो सकते हैं। यह पाया गया है कि कुछ बच्चों की कठिनाइयों का कारण होता है उनकी यह गलत धारणा कि वे मन्द बुद्धि के हैं। इसके चलते उसकी क्रियाओं में एक अवरोध उपस्थित हो जाता है और कभी-कभी यह मानसिक रोग का भी रूप ले लेता है। बुद्धि-परीक्षणों का प्रयोग कर उन बच्चों की गलत धारणा को, कि वे सामान्य बच्चों से कम बुद्धि के हैं, दूर किया जाता है और इस प्रकार उनकी मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों (Psychological difficulties) का अन्त कर दिया जाता है।

कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि अति तीव्र बुद्धि के बच्चे मनोवैज्ञानिक कठिनाइयों (Psychological difficulties) से आक्रांत रहते हैं। कारण, उन्हें घर अथवा स्कूल में योग्यता की अभिव्यक्ति का सुअवसर नहीं मिल पाता। मनोवैज्ञानिक प्रयोगों से भी यही निष्कर्ष निकला

* "A lack of intelligence may be the main reason for his faults, or the possession of intelligence the sole hope of reform."—Burt

† "Our own experience in Aberdeen has confirmed the fact that in every case the child's intelligence must also be examined."—Rex Knight

है। सचमुच, बच्चो की अधिक बुद्धि स्वत अपराध का कारण नही, बल्कि उनकी समुचित अभिव्यक्ति मे रुकावट का होना ही बच्चो को अपराध की ओर ले जाता है। कभी-कभी बच्चे को तीव्रबुद्धिता तथा माँ-बाप की मन्द-बुद्धिता के कारण एक असमानता (Disparity) की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वैसे ही, जब महत्त्वाकाक्षी बच्चे को सकीर्ण तथा एकरसता से परिपूर्ण व्यवसाय (Vocation) मे लगा दिया जाता है, तब भी असमानता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार बच्चे की गरीबी और उसके साथियो की अमीरी भी असमानता की स्थिति उत्पन्न करती है। ये सभी असमानताएँ अपराध के कारण है, न कि स्वत तीव्रबुद्धिता। आन्तरिक सावेगिक सघर्ष भी अपराध का कारण हो सकता है। ऐसी स्थिति मे निम्नलिखित निष्कर्ष समुचित जान पडता है, जैसा कि बर्ट (Burt) ने कहा है--

"तीव्र बुद्धि पद्धति की प्रेरणा देती है, न कि अपराध करने की प्रेरक वृत्ति की।"*

(४) **व्यवसाय-निर्देशन और चुनाव** (Vocational guidance and selection) --किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन-व्यवसाय (Life vocation) के लिए निर्देशित करने के पूर्व उसकी शारीरिक और मानसिक क्षमताओ की जाँच कर ली जाती है और उसे परामर्श दिया जाता है कि वह किस व्यवसाय या पेशा (Vocation) के योग्य है। व्यवसाय-सबधी निर्देशन (Guidance) के लिए व्यक्ति की बुद्धि का यथार्थ परिज्ञान अनिवार्य है। यहाँ उल्लेख्य है कि किसी को विशेष प्रकार के व्यवसाय या पेशा का परामर्श देते हुए केवल उसकी बुद्धि पर ही ध्यान नही देना चाहिए बल्कि उसकी शारीरिक बनावट, उसके चरित्र, ज्ञान तथा विशिष्ट योग्यताओ पर भी विचार करना चाहिए। अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगो को दृष्टि मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि सभी प्रकार के व्यवसायो के सफल सपादन के लिए एक हद तक बुद्धि की आवश्यकता होती है। एक इस प्रकार के अध्ययन को नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है--

एक लडके ने जब मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की, तब उसे साधारण बुद्धि का समझकर उसके पिता ने उसे एक सरल काम मे लगा दिया।

---

* A quick intelligence inspires the method rather than the motive of the crime."—Burt.

उस काम के संपादन के लिए अधिक योग्यता की आवश्यकता नहीं थी। वह लड़का उस कार्य से असंतुष्ट रहने लगा और कुछ वर्षों के बाद उसका धातु-स्वभाव (Temperament) असामान्य (Abnormal) हो गया। उसके पिता उसे एक मनोवैज्ञानिक के पास ले गये। उन्होंने मनोवैज्ञानिक से कहा कि इस लड़के का ऐसा उपचार कर दीजिए कि यह अपने जीवन में पुनः आनन्द का अनुभव करने लगे। मनोवैज्ञानिक ने उस लड़के की बुद्धि-परीक्षा की। बुद्धि-परीक्षा में उस लड़के का लब्धांक (Score) विश्वविद्यालय में अध्यापन करनेवाले स्नातकों के बराबर आया। फलस्वरूप उस मनोवैज्ञानिक ने लड़के के पिता को यह राय दी कि उस लड़के को ऐसे व्यवसाय (Vocation) में लगाना अनिवार्य है, जिसमें अधिक योग्यता की आवश्यकता हो। ऐसा करने से उस लड़के का जीवन सुखी हो जायगा। लड़के के पिता ने उसे कैम्ब्रिज में पढ़ाना शुरू किया। वहाँ उसे केवल सफलता ही नहीं मिली, वरन् उसके जीवन में सुख और आनन्द का भी संचार हो गया।

व्यवसाय-विशेष के लिए चुनाव एक ऐसी विधि (Technique) है, जिसमें शारीरिक और मानसिक परीक्षणों द्वारा व्यवसाय-विशेष के लिए सबसे योग्य व्यक्ति का चुनाव किया जाता है। व्यवसाय-सम्बन्धी चुनाव (Vocational selection) में बुद्धि-परीक्षणों का महत्त्व सिद्ध हो चुका है। उद्योग-धन्धों में इनका अत्यधिक प्रयोग होता है। इन्हीं के सहारे विभिन्न कार्यों के लिए योग्य व्यक्तियों का चुनाव किया जाता है। द्वितीय महायुद्ध में इनका प्रयोग कर ही विभिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य-भार सौंपे गये थे।

—::o::—

अठारहवाँ अध्याय

व्यक्तित्व

व्यक्तित्व की परिभाषा

व्यक्तित्व की परिभाषा के सम्बन्ध मे विविध दृष्टिकोण पाये जाते हैं। सभी दृष्टिकोणों की सम्यक् व्याख्या यहाँ अपेक्षित नहीं है। कुछ दृष्टिकोणों को उपस्थित करके ही व्यक्तित्व की परिभाषा निर्धारित करने की चेष्टा की जायगी। पहला दृष्टिकोण व्यक्ति की सभी जन्मजात एवं अर्जित प्रवृत्तियों के संग्रह को व्यक्तित्व की संज्ञा देता है।* दूसरा दृष्टिकोण व्यक्ति की सभी प्रवृत्तियों के समन्वय (Integration) को व्यक्तित्व मानता है।† तीसरा दृष्टिकोण व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों का है। उनके अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति के उन अभ्यासों का समन्वय है, जो वातावरण के प्रति उसके विशिष्ट अभियोजन (Characteristic adjustment) का निर्देशन करते हैं।× स्पष्टतः इस दृष्टिकोण में व्यक्ति के विशिष्ट अभियोजन (Characteristic adjustment) पर अधिक जोर दिया गया है। चौथा दृष्टिकोण व्यक्तित्व-विकास में सामाजिक अथवा सांस्कृतिक पक्ष की प्रधानता

* "Personality is the sum-total of all the biological innate disposition, impulses. tendencies, appetites and instincts of the individual, and the acquired dispositions and tendencies acquired by experience."—Morton Prince : The Unconscious, 2nd Edn., 1924, P. 532.

† Personality is "an integration of pattern (interests) which gives a peculiar individual trend to the behaviour of the organism."—J. T. Maccurdy : Common Principles in Psychology and Physiology, 1528, P. 333.

× Personality is "the integration of those systems of habits that represent an individual's characteristic adjustment to his environment."—E. J. Kemp : The Autonomic Functions and the Personality.

मानता है। अतएव, व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए कहता है कि व्यक्तित्व व्यक्ति की उन प्रवृत्तियों एवं अभ्यासों का समन्वय है, जिनके कारण वह अपने को समाज के अन्य व्यक्तियों से अलग कर पाता है।* वस्तुतः यह व्यक्तित्व का ही फल है कि हमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न जान पड़ता है। शोएन (Schoen) ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "यदि किसी सामाजिक दल के सभी सदस्य एक ही ढंग से काम करें, एक ही तरह से सोचें तथा समान भावों का ही अनुभव करें, तो व्यक्तित्व का अस्तित्व ही नहीं रह जायगा।" इस बात पर जोर देते हुए वुडवर्थ ने भी कहा है कि व्यक्तित्व से यह प्रकट होता है कि कोई भी व्यक्ति किस प्रकार से कोई कार्य करेगा, अर्थात् व्यक्तित्व व्यक्ति को जीवन-शैली (Style of life) का द्योतक है। निस्सन्देह, किसी भी व्यक्ति के सभी कार्य उसके व्यक्तित्व से अनुरंजित रहते हैं। कहना न होगा कि प्रत्येक व्यक्ति के कार्य करने का ढंग एक-दूसरे से भिन्न हुआ करता है, उसकी जीवन-शैली विशिष्ट ढंग की हुआ करती है। अतएव, व्यक्तित्व के आधार पर एक व्यक्ति आसानी से दूसरे व्यक्ति से पृथक किया जा सकता है।

उपर्युक्त सभी दृष्टिकोणों का सुन्दर समन्वय ऑलपोर्ट (Allport) की परिभाषा में मिलता है। ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए कहा है—

"व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण के प्रति होनेवाले उसके अपूर्व अभियोजनों का निर्णय करते हैं।"§

* "Personality is the organised system, the functioning whole or unity of habits, disposition and sentiments that mark off any one member of a group as being different from any other member of the same group."—M. Schoen : Human Nature, 1930, P. 397.

† "If all the members of any social group acted alike, thought alike and felt alike, personality would not exist."

—Schoen

§ "Personality is the dynamic organization within the individual of those psycho-physical systems that determine his unique adjustment to his environment".—Allport, G. W.: Personality—A Psychological Interpretation, P. 18.

अब हम ऑलपोर्ट की इस परिभाषा का संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत करेंगे। मनोदैहिक गुणों से ऑलपोर्ट का तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व के अन्तर्गत व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के गुणों का संगठन रहता है। फिर वे इन गुणों (Systems of traits) के संग्रह-मात्र (Mere collection) को ही व्यक्तित्व नहीं मानते, वरन् इनके गत्यात्मक संगठन को व्यक्तित्व की संज्ञा देते हैं। गत्यात्मक संगठन (Dynamic organisation) से उनका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक गुणों में एक सामंजस्य पाया जाता है तथा वे परिवर्त्तित होते रहते हैं। वे सर्वदा एक-हो-से नहीं बने रहते। व्यक्ति के ये शारीरिक एवं मानसिक गुण उसके जीवन की गति-विधि को प्रभावित करते हैं। इनके कारण उसके जीवन की एक विशिष्ट शैली बन जाती है। उस जीवन-शैली (Style of life) से प्रभावित होकर व्यक्ति अपूर्व एवं विशिष्ट ढंग से अपने को वातावरण में अभियोजित करता है। स्पष्ट है कि ऑलपोर्ट ने अभियोजन की अपूर्वता (Uniqueness) तथा विशिष्टता (Distinctiveness) पर अत्यधिक जोर दिया है। वस्तुतः कोई भी व्यक्ति वातावरण के प्रति अपने अपूर्व (Unique) एवं विशिष्ट (Distinctive) अभियोजन (Adjustment) के कारण ही तो अपने को अन्य व्यक्तियों से भिन्न कर पाता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई उलझनों से भरी हुई परिस्थिति किसी व्यक्ति के सामने आ जाती है, तो भी वह शान्ति, धैर्य एवं प्रसन्नता का परिचय देता है, तो हम शान्ति, धैर्य, प्रसन्नता आदि को उसके व्यक्तित्व के विशिष्ट गुण कहेंगे। कारण, ऐसी परिस्थिति में सामान्यतः अन्य व्यक्ति घबराहट, धैर्यहीनता एवं दुःख ही प्रकट करेंगे। अतएव यह स्पष्ट है कि वह व्यक्ति शान्ति, धैर्य, प्रसन्नता आदि अपने विशिष्ट गुणों के कारण अन्य व्यक्तियों से अपने को पृथक् कर लेता है।

अन्त में, व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व व्यक्ति के विशिष्ट गुणों (Characteristic traits) एवं विशिष्ट व्यवहार-प्रणालियों (Characteristic modes of behaviour) का गत्यात्मक समन्वय (Integration) है। इस परिभाषा में प्रयुक्त प्रायः सभी शब्दों की व्याख्या उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन के क्रम में प्रस्तुत की जा चुकी है। स्पष्टतः इस परिभाषा से व्यक्ति के गुणों एवं व्यवहारों की विशिष्टता की प्रधानता प्रकट होती है। विशिष्ट व्यवहार-प्रणालियों से

हमारा तात्पर्य यह है कि यदि एक ही तरह की परिस्थिति विभिन्न व्यक्तियो के समक्ष उपस्थित की जाय, तो सभवत सभी व्यक्ति अपने-अपने ढग से उस परिस्थिति के प्रति अपने व्यवहार प्रकट करेगे। उनके व्यवहार के विशिष्ट ढगो मे उनके व्यक्तित्व का परिचय मिलेगा। उदाहरण के लिए, यदि कोई दो मित्र एक साथ सडक पर भ्रमण कर रहे हो तथा कुछ ही दूर जाने पर उन्हे चीथडो मे लिपटी हुई एक भिखारिन दो-चार पैसे माँगती हुई मिल जाय, तो सभव है कि एक दया से द्रवित हो झट उसे कुछ दे दे और दूसरा उसके इस कार्य की खिल्ली उडाये। दोनो के विभिन्न व्यवहारो से उनके विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व की झलक मिलती है। एक के व्यक्तित्व मे यदि दया, सहानुभति आदि विशिष्ट गुण पाये जाते है, तो दूसरे के व्यक्तित्व मे ठीक इसके विपरीत दया, सहानुभूति आदि के कोई भाव नही दीख पडते। अपने इन विशिष्ट गुणो के कारण दोनो शीघ्र ही एक-दूसरे से भिन्न-कर लिये जाते है।

व्यक्तित्व के निर्धारक (Determinors of Personality) — व्यक्तित्व के विकास पर वश-परपरागत गुणो एव विशेषताओ तथा वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पडता है। अब प्रश्न यह है कि क्या वश-परपरा (Heredity) व्यक्तित्व को अधिक प्रभावित करती है या वातावरण का प्रभाव व्यक्तित्व पर अधिक पडता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वश-परपरा के समर्थको का कहना है कि मनुष्य का प्रधान निर्माता वश-परपरा है, न कि वातावरण। दो व्यक्तियो मे जो विभिन्नता देखने को मिलती है, उसका कारण है वश-परपरा। इसके विपरीत, व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिको ने वातावरण का समर्थन करते हुए बतलाया है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए वातावरण आवश्यक है। वाट्सन (Watson) नामक प्रसिद्ध व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक ने तो वश-परपरा के समर्थको को चुनौती देते हुए यहाँ तक कह डाला है कि मनुष्य योग्यता, मेधा (Talent), धातु-स्वभाव (Temperament) तथा मानसिक बनावट एव विशेषताओ को अपनी वश-परपरा से नही ग्रहण करता, अपितु व्यक्तित्व का विकास पूर्ण रूप मे वातावरण पर ही निर्भर करता है। वस्तुत इन दोनो ही उक्तियो मे अतिशयोक्ति है। मनुष्य का व्यक्तित्व न तो केवल वश परपरा पर ही निर्भर करता है और न केवल वातावरण पर ही, वरन् दोनो की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसीलिए, व्यक्तित्व वश-परपरा एव वातावरण का गुणनफल कहा गया है। (व्यक्तित्व = वश-परपरा ×

वातावरण)। अब हम व्यक्तित्व के निर्धारक के रूप में वंश-परंपरा तथा वातावरण पर सम्यक् रूप से प्रकाश डालेंगे। वंश-परंपरा (Heredity) के अन्तर्गत शारीरिक बनावट (Physique) धातु-स्वभाव (Temperament) बुद्धि एवं मेधा (Talent), अन्तःस्रावी पिंडों (Indocrine glands) का प्रभाव, स्नायु-मंडल के प्रभाव आदि पर विचार प्रस्तुत किया जायगा ।

शारीरिक बनावट तथा धातु-स्वभाव—शारीरिक बनावट व्यक्तित्व का प्रधान अंग है । लम्बाई, स्वास्थ्य, वजन, भिन्न-भिन्न अंगों के अनुपात, शारीरिक सुन्दरता आदि शारीरिक बनावट की कुछ विशेषताएँ हैं । इन सबको मिलाकर ही किसी का व्यक्तित्व प्रभावशाली अथवा प्रभावशून्य होता है । शारीरिक बनावट का महत्त्व इस बात में है कि विभिन्न प्रकार की शारीरिक बनावटों के प्रति लोग भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ प्रकट करते ह। जिस व्यक्ति की शारीरिक बनावट बहुत अच्छी होती है, उसकी ओर स्वभावतः सभी लोगों का आकर्षण हो जाता है। उसकी शारीरिक बनावट की लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। फलतः उसमें आत्मविश्वास की भावना का उदय होता है, जो व्यक्तित्व का प्रधान गुण समझा जाता है । जिस व्यक्ति की शारीरिक बनावट अच्छी नहीं होती, जो नाटा एवं कुरूप होता ह, संभवतः सभी लोग उसकी कमी की ओर संकेत करते है तथा उसके प्रति अन्यमनस्कता का भाव प्रकट करते हैं । फलतः वह व्यक्ति अपनी कमी का अनुभव करता है तथा हीनता की भावना (Feeling of inferiority) से आक्रान्त हो जाता है। अपनी इस हीनता की भावन को दूर करने के लिए वह क्षतिपूर्त्यात्मक (Compensatory) आचरण करता है । इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें नेपोलियन एवं सुकरात के व्यक्तित्व में मिलता है। नेपोलियन अत्यन्त ही छोटे कद का था । अतः उसमें शारीरिक बनावट के सम्बन्ध में हीनता की भावना का होना स्वाभाविक ही था । अपनी इस हीनता की भावना की पूर्त्ति उसने अद्वितीय सैनिक उपलब्धियों द्वारा की । वैसे हो, सुकरात अत्यन्त कुरूप था । कुरूपता से उत्पन्न हीनता की भावना की पूर्त्ति उसने अत्यधिक ज्ञान प्राप्त कर की । वह अपने समय का बहुत पड़ा विद्वान् था ।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने शारीरिक बनावट के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण किया है तथा उन्होंने शारीरिक बनावट और धातु-स्वभाव के संबंधों पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की है । इस सम्बन्ध में क्रेशमर (Kre-

tschmer) का अनुसन्धान महत्त्वपूर्ण है। क्रेशमर ने शारीरिक बनावट के आधार पर मनुष्यो को दो वर्गों मे बाँटा है। साइक्ल्वायड् (Cycloid) तथा सिज्वायड् (Schizoid)। साइक्ल्वायड् मोटे होते है तथा सिज्वायड् लम्बे और दुबले-पतले होते हैं। साइक्ल्वायड् के धातु-स्वभाव (Temperament) का वर्णन करते हुए क्रेशमर ने बतलाया है कि वे वस्तुवादी (Objective), मिलनसार, सामाजिक तथा प्रसन्न हुआ करते है। सिज्वायड के धातु-स्वभाव के सम्बन्ध मे क्रेशमर का कहना है कि वे आत्मकेन्द्रित (Self-centred), भावुक (Sensitive), सकोचशील, शान्त तथा एकान्तप्रिय होते है। फिर क्रेशमर ने इन दो प्रधान वर्गो को भी कई छोटे-छोटे वर्गो मे बाँटा है, जिनमे प्रधान है--ऐस्थेनिक (Asthenic), ऐथलेटिक (Athletic) तथा पिकनिक (Pyknic)। ऐस्थेनिक दुबले-पतले तथा छोटे कन्धेवाले होते है। ऐथलेटिक की शारीरिक गठन बहुत अच्छी होती है। इनका कन्धा चौडा होता है तथा कमर पतली होती है। पिकनिक का शरीर मास से लदा रहता है। वह प्राय मोटा होता है। उसका पेट निकला रहता है तथा मुँह गोल रहता है। इन तीनो वर्गों के व्यक्तियो का धातु-स्वभाव भी एक-दूसरे से भिन्न होता है। ऐस्थेनिक आत्मकेन्द्रित, स्वप्न-द्रष्टा, भावुक, बौद्धिक, शान्त तथा एकान्तप्रिय होते है। ऐथलेटिक व्यवहार कुशल, सामाजिक तथा क्रियाशील होते है। पिकनिक खुशमिजाज तथा मिलनसार स्वभाव के होते है।*

शेल्डन (Sheldon) ने भी शारीरिक बनावट तथा धातु-स्वभाव के सम्बन्ध पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। शारीरिक बनावट के आधार पर उन्होने व्यक्तियो को तीन वर्गो मे बाँटा है--एण्डोमॉर्फिक (Endomorphic), मेसोमॉर्फिक (Mesomorphic) और एक्टोमॉर्फिक (Ectomorphic)। एण्डोमार्फिक व्यक्ति प्राय मोटे होते है। इनका पेट बडा होता है तथा पाचन-क्रिया-सम्बन्धी ग्रॅतडियाँ अधिक विकसित होती है। मेसोमॉर्फिक व्यक्तियो के शरीर की हड्डियाँ तथा मासपेशियाँ (Muscles) अधिक विकसित होती है। इनका शरीर भारी तथा कडा होता है। एक्टोमॉर्फिक व्यक्तियो की शारीरिक बनावट कमजोर होती है। इनकी हड्डियाँ लम्बी तथा कोमल होती है।

शेल्डन ने उपर्युक्त तीन प्रकार की शारीरिक बनावटो के अनुरूप ही

* Kretschmer, E. . Physique and Character, 1925.

तीन प्रकार के धातु-स्वभावो का भी उल्लेख किया है । वे तीन प्रकार के धातुस्वभाव है--विसेरोटोनिया (Viscerotonia), सोमैटोटोनिया (Somatotonia) तथा सेरिब्रोटोनिया (Cerebrotonia)। जो व्यक्ति विसेरोटोनिक (Viscerotonic) होते है, उनमे भोजन की क्रियाओ की प्रधानता रहती है। फलत वे भोजनप्रिय तथा आरामतलब होते है और दूसरो से प्यार पाने के इच्छुक बने रहते है । उनकी नीद गहरी होती है तथा आपत्ति पड़ने पर दूसरो को सहायता चाहते है। मेसोमॉर्फिक व्यक्ति सोमैटोटोनिक धातु-स्वभाव (Somatotonic temperament) के होते है। ये अधिक शक्तिशाली, साहसी, अधिकार के भूखे तथा जोर-जोर से बोलनेवाले होते है और विपत्ति पडने पर अधिक क्रियाशील हो उठते है । एक्टोमॉर्फिक व्यक्ति सेरिब्रोटोनिक धातु-स्वभाव (Cerebrotonic temperament) के होते है। ये अपनी भावनाओ तथा आदतो को दबाये रखते है, सकोचशील तथा एकान्तप्रिय होते है, धीरे-धीरे बोलते है, इन्हे अच्छी तरह नीद नही आती तथा आपत्ति मे दूसरो की सहायता नही चाहते, वरन् अपने मे ही सीमित रहना पसन्द करते है ।*

केशमर तथा शेल्डन के वर्गीकरण की आलोचना करते हुए यह कहा जा सकता है कि अधिकाश व्यक्तियो को शारीरिक बनावट तथा उनके धातु-स्वभाव मे सभी वर्गो का समन्वय पाया जाता है। वे निश्चित रूप से किसी एक वर्ग मे नही रखे जा सकते। इन अध्ययनो से शारीरिक बनावट तथा धातु-स्वभाव के सम्बन्ध का पता चलता है। इन दोनो के निर्माण मे अन्त स्रावी पिंडो (Andocrine glands) का बहुत हाथ होता है।

बुद्धि (Intelligence) एव मेधा (Talent)--गाल्टन का कहना है कि मनुष्य अपने मानसिक गुणो को वश-परपरा से पाता है। मानसिक गुणो मे बुद्धि तथा मेधा प्रधान समझी जाती है। बुद्धि वश-परम्परागत (Hereditary) होती है । इस सम्बन्ध मे गोडार्ड (Goddard) का अध्ययन उल्लेखनीय है। गोडार्ड ने कालिकाक (Kallikak) के परिवार का अध्ययन किया। उन्होने यह पाया कि बुद्धि वश-परपरागत होती है। मार्टिन कालिकाक ने पहले एक सामान्य बुद्धि की स्त्री से विवाह किया।

---

* Sheldon, W. H., S. S. Stevens, and W. B. Tuker : The Varieties of human Physique, 1950 and Sheldon, W. H. and S. S Stevens : The Varieties of Temperament, 1924.

† Galton ; Hereditary genius.

उस स्त्री से जितनी सन्तानें हुईं, वे सामान्य (Normal) तथा तीव्र बुद्धि की थीं। बाद में उसने एक मन्दबुद्धि स्त्री से शादी कर ली। उस स्त्री से जितनी सन्तानें हुई, उनमें अधिकांश मन्दबुद्धि तथा दुश्चरित्र थीं। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य बुद्धि को वंश-परंपरा से पाता है।

व्यक्तित्व के विकास में बुद्धि का अधिक महत्त्व है। बुद्धि मनुष्य को नई एवं विषम परिस्थिति को समझने में सहायता प्रदान करती है तथा उसे सामाजिक अभियोजन (Social adjustment) की क्षमता देती है। सामाजिक अभियोजन पर व्यक्तित्व का निर्माण बहुत कुछ निर्भर करता है। बुद्धि के ही फलस्वरूप सुकरात, अरिस्टोट्ल, मार्क्स, फ्रायड, डार्विन आदि व्यक्तियों की गणना महान् व्यक्तियों के रूप में की जाती है।

बुद्धि के ही सदृश संगीत एवं गणित की मेधाएँ (Talents) भी वंश-परंपरागत ही होती है। जिन व्यक्तियों में ये मेधाएँ है, वे ही बड़े संगीतज्ञ एवं बड़े गणितज्ञ हो पाते हैं। कहना न होगा कि मनुष्य के व्यक्तित्व पर उसकी मेधा का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

अन्तःस्रावी पिंडों का प्रभाव—अंतःस्रावी पिंडों से एक प्रकार का तरल पदार्थ निकलता है, जिसे 'हॉर्मोन (Hormone) कहते हैं। ये 'हॉर्मोन' खून की धारा में मिल जाते हैं तथा शरीर के सभी भागों में फैल जाते है। इनके कारण अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न होती ह। अंतःस्रावी पिंडों के कुछ समर्थकों ने मनुष्य के व्यक्तित्व पर इनके प्रभाव को बतलाते हुए यहाँ तक कह डाला है कि मनुष्य का व्यक्तित्व अन्तःस्रावी पिंडों से ही संचालित होता है। एक ने तो यहाँ तक कहा कि हमलोग "अन्तःस्रावी पिंडों को दया पर बहुत बुरी तरह आश्रित है।" जब अन्तःस्रावी पिंडों से निकला हुआ हॉर्मोन समुचित मात्रा में खून की धारा में नहीं मिल पाता, तब सारे शरीर मे गड़बड़ी मच जाती है तथा व्यक्तित्व के सभी अंगों, जैसे बुद्धि, धातुस्वभाव, शारीरिक बनावट तथा चेहरे मे परिवर्त्तन दीख पड़ने लगते है। इन सभी परिवर्त्तनों का प्रभाव मनुष्य की सामाजिक आदतों एवं मनोवृत्तियों पर पड़ता है।

विभिन्न अन्तःस्रावी पिंडों के कार्यों के अलग-अलग विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व उनके परस्पर सम्बन्ध पर ध्यान देना आवश्यक है। इन अन्तः-स्रावी पिंडों का आपस में ऐसा सम्बन्ध है कि ये एक-दूसरे को निरन्तर प्रभावित करते रहते हैं। यदि एक अन्तःस्रावी पिंड के कार्यों में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है, तो इसका प्रभाव अन्य अन्तःस्रावी पिंडों पर भी पड़ता है। अतएव,

यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के व्यक्तित्व पर किसी एक अन्त स्रावी पिड का उतना प्रभाव नही पडता, जितना कि उनके परस्पर-सम्बन्ध का प्रभाव होता है । अत स्रावी पिडो के परस्पर-सम्बन्ध के कारण यह कहना कठिन जान पडता है कि किसी विशेष अन्त स्रावी पिड के कौन-कौन-से निश्चित कार्य होते है । विभिन्न अन्त स्रावी पिडो के कार्यों का निश्चित रूप से उल्लेख करने मे एक और दूसरी कठिनाई उपस्थित होती है और वह यह कि एक ही अन्त स्रावी पिड से कई प्रकार के हॉर्मोन निकलते है । उदाहरण के लिए, पिट्यूटरी पिड (Pituitary gland) से कम-से-कम आठ प्रकार के हॉर्मोन निकलते है । ऐसे ही ऐड्रीनल पिड (Adrenal gland) से दो तथा गौनैड्स (Gonads) से भी दो प्रकार के हॉर्मोन निकलते है । यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि स्त्री या पुरुष, दोनो के गौनैड्स से दो-दो हॉर्मोन निकलते है ।

अब हम अन्त स्रावी पिडो के कार्यों का उल्लेख करेगे, जिनका व्यक्तित्व को प्रभावित करने मे प्रमुख स्थान है । थायरॉयड पिड (Thyroid gland), जो कठ की गुठली के ऊपर दोनो ओर पाये जाते है, मनुष्य की सामान्य शक्ति तथा धातुस्वभाव को प्रभावित करते है । जब ये पिंड आवश्यकता से अधिक क्रियाशील हो जाते है, तब मनुष्य अति शक्ति तथा उत्तेजनशीलता का अनुभव करता है । इसके विपरीत, जब इन पिडो मे आवश्यकता से कम क्रियाशीलता पायी जाती है, तब मनुष्य मे शिथिलता एव सुस्ती आ जाती है । ऐड्रीनल पिडो से जो हॉर्मोन निकलता है, उसे ऐड्रीनिन (Adrenin) कहते है। ये पिड दोनो गुर्दों (Kidneys) के ऊपर स्थित है। ऐड्रोनिन मनुष्य के सवेगात्मक व्यवहार को अत्यधिक प्रभावित करता है । इसका सम्यक् रूप से उल्लेख सवेग के अध्याय मे किया जा चुका है । पिट्यूटरी पिड, जिसका स्थान मस्तिष्क मे है, अन्य सभी अन्त-स्रावी पिडो के कार्यों पर नियत्रण रखता है । किन्तु विशेष रूप से यह सामान्य शारीरिक विकास तथा यौन-अगो (Sex-organs) के विकास को प्रभावित करता है। जब पिट्यूटरी पिड आवश्यकता से अधिक क्रियाशील हो जाता है, तब व्यक्ति सभवत सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक विशाल-काय (Giant) हो जाता है । इसके विपरीत जब पिट्यूटरी पिंड मे आवश्यकता से कम क्रियाशीलता पायी जाती है, तब व्यक्ति का शारीरिक विकास रुक जाता है अथवा बहुत धीरे-धीरे होता है । फलत वह बौना (Dwarf) हो जाता है। अन्त मे गौनैड्स (Gonads) के कार्यों का उल्लेख करते

हुए कहा जा सकता है कि गोनैड्स पिट्यूटरी तथा एड्रीनल पिंडों के सहयोग से यौन-सम्बन्धी सभी परवर्त्ती विशेषताओं (Secondary sex characteristics) को निर्धारित करते हैं। यौन-सम्बन्धी परवर्त्ती विशेषताओं के अन्तर्गत शरीर पर बालों के वितरण, स्तन-विकास, कंठ-स्वर आदि आते हैं।

अन्त में यह कह देना आवश्यक है कि अन्तःस्रावी पिंडों का प्रभाव व्यक्ति की शारीरिक बनावट और उसके धातुस्वभाव (Temperament) पर पड़ता है, किन्तु ये अन्तःस्रावी पिंड मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रत्यक्ष रूप से (Directly) निर्धारित नहीं करते। अन्तःस्रावी पिंडों के कुछ आलोचकों का भी ऐसा ही मत है। व्यक्तित्व को निर्धारित करने में व्यक्ति की आदतों, मनोवृत्तियों तथा उसकी जीवन-शैली की प्रधानता रहती है, न कि अन्तःस्रावी पिंडों की। इस सम्बन्ध में फ्रीमैन (Freeman) का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने व्यक्तित्व की विशेषताओं के निर्धारण में अन्तःस्रावी पिंडों की प्रमुखता को नहीं माना है।*

स्नायु-मंडल का प्रभाव (Influence of the nervous system):—स्नायु-मंडल व्यक्तित्व का प्रधान निर्धारक है। व्यक्तित्व के निर्धारक के रूप में स्नायु-मंडल का महत्त्व केम्फ (Kempf) के व्यक्तित्व-संबंधी जीवशास्त्रीय सिद्धांत (Biological theory of personality) से स्पष्ट हो जाता है। केम्फ ने अपने सिद्धांत में यह बतलाया है कि मनुष्य की ऐन्द्रिक लालसाओं (Organic cravings) की उत्पत्ति स्वतः-संचालित स्नायु-मंडल (Autonomic Nervous system) द्वारा होती है। जब ऐन्द्रिक लालसाओं (Organic cravings) और वातावरण के बीच संघर्ष होता है तब व्यक्ति को वातावरण में सफलतापूर्वक अभियोजित करने की आवश्यकता पड़ती है। व्यक्ति के इस अभियोजन में केन्द्रीय स्नायु-मंडल सहायता प्रदान करता है। फलतः वह व्यक्ति अपने को सफलतापूर्वक वातावरण में अभियोजित कर लेता है। इस अभियोजन की विधि को

* "As far as determining whether an individual shall be a proud, sensitive, suspicious, paranoid individual or a timid, shut in, dreamy, schizoid person; a boisterous, jolly, hailfellow, well-met, cycloid, or a moody, pedantic, egocentric, epileptoid individual, the endocrine glands would seem to have little say in the matter."—W. Freeman.

ही केम्फ ने व्यक्तित्व की संज्ञा दी है।† अतः स्पष्ट है कि व्यक्तित्व स्वतः संचालित स्नायु-मंडल (Autonomic nervous system) तथा केन्द्रीय स्नायु-मंडल, दोनों ही से प्रभावित होता है।

ऐन्द्रिक लालसाएँ, जिनमें खाने-पीने तथा काम-तृप्ति (Sexual satisfaction) की लालसाएँ प्रधान हैं, मनुष्य को कार्य करने की प्रेरणा देती हैं। जब इन लालसाओं का वातावरण के साथ संघर्ष हो जाता है, तब केन्द्रीय स्नायु-मंडल कुछ ऐसे मार्ग ढूँढ़ निकालता है, जिससे व्यक्ति अपने इस संघर्ष को दूर कर अपने को सफलतापूर्वक वातावरण में अभियोजित कर सके। इससे यह स्पष्ट है कि व्यक्ति को अभियोजन (Adjustment) की प्रेरणा स्वतःसंचालित स्नायु-मंडल में उत्पन्न ऐन्द्रिक लालसाओं से मिलती है, किन्तु अभियोजन की सफलता केन्द्रीय स्नायु-मंडल पर निर्भर करती है। अतएव यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के अभियोजन में स्वतःसंचालित स्नायु-मंडल (Autonomic nervous system) तथा केन्द्रीय स्नायु-मंडल, दोनों ही एक-दूसरे के सहयोगी के रूप में काम करते हैं। यदि पहले से अभियोजन की प्रेरणा मिलती है, तो दूसरे से अभियोजन कार्यान्वित होता है।

वातावरण—वातावरण के अन्तर्गत मुख्यतः निम्नांकित बातों पर विचार प्रस्तुत किया जायगा—

(१) व्यक्तित्व-निर्माण में जीवन के प्रारम्भिक वर्षों का महत्त्व;
(२) घर का प्रभाव;
(३) एकलौता बच्चा तथा जन्म-चक्र (The only child and birtho-rder);
(४) समुदाय तथा संस्कृति का प्रभाव।

व्यक्तित्व-निर्माण में जीवन के प्रारम्भिक वर्षों का महत्त्व:—मनोविश्लेषण (Psycho-analysis) के विशेषज्ञों ने बतलाया है कि व्यक्तित्व-निर्माण में जीवन के प्रारम्भिक वर्षों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः बचपन की प्रारम्भिक अनुभूतियाँ ही जीवन-शैली निर्धारित करती हैं। वे व्यक्ति के सामने एक मार्ग प्रस्तुत करती हैं, जिसका वह जीवन में अनुसरण करता है। मनुष्य की मानस-वृत्ति (Mental disposition)

† Kempf E J. : The "Autonomic function and personality." Nervous and mental disease monograph, 1928, No. 28.

का निर्माण बाल्यकाल की प्रारम्भिक अनुभूतियों के आधार पर ही होता है। जब एक बार मनुष्य में मानस-वृत्ति का निर्माण हो जाता है तब बाद के सभी व्यवहारों पर उसका प्रभाव पड़ता है। मानस-वृत्ति के अनुकूल ही कोई व्यक्ति किसी विषय की ओर आकृष्ट होता है तथा उसे सीखने का प्रयास करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मानस-वृत्ति ही यह निर्णय करती है कि कोई व्यक्ति अपने जीवन में क्या सीखेगा।

किस प्रकार प्रारम्भिक अनुभूतियाँ व्यक्तित्व पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाती हैं, इसे एक उदाहरण द्वारा समझाने की चेष्टा की जायगी। एक कॉलेज का विद्यार्थी, जिसने पर्याप्त प्रतिष्ठा एवं ख्याति प्राप्त की थी, हीनता की भावना (Feeling of inferiority) से निरन्तर आक्रान्त रहता था। उसकी वर्त्तमान परिस्थिति, सम्मान तथा उपलब्धियों (Achievements) को देखकर किसी को यह शंका भी नहीं होती थी कि वह अपने में हीनता का अनुभव करता होगा। किन्तु वह जब कभी अपने मित्रों से मिलता, तब यही कहता कि उसे कॉलेज में जो सम्मान मिलता है, उसके योग्य वह नहीं है और सम्मान प्रदान करनेवालों ने उसकी योग्यता का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं किया है। उसकी इस प्रकार की मनोवृत्ति का कोई भी कारण वर्त्तमान परिस्थिति में नहीं दीख पड़ा। तब उसके बाल्यकाल की प्रारम्भिक अनुभूतियों की खोज की गयी। उसने बतलाया कि जब वह छोटा बच्चा था, तब उसके पिता ने बराबर उसके बड़े भाई को ही प्रमुखता दी। बड़े भाई को ही उन्होंने अधिक बुद्धिमान् समझा। अब यह स्पष्ट है कि बचपन में ही उसके भीतर बौद्धिक हीनता की भावना उत्पन्न हो गई थी। यह हीनता की भावना बाद के जीवन में भी बनी रही। फलतः उसे अपनी उपलब्धियों (Achievements) को देखकर जहाँ प्रसन्नता तथा संतोष का अनुभव होना चाहिए था, वहाँ वह भीतर-ही-भीतर बराबर खिन्न रहा करता था। यद्यपि दुःखद अनुभूति (हीनता की भावना) दमन (Repression) के कारण उसके चेतन मानस (Conscious mind) में नहीं रह गई थी, तथापि उसके उपचेतन मानस (Subconscious mind) में सतत रूप से वर्त्तमान थी। उपचेतन में बैठी उसकी हीनता की भावना निरन्तर उसके विचारों को प्रभावित करती थी। फलस्वरूप, उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही इस भावना से अनुरंजित था।

घर का प्रभाव—जन्म के बाद बच्चा सर्वप्रथम अपने माँ-बाप के सम्पर्क में

आता है। भोजन-वस्त्र और अपनी रक्षा के लिए वह माँ-बाप पर ही आश्रित रहता है। उसकी स्नेह की आकांक्षा माँ-बाप से ही पूरी होती है। माँ-बाप बच्चे की रक्षा के साथ-साथ, उसे प्यार भी करते हैं। माँ-बाप का समुचित प्यार पाकर बच्चों का व्यक्तित्व सम्यक् रूप से विकसित होता है। माँ-बाप का अतिस्नेह (Over-affection) बच्चों के व्यक्तित्व के समुचित विकास मे बाधक सिद्ध होता है। यदि माँ-बाप अपने बच्चे के प्रति अधिक स्नेह दिखलाते तथा उसकी आवश्यकताओ की पूर्त्ति के लिए सतत तत्पर रहते है, तो बच्चे में आश्रितता को भावना उत्पन्न होती है, उसमे स्वावलंबन नही आने पाता। बचपन की यह आश्रितता को भावना उसके बाद के जीवन में भी अभिव्यक्त होती है। मनोविश्लेषण (Psycho-analysis) के महान् प्रणेता सिग्मण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) ने बतलाया है कि बचपन को पिता के ऊपर आश्रित रहने की भावना ही बाद के जीवन में नेता पर आश्रित रहने की भावना के रूप मे परिणत हो जाती है। जिस प्रकार बच्चा अपने पिता को शक्ति का केन्द्र मानता है तथा उनके साथ तादात्म्य (Identification) स्थापित कर अपने सभी भावों तथा अपनी सारी अतृप्त इच्छाओ को परितुष्ट करता है, उसी प्रकार प्रौढ़ व्यक्ति अपने नेता को शक्ति का केन्द्र मानता है तथा उनके साथ तादात्म्य (Identification) स्थापित कर अपनी सारी इच्छाओं की पूर्त्ति करता है।

यदि माँ-बाप के अतिस्नेह से बच्चों में आश्रितता आती है, तो उनके स्नेह के नितान्त अभाव मे भी बच्चे के व्यक्तित्व का अवाछनीय विकास ही होता है। जब माँ-बाप अपने बच्चे के प्रति स्नेह अभिव्यक्त नही करते, तब स्वभावतः बच्चे की स्नेह पाने की भावना अतृप्त रह जाती है। फलतः वह अन्तर्मुखी स्वभाव (Introverted nature) का हो जाता है तथा कल्पना के संसार में या दिवा-स्वप्नो (Day-dreams) मे अपनी अतृप्त स्नेह की भावना को तृप्त करता है। अपराध-विज्ञान (Criminology) के विशेषज्ञो ने बतलाया है कि जिन बच्चों की संवेगात्मक अनुभूति एव स्नेह की भावना बचपन में तृप्त नहीं हो पाती, वे प्रायः अपराधी (Delinquent) हो जाते है। असामाजिक व्यवहारों द्वारा वे अपनी अतृप्त भावना को तृप्त करने की चेष्टा करते है। हिली और ब्रोनर (Healy and Bronner) ने अपने अध्ययन के आधार पर इस प्रकार के कई उदाहरण प्रस्तुत किये है। एक अपराधी बच्चे (Delinquent child) का अध्ययन हिली और ब्रोनर (Healy and Bronner) ने किया।

अपने इस अध्ययन के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बच्चे के अपराधी होने का एकमात्र कारण है, उसके पिता का उसके प्रति दुर्व्यवहार। सचमुच, वह बच्चा जब दो महीने का था, तभी उसके पिता ने उसकी ओर अपनी घोर अरुचि दिखलानी शुरू कर दी थी। उसके पिता ने पूछने पर बतलाया कि वह अपने बच्चे को बिलकुल नहीं चाहता। अपने उस बच्चे को पास रखने की अपेक्षा वह एक सर्प को अपने पास रखना अधिक अच्छा समझता है। उसी के शब्दों में--"I can't bear to have him touch me, I would rather have a snake around me than have him." हिली और ब्रौनर ने बच्चे के अपराध की व्याख्या करते हुए बतलाया है कि बच्चे में अपराध की भावना आने के तीन कारण हो सकते हैं:--(१) दुःखद परिस्थिति से छुटकारा पाने का प्रयास; (२) पिता से उनके दुर्व्यवहारों के लिए बदला लेने की भावना तथा (३) बचपन की अतृप्त इच्छाओं को तृप्त करने की चेष्टा।

घर में निरन्तर संवेगात्मक तथा संघर्षात्मक परिस्थिति का विद्यमान रहना भी बच्चे के समुचित व्यक्तित्व-विकास के लिए श्रेयस्कर नहीं है। जिस बच्चे के माँ-बाप आपस में झगड़ते रहते हैं, उस बच्चे की मनोवृत्ति पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। वह बच्चा भी संभवतः झगड़ालू तथा चंचल स्वभाव का हो जाता है; वह कभी-कभी अपराधी (Delinquent) भी हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व बचपन में उसके माँ-बाप की उसके प्रति प्रकट की गयी मनोवृत्ति पर बहुत-कुछ निर्भर करता है। अन्त में, यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि एक ही तरह की परिस्थिति के होते हुए भी दो बच्चों का व्यक्तित्व उनके धातु-स्वभाव (Temperament), उनकी शारीरिक बनावट तथा उनके घर के बाहर की अवस्था में भिन्नता होने के कारण दो तरह का हो सकता है। अतएव व्यक्तित्व-निर्माण के सम्बन्ध में घर के प्रभाव पर ध्यान रखते हुए अन्य आवश्यक बातों पर विचार करना भी अनिवार्य हो जाता है।

एकलौता बच्चा तथा जन्म-क्रम (The only child and birth-order):--बच्चे के व्यक्तित्व पर माँ-बाप के प्रभाव का उल्लेख किया जा चुका है। अब यह बतलाने की चेष्टा की जायगी कि बच्चे के व्यक्तित्व पर किस प्रकार उसके दूसरे भाई-बहनों का भी असर पड़ता है। अपने माँ-बाप के साथ सम्बन्ध होने के कारण बच्चा यह सीखता है कि उसे

समाज के अन्य गुरुजनों के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए तथा अपने भाई-बहनों के साथ सम्बन्ध होने के कारण वह यह जान लेता है कि समान स्तर के लोगों के साथ किस प्रकार होड़ लेनी चाहिए। अतः स्पष्ट है कि बच्चे का अपने भाई-बहनों के साथ सम्बन्ध भी माँ-बाप के साथ के सम्बन्ध की तरह ही सामाजिक अभियोजन (Social adjustment) में योग प्रदान करता है। एकलौता बच्चा भाई-बहनों के सम्बन्ध से वंचित रह जाता है। फलतः उसे समान स्तर के लोगों के साथ व्यवहार करने में कुशलता प्राप्त नहीं हो पाती और उसे अपने सामाजिक अभियोजन में कठिनाई का अनुभव होता है। स्पष्ट है कि एकलौता होने के कारण उसके व्यक्तित्व के समुचित विकास में बाधा पहुँचती है। किन्तु एकलौता होने पर भी इस बाधा को दूर किया जा सकता है। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि माँ-बाप एकलौते बच्चे को दूसरे बच्चों के साथ मिलने-जुलने तथा खेलने-कूदने का समुचित अवसर प्रदान करें, तो सामाजिक अभियोजन में कठिनाई का अनुभव नहीं होगा। इस सम्बन्ध में दूसरी प्रधान बात यह है कि माँ-बाप अपने एकलौते बच्चे पर आवश्यकता से अधिक ध्यान न दें, तोभी उसके व्यक्तित्व का वांछनीय विकास होगा तथा उसे सामाजिक अभियोजन में कठिनाई का अनुभव नहीं होगा। एकलौते बच्चे के व्यक्तित्व-विकास के सम्बन्ध में उपर्युक्त विचार प्रस्तुत करने के बाद यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं है कि एकलौते बच्चे के समुचित व्यक्तित्व-विकास तथा सामाजिक अभियोजन के लिए उसका एकाकीपन उतना उत्तरदायी नहीं है, जितना कि उसके माँ-बाप के द्वारा उसके प्रति प्रकट किये गये व्यवहार।

अल्फ्रेड ऐडलर (Alfred Adler) ने बतलाया है कि बच्चे का परिवार में स्थान या उसका जन्म-क्रम (Birth-order) भी उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। जो बच्चा एकलौता होता है, स्वभावतः उसके अधिकार एवं आराम में हिस्सा बँटानेवाला कोई दूसरा नहीं रहता। उसे माँ-बाप का अत्यधिक प्यार भी मिलता है। फलस्वरूप, उसमें एकाधिपत्य की भावना आ जाती है तथा वह परावलम्बी हो जाता है। किन्तु जब उसके छोटे भाई का जन्म हो जाता है, तब उसके अधिकार, आराम तथा माँ-बाप के स्नेह में वह हिस्सा बँटाता है। फलतः बड़े भाई में छोटे भाई के लिए ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। वह अपने अधिकार को निरन्तर पूर्ववत् बनाये रखने की चेष्टा करता है। दूसरा बच्चा परिवार में स्थान बनाने के

लिए सतत प्रयत्नशील रहता है । फलतः वह एक अति उत्सुक व्यक्ति भी हो सकता है तथा वर्त्तमान परिस्थिति के प्रति विद्रोह करनेवाला भी हो सकता है । परिवार मे जो सबसे छोटा बच्चा होता है, वह सर्वदा सबके प्यार और सहायता की आशा करता रहता है । फलतः वह परमुखापेक्षी होता है ।*

यद्यपि बच्चे के जन्म-क्रम के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है, तथापि मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर कहा जा सकता है कि बच्चे के जन्म-क्रम तथा उसके व्यक्तित्व मे कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं है । एक ही प्रकार की व्यक्तित्व-सम्बन्धी उलझनें परिवार के सबसे बड़े बच्चे, दूसरे बच्चे तथा सबसे छोटे बच्चे के सामने आ सकती हैं ।

समुदाय तथा संस्कृति का प्रभाव ––बच्चे के व्यक्तित्व-विकास के अध्ययन के लिए उसके खेल-समुदायों (Play-groups) का अध्ययन भी अत्यन्त आवश्यक है । बच्चे अपने खेल के साथियों मे अधिक अभिरुचि लेते हैं । समुदाय में अपने साथियों के साथ खेलने से बच्चों में स्वावलम्बन की भावना का उदय होता है । उनकी आश्रितता की भावना जाती रहती है । उन्हें साहसपूर्ण कार्य करने का समुचित क्षेत्र मिलता है । समुदाय की एक अपनी नियमावली होती है, जिसका उन्हें पालन करना पड़ता है । फलतः उनमें नियम-पालन की भावना उत्पन्न होती है । खेल के समुदाय में रहकर बच्चे अपने उत्तरदायित्व को निभाना सीखते है तथा उनमें अनुशासन-प्रियता आती है । बच्चों को सर्वप्रथम खेल के समुदाय में ही सहयोग की भावना का अनुभव होता है । इससे स्पष्ट है कि बच्चे खेल के समुदाय में जो कुछ भी सीखते हैं, उन सबको उनके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है ।

संस्कृति से भी बच्चे का व्यक्तित्व प्रभावित नहीं होता । जन्म के बाद बच्चे के व्यक्तित्व-निर्माण में वातावरण का प्रभाव आरम्भ हो जाता है । वातावरण में समाज के लोगों तथा संस्कृतियों की प्रधानता होती है । समाज के लोगों तथा संस्कृतियों का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि उन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता । संस्कृति से समाज का प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित होता है । फिर वह व्यक्ति अपने संपर्क में आये हुए बच्चे को प्रभावित करता है । माँ-बाप बच्चे के प्रति स्नेह के भाव प्रकट करेंगे अथवा अन्यमनस्कता के

* Woodworth, R. S. and Marquis, D. G. : Psychology—A study of mental life, 1947, Page 138.

भाव दिखलायेंगे, यह बहुत कुछ उनकी संस्कृति पर निर्भर करता है। कहीं-कहीं पिता अपने बच्चे के सपर्क में अधिक आता है, तो कहीं माता बच्चे के सपर्क मे अधिक आती है। इसका कारण यह है कि सभी जगहों की सस्कृति समान नहीं होती। कहीं की संस्कृति के अनुसार माता को ही बच्चे के सपर्क में आने का अधिक अवसर मिलता है, तो किसी जगह की संस्कृति के अनुसार पिता को बच्चे के संपर्क मे आने का अधिक अवसर मिलता है। माँ-बाप का बच्चे के साथ कैसा सम्बन्ध होगा, यह बहुत कुछ उनकी सस्कृति पर निर्भर करता है।

व्यक्तित्व के गुण या उसकी विशेषताएँ

(**Traits of Personality**)

जब कोई व्यक्ति एक तरह की परिस्थिति में सर्वदा एक विशेष ढंग का ही व्यवहार प्रकट करता है, तब हम कहते है कि उसके व्यक्तित्व की यह विशेषता है। अपने व्यक्तित्व की विशेषता के कारण ही समाज का कोई एक व्यक्ति अपने को अन्य व्यक्तियों से पृथक् कर पाता है। व्यक्तित्व की विशेषताओं से यह प्रकट होता है कि व्यक्ति कहाँ तक अन्य व्यक्तियों के समान है और कहाँ तक उनसे भिन्न है। यदि कोई व्यक्ति सर्वदा दूसरों पर प्रभुत्व स्थापित करने की प्रवृत्ति दिखलाता है, तो हम कह सकते हैं कि प्रभुत्व की प्रवृत्ति (Dominance-tendency) उसके व्यक्तित्व की विशेषता है। वैसे ही, यदि कोई सामान्यतः सहज भाव से दूसरों की अधीनता स्वीकार कर लेता है, तो यह कहा जा सकता है कि अधीनता की प्रवृत्ति (Tendency of Su bmission) उसके व्यक्तित्व की विशेषता है।

विशेषताओं (Traits) के स्वभाव पर प्रकाश डालते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि ये सामान्य ढंग (General nature) की होती है। अतएव, अपेक्षाकृत स्थायी तथा क्रमबद्ध होती हैं। किन्तु, दूसरे मनोवैज्ञानिकों ने इस मत की आलोचना की है तथा यह बतलाया है कि व्यक्ति की विशेषताएँ सामान्य ढंग की नहीं होतीं, वरन् विशिष्ट ढंग (Specific nature) की होती है। अतएव ये अस्थायी (Unstable) तथा क्रमहीन (Inconsistent) होती है। वातावरण से प्रभावित होकर ये निरन्तर बदलती रहती है। इन दोनों मतों में समन्वय स्थापित करते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएँ सामान्य

ढंग की होती है तथा कुछ विशिष्ट ढंग की। अतः व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएँ स्थायी एवं क्रमबद्ध हो सकती है तथा कुछ अस्थायी, परिवर्त्तनशील तथा क्रमहीन हो सकती हैं। यहाँ व्यक्तित्व की कुछ प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख अपेक्षित है।

अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता (Introversion-Extroversion):—

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से पता चलता है कि प्रायः प्रत्येक व्यक्ति का संवेगात्मक अभियोजन (Emotional adjustment) एक-दूसरे से भिन्न होता है। जब व्यक्ति के सामने कोई संघर्षात्मक परिस्थिति उपस्थित होती है, तब संवेगात्मक अभियोजन अनिवार्य हो जाता है। संवेगात्मक अभियोजन के क्रम में प्रत्येक व्यक्ति संघर्षात्मक परिस्थिति के प्रति अलग-अलग ढंग की प्रतिक्रियाएँ प्रकट करता है। अलग-अलग ढंग की प्रतिक्रियाओं के आधार पर व्यक्तित्व की दो प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख मिलता है—अन्तर्मुखता (Introversion) तथा बहिर्मुखता (Extroversion)। इन दोनों विशेषताओं का प्रतिपादन सर्वप्रथम युग (Jung) ने किया था। तब से अधिकांश लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित होता रहा है।

अन्तर्मुखी व्यक्ति (Introverted person) आदर्शवादी एवं स्वप्न-द्रष्टा होता है तथा बहिर्मुखी व्यक्ति (Extroverted person) व्यवहार-कुशल। फलतः अन्तर्मुखी व्यक्ति अपने जीवन की समस्याओं का समाधान बाह्य जगत् की संघर्षात्मक परिस्थिति से दूर हटकर अपने आदर्शों एवं विचारों के संसार में करता है, किन्तु बहिर्मुखी व्यक्ति अपने जीवन की समस्याओं का समाधान बाह्य जगत् में प्रत्यक्ष कार्यों द्वारा करता है। बहुत-से मनोवैज्ञानिकों को व्यक्तित्व का यह वर्गीकरण मान्य नहीं है। उनका यह कहना है कि अन्तर्मुखता तथा बहिर्मुखता—ये दोनों ही विशेषताएँ प्रायः प्रत्येक व्यक्ति में पायी जाती है। अतएव, इन दो विशेषताओं के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण समुचित नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति कभी अन्तर्मुखता की ओर उन्मुख होता है, तो कभी बहिर्मुखता की ओर। फिर भी यह संभव है कि किसी में अन्तर्मुखी प्रवृत्तियाँ, बहिर्मुखी प्रवृत्तियों की अपेक्षा अधिक हों। ऐसी अवस्था में उसे अन्तर्मुखी व्यक्ति कहना उचित होगा। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति में अपेक्षाकृत बहिर्मुखी प्रवृत्तियाँ अधिक हों, तो उसे बहिर्मुखी व्यक्ति कहा जा सकता है।

कुछ विचारकों ने अन्तर्मुखता के तीन प्रधान पक्षों का उल्लेख

किया है। वे ये हैं--(१) व्यक्ति की अभिरुचि, (२) व्यक्ति का सामाजिक अभियोजन तथा (३) व्यक्ति की सवेगात्मकता। व्यक्तिगत अभिरुचि की दृष्टि से अन्तर्मुखी व्यक्ति आत्मकेन्द्रित (Self-centred) कहा जा सकता है, क्योंकि वह अपने भाव-जगत् मे तल्लीन रहता है, किन्तु बहिर्मुखी व्यक्ति की अभिरुचि अपने-आपमे उतनी नही होती, जितनी बाह्य जगत् मे। सामाजिक अभियोजन की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि अन्तर्मुखी व्यक्ति समाज की अपेक्षा एकान्त की ओर अधिक प्रवृत्त होता है। किन्तु बहिर्मुखी व्यक्ति अपने को आसानी से समाज मे अभियोजित कर लेता है। जहाँ तक व्यक्ति की सवेगात्मकता का प्रश्न है, यह माना जाता है कि अन्तर्मुखी व्यक्ति सवेगो को स्वतन्त्रतापूर्वक अभिव्यक्त नही करता, वरन्, वह उन्हे दबा देता है। इसके विपरीत, बहिर्मुखी व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक अपने सवेगो को अभिव्यक्त करता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति प्राय कवि, कलाकार तथा विचारक होते है। बहिर्मुखी व्यक्ति प्राय सामाजिक नेता हुआ करते है।

प्रभुत्व-अधीनता (Ascendance-Submission) --प्रभुत्व-अधीनता बहुत कुछ व्यक्ति के उन व्यवहारो का वर्णन करती है, जिन्हे हम अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता के आधार पर भी समझ सकते है। किन्तु, इन दोनो मे दृष्टिकोण का अन्तर है। जहाँ अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता से यह प्रकट होता है कि कोई व्यक्ति किस प्रकार अपने जीवन की समस्याओ को सुलझाने की चेष्टा करेगा, वहाँ प्रभुत्व-अधीनता व्यक्तियो के परस्पर सम्बन्ध को प्रकट करती है। जिस व्यक्ति मे प्रभुत्व की प्रवृत्ति पाई जाती है, वह अन्य व्यक्तियो पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है, किन्तु जिसमे अधीनता की प्रवृत्ति वर्त्तमान रहती है, वह आसानी से दूसरे व्यक्तियो की बातो को मान लेता है तथा उनकी अधीनता स्वीकार कर लेता है। इसी आधार पर सामाजिक मनोविज्ञान के विशेषज्ञो ने व्यक्तियो को दो वर्गो मे बाँटा है--नेता (Leader) तथा अनुयायी (Follower)। नेताओ मे प्रभुत्व-वृत्ति की विशेषता पायी जाती है तथा अनुयायियो मे आधिन्य-वृत्ति की प्रधानता रहती है। प्रभुत्वप्रिय व्यक्ति प्राय. नेता होता है तथा अधीनताप्रिय व्यक्ति अनुयायी।

मनुष्य के सिवा पशुओ मे भी प्रभुत्व-अधीनता की विशेषताएँ पायी जाती है। कुछ बन्दरो पर किये गये प्रयोगो के आधार पर यह पाया गया है कि प्रभुत्वप्रिय पशु अधिक लडाकू, खिलाडी तथा क्रियाशील होते है तथा अधीनताप्रिय पशु निष्क्रिय (Passive) और पलायनवादी (Escapist)।

जब बलवान् तथा अधिकारप्रिय पशु आधिन्य-वृत्तिवाले पशुओं पर आक्रमण करते हैं, तब वे वहाँ से भागकर अपनी निष्क्रियता का परिचय देते हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जिस व्यक्ति में प्रभुत्व-वृत्ति की विशेषता पायी जाती है, वह प्रायः सभी परिस्थितियों में प्रभुत्व प्रदर्शित करता है। वैसे ही, जिसमें आधिन्य-वृत्ति की विशेषता पायी जाती है, वह प्रायः सभी परिस्थितियों में कायरता तथा दुर्बलता दिखलाता है। इस संबंध म स्कूल में प्रवेश करने के पूर्व कुछ बच्चों का अध्ययन किया गया है। इसके आधार पर यह पाया गया कि कुछ बच्चों में प्रभुत्व-वृत्ति निश्चित रूप से वर्त्तमान रहती है। ये प्रभुत्वप्रिय बच्चे अपने मित्रों पर बराबर आधिपत्य बनाये रखने की चेष्टा करते हैं। इन अध्ययनों से ऐसा जान पड़ता है कि प्रभुत्व-वृत्ति या आधिन्य-वृत्ति की विशेषताएँ व्यक्ति में स्थायी रूप से बनी रहती हैं। किन्तु वह धारणा समुचित नही है। वस्तुतः कुछ ही ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनमें प्रभुत्व-वृत्ति या आधिन्य-वृत्ति की मात्रा बहुत अधिक होती है और उन्हीं के सम्बन्ध में उपर्युक्त विचार सही कहा जा सकता है। किन्तु, अधिकांश व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिनमें प्रभुत्व-वृत्ति तथा आधिन्य-वृत्ति, दोनों ही की विशेषताएँ वर्त्तमान रहती हैं। वे किस समय प्रभुत्व प्रदर्शित करेंगे तथा कब अधीनता प्रकट करेंगे, यह बहुत कुछ परिस्थिति तथा उनकी तात्कालिक मनोवृत्ति पर निर्भर करता है। अधिकांश व्यक्ति प्रायः अपने से उच्च पद-वाले के सामने समर्पण या अधीनता के भाव दिखलाते हैं तथा वे ही अपने नीचे काम करनेवालों पर प्रभुत्व प्रदर्शित करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रभुत्व-वृत्ति तथा आधिन्य-वृत्ति की विशेषताएँ स्थायी नहीं है, वरन् परिस्थिति तथा व्यक्ति की तात्कालिक मनोवृत्ति पर निर्भर करती है।

संवेगात्मक अस्थिरता (Emotional instability)—संवेगात्मक अस्थिरता, व्यक्तित्व की एक प्रधान विशेषता है। जिस व्यक्ति में यह विशेषता पायी जाती है, वह प्रायः चंचल स्वभाव का होता है। आगामी दुःखों एवं निराशाओं की आशंका से भी वह अत्यधिक चिन्तित हो जाता है। दुःख के वास्तविक कारणों के अभाव में भी वह प्रायः दुःख का अनुभव करता है। इस प्रकार के व्यक्ति के जीवन में सामान्य रूप से आस्थरता होने के कारण सुख-दुःख के भाव क्षण-क्षण बदलते रहते है। वह जीवन की वास्तविकताओं से दूर रहकर अपने अधिकांश समय को दिवा-स्वप्नों (Day-dreams) में ही व्यतीत करता है।

प्रसक्ति या हठ (Persistence)--प्रसक्ति या हठ व्यक्ति की एक ऐसी प्रवृत्ति है, जो उसे अनेक कठिनाइयो एव बाधाओ के बीच भी तात्कालिक लक्ष्य की पूर्त्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रखती है। इस विशेषता से युक्त व्यक्ति जब किसी काम को एक बार अपने हाथ मे लेता है, तब उसे सम्पन्न करने के लिए जी-जान से कोशिश करता है। इसके विपरीत, जिस व्यक्ति मे यह गुण नही पाया जाता है, वह कठिनाइयो एव बाधाओ से शीघ्र ही निरुत्साह होकर अपने कार्य को बीच मे ही छोड देता है, उसे पूरा करने की चेष्टा नही करता।

भीरुता या सकोच (Shyness)--भीरुता अथवा सकोच की विशेषता से युक्त व्यक्ति प्राय सामाजिक हुआ करता है। वह समाज के कुछ ही लोगो के साथ अपना सम्पर्क स्थापित कर पाता है। फलत उसके मित्रो की सख्या बहुत थोडी होती है। वह सामाजिक सस्थाओ या सभाओ मे जाने मे हिचकिचाता है तथा किसी भी सस्था मे रहकर अगुआ का काम नही करना चाहता। जब कभी उसे अपरिचित व्यक्तियो से भेट हो जाती है, तब वह उनसे सम्पर्क स्थापित करने तथा बातचीत करने मे हिचकिचाहट का अनुभव करता है। तात्पर्य यह है कि सकोचशील अथवा भीरु व्यक्ति मे समाज से अलग रहने की प्रवृत्ति प्रबल रूप से वर्त्तमान रहती है।

चिन्तनशीलता (Reflectiveness)--चिन्तनशीलता व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित तथा अन्तर्मुखी (Introverted) बना देती है। इस विशेषता से युक्त व्यक्ति की प्रवृत्ति मुख्यत दार्शनिक होती है। वह निरन्तर दार्शनिक विचारो मे ही तल्लीन रहा करता है। वह सामान्यत जीवन सम्बधी प्रश्नो और समस्याओ पर अपने मित्रो से विचार-विमर्श करता है। तात्पर्य यह कि चिन्तनशीलता उसके जीवन का एक अग होती है।

खिन्नता (Depression)--खिन्नता की विशेषता से युक्त व्यक्ति का व्यक्तित्व चिन्ता, दु ख, निराशा इत्यादि से अनुरजित हुआ करता है। वह आगामी दु खो पर विचार करके ही अत्यधिक निरुत्साह तथा चिन्ता-मग्न हो जाता है। यदि उसे जीवन मे किसी क्षण प्रसन्नता का अनुभव होता भी है, तो शीघ्र ही विलीन हो जाता है। अतत वह दु ख, चिन्ता, निराशा इत्यादि का ही अनुभव करता रहता है। स्पष्टत उसका जीवन चिन्तामय तथा दु खी होता है। सक्षेप मे, उसके जीवन मे खिन्नता की ही प्रधानता पायी जाती है।

उपर्युक्त व्यक्तित्व की विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताओं के सम्बन्ध में भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन हुए हैं, जिनका विवेचन यहाँ अपेक्षित नहीं है । व्यक्तित्व की उन विशेषताओं के अन्तर्गत शारीरिक बनावट (Physique), बुद्धि, धातु-स्वभाव (Temperament) तथा चरित्र-सम्बन्धी विशेषताओं--जैसे सचाई, ईमानदारी इत्यादि--को रखा जा सकता है ।

व्यक्तित्व के मापने की विधियाँ
(Methods of measuring personality)

व्यक्तित्व की माप के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया गया है । उनमें से कुछ प्रधान विधियों पर प्रकाश डालना ही यहाँ अपेक्षित है । वे प्रधान विधियाँ हैं—(१) व्यक्ति-इतिहास (Case history), (२) 'इण्टरव्यू' (Interview), (३) प्रश्नावलियाँ (Questionnaires), (४) श्रेणी-मूल्यांकन (Rating scales)। (५) परिस्थिति-परीक्षण (Situation tests), (६) मनोविश्लेषणात्मक परीक्षण (Psycho-analytic tests) तथा (७) आरोपणात्मक विधियाँ (Projective methods) ।

व्यक्ति-इतिहास (Case-history)--इस विधि का प्रधान लक्ष्य है--व्यक्ति के वंश-इतिहास (Family history), सामाजिक वातावरण, शारीरिक अवस्था, शिक्षा, आर्थिक अनुभव, वर्त्तमान आदत, अभियोजन (Adjustment), संतोष इत्यादि का समुचित ज्ञान प्राप्त करना। संक्षेप में, यह विधि व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालनेवाली सारी बातों की जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा करती है। इस विधि का सफलतापूर्वक प्रयोग वही कर सकता है, जिसे इस विधि के प्रयोग करने की शिक्षा पूर्णरूप से प्राप्त हो । इस विधि का प्रयोग सामान्य (Normal) तथ असामान्य (Abnormal), दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों के व्यक्तित्व की जानकारी के लिए किया जाता है ।

'इण्टरव्यू' (Interview)--व्यक्तित्व की परीक्षा के लिए 'इण्टरव्यू' की विधि अत्यन्त व्यावहारिक समझी जाती है । किसी पद पर नियुक्त करने के पहले प्रायः कई उम्मीदवारों पर इस विधि का प्रयोग किया जाता है । अन्त में किसी एक व्यक्ति को पद पर नियुक्त करने के लिए चुन लिया जाता है ।

'इण्टरव्यू' की विधि व्यक्तित्व की परीक्षा के लिए तभी एक सफल विधि समझी जा सकती है, जब 'इण्टरव्यू' लेनेवाले (Interviewer) इस विधि के प्रयोग में निपुण हो। दूसरी बात यह है कि 'इण्टरव्यू' लेनेवाले को पदवि-शेष के लिए आवश्यक योग्यताओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। तीसरी प्रधान बात यह है कि आवश्यक योग्यताओं से सम्बन्धित प्रश्नों की एक सूची तैयार कर लेनी चाहिए। फिर उन्हीं प्रश्नों को 'इण्टरव्यू' के समय क्रमबद्ध ढंग से पूछना चाहिए। इस प्रकार किये गये 'इण्टरव्यू' के आधार पर उम्मीदवारों के व्यक्तित्व की परीक्षाएँ बहुत कुछ सफल समझी जा सकती हैं।

प्रश्नावलियाँ (Questionnaires)--व्यक्तित्व की परीक्षा के लिए प्रश्नावलियों का प्रयोग किया गया है। इस सम्बन्ध में वुडवर्थ तथा ऑलपोर्ट आदि मनोवैज्ञानिकों ने अत्यधिक कार्य किया है। मनोवैज्ञानिक प्रश्नावली, प्रश्नों की वह सूची है, जिसका उत्तर 'हाँ' या 'ना' में दिया जाता है। व्यक्तित्व की प्रधान विशेषताओं की जानकारी के लिए प्रश्नावलियों का निर्माण हो चुका है। प्रश्नावलियों के आधार पर अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता (Inroversion-Extroversion) प्रभुत्व-वृत्ति, आधिन्य वृत्ति (Ascendance-Submisssion), सामाजिकता-एकान्तता (Sociability-Solitariness) आदि व्यक्तित्व की विशेषताओं की जाँच की जाती है। जाँच करनेवाला प्रायः व्यक्तियों के उत्तर का विश्लेषण कर उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करता है। इस विधि में एक बड़ी कठिनाई यह होती है कि प्रयोज्य (Subjects) प्रायः झूठे उत्तर देकर अपने व्यक्तित्व को छिपाने की चेष्टा करते हैं। यह विधि व्यक्तिगत अध्ययन की अपेक्षा समुदाय के अध्ययन में अधिक सफल हुई है।

श्रेणी-मूल्यांकन (Rating scale)--इस विधि के प्रयोग के लिए व्यक्तित्व की विशेषताओं को कई श्रेणियों में बाँट लिया जाता है। फिर इस विधि का प्रयोग कर व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताओं का उल्लेख कुछ नपे-तुले परिमाणबोधक शब्दों में किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हमें किसी व्यक्ति की ईमानदारी की जाँच करनी है, तो हम ईमानदारी को कई श्रेणियों में बाँटकर एक मानदंड (Scale) तैयार कर लेंगे। फिर कुछ प्रश्नों के सहारे उस व्यक्ति में वर्त्तमान ईमानदारी की मात्रा की परीक्षा करेंगे।

नमूने के रूप में ईमानदारी का एक मानदंड नीचे प्रस्तुत किया जाता है--

ईमानदारी

अनुपस्थित	बहुत कम	कम	औसत	अधिक	बहुत अधिक	अत्यधिक

इस श्रेणी-मूल्यांकन से स्पष्ट है कि व्यक्ति की ईमानदारी की जाँच सात निश्चित श्रेणियों में की जा सकती है। श्रेणी-मूल्यांकन के सफल प्रयोग के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोग करनेवालों अथवा निर्णायकों (Judges) को इस विधि की पूर्ण शिक्षा हो। दूसरे, श्रेणी-मूल्यांकन का समुचित रूप से निर्माण होना चाहिए। निर्णायकों के निर्णय में जितनी अधिक समानता होती है, इस विधि के आधार पर पाया हुआ निष्कर्ष भी उतना ही प्रामाणिक तथा विश्वसनीय समझा जाता है।

परिस्थिति-परीक्षण (Situation tests).—परिस्थिति-परीक्षणों के आधार पर यह जाँच की जाती है कि किसी विशेष परिस्थिति के उपस्थित होने पर व्यक्ति किस प्रकार का व्यवहार प्रकट करता है। परिस्थिति-परीक्षणों का प्रयोग अधिकतर बच्चों पर किया जाता है। हार्टशोर्न (Hartshorne) और मे (May) ने कुछ बच्चों की ईमानदारी की जाँच वास्तविक परिस्थितियों में की थी। वे भी सभी परिस्थितियाँ ऐसी थीं, जिनमें ईमानदारी तथा बेईमानी--दोनों ही प्रकट करने की पूरी गुंजाइश थी। हार्टशोर्न और मे (May) ने एक सौ बच्चों पर प्रयोग किया। वह परिस्थिति, जिसमें उनकी ईमानदारी की परीक्षा की गई, यह थी—

एक कमरे में एक बक्सा रख दिया गया। बच्चों से कहा गया कि वहाँ जाकर बक्से में कुछ पैसे रख आवें। वे पैसे गरीबों को दान दिये जायेंगे। कुछ बच्चों ने वहाँ जाकर उस बक्से में कुछ पैसे रख दिये, किन्तु कुछ बच्चों ने पैसे रखने के बदले बक्से में से कुछ पैसे निकाल लिये।

एक दूसरी परिस्थिति में भी जाँच की गयी। उन्हें कुछ कठिन शब्दों के अर्थ लिखने को कहा गया और शब्द-कोश भी दे दिया गया। उन्हें स्पष्ट शब्दों में कह दिया गया कि बिना शब्द-कोश देखे, वे सभी शब्दों के अर्थ लिखें। ऐसी परिस्थिति में कुछ बच्चों ने तो सचमुच बिना शब्द-कोश देखे ही शब्दों के अर्थ लिख दिये, किन्तु दूसरों ने शब्द-कोश को देखकर शब्दों के अर्थ लिखने की चेष्टा की। इस तरह अन्य परिस्थितियों में भी उनकी ईमानदारी की परीक्षा की गयी। इन परीक्षणों से यह आसानी से

पता चल जाता है कि वास्तविक परिस्थिति में व्यक्तित्व की विशेषताएँ किस प्रकार प्रकट होती हैं।

परिस्थिति-परीक्षणों की समीक्षा करते हुए कहा जा सकता है कि इनका क्षेत्र बड़ा ही सीमित है। इनका सफलतापूर्वक प्रयोग बच्चों पर तो संभव है, किन्तु प्रौढ़ व्यक्तियों पर नहीं। प्रौढ़ व्यक्तियों के व्यवहार सभी परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न ढंग के हुआ करते हैं। अतएव, कुछ परिस्थितियों में किये गये परीक्षणों के आधार पर उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का समुचित ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। साथ ही, यह भी संभव नहीं है कि व्यक्ति अपने जीवन में जितनी परिस्थितियों का सामना करता है, उन सबका अलग-अलग अध्ययन किया जाय। अतः प्रौढ़ व्यक्तियों के व्यक्तित्व की विशेषताओं का निश्चित ज्ञान परिस्थिति-परीक्षणों के आधार पर नहीं हो सकता, यह इस विधि की सबसे बड़ी त्रुटि है।

मनोविश्लेषणात्मक परीक्षण (Psycho-analytic tests)—मनोविश्लेषणात्मक परीक्षणों में प्रमुख है—स्वतन्त्र साहचर्य (Free Association) तथा स्वप्न-विश्लेषण (Dream-analysis)। इनकी सहायता से व्यक्ति के व्यक्तित्व की उन विशेषताओं की जानकारी प्राप्त होती है, जो अप्रत्यक्ष रूप से उसमें निरन्तर वर्त्तमान रहती हैं। दूसरे शब्दों में, अचेतन (Unconscious) तथा उपचेतन (Subconscious) में वर्त्तमान व्यक्तित्व की विशेषताएँ इन्हीं के आधार पर व्यक्त होती हैं। इनका प्रयोग असामान्य व्यक्तियों (Abnormal individuals) के व्यक्तित्व की जाँच के लिए अधिक सफलतापूर्वक हुआ है। मानसिक रोगियों की चिकित्सा में भी ये विधियाँ लाभदायी सिद्ध हुई हैं।

स्वतन्त्र साहचर्य की पद्धति का प्रयोग करते समय प्रयोज्य (Subject) को आराम से बिठा दिया जाता है। फिर मनोविश्लेषक (Psycho-analyst) प्रयोज्य से यह कहता है कि उसके समक्ष जैसी भी बातें आयें, उन्हें वह स्वतन्त्रतापूर्वक कहता चले। बीच-बीच में मनोविश्लेषक प्रश्न पूछकर उसके व्यक्तित्व की छिपी हुई विशेषताओं को जानने का प्रयास भी करता है। इस पद्धति के आधार पर प्रयोज्य के जीवन के आवश्यक पहलुओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। स्वप्न-विश्लेषण में प्रयोज्य अपने स्वप्नों का वर्णन करता है। मनोविश्लेषक (Psycho-analyst) उसके स्वप्नों का विश्लेषण

कर उसके व्यक्तित्व की अप्रत्यक्ष तथा छिपी हुई विशेषताओं को जानने में समर्थ होता है ।

मनोविश्लेषणात्मक परीक्षणों के बाद मनोविश्लेषक अपने प्रयोज्य को उसकी त्रुटियों के बारे में ज्ञान करा देता है । अतः यह कहा जा सकता है कि मनोविश्लेषणात्मक परीक्षण व्यक्तित्व की छिपी हुई विशेषताओं के ज्ञान के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।

आरोपणात्मक पद्धतियाँ (Projective methods) :—आरोपणात्मक विधियों के प्रयोग के लिए कई तरह की परिस्थितियों का निर्माण किया गया है। वे परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं, जिनमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं को स्वतन्त्रतापूर्वक आरोपित करते हैं । आरोपणात्मक विधियों में प्रधानतः रोर्शा (Rorschach) तथा मर्रे (Murray) के परीक्षणों का विवेचन-मात्र ही यहाँ अपेक्षित है। रोर्शा का मसि-चिह्न-परीक्षण (Ink-blot test) अत्यन्त ही प्रसिद्ध है । रोर्शा के इस परीक्षण में स्याही के दस धब्बों का प्रयोग किया जाता है। इनमें से पाँच धब्बे सफेद कागज पर बिलकुल काले होते हैं तथा दूसरे पाँच धब्बे कई रंगों के होते हैं। इनमें से प्रत्येक धब्बे को एक-एक कर प्रयोज्य (Subject) को दिखलाया जाता है और उससे कहा जाता है कि धब्बे को अच्छी तरह देखने के बाद वह यह बतलाये कि उनमें उसने कौन-सी चीजें देखीं अथवा उस धब्बे का उसने क्या अर्थ समझा। संक्षेप में, धब्बों के देखने से उसके ऊपर जो प्रभाव पड़ता है, उसका वर्णन करने को उससे कहा जाता है । फिर मनोविश्लेषक उसके वर्णनों का विश्लेषण कर उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डालता है।

मर्रे (Murray) ने व्यक्तित्व की जाँच के लिए कुछ अस्पष्ट चित्रों का संग्रह किया है । वे अस्पष्ट चित्र प्रयोज्य के सामने प्रस्तुत किये जाते हैं तथा उन्हीं चित्रों को देखकर कथा या कहानी रचने, अथवा उन चित्रों की व्याख्या प्रस्तुत करने को कहा जाता है । एक ही अस्पष्ट चित्र को देखकर सभी प्रयोज्य प्रायः अलग-अलग कहानियाँ रचते तथा उनकी अलग-अलग व्याख्या प्रस्तुत करते हैं । उनकी कहानियों तथा व्याख्याओं का विश्लेषण कर मनोविश्लेषक यह निष्कर्ष निकालता है कि ये कहानियाँ तथा व्याख्याएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व की अमुक विशेषताओं को प्रकट करती हैं । वस्तुतः व्यक्ति इन कहानियों तथा व्याख्याओं में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं को आरोपित

करता है। मर्रे के द्वारा उल्लेख किये गये परीक्षण को कथा-संस्कार-परीक्षण (Thematic apperception test) कहते है।

रोर्शा तथा मर्रे की आरोपणात्मक विधियों की समीक्षा करते हुए कहा जा सकता है कि इन विधियों के आधार पर प्रयोज्य के व्यक्तित्व की अप्रत्यक्ष तथा छिपी हुई विशेषताओं का ज्ञान सहज ही प्राप्त हो जाता है। प्रयोज्य यह बिलकुल नहीं समझ पाता कि इन परीक्षाओं का फल क्या होगा; क्योंकि इन परिस्थितियों में प्रकट की गई प्रतिक्रियाओं के वास्तविक अर्थ का उसे कोई ज्ञान नहीं रहता। किन्तु, मनोविश्लेषक उसकी प्रतिक्रियाओं की व्याख्या कर उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर लेता है। आरोपणात्मक विधियों के आलोचक मनोविश्लेषक की व्याख्याओं की प्रामाणिकता पर संदेह प्रकट करते है। उनका कहना है कि आरोपणात्मक विधियों मे मनोविश्लेषक की व्याख्या की प्रधानता होती ह। किन्तु वह व्याख्या वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कहाँ तक प्रामाणिक और विश्वसनीय हो सकती है, यह सन्देह का विषय है।

अभ्यास के प्रश्न

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

1. Psychology studies the adjustment of the organism to its environment. Discuss.

2. Psychology is a positive science which studies activities of the organism in relation to its environment. Discuss.

3. Examine the statement that Psychology is the science of mental activities of the individual.

4. Explain and examine the view that Psychology is the science of behaviour. What do you consider to be the correct definition of Psychology ?

5. Psychology is the science of experience. Do you agree with this view ? Give reasons for your answer.

6. Discuss why both experience and behaviour are studied in Psychology ?

7. What is the proper subject-matter of Psychology ? Discuss.

8. How is Psychology related to other sciences ? Show its relation to Physiology and Biology.

दूसरा अध्याय

मनोविज्ञान की विधियाँ तथा शाखाएँ

1. Define Psychology and explain the methods employed in it.

2. Explain fully the methods employed in the study of Psychology.

3. What is meant by Introspection ? What are the main objections against it ? Do you consider them valid ?

4. Discuss the merits and demerits of objective observation. What do you consider to be the proper method of Psychology ?

5. Discuss the main objections to Introspection and indicate the importance of Experimental method in the study of Psychology.

6. How can you distinguish between Experimental Introspection and Casual Introspection ? Why Introspection is used as a method of Psychology ?

तीसरा अध्याय

प्राणी तथा वातावरण

1. Discuss the importance of stimulus, response and adaptation in the study of Psychology.

2. Write a short note on the importance of heredity and environment in the study of human behaviour.

3. What do you understand by environment ? Discuss how is adaptation to environment brought about Psychologically ?

4. What do you understand by S-O-R formula ? How far can you interpret human behaviour in terms of this formula ?

5. "The individual does not equal heredity + environment but does equal heredity × environment." Discuss.

चौथा अध्याय

स्नायु-मंडल

1. Describe in brief the structure and the general functions of the central nervous system.

2, Explain the general nature of nerve-impulse.

3. What are the major differences in structure between afferent, efferent and association neurons ? How are these structural differences related to their functions ?

4. What is the All-or-None law ? Discuss its implications in neural activity.

5. What different techniques may be used for localizing functions in the brain ? Discuss the localization of functions in the cerebral cortex.

6. What sensory and motor functions have been definitely indentified as associated with specific areas within the cortex ?

7. What is meant by the "Localization of brain-functions" ? Discuss the theory of equi-potentiality and mass action of brain.

8. Write short notes on the following :—

(a) Receptors and Effectors.
(b) Glands.
(c) Neurons.
(d) Synapses.
(e) Reflex arc.

पाँचवाँ अध्याय

संवेदना

1. What is sensation ? Distinguish it from Perception with the help of concrete examples.

2. Describe with the help of examples, the main attributes of sensation.

3. Give a description of the structure of the eye and indicate its main function.

4. Explain with the help of examples, the phenomena of colour-mixture and colour-blindness.

5. Describe briefly the structure of the eye and explain the nature of stimulus necessary to produce visual sensation.

6. Write short notes on the following:—

(a) Light-adaptation and Dark-adaptation.
(b) Rods and Cones.
(c) After-images
(d) Colour-blindness.
(e) Complementary colour.

7. Describe the structure of the ear and explain how does Auditory sensation arise ?

8. Discuss the nature of Ether-vibration and explain attributes of pitch, loudness and timbre.

छठा अध्याय

प्रत्यक्षीकरण

1. Distinguish between Sensation and Perception. Indicate how does the perception of an object arise ?

2. Explain with the help of examples, the role of past experience in Perception,

3. "We see things as we are not as they are." To what extent is this statement true ?

4. Explain clearly how Perception is a complex process but a unitary experience. Indicate with special reference to visual field, the principles governing unit formation.

5. Indicate the role of ground in perceiving a figure. How would you distinguish a figure from a ground ?

6. Distinguish between Perception and illusion; illusion and hallucination.

7. What is illusion ? Illustrate its various types and indicate why do they occur ?

सातवाँ अध्याय

ध्यान

1. What is attention ? Point out the main bodily accompaniments in the process of attending an object.

2. Explain and illustrate the different kinds of attention.

3. Distinguish between Voluntary attention and Involuntary attention and throw light on Habitual attention.

4. What do you mean by conditions or determiners of attention ? Discuss the main conditions of attention.

5. Bring out clearly a distinction between the subjective and the objective conditions of attention. Discuss with the help of examples, the main objective conditions of attention.

6. Define attention and discuss the subjective conditions of attention.

7. "Interest is latent attention and attention is interest in action." Explain this statement and point out the other subjective conditions of attention.

8. Discuss the nature of attention. Can we attend to two things at a time ? Give reasons for your answer.

आठवाँ अध्याय

सीखना

1. What is learning ? Distinguish it from maturation, using suitable examples.

2. Explain the law of exercise and the law of effect and indicate what part do they play in trial and error learning ?

3. What is meant by the trial and error learning ? Can all learning be treated as a trial and error process ?

4. Explain learning by trial and error, using suitable examples and experiments.

5. Distinguish between human learning and animal learning. Discuss the role of insight in learning.

6. Give a comparative estimate of the trial and error learning and the insightful learning.

7. What is meant by insight ? Can you explain all learning through it ?

8. Explain fully the Conditioned reflex theory of learning. Does it satisfactorily explain all kinds of learning ?

9. What is meant by Conditioning ? How can it be extinguished ?

10. "Practice makes perfect." How far is this saying true or false with reference to learning ?

11. What are the main learning procedures ? Give a critical view of the whole and part learning.

12. Indicate the advantages of recitation in learning a list of nonsense syllables. Discuss massed versus spaced learning.

13. What is verbal learning ? Explain the important methods employed in verbal learning.

14. What do you mean by the association of ideas ? Explain the various laws of association with the help of examples.

नवाँ अध्याय

स्मरण-विस्मरण

1. Describe with the help of examples, the processes involved in the act of remembering.

2. What is the nature of remembering? Discuss the processes of retention, recall and recognition in remembering an event.

3. Distinguish between recall and recognition. Can you say that what cannot be recalled is not retained?

4. Describe briefly the conditions of recall. Can you say that what is retained must be recalled?

5. Discuss the conditions of good memory. Can memory be trained?

6. Explain the nature and main causes of forgetting.

7. Is forgetting due to mere lapse of time? Explain the role of repression and retroactive inhibition in forgetting.

दसवाँ अध्याय

प्रतिमा और कल्पना

1. What is imagery? How does a percept differ from an image?

2. Discuss with the help of examples, the different kinds of images.

3. Distinguish between the memory-image and the imagination-image. Explain the eidetic image with the help of examples.

4. What is meant by an image? How does it arise? Bring out clear distinction between different kinds of images.

5. What is an image? Discuss the main characteristics of image.

6. What is imagination? How does it differ from the act of remembering and perceiving?

7. Discuss the nature and forms of imagination.

8. Distinguish between different kinds of imagination.

with the help of concrete examples and indicate the main uses of imagination.

ग्यारहवाँ अध्याय

चिन्तन

1. What is thinking ? Distinguish thinking from an imagination.

2. Analyse the process of thinking in solving a problem. Can it be regarded as a trial and error process ?

3. How is thinking related to language ? Can you say that thinking is nothing but a sub-vocal talking ?

4. What is thinking ? Discuss the main characteristics of thinking.

5. How is a concept formed ? Discuss the role of concept in thinking.

6. What is meant by creative thinking ? Discuss its main stages.

बारहवाँ अध्याय

अचेतन तथा स्वप्न

1. What is unconscious ? Why do you believe in the existence of unconscious ?

2. Discuss the nature and contents of unconscious.

3. How Freud explains his theory of Libido ? Do other Psycho-analysts agree with him ?

4. Discuss the wish-fulfilment theory of dreams. How can you say that dream is the guardian of sleep ?

5. Dream is not merely a wish-fulfilment but attempted wish-fulfilment. Explain the significance of this statement.

6. What do you mean by distortion in dream ? Explain its role fully.

7. "All the facts as we see them, urge us to characterize the dream as a physical process in all cases morbid." Do you agree with this view ?

8. Give a comparative estimate of the different dream-interpretations with special reference to Freud, Adler and Jung.

9. "What underlies a given dream is certainly much more than finds a place in any interpretations." Discuss this statement fully.

10. Write short notes on the following:—

(a) Dream-Censor.
(b) Dream-Content.
(c) Dream-Work.
(d) Dream-Symbols.
(e) Libido.
(f) Collective unconscious.

तेरहवाँ अध्याय

अनुप्रेरणा

1. A motive is "a tendency to activity initiated by a drive and concluded by an adjustment." Discuss.

2. Distinguish accurately between Need, Drive and Incentive, giving suitable examples.

3. What do you mean by Motivation? Explain the role of unconscious motiviation in individual's activities.

4. Distinguish between Personal and Social motives and analyse the development of Social motives in man.

5. Give your own example to show the four kinds of modification that an innate motive undergoes through individual's experience.

6. What is meant by motive? Give a full description of the physiological background of motivated behaviour.

7. Distinguish between interest and attitude and explain the development of attitude.

8. Write notes on the following:—

(a) Level of aspiration.
(b) Force of habit.
(c) Interests and attitudes.
(d) Life-goal.

चौदहवाँ अध्याय

क्रिया एवं प्रेरक वृत्तियों का संघर्ष

1. What is meant by reflex action ? Point out its chief characteristics.

2. How can you distinguish a reflex action from an instinctive action? Explain the main characteristics of instinct.

3. What is instinct ? Explain its chief characteristics.

4. How does conflict of motives arise ? How can an individual solve such a conflict?

5. What do you mean by Voluntary action ? Explain the mechanisms of deliberation and decision involved in it.

6. Analyse with the help of examples, the processes which comprise voluntary action.

7. Describe the mental processes involved in deciding to carry out the order of your father rather than to marry the lady of your choice.

8. Distinguish between Voluntary action and Instinctive action. Illustrate your answer with suitable examples.

9. Explain the important mechanisms that are employed in resolving a conflict.

पन्द्रहवाँ अध्याय

भाव

1. What is feeling ? How can you distinguish feeling from sensation.

2. What are the main characteristics of feeling ? How does it differ from an emotion ?

3. Describe the nature of feeling. Is feeling an attribute of sensation ?

4. State and examine the Tri-dimensional theory of feeling.

5. Can you think of any possibility of mixed feeling ? Give reasons for your answer.

सोलहवाँ अध्याय

संवेग

1. What is meant by emotion? Show its relation to instinct.

2. How is sentiment formed? Discuss the relation of emotion to sentiment.

3. State and examine the James-Lange theory of emotion.

4. Describe the main bodily changes involved in emotion.

5. What is emotion? State the bodily changes involved in the emotion of fear or anger.

6. What do you mean by the facial expression of emo-f tion? Indicate some of the import ٠ nt facial expressions o emotion.

7. "We feel sorry because we cry, angry because we strike, afraid because we tremble." Examine the validity of this statement.

सत्रहवाँ अध्याय

बुद्धि

1. Discuss the nature of intelligence and explain the concept of Mental age.

2. Give a critical exposition of the different Psychological tests for measuring intelligence.

3. Explain fully the Binet-Simon test of intelligence and indicate the role of Terman in prefecting the test.

4. Give a comparative estimate of the Verbal and performance tests of intelligence.

5. "A perfect performance battery would be a better measure of 'g' than a perfect verbal battery." Discuss.

6. Make out a clear distinction between the individual and group tests of intelligence and discuss their merits and demerits.

7. What do you mean by I. Q.? Do you consider it to be constant? Give reasons for your answer.

8. How might the fact that different abilities correlate more highly in children than in adults be reasonably explained?

9. How far the Two-Factor theory of Spearman explains the nature of intelligence?

10. The Wechsler-Bellevue test is one of the most important tools of measurement of intelligence. Do you agree?

11. How is I. Q. determined? Point out the uses of I. Q. determination.

12 "General intelligence is the function of the Personality as a whole and is determined by emotion and conative factors." Discuss.

अठारहवाँ अध्याय

व्यक्तित्व

1. What is meant by the term 'Personality'? Give a short account of the factors on which personality depends.

2. What is personality? Discuss the social and biological factors in the formation of personality.

3. What do you mean by the trait of Personality? Discuss, giving suitable examples, the important traits of personality.

4. Describe the different types of personality. Is it correct to classify personality into different types?

5. Explain and distinguish the traits of introversion and and extroversion.

6. What is personality? How can it be measured?

7. What is meant by the projective technique? Explain the utility of the Thematic apperception test and the Rorschach's ink-blot test.

सहायक ग्रन्थों की सूची

1. Asher, Tiffin and Knight : Introduction to General Psychology.
2. A. G. Bills : General Experimental Psychology.
3. Alfred Adler : Individual Psychology.
4. Boring, Langfeld and Weld : Psychology.
5. Boring, Langfeld and Weld : Foundations of Psychology.
6. C. H. Sheldon and S. S. Stevens : The Varieties of Temperament.
7. C. J. Warden : Animal Motivation.
8. C. T. Morgan and E. Stellar : Physiological Psychology.
9. C. S. Sherrington : The Integrative Action of the Nervous System.
10. C. G. Jung : Contributions to Analytical Psychology (translated by H. G. and C. F. Baynes Harcourt Brace & Co., 1928).
11. C. G. Jung : Psychological Types.
12. C. G. Jung : Collected papers.
13. C. A. Ruckmick : The Psychology of Feeling and Emotion.
14. Charles Darwin : The Expression of Emotions in Man and Animals.
15. D. Wechsler : The Measurement of Adult Intelligence. (Revd. Edn.)
16. E. Bagby : The Psychology of Personality.
17. E. G. Boring : A History of Experimental Psychology.
18. E. G. Boring : Sensation and Perception in the History of Experimental Psychology.
19. E. B. Titchener : Experimental Psychology.
20. E. J. Kempf : The Autonomic Functions and the Personality.
21. E. J. Downey : Creative Imagination.

22. E. R. Hilgard : Introduction to Psychology.
23. E. K. Strong : Change of Interests with Age.
24. E. L. Thorndike : The Measurement of Intelligence.
25. E. Kretschmer : Physique and Character.
26. F. C. Bartlett : Remembering.
27. F. Galton : Hereditary Genius.
28. G. Murphy : An Historical Introduction to Modern Psychology.
29. G. W. Allport : Personality—A Psychological Interpretation.
30. G. W. Shaffer and R. S. Lazarus : Fundamental Concepts in Clinical Psychology.
31. G. M. Whipple : Manual of Mental and Physical Tests.
32. Goodenough : The Mathematical Analysis of Non-intellectual Traits.
33. H. E. Garret : Great Experiments in Psychology.
34. H. Hartshorne and M. May : Studies in the Nature of Character.
35. I. P. Pavlov : Conditioned Reflexes (translated by G. V. Aurep).
36. J. P. Guilford : General Psychology.
37. J. B. Watson : Psychology from the Standpoint of a Behaviourist.
38. J. B. Watson : Behaviourism.
39. J. H. Masserman : Behaviour and Neurosis.
40. J. T. Maccurdy : Common Principles in Psychology and Physiology.
41. K. Koffka : Principles of Gestalt Psychology.
42. L. W. Crafts, T. C. Schneirla, E. E. Robinson, R. M. Gilbert : Recent Experiments in Psychology.
43. L. M. Terman : The Measurement of Intelligence.
44. L. M. Terman and M. A. Merrill : Measuring Intelligence.
45. L. L. Thurston and T. G. Thurston : The Chicago Test of Primary mental abilities; Manual of Instructions.
46. Morton Prince : The Unconscious (2nd Edn.)
47. M. Schoen : Human Nature.

48. N. L. Munn : Psychology.
49. N. L. Munn : Psychological Development.
50. Oakley and Macrae : A Handbook of Vocational Guidance.
51. P. T. Young : Emotion in Man and Animal.
52. P. T. Young : Motivation of Behaviour.
53. R. S. Woodworth : Psychology—A study of mental life.
54. R. S. Woodworth : Experimental Psychology.
55. R. S. Woodworth : Contemporary Schools of Psychology.
56. R. S. Woodworth : Dynamic Psychology.
57. Rex Knight : Intelligence and Intelligence Tests.
58. Shaffer, Gilmer and Schoen : Psychology.
59. Spearman : The Nature of Intelligence.
60. S. Freud : Group Psychology and Analysis of the Ego.
61. S. Freud : The Interpretation of Dreams.
62. S. Freud : Introductory lectures on Psycho-analysis.
63. S. Freud : New Introductory lectures on Psycho-analysis.
64. S. D. Porteus : The Maze test and Mental differences.
65. William McDougall : Physiological Psychology.
66. William McDougall : Introduction to Social Psychology.
67. W. James : Principles of Psychology.
68. W. Wundt : Lectures on Human and animal Psychology. (translated by J. E. Greighton and E. B. Titchener)
69. W. B. Pillsbury : Essentials of Psychology.
70. W. James : Psychology, Briefer Course.
71. W. H. Sheldon, S. S. Stevens and W. B. Tucker : The Varieties of Human Physique.
72. W. B. Cannon : Bodily Changes in Pain, Hunger, Fear and Rage
73. W. Kohler : Gestalt Psychology.
74. W. Kohler : The Mentality of Apes.
75. Wendell W. Cruze : Psychology for College students.

शब्द-सूची

A

Abnormal	असामान्य
Abnormal Psychology	असामान्य मनोविज्ञान
Abstract	अमूर्त्त
Abstract experience	अमूर्त्त अनुभव
Abstract intelligence	अमूर्त्त बुद्धि
Abstract thinking	अमूर्त्त चिन्तन
Abstraction	भावकरण, पृथक्करण
Achievement	उपलब्धि
Accurate	यथार्थ, निश्चित
Active	सक्रिय
Active imagination	सक्रिय कल्पना
Activity	क्रिया
Acquired motive	अर्जित प्रेरक वृत्ति
Acquisitiveness	अर्जनात्मकता
Adequate	उपयुक्त, समुचित
Adequate adjustment	समुचित अभियोजन
Adequate stimulus	उपयुक्त उत्तेजना, समुचित उत्तेजना
Adjustment	अभियोजन
Adjustment centre	व्यवस्था-केन्द्र
Adjustive response	अभियोजनात्मक प्रतिक्रिया
Afferent nerves	अन्तर्वाहक स्नायुएँ
After-image	अनुबिम्ब
After-sensation	अनुसंवेदना
Affective	भावात्मक
Age-level	अवस्था-स्तर
All-or-none law	सम्पूर्ण-या-बिलकुल नहीं का नियम
Alternative	विकल्प
Amount	मात्रा, परिमाण
Afferent neuron	ज्ञानवाही स्नायु-कोश
Axon-hillock	मुख्यतन्तु-पर्वती

Association neuron	साहचर्य-स्नायु-कोश
Absolute refractory period	निरपेक्ष निष्क्रियावस्था
Association area	साहचर्य-क्षेत्र
Association fibres	साहचर्य स्नायु-तन्तु
Agnosia	प्रज्ञा-शून्यता
Auditory agnosia	श्रवण-प्रज्ञाशून्यता
Aphasia	वाक्-शून्यता
Apraxia	चेष्टा शून्यता
Auditory area	श्रवण-क्षेत्र
Analysis	विश्लेषण
Analytical Psychology	विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान
Animal Psychology	पशु मनोविज्ञान
Anxiety-dream	चिन्ता-स्वप्न
Anvil	निहाई
Aqueous humor	जलद्रव
Army general classification test or A. G. C. T.	सैन्य सामान्य वर्गीकरण-परीक्षण
Arithmetic Word problem	अंकगणित-शब्द-समस्याएँ
Arteries	धमनियाँ
Archetype	संस्कार
Association	साहचर्य
Associationist Psychologist	साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिक
As a whole	समग्र रूप में
Ascendance	प्रभुत्व
Attributes	गुण
Attitude	मनोवृत्ति
Attempted wish-fulfilment	सचेष्ट इच्छा-पूर्त्ति
Auditory centre	श्रवण-केन्द्र
Auditory nerve-centre	श्रवण-स्नायु-केन्द्र
Auditory sensation	श्रवण-संवेदना
Auditory tube	कर्ण-नली
Auditory image	श्रवण-प्रतिमा

Audile	श्रावक
Autonomic nervous system	स्वत: संचालित स्नायु-मंडल
Average	औसत
Average result	औसत फल
Axon	मुख्य तन्तु

B

Background	आधार-भूमि
Basic units	आधारभूत तत्त्व
Branches	शाखाएँ
Basal ganglia	मूलभूत स्नायु-पुंज
Behaviour	व्यवहार, आचरण
Behaviourism	व्यवहारवाद
Behavioural level	आचरणात्मक स्तर
Biology	जीव-विज्ञान
Biological theory	जीवशास्त्रीय सिद्धान्त
Birth-order	जन्म-क्रम
Blanks	रिक्त पत्र
Block counting problems	ब्लॉक-परिगणन समस्याएँ
Blood-circulation	रक्त-प्रवाह
Blood-Pressure	रक्त-चाप
Blind alley	अन्ध-पथ
Body	शरीर
Bodily attitude	शारीरिक मुद्रा, तनमुद्रा
Brain	मस्तिष्क
Breathless attention	श्वास-रहित ध्यान

C

Case-history	व्यक्ति-इतिहास
Cerebellum	लघु मस्तिष्क
Cerebrum	वृहत् मस्तिष्क
Central nervous system	केन्द्रीय स्नायु-मंडल
Central nervous adjustment	केन्द्रीय स्नायु-सम्बन्धी अभियोजन
Cerebral cortex	बृहन्मस्तिष्कीय बल्क

Cell	कोषाणु
Cell body	जीव-कोष
Cell membrane	कोषावरण
Cytoplasm	कोषद्रव
Central theory	केन्द्रीय सिद्धान्त
Chemistry	रसायन-विज्ञान
Chemical	रासायनिक
Chemical change	रासायनिक परिवर्त्तन
Child Psychology	बाल-मनोविज्ञान
Child guidance	बाल-निर्देशन
Chronological age or C.A.	वास्तविक आयु
Choice	चुनाव
Choroid	मध्यपटल
Chemical secretion	रासायनिक स्राव
Conductivity	संचरण
Cardiac muscle	हार्दिक मांसपेशी
Central fissure	मध्य दरार या माध्यमिक दरार
Commisural fibres	संयोजक तन्तु
Clinics	उपचार-गृह
Conscious	चेतन
Consciousness	चेतना
Conscious experience	चेतन अनुभूति
Conduct	आचरण
Conclusion	निष्कर्ष
Controlled	नियन्त्रित
Controlled conditions	नियन्त्रित अवस्थाएँ
Controlled imagination	नियन्त्रित कल्पना
Constant	स्थिर
Conditioned response	सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तित प्रतिक्रिया
Conditioning	सम्बन्ध-प्रत्यावर्त्तन
Co-ordinated	सुसंगठित
Co-ordinating nerve-centre	संयोजक स्नायु-केन्द्र

Cones	सूचियाँ
Cornea	कनीनिका
Cochlea	कौकलिया
Collector	संग्रहकर्त्ता
Colour-blindness	रंग-अन्धापन
Colour-mixing	रंग-सम्मिश्रण
Colour-mixing instrument	रंग-सम्मिश्रण-यंत्र
Complementary Colour	पूरक रंग
Cognitive aspect	प्रज्ञात्मक पहलू
Cutaneous sensation	त्वक्-संवेदना
Cold spots	शीत-विन्दु
Continuity	अविच्छिन्नता
Concrete experience	मूर्त्त अनुभव
Concrete intelligence	मूर्त्त बुद्धि
Context	प्रसंग
Condensation	संक्षेपण
Constructive intellect	रचनात्मक बुद्धि
Collective unconscious	सामूहिक अचेतन
Collection of facts	तथ्य-संग्रह
Compensatory behaviour	क्षतिपूर्त्यात्मक आचरण
Conflict	संघर्ष
Contraction	संकोचन
Correlation	सहसम्बन्ध
Constancy	स्थैर्य, स्थिरता
Criminology	अपराध-विज्ञान
Criteria	मान्यताएँ
Creative imagination	रचनात्मक कल्पना

D

Diencephalon	अन्तर मस्तिष्क
Data	सामग्री
Day-dream	दिवा-स्वप्न
Dark-adaptation	अन्धकार-अभियोजन

Demerit	दोष
Dependent variable	आश्रित परिवर्त्य
Dendrite	शिखा-तन्तु
Definiteness	निश्चितता
Descriptive	वर्णनात्मक
Decision	निर्णय
Deliberation	तर्क-वितर्क
Definite recognition	निश्चित पहचान
Delinquent	बाल-अपराधी
Deliquency	बाल-अपराध
Depression	खिन्नता
Digit symbol	अंक-प्रतीक
Distracting stimuli	बाधक-उत्तेजनाएँ
Division of attention	ध्यान का विभाजन
Distinctiveness	विशिष्टता
Displacement	विस्थापन
Distorted	विकृत
Distorted form	विकृत रूप
Dominance	प्रभुत्व, अधिकार
Dominant	अधिकारप्रिय
Dream	स्वप्न
Dream-analysis	स्वप्न-विश्लेषण
Dream-analyst	स्वप्न-विश्लेषक
Dream-work	स्वप्न-क्रिया
Dream-interpretation	स्वप्न-व्याख्या
Dramatization	नाट्यकरण
Drive	प्रणोदन
Drug addiction	मद-व्यसन
Dull	मन्दबुद्धि
Duct-glands	बहिःस्रावी पिंड
Ductless glands	अन्तःस्रावी पिंड
Duration	सत्ताकाल, अवधि

Dwarf	बौना
Dynamic	गतिशील. गत्यात्मक

E

Ear-drum	कान का ढोल
Educational Psychology	शिक्षा-मनोविज्ञान
Effector	प्रभावक
Efferent nerves	बहिर्वाहक स्नायुएँ
Ego-ideal	अहंभाव
Eidetic image	प्रत्यक्ष प्रतिमा
Element	तत्त्व
Electro-chemical disturbance	वैद्युत् रासायनिक संक्षोभ
Elementray	प्रारंभिक
Electric shock	विद्युत्-आघात
Emotion	संवेग
Emergency motive	आपात प्रेरक वृत्ति
Emotional instability	संवेगात्मक अस्थिरता
Environment	वातावरण
Environmentalist	वातावरणवादी
Energy-balance	शक्ति-संतुलन
Equi-potentiality	समक्षमता
Ethics	आचारशास्त्र
Ether-vibration	शब्द-प्रकंपन
Experiment	प्रयोग
Experimental method	प्रयोगात्मक पद्धति
Experimental Psychology	प्रयोगात्मक मनोविज्ञान
Existentialism	अस्तित्ववाद
Expression	अभिव्यक्ति
Experimenter	प्रयोगकर्त्ता
Exploration	अन्वेषण
Extensity	व्याप्ति, विस्तार
Exercise	अभ्यास
Explanatory	व्याख्यात्मक

Excitement-quiet	उत्तेजना-शान्ति
Excited state	उत्तेजित अवस्था
Extroversion	बहिर्मुखता

F

Fact	यथार्थता, तथ्य
Factor	तत्त्व
Factor analysis	तत्त्व-विश्लेषण
Factor analysis technique	तत्त्व-विश्लेषण-पद्धति
Factorial approach	तात्त्विक दृष्टिकोण
Favourable	अनुकूल
Favourable reaction	अनुकूल प्रतिक्रिया
False perception	अयथार्थ प्रत्यक्षीकरण
Facial Expression	मुखाकृतिक अभिव्यंजन
Family history	वंश-इतिहास
Feeble-minded	मन्दबुद्धि
Feeling	भाव
Feeling of inferiority	हीनता की भावना
Fibre-tract	तन्तु-विस्तार
Fluid	तरल
Figure	आकार
Fluctuation of attention	ध्यान की अस्थिरता
Fore brain	अग्रमस्तिष्क
Frontal lobe	अग्रखंड
Functional juncture	क्रियात्मक संधि
Forgetting curve	विस्मरण-रेखा
Force of habit	अभ्यास की विवशता
Foresight	दूरदर्शिता
Free association	स्वतन्त्र साहचर्य
Function	क्रिया
Fundamental tone	मूल स्वर
Facilitation	संवर्द्धन

G

General Psychology	सामान्य मनोविज्ञान
General law	सामान्य नियम
General capacity	सामान्य क्षमता
General attribute	सामान्य विशेषता
General factor or 'G' factor	सामान्य तत्त्व
General intellectual level	सामान्य बौद्धिक स्तर
Genius	प्रतिभाशाली
Geometrical optical illusion	रेखागणित-सम्बन्धी दृष्टि-विपर्यय
Generalization	सामान्यीकरण
Gestaltism	जेस्टॉल्टवाद
Giant	विशालकाय
Gland	पिंड
Glandular reaction	पिंड-प्रतिक्रियाएँ
Glandular secretion	पिंड-स्राव
Glandular duct	पिंड-नालिका
Global	सार्वभौम
Global concept	सार्वभौम विचार
Goal-directed behaviour	लक्ष्य-निर्देशित व्यवहार
Good figure	उत्तम आकार
Grade levels	वर्ग-स्तर
Gregariousness	सामुदायिकता
Group performance test	सामूहिक क्रियात्मक परीक्षण
Group action	सामूहिक क्रिया
Gradual	क्रमिक
Gustatory image	स्वाद-प्रतिमा
Gray matter	भूरा पदार्थ
Ganglia	स्नायु-पुंज
Gustatory area	स्वाद-क्षेत्र

H

Hind brain	पृष्ठ मस्तिष्क
Habits of behaviour	व्यवहार के अभ्यास

Hair-cells	केश-पेशियाँ
Hammer	मुद्गर
Hallucination	विभ्रम
Habitual attention	स्वाभाविक ध्यान
Habit-formation	आदत-निर्माण
Heat-spots	ताप-विन्दु
Heredity	वंशानुक्रम, वंशपरंपरा
Hereditarian	वंशानुक्रमवादी
Higher centres of the brain	मस्तिष्क के ऊँचे केन्द्र
Hunger-drive	भूख-प्रणोदन
Hypothesis	अनुमान

I

Idiot	जड़
Idea	विचार
Identification	तादात्म्य
Illusion	विपर्यय
Illumination	स्फुरण
Immaterial	अभौतिक
Image	बिंब, प्रतिमा
Imagination	कल्पना
Impersonal	अवैयक्तिक
Immediate	तात्कालिक, क्षणिक
Imagination image	काल्पनिक प्रतिमा
Imagery	बिंब, प्रतिमा
Imbecile	मूढ़
Impulse	आवेश
Individual development	व्यक्ति-विकास
Incentive	उद्दीपन
Instruction	निर्देश
Inferiority complex	हीनता-ग्रन्थि
Irritability	संक्षोभ
Inhibition	अवरोधन, रुकावट

Integrating centre	समन्वयात्मक केन्द्र
Infantile sexuality	शैशविक कामेच्छा
Index	सूचनांक
Intelligence test	बुद्धि-परीक्षण
Intelligence test-score	बुद्धि-परीक्षण-लब्धांक
Intellectual performance	बौद्धिक क्रिया
Individual performance test	वैयक्तिक क्रियात्मक परीक्षण
Intelligence quotient or I.Q.	बुद्धि-लब्धि
I. Q. Constancy	बुद्धि-लब्धि-स्थैर्य
I. Q. Determination	बुद्धि-लब्धि-निर्धारण
Inter-correlations	अन्तर-सहसबंध
Individual differences	व्यक्ति-विभिन्नताएँ
Internal experience	आन्तरिक अनुभूति
Introspection	अन्तर्निरीक्षण
Introspective method	अन्तर्निरीक्षणात्मक पद्धति
Introspective report	अन्तर्निरीक्षणात्मक विवरण
Introspective data	अन्तर्निरीक्षणात्मक सामग्री
Individual action	व्यक्तिगत क्रिया
Instinct	मूल प्रवृत्ति
Introspectionist	अन्तर्निरीक्षक
Instrument	यन्त्र
Independent variable	स्वतन्त्र परिवर्त्य
Industrial Psychology	औद्योगिक मनोविज्ञान
Innate	जन्मजात
Innate motive	जन्मजात प्रेरक वृत्ति
Interest	अभिरुचि
Instinct of escape	पलायन-वृत्ति
Instinct of combat	आक्रमण-वृत्ति
Involuntary	अनैच्छिक
Involuntary action	अनैच्छिक क्रिया, अनात्मप्रेरित क्रिया
Involuntary attention	अनैच्छिक ध्यान
Inadequate	अनुपयुक्त

Intensity	तीव्रता
Inner ear	अन्त कर्ण
Intention	लक्ष्य
Insight	अन्तर्दृष्टि, सूझ
Insight theory	अन्तर्दृष्टि का सिद्धात, सूझ का सिद्धात
Insightful learning	अन्तर्दृष्ट्यात्मक सीखना
Interval	अवकाश
Indefinite recognition	अनिश्चित पहचान
Internal speech	आन्तरिक सभाषण
Incubation	गर्भीकरण
Instinct of laughter	हास्य-वृत्ति
Instinct of food-seeking	भोजनान्वेषण-वृत्ति
Instinctive	मूल प्रवृत्त्यात्मक
Instinctual wishes	मूल प्रवृत्त्यात्मक इच्छाएँ
Inborn	जन्मजात
Integration	समन्वय
Intelligence	बुद्धि
Introverted nature	अन्तर्मुखी स्वभाव
Introveresion	अन्तर्मुखता
Ink-blot test	मसि-चिह्न-परीक्षण
Inter-action	पररपर-क्रिया
Iris	उपतारा

J

Job-analysis	कार्य-विश्लेषण
Joints	सधि-स्थल

K

Kidney	गुर्दा
Kinesthetic sensation	गति-सवेदना

L

Laboratory	प्रयोगशाला
Laws of association	साहचर्य-नियम
Law of exercise	अभ्यास-नियम

Law of effect	प्रभाव-नियम
Lateral fissure	पार्श्व दरार
Law of contiguity	समीपता का नियम
Law of similarity	समानता का नियम
Law of contrast	विरोध का नियम
Law of recency	आसन्नता का नियम
Law of frequency	बारंबारता का नियम
Law of vividness	स्पष्टता का नियम
Law of primacy	प्राथमिकता का नियम
Lapse of time	काल-व्यवधान
Learning	सीखना
Level of aspiration	आकांक्षा का स्तर
Level of achievement	उपलब्धि-स्तर
Life-energy	जीवन-शक्ति
Life-goal	जीवन-लक्ष्य
Living cell	जीवित कोश
Liver	यकृत
Light waves	प्रकाश-तरंगें
Light adaptation	प्रकाश-अभियोजन
Liquid substance	तरल पदार्थ
Logical	तार्किक, तर्कयुक्त
Localization	स्थान-निरूपण
Local sign	स्थानीय चिह्न
Loudness	घनत्व
Low normal	निम्न सामान्य

M

Manual of directions	निर्देशन-पुस्तिका
Maturation	परिपक्वता, विवृद्धि
Maze	भूलभुलैया
Manual dexterity	हस्त-कौशल
Manifest content	व्यक्त विषय
Massed method	अविराम विधि

Matter-of-fact	वस्तुवादी
Mental balance	मानसिक सन्तुलन
Melody	राग
Molar behaviour	सघटित व्यवहार
Molecular behaviour	विघटित व्यवहार
Mesencephalon	मध्य मस्तिष्क
Metencephalon	अनुमस्तिष्क
Myelencephalon	सुषुम्ना-शीर्ष
Mid-brain	मध्यमस्तिष्क
Motor area	गतिवाही क्षेत्र
Motor learing	गतिवाही सीखना
Meaningful Sensation	सार्थक सवेदना
Memory-trace	स्मृति-चिह्न
Mental capacity	मानसिक क्षमता
Mental deficiency	मानसिक न्यूनता
Mental energy	मानसिक शक्ति
Mental organization	मानसिक सगठन
Mental age or M.A.	मानसिक आयु
Mental level	मानसिक स्तर
Mental review	मानसिक पर्यवेक्षण
Memory training	स्मृति-शिक्षण
Mental alertness	मानसिक सतर्कता
Memory-image	स्मृति-प्रतिमा
Mechanical action	यान्त्रिक क्रिया
Mental disposition	मानसिक स्थिति, मानस-वृत्ति
Mental shock	मानसिक सक्षोभ
Method	विधि
Measurement	माप
Mental ability	मानसिक योग्यता
Mechanical puzzle	यान्त्रिक उलझन, यान्त्रिक प्रहेलिका
Mechanism	यन्त्र-रचना, कार्य-पद्धति
Mental activity	मानसिक क्रिया

Merit	गुण
Mechanical aptitude	यान्त्रिक कौशल
Mechanical ability	यान्त्रिक योग्यता
Mechanical aspect	यान्त्रिक पहलू
Memory span	स्मृति-विस्तार
Mental testing movement	मानसिक परीक्षण-आन्दोलन
Mental set	मानस-वृत्ति
Medulla oblongatta	सुषुम्ना-शीर्ष
Middle ear	मध्यकर्ण
Mixed feeling	मिश्रित भाव
Mind	मन
Motion and inertia	गति एव निश्चलता
Motor neuron	गतिवाही स्नायुकोश
Motive	प्रेरक वृत्ति
Motivation	अनुप्रेरणा
Motivating	अनुप्रेरणात्मक
Motivational process	अनुप्रेरणात्मक प्रक्रिया
Motivated behaviour	अनुप्रेरित व्यवहार
Moral	नैतिक
Monotony	एकरसता
Motor nerve	गतिवाही स्नायु
Motor organs	कर्मेन्द्रियाँ
Motor neuron	गतिवाही स्नायुकोश
Modification	परिमार्जन
Motor trial and error	गतिवाही प्रयत्न गौर भूल
Motor theory of thinking	चिन्तन का गतिवाही सिद्धात
Motor ability	क्रियात्मक योग्यता
Moron	मूर्ख
Mode of behaviour	व्यवहार-प्रणाली
Muscle	मासपेशी
Muscular activity	मासपेशी-सम्बन्धी क्रिया
Muscle-tension	मासपेशियो का तनाव

Musical memory	सगीतात्मक स्मृति
Musical talent	संगीतात्मक मेधा
Multifactor theory	बहुतत्त्व-सिद्धांत

N

Navy general classification test or N.G.C.T.	नौसेना सामान्य वर्गीकरण परीक्षण
Nature	स्वरूप
Natural Science	प्राकृतिक विज्ञान
Nausea	वमन
Nasal cavity	नासिका-रन्ध्र
Nerve-cells	स्नायविक जीवाणु
Negative after-image	प्रतिरूप अनुबिंब
Nerve-fibre	स्नायु-तन्तु
Nerve-impulse	स्नायु-प्रवाह
Need-satisfaction	आवश्यकता-संतृप्ति
Neuron	स्नायु-कोश
Nerve-centre	स्नायु-केन्द्र
Nervous system	स्नायु-मण्डल
Nerve	स्नायु
Normative Science	आदर्श-निर्धारक विज्ञान
Normal	सामान्य
Norm	प्रतिमान
Non-intellective factors	अबौद्धिक तत्त्व
Nonsense syllables	निरर्थक शब्द-खंड
Nucleus	कोष-केन्द्र
Numerical	सांख्यिक

O

Occipital lobe	पृष्ठखंड
Objective method	वस्तुनिष्ठ पद्धति
Objective observation	बाह्य निरीक्षण
Objective observer	बाह्य निरीक्षक
Objection	आपत्ति

Object assembly	वस्तु-सग्रह
Objective conditions	बाह्य अवस्थाएँ
Olfactory sensation	घ्राण-सवेदना
Olfactory image	घ्राण-प्रतिमा
Olfactory bulb	घ्राण-केन्द
Optic nerve	दृष्टि-स्नायु
Organic cravings	ऐन्द्रिक लालसाएँ
Organism	प्राणी
Organic sensation	आन्तरिक सवेदना
Organic need	शारीरिक आवश्यकताएं
Outer ear	बाह्य कर्ण
Overtone	अधिस्वर
Overlearning	विशेष रूप से सीखना
Over-affection	अति स्नेह

P

Part method	आशिक रीति
Parasympathetic system	उपसहानुभूतिक मडल
Peripheral nervous system	सीमान्त स्नायुमडल
Parietal lobe	मध्यखड
Projection fibre	प्रक्षेपण-तन्तु
Pyramidal cell	शुण्डाकार कोश
Paralysis	गतिशून्यता
Phrenologist	मस्तिष्क-वैज्ञानिक
Property	गुण
Passive	निष्क्रिय
Passive imagination	निष्क्रिय कल्पना
Pain-spot	वेदना-विन्दु
Percept	प्रत्यक्ष
Perception	प्रत्यक्षीकरण
Personal	व्यक्तिगत
Personal motives	व्यक्तिगत प्रेरक वृत्तियाँ
Performance tests	क्रियात्मक परीक्षण

Performance	कार्य, क्रिया
Performer	कार्यकर्त्ता
Personality	व्यक्तित्व
Persistence	प्रशक्ति, हठ
Personal unconscious	व्यक्तिगत अचेतन
Physics	भौतिक विज्ञान
Physical process	भौतिक क्रिया
Physiology	शरीर-विज्ञान
Physiological needs	शारीरिक आवश्यकताएं
Physical strength	शारीरिक बल
Philosophy	दर्शनशास्त्र
Philosophical	दार्शनिक
Physiological Psychology	शारीरिक मनोविज्ञान, दैहिक मनोविज्ञान
Physiologist	शरीर-वैज्ञानिक
Physiological theory	दैहिक सिद्धात
Physique	शारीरिक बनावट
Pitch	कोटि
Picture arrangement	चित्र-विधान
Picture completion	चित्र-पूर्त्ति
Pleasantness	सुखप्रियता
Positive science	समर्थक विज्ञान
Pons	सेतु
Postural adjustment	तनमुद्रात्मक अभियोजन
Postitive after-image	अनुरूप अनुबिम्ब
Positive relation	विध्यात्मक सम्बन्ध
Post-hyphotic suggestion	सम्मोहनोत्तर सकेत
Porteus maze-test	पोर्टियस, भूलभुलैया-परीक्षण
Process	प्रक्रिया
Problem	समस्या
Projective method	आरोपणात्मक विधि
Pressure spot	चाप-विन्दु

Progressive part method	प्रगतिशील आंशिक रीति
Prohibition	निषेध
Protective	रक्षात्मक
Prejudice	पूर्वधारणा
Prediction	पूर्वकथन
Problem children	समस्या-शिशु
Problem-situation	समस्या-परिस्थिति
Primitive intelligence	आदिम बुद्धि
Prudence	चातुरी
Profile of abilities	योग्यताओ का समुच्चय
Propaganda	प्रचार
Psycho-physical	मनोदैहिक
Psycho-analysis	मनोविश्लेषक
Psycho-analyst	मनोविश्लेषण
Psycho-analytic test	मनोविश्लेषणात्मक परीक्षण
Psychic trauma	मानसिक आघात
Psychological law	मनोवैज्ञानिक नियम
Psychological test	मनोवैज्ञानिक परीक्षण
Psychological activity	मनोवैज्ञानिक क्रिया
Psycho-pathology of every-day life	दैनिक मनोविकृति
Purposivism	प्रयोजनवाद
Pugnacity	युयुत्सा
Public opinion	जनमत
Puzzle-box	उलझन-बक्स
Purposive	साभिप्राय
Punishment-dream	दंड-स्वप्न
Pupil	पुतली
Pure sensation	विशुद्ध संवेदना

Q

Quality	प्रकार
Questionnaire	प्रश्नावली
Quantitatve thinking	संख्यात्मक चिन्तन

R

Racial characteristics	जातीय विशेषताएँ
Rating scale	श्रेणी-मूल्यांकन
Racial rivalry	जातीय विद्वेष
Reflex	प्रतिक्षेप
Reflex action	प्रतिक्षेप-क्रिया, सहज प्रवृत्ति
Reaction	प्रतिक्रिया
Response	प्रत्युत्तर
Retrospection	अनुनिरीक्षण
Reliability	विश्वसनीयता
Reflex arc	प्रतिक्षेपधनु
Retina	अक्षिपट
Retinal image	अक्षिपट की प्रतिमा
Receptor cell	ग्राहक कोश
Receptor	ग्राहक
Receptor adjustment	ग्राहकेन्द्रिय-अभियोजन
Repetition	आवृत्ति
Recitation	आवृत्तीकरण
Recall	प्रत्याह्वान
Remembering	स्मरण
Retention	धारण
Relearning	पुन: सीखना
Recognizing	पहचानना
Recognition	पहचान
Reasoning	विचार-शक्ति
Rationalization	युक्त्याभास
Regression	अवसर्पण
Relative refractory period	सापेक्ष निष्क्रियावस्था
Restraint	अवरोध
Relative	सापेक्ष
Repression	दमन
Retroactive inhibition	पृष्ठोन्मुख अवरोध

Reproduction	अनुस्मरण, पुनरावृत्ति
Resistance	प्रतिरोध
Resolution	संकल्प
Reflectiveness	चिन्तनशीलता
Reproductive imagination	पुनरावृत्त्यात्मक कल्पना
Rhythm	लय
Rivalry	स्पर्धा
Rods	दंड
Rudimentary	प्राथमिक

S

Salivary gland	लार-पिंड
Score	फलांक, लब्धांक
Sclerotic	श्वेत पटल
Scale	मानदंड
Sense-organ	ज्ञानेन्द्रिय
Sex-instinct	काम-वृत्ति
Security	सुरक्षा
Secretion	स्राव
Sensory nerve-centre	ज्ञानात्मक स्नायु-केन्द्र
Sexual craving	कामातुरता
Selective process	चयनात्मक प्रक्रिया
Sexual desire	यौन-प्रवृत्ति
Sensory stimuli	ऐन्द्रिक उत्तेजनाएँ
Sequence	अनुक्रम
Self-confidence	आत्मविश्वास
Set	तत्परता
Sentiment	स्थायीभाव
Sex-motive	काम-प्रेरक वृत्ति
Sex-drive	काम-प्रणोदन
Sex-conflict	काम-संघर्ष
Sex-problem	काम-समस्या
Self-regarding sentiment	आत्मसम्मान का स्थायीभाव

Sensitive	भावुक
Self-centred	आत्मकेन्द्रित
Sexual satisfaction	काम-तृप्ति
Sensory impression	ऐन्द्रिय प्रभाव, ऐन्द्रिक प्रभाव
Secondary elaboration	परवर्ती विस्तार
Self-assertion	आत्मस्थापन
Sensory tests	ऐन्द्रिक परीक्षण
Sensory discrimination	ऐन्द्रिक विभेदीकरण
Sensory perception	ऐन्द्रिक प्रत्यक्षीकरण
Sensory performance	ऐन्द्रिक क्रिया
Sensory acuity	ऐन्द्रिक तीक्ष्णता
S-R formula	उत्तेजना-प्रतिक्रिया-सूत्र
Shyness	भीरुता, संकोच
Situation-test	परिस्थिति-परीक्षण
Simple	सरल, सहज
Soul	आत्मा
Social Psychology	सामाजिक मनोविज्ञान
Social adjustment	सामाजिक अभियोजन
Social intelligence	सामाजिक बुद्धि
Social motive	सामाजिक प्रेरक वृत्ति
Sound-vibration	ध्वनि-प्रकपन
Sound-proof	ध्वनि-रक्षक
Sociability	सामाजिकता
Solitariness	एकान्तता
Spinal cord	सुषुम्ना, मेरुदंड
Speech-centre	वाक्-केन्द्र
Spaced method	विराम-विधि
Specialization	विशेषीकरण
Spatial	स्थानिक
Spatial thinking	स्थानिक चिन्तन
Special skill	विशिष्ट निपुणता
Specific factors or 'S' factors	विशिष्ट तत्त्व

Specific act	विशिष्ट क्रिया
Spelling	वर्ण-विवृत्ति
Stimulus	उत्तेजना
Striped muscle	धारीदार मांसपेशी
Structure	बनावट, रचना
Stirrup	रकाब
Style of life	जीवन-शैली
Statistical	परिगणनात्मक
Statistical analysis	परिगणनात्मक विश्लेषण
Statistical analysis technique	परिगणनात्मक विश्लेषण-पद्धति
Stanford-Binet scale	स्टैनफोर्ड-बीने-मानदंड
State of attention	ध्यानावस्था
Stirred up state	उत्तेजित अवस्था
Subject	प्रयोज्य
Subjective	आत्मनिष्ठ
Sudden	आकस्मिक
Subjective evaluation	आत्मनिष्ठ मूल्यांकन
Submissive	अधीनताप्रिय
Submission	आधिन्य, अधीनता
Subjective conditions	आन्तरिक अवस्थाएँ
Suppressed	कुंठित
Super-ego	श्रेष्ठ अहंभाव
Superior or Bright	श्रेष्ठ या तीव्र
Superiority complex	श्रेष्ठता-ग्रन्थि
Sustained attention	स्थिर ध्यान
Substitute	स्थानापन्न
Sweat-gland	स्वेद-पिंड
Sex-development	काम-विकास
Symbol	प्रतीक
Symbolic form	प्रतीकात्मक रूप
Synapse	संधिस्थल
Sympathetic system	सहानुभूतिक मंडल

Somatic nervous system	दैहिक स्नायु-मंडल
Spatial summation	स्थानिक योग
Somesthetic area	त्वक्पेशी संवेदन-क्षेत्र
Somesthetic agnosia	त्वक्पेशी संवेदन-प्रज्ञाशून्यता
Sublimation	उन्नयन
Sensory area	ज्ञानवाही क्षेत्र
Sympathetic nerve	सहानुभूतिक स्नायु
Symbolization	प्रतीकीकरण
Synthetic theory	संश्लेषणात्मक सिद्धांत
Sensory neuron	गतिवाही स्नायु-कोश

T

Taste senstion	स्वाद-सवेदना
Taste buds	स्वाद-कलिकाएँ
Tactual sensation	स्पर्श-संवेदना
Tactual image	स्पर्श-प्रतिमा
Talent	मेधा
Temperature	तापक्रम
Temperament	धातुस्वभाव
Tension	तनाव
Tendon	पुट्ठा
Tension-Relief	विक्षोभ-विराम
Test	परीक्षण
Test-item	परीक्षण-विषय
Test-result	परीक्षण-फल
Testor	परीक्षक
Testing situation	परीक्षण-परिस्थिति
Testing technique	परीक्षण-पद्धति
Thematic apperception test	कथा संस्कार-परीक्षण
Theory of evolution	विकासवाद का सिद्धांत
Thinking	चिन्तन
Thought-process	चिन्तन-क्रिया
Theory of conditioning	सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन का सिद्धांत

Timbre	नाद-गुण
Time relation	काल-सम्बन्ध
Tone	लयात्मक ध्वनि
Transparent	पादरर्शी
Transformer	परिवर्त्तनकर्त्ता
Trial	प्रयत्न
Trial and error	प्रयत्न और भूल
Telencephalon	मस्तिष्क-खंड
Temporal summation	सामयिक योग
Temporal lobe	शख-खड
Tri-dimensional theory of feeling	भाव का त्रिदिशात्मक सिद्धान्त
Trait	गुण, विशेषता
Traumatic neurosis	अघातिक मनोदौर्बल्य
Two-factor theory	द्वितत्त्व-सिद्धात

U

Unique	अपूर्व
Universal	सार्वजनिक
Unpleasantness	असुख, अप्रियता
Unexpected emotional situation	अप्रत्याशित संवेगात्मक परिस्थिति
Uncontrolled imagination	अनियन्त्रित कल्पना
Unconscious	अचेतन
Unconscious attitude	अचेतन मनोवृत्ति
Unconscious motivation	अचेतन अनुप्रेरणा

V

Validity	सत्यता
Variation	परिवर्त्तन
Verification	प्रमापन
Verbal Comprehension	वाचिक समझ
Verbal ability	वाचिक योग्यता
Verbal items	वाचिक विषय
Verbal relations	वाचिक संबंध
Verbal individual intelligence test	वाचिक वैयक्तिक बुद्धि-परीक्षण

Verbal group intelligence-test	वाचिक सामूहिक बुद्धि-परीक्षण
Very superior or Very Bright	अति श्रेष्ठ या अति तीव्र
Vital functions	प्राण-सम्बन्धी क्रियाएँ
Visual centre	दृष्टि-केन्द्र
Visual agnosia	दृष्टि-प्रज्ञाशून्यता
Visual area	दृष्टि-क्षेत्र
Verbal learning	वाचिक सीखना
Visual sensation	दृष्टि-सवेदना
Vividness	स्पष्टता
Vitreous humor	काचद्रव
Visual light waves	दृश्य प्रकाश-तरगे
Visual field	दृष्टि-क्षेत्र
Visual image	दृष्टि-प्रतिमा
Visile	चाक्षुषी
Viscera	अन्तरावयव
Visceral change	अन्तरावयव परिवर्त्तन
Voluntary	ऐच्छिक
Voluntary action	ऐच्छिक या आत्मप्रेरित क्रिया
Voluntary attention	ऐच्छिक ध्यान
Vocal expression	स्वराभिव्यजन
Volume of sound	ध्वनि-विस्तार
Vocabulary problems	शब्दकोष-समस्याए
Vocational guidance	व्यवसाय-निदशन

W

White matter	श्वेत पदार्थ
Walls of blood-vessels	रक्त-नालिकाओ की दीवार
Wechsler-Bellevue test	वेस्लर-बेल्लव्यू-परीक्षण
Wish-fulfilment	इच्छा-पूर्त्ति
Whole method	पूर्ण रीति
Whole unit	पूर्ण इकाई
Word fluency	वाक्पटुता
Will for power	शक्ति की कामना